लेख-सूची।

चित्र-सूची।

चंद्रमुखीकरण

यह दवा विलायती ख़ुशबूदार फूलों की रूह है. इसे विलायत के एक मशहूर डाक्टर ने बनाकर अभी अभी रवाना की है। सात दिन बदन और चेहरे पर मल कर नहाने से, स्याह रंगत भी गुलाब के फूल की भांति सुर्ख़ व सफ़ेद, मक्खन की माफ़िक मुलायम हो जाती है। जिस्म से ख़ुशबू की प्यारी २ लहर निकलने लगती है, सीतला माता के दाग, चाँईं और गालों के स्याह दाग, झाईं छीप झुर्रियाँ मुहासे आदि को मिटा कर ऐसी ख़ूबसूरती आ जाती है कि चेहरा चाँद की माफ़िक चमकने लगता है। तारीफ़ यह है कि जो रंगत और ख़ूबसूरती इससे पैदा होती है हमेशा क़ायम रहती है क्योंकि यह वह पोडर नहीं है जिसे बाज़ारी औरतें लगाकर घड़ी दो घड़ी को सफ़ेद चमड़ी कर लेती हैं। अपनी माशूक़ा को चन्द्रमुखी बनाना है तो इसे अवश्य मँगाइये। क़ीमत फ़ी बोतल १॥) तीन बोतल एक साथ लेने से पारसल ख़र्च माफ़।

मिलने का पता—

रमेशचंद्र चोपड़ा ऐण्ड को०,

स्वामीघाट (की डाक) मथुरा।

मुनिए! | सुनिए!!

दो बेन रत्न

हीरा ! र ! पन्ना !

देर मत कीजिये पं० रमाकान्त व्यास, राजवैद्य कटरा, प्रयाग के बनाये हुए रत्नों को मँगा कर परीक्षा कीजिये

१—यदि आपको दर्द हो, सिर घूमता हो, मस्तिष्क की सख़्त कमज़ोरी आदि हो और अब किसी तेल से फ़ायदा न हो तो समझिये कि सिर्फ़ व्यास का बनाया हुआ "हिमसागर तैल" ही इकसीर दवा है।

यदि अधिक पढ़ने या मानसिक परिश्रम से थक जाते हों और दम घबराता हुआ मालूम हो तो हिमसागर तैल लगावें इससे मस्तिष्क ठण्डा रहेगा। घंटों में पढ़ी हुई बातें मिनटों में समझ सकेंगे। दाम ॥) तो०।

२—पौष्टिक चूर्ण— मंजु के लिए अनुप योगी। दाम १) डिब्बा।

३—यदि आपको मंद हो, भूख न लगती हो, भोजन के बाद वायु पेट फूलता हो, जी मचलाता हो, कब्ज़ रहता हो तो "कपूर वटी" अपना पाचक वटी मँगा सेवन कीजिये। बड़ी डिब्बी जिस में ५० गोली रहती हैं। मूल्य ।)

दूसरी दवाओं के लिए सूचीपत्र मुफ़्त मँगवाकर देखिये।

दवा मँगाने वाला—

पं० रमाकान्त व्यास, राजवैद्य

कटरा—इलाहाबाद।

असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी नं० १ इनाम

मुफ़्त लुटाते हैं

मुफ़्त लुटाते हैं

खुशबूदार रमेशसाबुन एक वैज्ञानिक रीति से बनाया जाता है जो सिर्फ़ ३-४ मिनट में बग़ैर जलन या तकलीफ़ के बालों को उड़ाकर जिल्द को मुलायम और ऐसा चमकदार कर देता है मानो बाल यहाँ कभी थे ही नहीं। रमेशसाबुन दाद, खाज, और ज़हरीले जानवरों के विष को भी बात की बात में खो देता है इसी सबब रमेशसाबुन के हज़ारों बक्स बिक रहे हैं। रमेश साबुन बड़े बड़े राजे महाराजे, सेठ साहूकारों के मकान तक आदर पा चुका है। तीन टिकिया मय ख़ूबसूरत बक्स ।॥) बारह आना वी० पी० ख़रचा ।≈) लेकिन जो साहब चार बक्स क़ीमती ३) तीन रुपया एक साथ ख़रीदेंगे उनको एक असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी मुफ़्त नज़र करेंगे। अगर आपका दिल चाहे तो घड़ी को बेचकर साबुन या साबुन को बेचकर घड़ी मुफ़्त बचा सकते हैं। वी० पी० ख़रचा ॥≈)

पता—एल० आर० गुप्त
(बी ब्रांच) स्वामीघाट, मथुरा।

FOR GOOD PROSPECTS

LEARN ACCOUNTANCY AND SHORT HAND

AT HOME

QUALIFICATION NOT REQUIRED

APPLY FOR PROSPECTUS

C. C. EDUCATION "S"

POONA CITY

बड़े दिन का उपहार

केवल एक महीने के लिये।

पसन्द न होने से मूल्य वापस।

हमारे नये चालान की रेलवे रेगुलेटर वाच, देखने में सुन्दर, मज़बूत, और जेंटिलमैनों के लिए बड़ी ही उपयुक्त है। मूल्य ७), अभी आधा ३॥), महारानी वाच, असली दाम ११) रु० अभी ५॥), अटरोजी वाच (हफ्ते में एक दफ़े चाबी की) असली दाम १८) अभी ९), सोने की टोंटे साइज़ की असली दा० ३२) अभी १६), कलाई में बांधने की घड़ी चमड़े सहित अ० दा० १०) अभी ५), हर एक घड़ी के साथ एक चेन और ६ घड़ी एक साथ लेने से एक घड़ी इनाम दी जाती है।

पता—कम्पीटीशन वाच कम्पनी
२५ नं० मदनमित्र लेन, (S) कलकत्ता।

☞ नक्कालों से सावधान।

जे० एन० वर्म्मन की अचूक औषधियां।

यही नमक सुलेमानी मन्दाग्नि, भूख न लगना, हैजा, बदहज़मी, पेट का अफारा, खट्टी या दुर्गंधी डकारों का आना, पेट का दर्द, पेचिश, बवासीर, कब्ज़, तिल्ली, वायुगोला आदि सभी उदरसम्बन्धी रोगों को जड़मूल से नष्ट करता है। यही कारण है कि थोड़ेही दिनों से क़रीब सहस्रों शीशियां हमेशा बिकरही हैं। इसी लिये यह नाम का ही नहीं, बल्कि असली नमक सुलेमानी है। क़ीमत फ़ी शीशी १) बड़ी बोतल ५)

पीयूषधारा।

प्रत्येक पुरुष को, प्रत्येक मुल्क में, प्रत्येक घर में इसकी आवश्यकता है। क्योंकि यह पीयूषधारा आरोग्यता की श्रीदेवी है। बूढ़ो बच्चों, युवा पुरुषों तथा स्त्रियों के प्रायः कुल रोगों को जो घरों में होते हैं अचूक इलाज है। यह प्रायः सैकड़ों प्रकार के रोगों के लिये एकही दवा ईजाद कीगई है। रोगों की संख्या सूची में पूरे तौर की दी हुई है मंगा देखिये। जिसने एकबार मंगाया सदा के लिये मित्र बनाया है। यह जान और माल दोनों को बचाता है। क़ीमत फ़ी शीशी १॥)

इसके सेवन से सब प्रकार की खांसी, कफ, दमा, जाड़े का बोख़ार, हैज़ा, शूल, संग्रहणी, श्वेत-प्रदर, अतीसार, पेट का दर्द, कै होना, जी मिचलाना, बच्चों के हरे पीले दस्त होना, कुकुर-खांसी, दूध पटकना आदि बीमारियां सब रामबाण की नाईं आराम होजाती हैं। यह अपूर्व गुण दिखलाने वाली स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा सर्व-साधारण के लिये ईजाद की गई है। क़ीमत फ़ी बड़ी शीशी १) छोटी शीशी ॥)

और २ प्रसिद्ध दवाओं के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइये।

पताः—जे० एन० वर्म्मन ऐंड को,
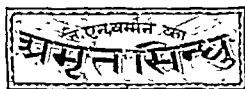
"सुलेमानी" कार्य्यालय पो० जम्होर-(गया)

अत्यन्त सुगन्धित सामग्री हवन

प्रत्येक ऋतु की अलग अलग आयुर्वेदोक्त पवित्र और उत्तम औषधों से तैयार की जाती है।

मूल्य १) सेर

वैद्य श्री चतुरसेन शास्त्री

"भेषजभण्डार"

दिल्ली

बड़ोदा-नरेश

का जीवन-चरित उनके प्रसिद्ध व्याख्यान तथा

१६ मनोहर चित्र

युक्त ललित हिन्दी में छप गया मू० १)

पताः—भगवद्दत्त शर्मा

कारेली बाग, बड़ोदा

वातमर्दन

इस संसार में इस प्रसिद्ध वातमर्दन के आविष्कार होने से कैसाही पुराना गठिया वातरस क्यों न हो निःसन्देह आराम होता है—तथा इससे अज्ञात पुरुषों को पत्रव्यवहार करने से पूरा वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पता—

पी०चौधरी०पो०कमतौल

ज़ि० दरभङ्गा।

* * * इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें * *

मानस-कोश।

अर्थात्

"रामचरितमानस" के कठिन कठिन शब्दों का सरल अर्थ।

हमने काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा सम्पादित करा कर यह "मानसकोश" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इस "मानसकोश" को सामने रखकर रामायण के अर्थ समझने में हिन्दीप्रेमियों को अब बड़ी सुगमता होगी। इसमें उत्तमता यह है कि एक एक शब्द के एक एक दो नहीं, कई कई पर्यायवाचक शब्द देकर उनका अर्थ समझाया गया है। इसमें अकारादि क्रम से ६०८५ शब्द हैं। मूल्य केवल १) रुपया रक्खा गया है, जो पुस्तक की लागत और उपयोगिता के सामने कुछ भी नहीं है। जल्द मँगाइए।

•सचित्र हिन्दी महाभारत•

(मूल व्याख्यान)

५०० से अधिक पृष्ठ बड़ी साँची १९ चित्र

अनुवादक—हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी।

महाभारत ही आर्यों का प्रधान ग्रन्थ है, यही आर्यों का सच्चा इतिहास है और यही सनातन धर्म का बीज है। इसी के अध्ययन से हिन्दुओं में धर्म-भाव, सत्पुरुषार्थ और समयानुसार काम करने की शक्ति जाग्रत हो उठती है। यदि इस बूढ़े भारतवर्ष का ५ सहस्र वर्ष पहले का सच्चा इतिहास जानना हो, यदि भारतवर्ष में स्त्रियों को सुशिक्षित करके पातिव्रत धर्म का पुनरुद्धार करना अभीष्ट हो, यदि बालब्रह्मचारी भीष्मपितामह के पावन चरित को पढ़कर ब्रह्मचर्य रक्षा का महत्त्व देखना हो, यदि भगवान कृष्णचन्द्र के उपदेशों से अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाना हो, तो इस "महाभारत" ग्रन्थ को मँगा कर अवश्य पढ़िए। इसकी भाषा बड़ी सरल, बड़ी ओजस्विनी और बड़ी मनोहारिणी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री अथवा कन्या को यह महाभारत मँगा कर अवश्य पढ़ना और उससे लाभ उठाना चाहिए। मूल्य केवल ३) रुपये।

[कविरत्न अखिलानन्द-प्रणीत]

दयानन्ददिग्विजय।

महाकाव्य

हिन्दी-अनुवादसहित

जिसके देखने के लिए सहस्रों आर्य वर्षों से उत्कण्ठित हो रहे थे, जिसके रसास्वादन के लिए सैकड़ों संस्कृतज्ञ विद्वान् लालायित हो रहे थे, जिसकी सरल, मधुर और रसीली कविता के लिए सहस्रों आर्यों की वाणी चंचल हो रही थी वही महाकाव्य छप कर तैयार हो गया। यह ग्रन्थ आर्य-समाज के लिए बड़े गौरव की चीज़ है। इसे आर्यों का भूषण कहें तो अत्युक्ति न होगी। स्वामीजी कृत ग्रन्थों को छोड़ कर आज तक आर्य-समाज में जितने छोटे बड़े ग्रन्थ बने हैं उन सबमें इसका आसन ऊँचा है। प्रत्येक वैदिकधर्मानुरागी आर्य को यह ग्रन्थ लेकर अपने घर को अवश्य पवित्र करना चाहिए। यह महाकाव्य २१ सर्गों में सम्पूर्ण हुआ है। मूल ग्रन्थ के रायल आठ पेजी साँची के ४१५ पृष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त ५७ पृष्ठों में भूमिका, ग्रन्थकार का परिचय, विषयानुक्रमणिका, आवश्यक विवरण, त्रुटिपूर्ति, यन्त्रालय-प्रशस्ति और सहायक-सूची आदि अनेक विषयों का समावेश किया गया है।

उत्तम सुनहरी जिल्द बँधी हुई इतनी भारी पोथी का मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के लिए केवल ४) चार रुपये ही रक्खा है। जल्द मँगाइए।

सौभाग्यवती।

पढ़ी लिखी स्त्रियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से स्त्रियाँ बहुत कुछ उपदेश ग्रहण कर सकती हैं। मूल्य ०)॥

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※ ※

चरित्रगठन ।

जो नवयुवक विद्यार्थी चरित्रगठन के अभिलाषी हैं वे तो इसे अवश्य ही पढ़ें, और विशेष कर उन्हीं के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। वे इस पुस्तक को पढ़ कर आप तो लाभ उठावेंगे ही, किन्तु अपने भावी सन्तानों को भी विशेष लाभ पहुँचा सकेंगे। इस पुस्तक के सभी विषय सुपाठ्य हैं। जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका उल्लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। उन्नति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य नाममात्र के लिए केवल ॥।) बारह आना है।

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कवि-कुलगुरु कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदी जी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। कविता बड़ी रसवती और प्रभावशालिनी है। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा ।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल जुत्शी, एम॰ ए॰ के नाम को कौन नहीं जानता। आप उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग ने छापकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। उक्त पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और उर्दू के पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगाकर अवश्य लाभ उठायेंगे। मूल्य इस प्रकार है :—

एज्युकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी में)	२॥)
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी में)	।≈)
हिन्द में मगरबी तालीम (उर्दू में)	।≈)

कर्मयोग ।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद करा कर यह "कर्मयोग" नामक पुस्तक छापी गई है। इसमें सात अध्याय हैं। उनमें क्रमशः—१—कर्म का मनुष्य चरित्र पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—धर्म क्या है ?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—वैराग रहना ही सच्चा त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का आदर्श—इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।≈)

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

लीजिए, हिन्दी में जिस चीज़ की कमी थी उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध हो गया। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामविहारी मिश्र, एम॰ ए॰ और पण्डित शुकदेवविहारी मिश्र, बी॰ ए॰ के सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध देशों के हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध किया गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई २०, २२ संख्याओं में पूर्ण होगी। इसकी क्रमशः एक एक पुस्तक इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित होती रहेगी। अब तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं :—

१—जर्मनी का इतिहास	..	।≈)
२—फ्रांस का इतिहास	...	।≡)
३—रूस का इतिहास	..	।≈)
४—इँगलेंड का इतिहास	...	।≈)
५—जापान का इतिहास	...	।)
६—स्पेन का इतिहास		।≈)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※ ※

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' की सब किताबों की भाषा ऐसी सरल—सबके समझने योग्य—रक्खी है कि जिसे थोड़े पढ़े लिखे बालक भी बड़ी आसानी से पढ़ कर समझ लेते हैं। इस 'माला' में अब तक जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है:—

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ।ऽ) मूल्य आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य वही ।।)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण है कि गवर्मेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। भारतवासियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—आज कल आर्य-सन्तान अपनी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रीति-रस्मों को न जान कर कैसे घोर अन्धकार में फँसती चली आ रही है सो किसी भी विचारशील से छिपा नहीं है। इसी दोष के दूर करने के लिए 'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—नीतिविद्या बड़े काम की विद्या है। हमारे यहाँ चार नीतिज्ञ बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। शुक्र, विदुर, चाणक्य और कणिक। इन्हीं के नाम से चार पुस्तकें विख्यात हैं। शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति। ये सब पुस्तक संस्कृत में हैं। हिन्दी जाननेवालों के उपकार के लिए हमने इन चारों पुस्तकों का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद छापा है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—लीजिए, 'श्रीमद्भागवत' की कथा भी अब सरल हिन्दी-भाषा में बन गई। जो लोग संस्कृत नहीं जानते, केवल हिन्दी-भाषा ही जानते हैं, वे भी अब श्रीमद्भागवत की भक्ति-रस-भरी कथाओं का स्वाद चख सकते हैं। इस 'बालभागवत' में 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षादायक और भक्ति रस से भरी हुई हैं। हर एक हिन्दी-प्रेमी हिन्दू को इस पुस्तक की एक एक कापी ज़रूर ख़रीदनी चाहिए। मूल्य ॥) आने

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला।

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालगीता ।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक और पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उपदेशों से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह जगह ऐसा अमृतमय उपदेश भरा हुआ है कि जिसके पान से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है। श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीति-शतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालअरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के लिए दुनिया भर के उपन्यासों में अरबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इसलिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। कहाँ तक कहें, इसके पढ़ने से अनेक लाभ होंगे। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा कृत असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उससे निकलने के उपायों और कर्त्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ विषयों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

❊ ❊ ❊ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❊ ❊ ❊

बालविष्णुपुराण ।

१७—विष्णुपुराण में कितनी ही ऐसी विचित्र और शिक्षाप्रद कथायें हैं कि जिनके जानने की हिन्दी वालों को बड़ी ज़रूरत है। इस पुराण में कलियुगी भविष्य राजाओं की वंशावली का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। जो लोग संस्कृत भाषा में विष्णुपुराण की कथाओं का आनन्द नहीं लूट सकते, उन्हें 'बालविष्णु-पुराण' पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक को विष्णुपुराण का सार समझिए। मूल्य ।)

बाल-स्वास्थ्य-रक्षा ।

१८—यह पुस्तक, प्रत्येक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। प्रत्येक गृहस्थ को इसकी एक एक कापी अपने घर में रखनी चाहिए। बालकों को तो आरम्भ से ही इस पुस्तक को पढ़कर स्वास्थ्य-सुधार के उपायों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इसमें बतलाया गया है कि मनुष्य किस प्रकार रह कर, किस प्रकार का भोजन करके, नीरोग रह सकता है। इसमें प्रति दिन के बर्ताव में आनेवाली खाने की चीज़ों के गुण-दोष भी अच्छी तरह बताये गये हैं। कहाँ तक कहें, पुस्तक मनुष्य-मात्र के काम की है। इतनी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ॥) आठ आना रक्खा है।

बालगीतावलि ।

१९—महाभारत में क्या नहीं है। उसमें सभी कुछ मौजूद है। महाभारत को रत्नों का सागर कहना चाहिए, शिक्षा का भण्डार कहना चाहिए। आप जानते हैं "बालगीतावलि" में क्या है? इसमें महाभारत में से ९ गीताओं का संग्रह किया गया है। उन गीताओं में ऐसी उत्तम उत्तम शिक्षायें हैं कि जिनके अनुसार बर्ताव करने से मनुष्य का परम कल्याण हो सकता है। हमें पूरी आशा है कि समस्त हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को पढ़ कर उत्तम शिक्षा का लाभ करेंगे। मूल्य ॥) आठ आने।

बालनिबन्धमाला ।

२०—इसमें कोई ३५ शिक्षादायक विषयों पर, बड़ी सुन्दर भाषा में, निबन्ध लिखे गये हैं। बालकों के लिए तो यह पुस्तक उत्तम गुरु का काम देगी। ज़रूर मँगाइए। मूल्य ।=)

बालस्मृतिमाला ।

२१—हमने १८ स्मृतियों का सार-संग्रह करा कर यह "बालस्मृतिमाला" प्रकाशित की है। आशा है, सनातनधर्म के प्रेमी अपने अपने बालकों के हाथ में यह धर्मशास्त्र की पुस्तक देकर उनको धर्मिष्ठ बनाने का उद्योग करेंगे। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालपुराण ।

२२—पुराणों में बहुत सी ऐसी कथायें हैं जिनसे मनुष्यों को बहुत कुछ उपदेश मिल सकता है। पर पुराण इतने अधिक और बड़े हैं कि उन सबका पढ़ना प्रत्येक मनुष्य के लिए असम्भव नहीं तो महाकष्ट-साध्य अवश्य है। इसलिए सर्वसाधारण के सुभीते के लिए हमने अठारह महापुराणों का साररूप 'बाल-पुराण' तैयार करा कर प्रकाशित किया है। इसमें अठारहों पुराणों की संक्षिप्त कथासूची दी गई है और यह भी बतलाया गया है कि किस पुराण में कितने श्लोक और कितने अध्याय आदि हैं। पुस्तक बड़े काम की है। इतनी उपयोगी पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का साररूप यह "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य बहुत ही कम केवल ॥) आठ आने।

कृष्ण-यशोदा।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भाग १७, खण्ड १ — संख्या १,
जनवरी १९१६—पौष १९७२ — पूर्ण संख्या १९३

प्रार्थना।

अब तुम कृपा करो करतार।
मातृ-पिता होकर क्यों करते पुत्रों का संहार।
पाप-वासना दूर भगा कर पुण्य करो संचार॥
जर्मन अन्त पराभव पावे हार जाय हर बार।
रिपु-दल सभी युद्ध से भागे पाकर कठिन प्रहार॥
विधवा और अनाथों की हो संख्या का परिहार।
दीन-दयालु शीघ्र ही टूटे मार-काट का तार॥
कपट-कलह-अन्याय छोड़ कर कीजे सद्व्यवहार।
शान्ति विराजे, तुरत बहे फिर सुख का पारावार॥
भारतेश विजयी हों हम को मिले शान्ति-सुख-सार।
कर जोड़े हम सभी माँगते यह वर बारम्बार॥

रामदहिन मिश्र

हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय-मीमांसा।

इंगलैंड देश के तत्त्ववेत्ताओं में हर्बर्ट स्पेन्सर बड़े प्रसिद्ध और गौरवशाली गिने जाते हैं। इस महानुभाव के विचारों ने समस्त संसार के प्राचीन और प्रचलित विचारों में हलचल डाल दी है। भूमण्डल के सभी सभ्य देशों में इसके ग्रन्थों का बड़ा आदर है। इस महात्मा का जन्म सन् १८२० ईसवी में हुआ और मृत्यु १९०३ में। इसके लिखे हुए बहुत से ग्रन्थ हैं। उनमें से मुख्य मुख्य ये हैं—

(१) फ़र्स्ट प्रिन्सीपल्स (First Principles) अर्थात् विज्ञान के मूलतत्त्व।

(२) प्रिन्सीपल्स ग्राफ़ बयोलोजी (Principles of Biology) अर्थात् जीव-विद्या ।

(३) प्रिन्सीपल्स ग्राफ़ साईकोलोजी (Principles of Psychology) अर्थात् मनोविज्ञान ।

(४) प्रिन्सीपल्स ग्राफ़ सोशियोलोजी Principles of Sociology) अर्थात् समाज-शास्त्र ।

(५) प्रिन्सीपल्स ग्राफ़ एथिक्स (Principles of Ethics) अर्थात् आचार-शास्त्र ।

इन ग्रन्थों में से पहले ग्रन्थ की समालोचना करना ग्रौर संक्षेप में उसके सिद्धान्त लिखना, इस लेख का उद्देश है । यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है । पहले भाग का नाम "अज्ञेय" (The Unknowable) है, ग्रौर दूसरे का "ज्ञेय" (The Knowable) है । अर्थात् पहले भाग का विषय वे चीज़ें हैं जो कदापि जानी नहीं जा सकतीं ग्रौर दूसरे भाग का वे जो जानी जा सकती हैं । अच्छा, तो, अब पहले भाग के सिद्धान्त सुनिए—

(१) धर्म ग्रौर विज्ञान (Religion and Science)

हर्बर्ट स्पेन्सर का कथन है कि संसार में कोई ऐसी वस्तु अथवा बात नहीं है जिसमें सत्य का कुछ ग्रंश न हो । असत्य से असत्य बातों में भी सत्य का कुछ ग्रंश अवश्य रहता है । मनुष्य को इसका हमेशा ध्यान रखना चाहिए । ऐसी अनेक बातें हैं जो सर्वथा झूठ मालूम होती हैं, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर उनमें भी सत्य का कुछ न कुछ ग्रंश पाया जाता है । उदाहरण लीजिए—

प्राचीन इतिहासों ग्रौर कथाओं से ज्ञात होता है कि पहले लोग राजा को ईश्वर अथवा देवता समझते थे । उसका वल, उसकी बुद्धि ग्रौर उसके अधिकार ईश्वर ही के से मानते थे । देवताओं के समान ही उसकी पूजा ग्रौर स्तुति करते थे । इस बात को वे लोग हृदय से मानते थे कि प्रजा के धन ग्रौर जीवन पर राजा का पूर्ण अधिकार है । कुछ काल पीछे इस विचार में परिवर्तन हुआ । लोगों ने राजा को ईश्वर अथवा देवता मानना तो छोड़ दिया, परन्तु उसके अधिकार देवताओं के से बने रहे । लोग यह मानने लगे कि राजा किसी देवता का ग्रंश अवश्य है । कालान्तर में इस विचार में भी परिवर्तन हुआ । तब न राजा ईश्वर रहा, न देवांश । पर उसके अधिकार ईश्वर या देवता के अधिकारों के सदृश ही बने रहे । ख़याल यह हुआ कि ईश्वर या किसी ईश्वरांश ही ने राजा को ये अधिकार दिये हैं । अतएव लोग राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि कहते ग्रौर उसके शासनाधिकार ईश्वर के दिये हुए मानते । विद्या, शिक्षा ग्रौर सभ्यता बढ़ने से इस विचार में भी परिवर्तन हो गया । राजा केवल दया, दाक्षिण्य, दान आदि गुणों का आदर्श पुरुष ही माना जाने लगा । राज-भक्ति का अर्थ भी बदलने लगा । पहले राज-भक्ति का अर्थ राजा की आज्ञा का पालन करना था । धर्म-अधर्म के विचार की कोई आवश्यकता न थी । अब यह अर्थ होने लगा कि प्रजा राजा के अधीन रहती है, इस कारण प्रजा को चाहिए कि राजा के सम्मान ग्रौर आदर के जो नियम चले आये हैं उनके अनुसार व्यवहार करे ।

जब इँगलैंड में राजा लोग गद्दी से उतारे जाने ग्रौर उनकी जगह दूसरे मनुष्य बिठाये जाने लगे तब यह ख़याल पैदा हुआ कि राजा के जो अधिकार हैं वे प्रजा से ही प्राप्त हुए हैं, प्रजा के इच्छानुसार चलना ही राजा का कर्तव्य है । तब राजा केवल सम्मान ग्रौर आदर का पात्र रह गया । राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी उसके अधिकार कम हो गये । राज्य-शासन-सम्बन्धी कार्यों में प्रजा के प्रतिनिधि ही अधिकार-सम्पन्न समझे जाने लगे । समय पाकर इस विचार में भी परिवर्तन होने लगा । वही राज्य-प्रबन्ध ठीक समझा जाने लगा जिसमें मनुष्यों की

स्वतन्त्रता में बाधा न आवे। हाँ, कोई मनुष्य ऐसा काम न करे जिससे दूसरे की स्वतन्त्रता में रुकावट उत्पन्न हो अथवा दूसरे को किसी प्रकार की हानि उठानी पड़े। दूसरे शब्दों में इस बात को इस तरह कह सकते हैं कि पहले विचारों के अनुसार "अधीनता" (Subordination) का सम्बन्ध राजा की इच्छा से था और नवीन विचारों के अनुसार प्रजा की इच्छा से। सारांश यह कि राज्य-प्रबन्ध में "अधीनता" स्वीकार करना एक अत्यावश्यक बात हुई।

पूर्वोक्त विचार परस्पर विरोधी अवश्य हैं, परन्तु उनमें जो सत्यांश है वह वैसा ही है। इन सब विचारों का व्यापक आधार अधीनता है और वह सभी विचारों में, किसी न किसी रूप में, पाया जाता है। इससे सिद्ध हुआ कि असत्य माने गये विचारों में सत्य का अंश ही नहीं रहता, किन्तु ध्यान देने से सत्य-निर्णय का मार्ग भी ज्ञात हो सकता है। वह मार्ग यह है—

एक प्रकार के जितने विचार हों उन सब की पहले परस्पर तुलना की जाय। जो विचार परस्पर-विरोधी हों वे अलग कर दिये जायँ। बाक़ी के विचारों में जो बात व्यापक हो उसे ढूँढ़ कर उसी को नियम-संज्ञा दी जाय। अर्थात् जो अंश सब विचारों में एक सा और अटल रहे वह ग्रहण कर लिया जाय और उसके लिए कोई विशेष नाम या संज्ञा नियत कर दी जाय। जो विचार परस्पर-विरोधी हैं उनके सत्य-निर्णय में इस नियम से बड़ी सहायता मिलेगी। अपने और दूसरे पक्ष के सिद्धान्तों के विचारों में भी इससे बड़ी सहायता मिलेगी। इसके द्वारा सत्य का निर्णय हो जायगा। इस प्रकार नियमानुसार चलने पर मालूम हो जायगा कि जो हमारे दृढ़ विश्वास हैं वे भी सर्वथा सत्य नहीं हैं, और विपक्षी के जो विश्वास या सिद्धान्त हैं वे भी सर्वथा असत्य नहीं, किन्तु सत्य का अंश उनमें भी अवश्य है।

देखा जाय तो ज्ञात होगा कि धर्म (Religion) और विज्ञान (Science) में दीर्घ काल से परस्पर विरोध चला आता है। इस विरोध की जाँच पूर्वोक्त नियम द्वारा करनी चाहिए। इससे ज्ञात होगा कि नाना प्रकार के जो मत और सम्प्रदाय दीर्घकाल से चले आते हैं और चलते रहेंगे उनमें भी कुछ न कुछ सत्य का अंश अवश्य है। प्रत्येक मत में सत्य का अंश है, परन्तु वह असत्य के आडम्बर में छिपा रहता है। यह कहना ठीक नहीं कि सभी मत धर्माचार्यों या पुजारियों के चलाये हुए हैं और केवल कपोल-कल्पित हैं। संसार के सभी देशों और सभी मनुष्य-जातियों में धार्मिक विश्वास पाये जाते हैं। यदि यह पूछा जाय कि सभी देशों और सभी मनुष्यों में धार्मिक विश्वास क्यों पाये जाते हैं, तो इसके दो उत्तर होंगे। पहला यह कि जैसे क्षुधा, तृषा आदि इन्द्रियों के धर्म मनुष्यों में जन्म से ही पाये जाते हैं वैसे ही धार्मिक विश्वास भी जन्म से ही उत्पन्न होते हैं। दूसरा यह कि ये विश्वास जन्म से नहीं उत्पन्न होते, किन्तु विचार-क्रम से शनैः शनैः उत्पन्न होते हैं। हमारे पूर्वज यह मानते थे कि जैसे ईश्वर ने मनुष्यों को इन्द्रियों के धर्म दिये हैं वैसे ही धार्मिक विश्वास भी दिये हैं। इसी कारण मनुष्य धर्मावलम्बन करता है। यह पहले उत्तर का उदाहरण हुआ। यदि दूसरा उत्तर ठीक माना जाय तो ऐसे ऐसे प्रश्न उठते हैं—धार्मिक विश्वास क्यों उत्पन्न हुआ? इस विश्वास से कौन सी प्रयोजन-सिद्धि होती है? इस सम्बन्ध में सूक्ष्म विचार करने से निश्चय होता है कि धार्मिक विश्वास की उत्पत्ति मनुष्य-जाति के हित से सम्बन्ध रखती है, और वह विश्वास मनुष्य-जाति के लिए उपयोगी भी है। दोनों उत्तरों से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि मनुष्य-जाति में धार्मिक विश्वास सदा से चला आया है। ऐसे विश्वास का अनादर करना सर्वथा अनुचित है।

अब विज्ञान (Science) की तरफ़ दृष्टि डालिए। संसार के बहुत से व्यापक नियम विज्ञान से सिद्ध हुए हैं। विज्ञान की बदौलत दिन पर दिन ऐसे आविष्कार होते जाते हैं जो मनुष्य-जाति के लिए बहुत ही उपयोगी हैं। यह कह देना ठीक नहीं कि विज्ञान कुछ नहीं, यह धार्मिक विश्वासों का विरोधी है। जब धर्म-विषयक विचारों में सत्य का अंश मान लिया गया तब क्या वैज्ञानिक विचारों में सत्यांश नहीं हो सकता? सत्य-सम्बन्ध में विज्ञान का गौरव तो और भी अधिक है। यदि विज्ञान-शास्त्र, धर्म को कपोल-कल्पित मान कर, उसका तिरस्कार करे और धर्मशास्त्र विज्ञान को विरोधी जान कर छोड़ दे, तो बड़ा अनर्थ हो। दोनों पक्षों में सत्य है। जब दोनों पक्षों में सत्य है तो दोनों में एकता का होना भी सम्भव है। क्योंकि दो सत्यात्मक पदार्थ कदापि विरोधी नहीं हो सकते। यह कहना मूर्खता है कि केवल धर्म ही ईश्वर का बनाया हुआ है और धर्म ही सत्य है, विज्ञान असुरों का निर्माण किया हुआ है और वह असत्य है। इन दोनों में विरोध के चाहे जितने चिह्न हों, वास्तव में हैं दोनों एक ही। इन दोनों की एकता छिपी हुई है। दोनों पक्ष वालों को उदार-हृदय होकर विचार करना चाहिए। परस्पर के सिद्धान्तों का तिरस्कार न करना चाहिए। यदि सच्चे दिल से चेष्टा की जायगी तो दोनों के समीकरण का मार्ग अवश्य निकल आयेगा।

अब यह देखना है कि ऐसी कौन सी बात है जिससे धर्म और विज्ञान में एकता स्थापित हो सकती है। इस गम्भीर बात या सिद्धान्त का निर्णय करने में इस बात का पूरा पूरा ध्यान रखना होगा कि सिद्धान्त ऐसा ढूँढ़ निकाला जाय जो अखण्डनीय हो, जो अविचल हो, जिससे परस्पर का विरोध मिट जाय और जिससे दोनों में सन्धि हो जाय। यह सिद्धान्त सत्य के ऐसे आधार पर निश्चित होना चाहिए कि दोनों पक्ष वाले उसे मान लें। किसी पक्ष को कोई सन्देह न रहे, दोनों का पूर्ण समाधान हो जाय। धर्म से सत्य का ऐसा अंश ढूँढ़ निकालना चाहिए जो विज्ञान-शास्त्र के न होने पर भी अटल रहे। इसी तरह विज्ञान-शास्त्र से भी ऐसा अंश खोज निकालना चाहिए जो धर्म के अभाव में भी निरन्तर विद्यमान रहे। अर्थात् सिद्धान्त ऐसा हो जिसे मानने के लिए दोनों पक्ष बाध्य हों, अतएव जो दोनों में एकता की स्थापना कर सके। जब ऐसा सिद्धान्त प्राप्त हो जाय तब यह बताना होगा कि एक ही सत्य वस्तु को विज्ञान और धर्म ने पृथक् पृथक् रूप में क्यों दिखाया, जिसके कारण धर्म और विज्ञान में परस्पर-विरोध हो गया।

यदि धर्म और विज्ञान का मेल हो सकता है तो ऐसे ही नियम के आश्रय से हो सकता है जो दोनों में एक सा व्यापक हो। यदि कोई यह चाहे कि धर्म की जो अनेक रीतियाँ या शाखायें प्रचलित हैं उनके आधार पर विज्ञान से मेल हो जाय तो असम्भव है। ऐसे ही यदि कोई यह चाहे कि विज्ञान के जो अनेक आविष्कार हुए हैं उनके आधार पर धर्म से मेल हो जाय तो यह भी असम्भव है। मेल का आधार केवल वही नियम हो सकता है जो दोनों में व्यापक हो। इसलिए अब इस बात पर विचार करना है कि धर्म और विज्ञान के अन्तिम विचार कौन से हैं, वे किस रीति से स्थिर हुए हैं और उनमें परस्पर एकता का कितना अंश है।

२—धर्म-विषयक अन्तिम विचार

(Ultimate Religious Ideas)

बहुत सी ऐसी मानसिक कल्पनायें हैं जिनका अनुमान न्याय-शास्त्र द्वारा तो हो सकता है, परन्तु जिन वस्तुओं की ये कल्पनायें हैं उनका यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता। तर्क करते करते हम ऐसे पदार्थों
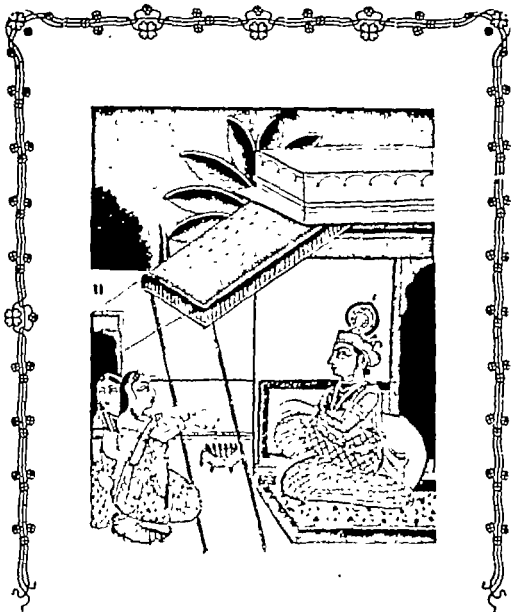
के अनुमानों तक पहुँच जाते हैं जिनका अनुमान से सिद्ध होना तो सम्भव है, पर उनका चिन्तन—उनका विशेष ज्ञान—असम्भव है। अर्थात् वे कैसे हैं, यह ठीक ठीक नहीं जाना जा सकता। एक उदाहरण लीजिए—

देवदत्त नाम का एक मनुष्य है। उससे आपकी मित्रता है। आपको देवदत्त का पूरा परिचय है। देवदत्त का कुटुम्ब भी है। आपका जितना परिचय देवदत्त से है उतना उसके कुटुम्ब से नहीं। उससे भी कम देवदत्त के मतानुयायियों से है। उससे भी कम देवदत्त के देशवासियों से। उससे भी कम देवदत्त की जाति से। उससे भी कम मनुष्य-जाति से, जिसमें देवदत्त पैदा हुआ है। उससे भी कम उस प्राणि-समुदाय से जिसमें मनुष्य, पशु, पक्षी इत्यादि सभी शामिल हैं। इसी तरह ज्यों ज्यों परिचय-परिधि घटती गई त्यों त्यों हम चीज़ों का ज्ञान भी कम होता गया। अनुमान से आप जीवधारियों की श्रेणी तक तो पहुँच गये, परन्तु उनका स्पष्ट ज्ञान कुछ भी न हुआ। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिए कि जितना स्पष्ट ज्ञान आपको देवदत्त का है उतना उसके कुटुम्ब वालों का नहीं, और जितना कुटुम्ब वालों का है उतना उसकी जाति का नहीं। इसी तरह जैसे जैसे आप आगे बढ़ते गये वैसे ही वैसे ज्ञान कम होता गया; यहाँ तक कि जब केवल जीवधारियों ही का विचार रह गया तब स्पष्ट ज्ञान कुछ भी न रहा। केवल सङ्केत से ही इस कल्पना की उत्पत्ति हुई। सङ्केत यह कि जिनमें जीव है वे सब एक हैं। इसके अतिरिक्त और किसी गुण विशेष का ज्ञान आपको न हुआ।

इसी तरह, कल्पना कीजिए कि आपने एक नारङ्गी देखी, तो उसके रूप का और उसके दूसरे गुणों का भी स्पष्ट ज्ञान तो आपको हो गया। परन्तु नारङ्गी के सदृश अन्यान्य गोल चीज़ों का विचार करते करते जब आप इस अनुमान तक पहुँचे कि पृथिवी भी गोल है तब आपका विचार अनुमान ही अनुमान रह गया। पृथिवी का गोला यथार्थ में कैसा है, इस बात का स्पष्ट ज्ञान आपको न हुआ। क्योंकि वह इतनी बड़ी वस्तु है कि बुद्धि उसका ग्रहण नहीं कर सकती। जितना स्पष्ट ज्ञान नारङ्गी का था उतना पृथ्वी के गोले का कदापि नहीं हो सकता। यह कल्पना गोलाई के सङ्केत से ही कर ली गई है। उसका आधार एक मात्र गोलापन है।

ऐसे अनुमान साङ्केतिक कल्पनायें (Symbolic Conceptions) कहलाते हैं। अर्थात् वे वे कल्पनायें हैं जो किसी सङ्केत से होती हैं और जिन चीज़ों से उनका सम्बन्ध है उनका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। साङ्केतिक कल्पनाओं में दो प्रकार की भूलें हो जाती हैं। एक तो यह कि जब छोटी वस्तु देख कर बड़ी से बड़ी वस्तु का अनुमान किया जाता है तब गणना में कहीं न कहीं ऐसी भूल हो जाती है जिसे पकड़ ही नहीं सकते। दूसरे यह कि जो चीज़ें साङ्केतिक कल्पनाओं से अनुमित होती हैं वे यथार्थ में वैसी नहीं होतीं जैसी कल्पना की जाती है। ऐसी कल्पनाओं को लोग बिना जाँच के ही सच मान लेते हैं। इसी कारण साङ्केतिक कल्पनायें बहुधा शशशृङ्ग की अनुरूपता रखती हैं; वे ढकोसला मात्र होती हैं। यथार्थ में उनमें कुछ भी सत्यता नहीं रहती।

अब धर्म-विषयक विचारों में मानसिक कल्पनाओं के प्रयोग का हाल देखिए। जब कोई अद्भुत घटना होती है—जैसे महामारी, अतिवृष्टि, भूकम्प इत्यादि—तब असभ्य जङ्गली मनुष्य तो उसका कारण किसी देव या देवी का कोप मान लेते हैं। मरे हुए मनुष्यों को स्वप्न में देखने से ख़याल होता है कि भूत-प्रेत-योनि का भी अस्तित्व है। इन भूत-प्रेतों में जो बड़े माने जाते हैं उनकी शक्ति भी बहुत अधिक कल्पना की जाती है। ज्यों ज्यों मनुष्य सभ्य और सुशिक्षित होते जाते हैं त्यों त्यों वे भूत-

प्रेतों की जगह देवी-देवताओं को मानने लगते हैं। शनैः शनैः वे इस अनुमान तक पहुँच जाते हैं कि समस्त संसार में कोई अदृश्य शक्ति अवश्य है। वही इन घटनाओं का कारण है। वही संसार की उत्पन्न करने वाली है। यह अनुमान केवल साङ्केतिक कल्पना है। यह स्पष्ट ज्ञान का विषय नहीं।

संसार की उत्पत्ति के विषय में तीन कल्पनायें मुख्य हैं—

(१) संसार की सत्ता संसार ही से है—अर्थात् यह अपने आप ही विद्यमान है और स्वाधीन है (The Universe is self-existent)

(२) संसार अपने आप ही उत्पन्न हुआ है (The Universe is self-created)

(३) संसार को किसी अन्य शक्ति ने उत्पन्न किया है। अर्थात् यह अपने आप उत्पन्न नहीं हुआ। उसे किसी और शक्ति ने रचा है—(The Universe is created by an external agency)

इन कल्पनाओं पर क्रमशः विचार किया जाता है।

पहली कल्पना।

इस कल्पना का यह मतलब है कि संसार की सत्ता संसार ही से है, किसी दूसरी सत्ता से उसका सम्बन्ध नहीं। दूसरे शब्दों में हम इस तरह कह सकते हैं कि यह सत्ता अनादि है। इसका कोई कारण नहीं। अनादि कल्पना की गई चीज़ के विषय में चाहे जितना गहरा विचार किया जाय उसका स्पष्ट ज्ञान कभी नहीं हो सकता। अनादि कल्पना के साथ ही अनन्त भूतकाल की कल्पना करना भी आवश्यक है, पर ऐसा कर सकना असम्भव है। यदि कोई वस्तु अनादि मान भी ली जाय, तो संसार क्या है? इसका ठीक उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसका भेद कभी मालूम ही नहीं हो सकता। कल्पना कीजिए कि कोई वस्तु इस समय वर्तमान है। एक घन्टा, एक दिन अथवा एक वर्ष पहले भी वह वर्तमान थी। इस कल्पना से यह तो मालूम हो गया कि वह वस्तु कई वर्षों से वर्तमान है, परन्तु वह है क्या वस्तु, यह तो समझ ही में न आया। जिस वस्तु का ज्ञान इस समय नहीं हो सकता उसके विषय में यदि यह मालूम भी हो जाय कि वह पहले भी वर्तमान थी, तो इतने से उसकी ज्ञान-प्राप्ति में कोई सहायता नहीं मिलती। रहस्य वैसे का वैसा गूढ़ और गम्भीर बना रहता है। इसी तरह यदि संसार अनादि मान लिया जाय तो इस मानने का यह अर्थ होगा कि संसार अनन्त काल से (जिसका चिन्तन नहीं हो सकता) चला आता है। परन्तु संसार है क्या वस्तु? इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी न मिला। इस लिए नास्तिकों का यह मत ठीक नहीं कि संसार स्वयं सत्ता वाला अर्थात् अनादि है।

दूसरी कल्पना।

दूसरी कल्पना यह है कि संसार अपने आप ही उत्पन्न हुआ है। गर्मी के प्रभाव से पानी से भाफ़ उठती है। भाफ़ ऊपर चढ़ कर बादलों के रूप में हो जाती है। ऐसी घटना देख कर साङ्केतिक कल्पना होती है कि संसार भी इसी प्रकार बन गया है। संसार स्वयं उत्पन्न हुआ है, इस कल्पना का यह अर्थ हुआ कि उत्पन्न होने के पहले संसार-रचना-विषयक कोई शक्ति अवश्य ही गुप्त भाव से विद्यमान थी। इस दशा में कोई कारण अवश्य उपस्थित हुआ जिससे इस गुप्त शक्ति को संसार के रूप में आने की आवश्यकता पड़ी। यदि यह कल्पना की जाय कि पहले यह शक्ति अव्यक्त (Potential) थी, अर्थात् प्रकट न हुई थी, पीछे से व्यक्त हुई, तो यह भी अवश्य मानना पड़ेगा कि यह शक्ति कोई वस्तु थी। वही वस्तु पीछे से व्यक्त (प्रकट) हुई, अव्यक्त नहीं। यदि आप यह कहें कि पहले यह कुछ न थी (Nothing) अर्थात् शून्य-रूप थी, तो शून्य दो प्रकार का मानना पड़ेगा—एक शून्य तो ऐसा जिससे कोई चीज़ उत्पन्न हो, दूसरा

पाटन के जैन-पुस्तक-भाण्डारों के उद्धारक श्रीमान् कान्तिविजयजी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ऐसा जिससे कोई चीज़ उत्पन्न न हो। यह परस्पर-विरोध हो गया। इस लिए यह कल्पना निरर्थक है। इसके अतिरिक्त यह जानना भी आवश्यक है कि ऐसा कौन सा कारण उपस्थित हो गया जिससे अव्यक्त शक्ति को व्यक्त रूप में होने की आवश्यकता पड़ी। ऐसा कोई कारण तो बताया नहीं जा सकता। अतएव यह सिद्ध हुआ कि अव्यक्त शक्ति में बिना कारण ही विकार उत्पन्न हो गया और वह अव्यक्त से व्यक्त हो गई।

यह बात मानी हुई है कि विकार (Change) बिना कारण के नहीं होता। इस दशा में पूर्वोक्त विचार का आधार सत्य नहीं। वह प्रलाप मात्र है। वह केवल सङ्केत है। और, सङ्केत में यथार्थता कहाँ? यदि यह भी मान लिया जाय कि वह शक्ति पहले अव्यक्त थी, फिर व्यक्त हुई, तो फिर भी यह प्रश्न उठता है कि वह अव्यक्त शक्ति कहाँ से आई। व्यक्त संसार का आदि-कारण बताना और अव्यक्त शक्ति का आदि-कारण बताना, एक ही बात है। सङ्कट तो पूर्ववत् बना ही रहा। यदि अव्यक्त शक्ति का कारण पूछा जाय तो यही कहना पड़ेगा कि उसका भी कारण कोई और अव्यक्त शक्ति है। और, उसका कारण पूछा जाय तो कोई और शक्ति बताई जायगी। इस प्रकार एक दूसरे का कारण आप अनन्त काल तक बताते रहिए, पर समाधान न होगा। यह प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहेगा कि संसार का आदि-कारण क्या है?

यह कल्पना उन लोगों की है जो यह कहते हैं कि संसार में जो कुछ है वह किसी विशेष शक्ति की इच्छा से ही अपने आप उत्पन्न हुआ है। अर्थात् वह महती शक्ति स्वयमेव संसार के रूप में प्रकट हो गई है। जो लोग इस कल्पना के क़ायल हैं वे विश्वपरिणामवादी कहलाते हैं।

तीसरी कल्पना।

यह कल्पना ईश्वरवादियों की है। वे कहते हैं कि जैसे कोई कारीगर मेज़,कुर्सी आदि सामान बनाता है वैसे ही ईश्वर ने भी पृथिवी और आकाश आदि की रचना की है। यह मत बड़े बड़े विद्वानों और पण्डितों का है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इसमें भी वही दोष हैं जो पूर्वोक्त दोनों कल्पनाओं में हैं। यह कहना कि जैसे कारीगर मेज़-कुर्सी बनाता है वैसे ही ईश्वर भी पृथ्वी, आकाश आदि बनाता है केवल उपमा है—उनका कथन-मात्र है, और कुछ नहीं। लोहा-लकड़ी आदि, जिससे कारीगर मेज़-कुर्सी बनाता है, उसकी उत्पत्ति की हुई नहीं होती। वह सब सामग्री उसके सामने वर्तमान होती है। उसे वह केवल मेज़-कुर्सी के रूप में बदल देता है। परन्तु ईश्वर के द्वारा पृथ्वी, आकाश आदि की रचना के विषय में विचार किया जाय तो यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह सामग्री, जिससे पृथ्वी-आकाश आदि बने हैं, कहाँ से आई। उत्तर में यही कहना पड़ेगा कि वह पहले से ही मौजूद थी। यदि पहले से मौजूद थी तो फिर भी यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वह कहाँ से आई। यदि कहिए कि वह शून्य से उत्पन्न हुई, तो ऐसा कदापि हो ही नहीं सकता। क्योंकि जो शून्य है उससे कोई चीज़ कभी उत्पन्न नहीं हो सकती। इसके साथ ही यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस महदाकाश में संसार की सब चीज़ें स्थित हैं वह कहाँ से आया। क्या पहले अनन्त शून्य था? यदि यह कहा जाय कि महदाकाश भी उसी तरह उत्पन्न हुआ है जिस तरह कि प्रकृति उत्पन्न हुई है तो यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या पहले महदाकाश न था। परन्तु ऐसी कल्पना करना बुद्धि के बाहर की बात है। यदि महदाकाश का पहले न होना बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती तो महदाकाश का उत्पन्न होना भी उसकी शक्ति के बाहर है।

ज़रा देर के लिए मान लीजिए कि यह सब ठीक है, अथवा ऐसे ऐसे प्रश्न ही नहीं किये जा सकते और

यदि ऐसे भी आ सकते हैं तो उनके यथार्थ उत्तर मिल सकते हैं। इस दशा में आप यह बताइए कि जिस ईश्वर ने संसार रचा है वह कहाँ से आया? इसका उत्तर देने में फिर भी पूर्वोक्त तीन कल्पनाओं का प्रयोग करना पड़ेगा, अर्थात्—

१—ईश्वर अपने आपही विद्यमान है (Self-existent)।

२—ईश्वर अपने आप उत्पन्न हुआ है (Self-created)

३—ईश्वर को किसी दूसरे ने उत्पन्न किया है (Created by an external agency)

इनमें से तीसरी कल्पना तो वृथा ही है, क्योंकि एक का कारण दूसरा और दूसरे का कारण तीसरा, इस प्रकार आप अनन्त काल तक कारणों की परम्परा ढूँढ़ते चले जायँगे, कभी अवसान ही न होगा। दूसरी कल्पना मानने में भी वही सङ्कट उपस्थित होगा—अर्थात् अनन्त अव्यक्त शक्तियों की गणना करने के बाद भी बात जैसी की तैसी ही रहेगी। रही पहली कल्पना, सो जो तर्क हम अनादि संसार के विषय में कर आये हैं उसीसे यह कल्पना भी निरर्थक सिद्ध हो जायगी। अतएव पूर्वोक्त तीनों कल्पनाओं में से एक भी कारगर नहीं हो सकती। उनका आधार केवल मानुषिक है। प्रत्यक्ष में तो ये तीनों एक दूसरी से पृथक् जान पड़ती हैं, परन्तु तर्क की कसौटी पर कसने से सब का आधार एक ही सिद्ध होता है। उस आधार को आप स्वयं सत्ता या स्वयम्भूत अस्तित्व कह सकते हैं। परन्तु ऐसी कल्पना को बुद्धि कभी ग्रहण नहीं कर सकती। इस प्रकार की सत्ता या अस्तित्व का आधार अनन्त भूत-काल की कल्पना पर स्थित है, परन्तु अनन्त भूत-काल की कल्पना सर्वथा असम्भव है। इस कारण जो कल्पनायें उस आधार पर अवलम्बित हैं वे अकल्पनीय और निरर्थक हैं।

संसार की उत्पत्ति का विषय छोड़ कर अब इस बात का विचार कीजिए कि यह संसार है क्या वस्तु? अथवा यह है किस प्रकार का? इस सम्बन्ध में पहला प्रश्न यह हो सकता है कि ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव का कारण क्या है। इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषयों का ज्ञान किस प्रकार होता है। ये अवश्य ही किसी कारण के कार्य्य होंगे। कोई विशेष कारण अवश्य होगा जिससे ये उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्ध में तीन ही कारणों की कल्पना की जा सकती है—

(१) प्रकृति (Matter)

(२) चैतन्य (Spirit)

(३) ईश्वर (Divine Power)

इन्हीं में से कोई एक उन विषयों का कारण अवश्य होगा। क्योंकि कारण के बिना कार्य्य कदापि नहीं हो सकता।

कारण की खोज में आदि-कारण (First Cause) के विचार तक पहुँचना पड़ता है। अर्थात् किसी न किसी रूप में आदि-कारण का विचार अवश्य उठ खड़ा होता है। कल्पना कीजिए कि कोई आदि-कारण है। तो यह बताइए कि उसके लक्षण क्या हैं। यदि आदि-कारण सान्त (Finite) है, तो वह परिमित (Limited) अर्थात् सीमा-बद्ध है। सीमा-बद्ध हुआ तो उसकी सीमाओं के आगे भी कोई स्थान अवश्य होगा, क्योंकि जब कोई क्षेत्र परिमित मान ली जाती है तब जो स्थान उसकी सीमाओं के बाहर है उसका भी विचार मन में अवश्य उत्पन्न होता है। उस स्थान अथवा क्षेत्र के लिए यही कहा जायगा कि उसका कोई आदि-कारण नहीं। क्योंकि जिसे आदि-कारण माना था वह तो परिमित हो गया। दूसरे शब्दों में हमें इस प्रकार कहना पड़ेगा कि जो कुछ आदि-कारण की सीमा के बाहर है वह बिना कारण के है। अतएव जब बिना कारण के भी कोई वस्तु हो सकती है तब कारण खोजने की आवश्यकता ही क्या है। यदि यह कहिए कि आदि-कारण की

संवत् १२४५ में ताड़पत्र पर लिखी हुई पुस्तक का नमूना
ऊपर का चित्र हेमचन्द्राचार्य्य का है, नीचे का राजा कुमारपाल का।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सीमाओं के बाहर जो कुछ है वह अनन्त (Infinite) है तो इस अनन्त अंश को आदि-कारण के बाहर मानना होगा। ऐसा मानने से कार्य्य-कारण के सम्बन्ध का नियम ही व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि यदि अनन्त बिना कारण के है तो सान्त का कारण मानना सर्वथा बेकार है। इस दशा में आदि-कारण का लक्षण सान्त या परिमित नहीं हो सकता। यदि वह परिमित नहीं तो अवश्य ही अपरिमित (Unlimited) या अनन्त (Infinite) है। अतएव आदि-कारण अनन्त ही सिद्ध होता है, अन्तवाला अर्थात् सान्त नहीं।

आदि-कारण का यह भी लक्षण होना चाहिए कि वह और किसी कारण का आश्रित नहीं, क्योंकि यदि वह और किसी कारण का आश्रित है तो वही आश्रयी-भूत कारण मुख्य कारण हुआ। इस कारण यह अवश्य ही मानना पड़ेगा कि आदि-कारण स्वाधीन (Independent) है। यदि वह स्वाधीन है तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसके सिवा और कोई चीज़ नहीं है। केवल वही विद्यमान है; उसको और कोई वस्तु होने की आवश्यकता नहीं। जो स्वाधीन है वह न तो किसी दूसरी चीज़ ही के आसरे है और न अपने स्वभाव ही के; क्योंकि वह तो निरन्तर स्वतन्त्र है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऐसी कोई वस्तु नहीं जो उसमें विकार उत्पन्न कर सके, अथवा विकार उत्पन्न होने से रोक सके। यदि ऐसा बन्धन हुआ तो आदि-कारण की स्वाधीनता ही छिन जायगी।

आदि-कारण का तीसरा लक्षण सम्पूर्णता है। अर्थात् आदि-कारण नियमों और बन्धनों से रहित है। वह सर्व-शक्तिमान् और अनन्य-सम्बन्ध है। सारांश यह कि प्रकृति का कारण खोजते खोजते हम आदि-कारण तक आ पहुँचे और आदि-कारण के लक्षण अनन्त, स्वतन्त्र और सम्पूर्ण निश्चित हुए। तर्क से तो ये लक्षण ठीक हैं; पर बुद्धि से ग्रहण करने योग्य नहीं। क्योंकि अनन्तता, सम्पूर्णता और स्वाधीनता के लक्षणों से युक्त आदि-कारण का कदापि ज्ञान नहीं हो सकता। उसकी चर्चा करना केवल साङ्केतिक कल्पना है, और कुछ नहीं।

अच्छा तो (१) कारण (Cause), (२) अनन्त (Infinite), (३) और सम्पूर्ण (Absolute)—इन तीनों शब्दों पर विचार कीजिए। यदि ये तीनों शब्द एक ही वस्तु के सूचक हैं तो परस्पर-विरोधी हैं। जो सम्पूर्ण है वह किसी का कारण नहीं हो सकता। इसलिए आदि-कारण सम्पूर्ण नहीं, क्योंकि कारण तो कार्य के सम्बन्ध से ही होता है—कार्य से कारण, कारण से कार्य। सम्पूर्ण का अर्थ यह है कि उसका सम्बन्ध किसी से न हो। यदि यह कहा जाय कि आदि-कारण पहले अपने रूप में सम्पूर्ण था, परन्तु पीछे कारण हो गया, तो इस युक्ति में यह दोष आता है कि आदि-कारण अनन्त नहीं। क्योंकि जो अनन्त है उसका रूपान्तर नहीं होता। अर्थात् जो चीज़ पहले नहीं थी वह पीछे भी नहीं हो सकती। यदि सम्पूर्ण का कारण होना मान लिया जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह चेतन (Conscious) है और अपनी इच्छा (Free Will) से कार्य करता है। जब तक यह नहीं मान लिया जायगा कि आदि-कारण अपनी इच्छा से कार्य करता है तब तक वह सम्पूर्ण और अनन्त नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यदि कोई और वस्तु उसकी प्रेरक हुई तो वह वस्तु उससे अवश्य बड़ी हुई। यदि यह माना जाय कि आदि-कारण अपनी इच्छा से ही कार्य करता है तो कार्य से उसके स्वभाव का सम्बन्ध होना सिद्ध होता है। दूसरी बात यह है कि इच्छा चेतन में ही हो सकती है, और चेतन में कर्त्ता और कार्य का सम्बन्ध रहता है। चेतन के सम्बन्ध में दो बातें और भी हैं। एक तो वह जिसे ज्ञान होता है अर्थात् ज्ञाता। दूसरी वह जिसका ज्ञान होता है अर्थात् ज्ञेय। ज्ञाता और ज्ञेय में परस्पर सम्बन्ध रहता है। अच्छा तो अब इन

अँधेरे गड्ढे में गिरा जा रहा था,
दया की, मुझे दीप्ति की ओर फेरा।
हुई सत्य सत्ता स्वयं सिद्ध तेरी,
भरें भक्ति के भाव, भागा अँधेरा।
जगा हूँ नया जीवनालोक पाके,
हटी मोहनिद्रा, हुआ है सबेरा।

मैथिलीशरण गुप्त।

माहिष्मती-निर्णय।

यादव-वंश का निरूपण करते समय मैंने लिखा है कि "आज कल जहाँ ओंकारेश्वर महादेव का स्थान है वहीं राजा महिष्मत् की राजधानी प्राचीन माहिष्मती नगरी थी"। इस पर धार-निवासी श्रीयुत नन्दकिशोर द्विवेदीजी ने आक्षेप किया है कि माहिष्मती नगरी ओंकारेश्वर नहीं, महेश्वर है। इस लेख में इस बात का निर्णय करना है कि माहिष्मती ओंकारेश्वर है या महेश्वर।

यह बात सब लोगों पर विदित है कि प्राचीन स्थानों के निर्णय करने का काम अत्यन्त कठिन है। इस तर्क-युग में, जब हर बात के लिए "क्यों" बतलाना पड़ता है, केवल किसी के कथन पर लोगों का विश्वास नहीं जमता। सब बातों के प्रमाण खोजने पड़ते हैं और प्रमाणों के अनुसार ही निर्णय करना पड़ता है। पुरातत्व-विषयक शास्त्र का जो कुछ ज्ञान मुझे है उसके अनुसार मैं पाठकों के सम्मुख प्रमाण उपस्थित करता हूँ। निर्णय करना उन्हीं का काम है, मेरा नहीं।

माहिष्मती-निर्णय के विषय में पुरातत्वज्ञों में मतभेद है। पहला मत यह है कि माहिष्मती माहसोर है। महाभारत, सभापर्व, के ३१ वें अध्याय में सहदेव का दक्षिण-दिग्विजय-वर्णन है। उसमें लिखा है कि किष्किन्धा से—

ततो रत्नान्युपादाय पुरीं माहिष्मतीं ययौ।

इससे विल्सन साहब ने अनुमान किया कि माहिष्मती माहसोर होगा। राइस साहब ने भी अपनी—माहसोर—नामक पुस्तक में यही लिखा है। आपने एक और भी प्रमाण इस विषय में दिया है। वह यह कि कावेरी नदी को पार करके सहदेव माहिष्मती गये थे। पर यह वर्णन महाभारत की बहुत सी प्रतियों में नहीं है। इस लिए इसे प्रमाण नहीं मान सकते। इसके सिवा महाभारत में लिखे अनुसार माहिष्मती में नील राजा को जीत कर सहदेव ने त्रिपुरनगर जीता था। यह त्रिपुरनगर सब लोगों के मतानुसार जबलपुर ज़िले के तेवर गाँव के पास था। अर्थात् माहिष्मती भी कहीं जबलपुर ज़िले के ही पास होगी, माहसोर नहीं हो सकती।

कर्नल स्लीमन तथा कनिंगहम साहब ने कल्पना की थी कि मण्डला, जो मध्यप्रान्त में है, माहिष्मती होगा। पर यह सर्वमान्य नहीं हो सकता, क्योंकि इसके लिए कुछ भी प्रमाण नहीं दिया गया है।

तीसरा मत यह है कि माहिष्मती महेश्वर है। कर्नल विल्फर्ड ने अपने "एशियाटिक रिसर्चेज़" (Asiatic Researches) में यही लिखा है और इम्पीरियल गैज़ेटियर में भी इसी का अनुवाद किया गया है। महेश्वर के रहने वाले इसी को माहिष्मती मानते हैं। कर्नल टाड ने अपने राजस्थान में इसी मत का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं कि महेश्वर के पास "सहस्रबाहु की बस्ती" नामक एक छोटा सा गाँव भी है। सुत्तनिपात—नामक पाली ग्रन्थ का भी प्रमाण इसकी पुष्टि में दिया जाता है। इस ग्रन्थ में वर्णन किया गया है कि एक बौद्ध भिक्षु 'गोदावरीतीरस्थ' पतिष्ठान से माहिष्मती को गया और वहाँ से उज्जैनी को। अब पतिष्ठान

प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों का नमूना।

प्रथम पत्र ग्यारहवीं सदी का लिखा हुआ है।

दूसरा और तीसरा बारहवीं सदी का लिखा हुआ है।

(तीसरे में संवत् ११२० स्पष्ट लिखा है)

अब विचार कीजिए कि माहिष्मती कहाँ होनी चाहिए। नर्मदा-तट पर तो इसका होना आवश्यक ही है, क्योंकि नगरी के पास नर्मदा-स्नान करते हुए ही कार्तवीर्यार्जुन ने रावण को देखा और क़ैद किया था। पर रघुवंश के पूर्वलिखित श्लोक से इसका केवल नर्मदा-तटस्थ होना ही नहीं जान पड़ता, परन्तु नर्मदा से घिरा रहना भी जान पड़ता है। उस श्लोक में रेवा या नर्मदा की उपमा, प्राकाररूपी नितम्बों पर शोभा देने वाली काञ्ची से दी गई है। अर्थात् माहिष्मती नगरी के प्राकार रेवा नदी से घिरे रहने चाहिए। यह वर्णन महेश्वर के विषय में यथार्थ नहीं। नर्मदा के तीर पर ओङ्कारेश्वर ही एक ऐसा स्थान है जो नर्मदा से चारों ओर घिरा है। फिर भी हरिवंश में, जहाँ इस नगरी की स्थापना का वर्णन है, लिखा है कि विन्ध्य और ऋक्ष (सतपुड़ा) दोनों पर्वतों के निकट यह पुरी बसाई गई। ये दोनों पहाड़ नर्मदा के पास ओङ्कारेश्वर के जितना निकट हैं उतना महेश्वर के नहीं। यहाँ मिले हुए ताम्रपत्र पर माहिष्मती का नाम लिखा होना भी एक पुष्ट प्रमाण है। माहिष्मती नगरी के पश्चात् सहदेव ने जीता हुआ त्रिपुर या तेवर ग्राम भी इसी के पास है। "कावेरी को पार करके"—यदि महाभारत का यह पाठ ठीक हो तो इस स्थान से एक मील की दूरी पर कावेरी नाम की छोटी सी नदी भी नर्मदा में गिरती है। सुचिनिपात का लेख भी इसके विरुद्ध नहीं। क्योंकि यह भी लगभग पैठण से १९५ मील पर और उज्जैन से ७० मील है।

माहिष्मती के निकट का प्रदेश महिषमण्डल नाम से प्रसिद्ध था और यहाँ के लोग माहिषिक कहलाते थे। महाभारत के भीष्मपर्व में ये लोग "जनपदा दक्षिणा" कहे गये हैं और मार्कण्डेय-पुराणकार भी इनको "दक्षिणापथवासिनः" कहते हैं। नर्मदा के दक्षिण तट पर होने से ये दक्षिणापथ के रहने वाले कहलाये। विष्णुपुराण में लिखा है कि स्वैरिणी स्त्री को महिषी कहते हैं और उसके स्वैराचार को न रोकने वाला पुरुष माहिषिक कहा जाता है। इस वर्णन से तथा महाभारत के पूर्वोक्त श्लोकों से इनके नाम की व्युत्पत्ति सिद्ध होनी है।

माहिष्मती-निर्णय के विषय में जो कुछ मुझे ज्ञात है वह लिख दिया। निर्णय करना पाठकों का काम है। मैं स्वयं पर्गिटर तथा फ्लीट साहब के मतानुसार मान्धाता या ओङ्कारेश्वर को ही प्राचीन माहिष्मती समझता हूँ।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

पाटन के जैन पुस्तक-भाण्डार।

हिन्दुस्तान में जितने पुरातन पुस्तक-भाण्डार हैं उन सब में जैनों के भाण्डार अधिक पुराने हैं। जहाँ जैनों की विशेष बस्ती होती है वहाँ थोड़ा बहुत पुस्तक-संग्रह अवश्य ही होता है। परन्तु पाटन, खम्भायत (Cambay), जेसलमेर और अहमदाबाद में बहुत बड़ा संग्रह है। सौ सवा सौ वर्ष पहले तो लीमड़ी, भरूच, मेड़ता, बीकानेर, मुर्शिदाबाद आदि स्थानों में भी बड़े बड़े पुस्तक-भाण्डार थे। पर अब वहाँ प्रायः कुछ भी नहीं। वहाँ के अनेक ग्रन्थ इँगलेंड, जर्मनी आदि पहुँच गये हैं। हिन्दुस्तान में अब केवल ऊपर लिखे हुए नगरों में पुराने जैन-ग्रन्थ वर्तमान हैं। इन नगरों में पाटन सब से पुराना है। इसके बाद खम्भायत, जेसलमेर और अहमदाबाद का नम्बर है। प्रस्तुत लेख पाटन ही के भाण्डारों के विषय में लिखा जाता है।

पाटन अणहिलपुर-पाटन या सिद्धपुर-पाटन भी कहलाता है। मुसलमानों ने अपनी पुस्तकों में इसका नाम नहरवाला लिखा है। पाटन की विशेष ख्याति का कारण यहाँ के जैन पुस्तक-भाण्डार ही हैं।

पुराना इतिहास।

यहाँ के भाण्डारों का इतिहास नगर के इतिहास के

रचे हुए व्याकरणादि सर्वमान्य ग्रन्थों की हज़ारों नक़लें करा कर स्वराज्य के तथा दूर दूर तक पर-राज्यों के भी सरस्वती-भाण्डारों में भेजी थीं। अपने राज्य के विद्यालयों में तो उसने उन ग्रन्थों को पाठ्य पुस्तकों की नामावली में स्थान दिया था।

महाराज कुमारपाल तो इस ग्रन्थोद्धार कार्य के बड़े ही सहायक थे। उन्होंने तो इसका एक महकमा ही खोल रक्खा था। कोई सात सौ लेखक उनकी लेख-शाला में निरन्तर पुस्तकें लिखा करते थे। करोड़ों रुपये इस कार्य में व्यय किये जाते थे। उन्होंने बड़े बड़े २१ ज्ञान-भाण्डार स्थापित किये थे। अपने गुरु श्रीहेमचन्द्राचार्य के रचे हुए सभी ग्रन्थों की, तथा जैनागमों की भी, एक एक प्रति सुवर्णाक्षरों से लिखवा कर उन्होंने उन भाण्डारों में रक्खी थी। उनके सुप्रसिद्ध महामन्त्री वस्तुपाल ने सात करोड़ रुपये ख़र्च करके सात भाण्डार स्थापित किये थे

मालवे में एक जगह मण्डप-दुर्ग है। उसे आज कल माँडवगढ़ कहते हैं। वह धार रियासत में है। चौदहवीं सदी में वहाँ पेथड़शाह नाम का एक बड़ा दानी हो गया। उसने अपने गुरु श्रीधर्मघोष सूरि से भगवतीसूत्र श्रवण किया था। इस सूत्र में जहाँ जहाँ 'गोयमा' (हे गौतम) यह पद आया वहाँ वहाँ एक एक सुवर्ण-मुद्रा उसने चढ़ाई थी। उनकी कुल संख्या ३६,००० हुई थी। इस विपुल द्रव्य द्वारा उसने सब प्रकार की पुस्तकें लिखवाईं और उन्हें रेशम के रूमालों में लपेट लपेट कर देवगिरि, भरूच, आबू आदि सात स्थानों में भाण्डार-स्थापना करके रख दी थीं।

इसी तरह मन्त्री बाहड़, उदयन, कर्माशाह, समराशाह, झाझणशाह आदि अनेक धनवानों के स्थापित ज्ञान-भाण्डारों के उल्लेख जैनों की ऐतिहासिक पुस्तकों में यत्र तत्र मिलते हैं। जैनों के लिए जिन-मूर्ति और जिन-वाणी दोनों समान हैं। यही कारण है जो जैनों ने ज्ञान-भाण्डारों के लिए अनन्त द्रव्य ख़र्च किया। जो गृहस्थ बहुत सी पुस्तकें लिखवाता उसके वंश और सत्कृत्यों का कीर्तन करने वाली एक लम्बी लेख-प्रशस्ति उन पुस्तकों के पीछे जोड़ दी जाती थी। ऐसी सैकड़ों प्रशस्तियाँ हमारे पास हैं। उनमें से बहुत सी तो यहीं पाटन के भाण्डारों से नक़ल की गई हैं।

बड़े दुःख की बात है कि देश के दुर्दैव से कुमारपाल आदि के पुस्तक-भाण्डार सैकड़ों वर्ष पहले ही नाम-शेष हो चुके हैं। उनका वर्णन मात्र पुरानी पुस्तकों में मिलता है। इसका कारण बताने की ज़ियादा आवश्यकता नहीं। जो भारतीय सैकड़ों वर्षों तक अपनी प्यारी जान को मुट्ठी में लिये और अपने विपुल ऐश्वर्य को छोटी सी गठरी में बाँधे हुए इधर उधर मारे मारे फिरे हैं वे इन विशाल पुस्तकालयों को, जो विधर्मियों के मुख्य शिकार थे, कैसे बचा सकते थे? कितने ही मत्त देशद्रोही भारतवासियों ने भी यह कलङ्क अपने सिर मढ़ा है। कुमारपाल के पुस्तकालयों का समूल नाश तो उसके उत्तराधिकारी अजयपाल ही ने कर दिया था। कुमारपाल ने उसे राज्य के लिए अयोग्य समझ कर अन्य किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था। इस कारण, अजयपाल ने द्वेषवश उसका नाम ही जगत् से नष्ट करना निश्चित किया। कुमारपाल की प्रायः सभी कृतियों का उसने नाश किया। यहाँ तक कि वह जैन धर्म के भी पीछे पड़ गया। पाटन में तथा अन्यत्र भी जितने त्रिभुवन-विहार,* कुमार-विहार आदि मन्दिर, पौषध-शालायें, ज्ञान-भाण्डार आदि थे सबको उसने ढहा दिया। महाकवि रामचन्द्र जैसे विद्वान् साधुओं तथा आम्रभट जैसे धर्मात्मा और स्वामिभक्त मन्त्रियों को उसने धराधाम से उठा

* कुमारपाल के जीवन-चरितों में इस मन्दिर के विषय में बहुत कुछ लिखा हुआ है। कहा जाता है कि राजा कुमारपाल ने इसमें ९६ करोड़ रुपया ख़र्च किया था। उपदेशतरङ्गिणी आदि पुस्तकों में लिखा है—"पत्तने स्वपितृ-त्रिभुवनपालस्य नामाङ्कितः 'त्रिभुवनविहारः' कारितः। ७२ देवकुलिकायुतः। तासु २४ प्रतिमा रत्नमय्यः, २४ पित्तल-सुवर्णमय्यः, २४ रूप्यमय्यः, १४ भारमयाः। मुख्य-प्रासादे १ शत २५ अङ्गुलप्रमाणारिष्टरत्नमयी नेमिनाथ-प्रतिमा कारिता। तत्र द्रव्यव्ययः ९६ कोटिमानः"।

इसी त्रिभुवनविहार के भीतर कुमारविहार नाम का जिन भवन था। उसमें श्रीहेमचन्द्राचार्य की प्रतिष्ठित श्रीपार्श्वनाथ की भव्य मूर्ति थी। इस भवन की चित्रकारी और शिल्पकार्य्य बहुत अद्भुत था। कुमारपाल की इच्छा से महाकवि रामचन्द्र ने—'कुमारविहार-शतक'—नाम का एक उत्तम काव्य बनाया है। उसमें इसी भवन का विशद वर्णन है। उसके अन्त में कवि ने लिखा है—

"आस्ते शाश्वतमुद्भवः प्रकृतिमत्स्निग्धः सदानाशोज्ज्वल—
स्तनुं पल्लवयन्मनुष्यसि चिरं विभर्ति तस्य श्रीमत्पुरम्।"

त्र पर लिखी गई पुस्तकों की नक़ल हैं। इनके पत्रों का भी संख्या-क्रम है वह ताड़-पत्रों के ही सदृश है। इसमें साहित्य के बड़े अच्छे अच्छे ग्रन्थ हैं। अन्य भाण्डारों में वैसे ग्रन्थ नहीं।

तीसरा नम्बर, फोफलिया वाड़े की भागनी-सेरी का है। इसमें १०१२ पुस्तकें काग़ज़ पर और २२ ताड़पत्र पर हैं। सोलहवीं सदी में वसूलशाह नाम का एक करोड़पति सेठ यहां हो गया है। इसकी बहुत सी पुस्तकें उसी की लिखाई हुई हैं।

चौथा भाण्डार, पूर्वोक्त महल्ले की वखतजी की सेरी में है। इसमें २१८१ पुस्तकें काग़ज़ पर और १२० ताड़-पत्र पर हैं। इन दोनों अर्थात् तीसरे और चौथे भाण्डारों में, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और गुजराती भाषा में लिखे हुए, सिद्धान्त, तर्क, व्याकरण, काव्य, कोष, ज्योतिष, छन्द, अलङ्कार, इतिहास आदि प्रायः सभी विषयों के ग्रन्थ हैं।

पाँचवाँ भाण्डार, सागरगच्छ के उपाश्रय का है। इसमें छोटे छोटे दो तीन संग्रह हैं। इसमें भी बहुत सी पुस्तकें हैं, जो काग़ज़ पर ही लिखी हुई हैं।

ताड़-पत्र पर पुस्तकें।

यहां के भाण्डारों में जितने पुराने ताड़पत्र हैं उतने पुराने नेपाल को छोड़ कर, हिन्दुस्तान के अन्य भागों में नहीं। मदरास-प्रान्त में ताड़पत्र पर बहुत से ग्रन्थ मिले हैं, परन्तु वे अधिक पुराने नहीं। डाक्टर बर्नेल के कथनानुसार दक्षिण में जो सब से पुराना ताड़पत्र मिला है वह सन् १४२८ ईसवी का है। पर यहां पाटन में जितनी पुस्तकें हैं वे सब इस समय के पूर्व की ही लिखी हुई हैं। विक्रम की ग्यारहवीं सदी की लिखी हुई भी कोई कोई पुस्तक यहां पर मानी जाती है। बारहवीं, तेरहवीं और चौदहवीं सदी के तो अनेक ग्रन्थ हैं। संवत् १४१०-१२ तक की लिखी हुई पुस्तकें यहां हैं, उसके बाद की कोई नहीं। यहां पर जितनी पुस्तकें हैं वे केवल यहीं की लिखी हुई नहीं हैं, किन्तु खम्भात, धोलका, करणावती, चन्द्रावती, डूँगरपुर, बीजापुर, प्रह्लादनपुर आदि नगरों में कर्णदेव, सिद्धराज, कुमारपाल, भीमदेव, त्रिभुवनदेव, मालदेव, सोमसिंहदेव आदि राजाओं के समय की लिखी हुई हैं। लिपि उनकी देवनागरी है। अधिक पुरानी लिपि कुछ कुछ बंगला-लिपि से मेल खाती है। जिनको पुरानी लिपियाँ पढ़ने का अभ्यास नहीं वे एक दम इसे नहीं पढ़ सकते। अक्षर बड़े सुन्दर, सुडौल और सुपाठ्य हैं। जैन लेखकों ने लेखन-कला का ख़ूब उत्कर्ष किया था। लम्बे, चौड़े, गोल और टेढ़े मेढ़े आदि अनेक प्रकार के सुन्दर अक्षर यहां की पुस्तकों में पाये जाते हैं। ताड़-पत्रों पर काली ही स्याही से लिखा जाता है। परन्तु यह स्याही होती बहुत पक्की है। एक एक हज़ार वर्ष की पुरानी पुस्तकों के अक्षर आज तक वैसे ही काले हैं। जान पड़ता है, अभी लिखे गये हैं। आज कल जो स्याही काम में आती है उससे यह स्याही भिन्न प्रकार की होती है। वह जिन चीज़ों से और जिस रीति से बनाई जाती है उसका ठीक हाल हमें मालूम हो गया है। ताड़-पत्रों पर चित्र भी अङ्कित होते थे, परन्तु वे अच्छे न बनते थे। चित्रों में रङ्ग भी भरा जाता था। इस लेख के साथ ताड़-पत्र के चित्रों का नमूना दिया गया है। ये चित्र संवत् १२९४ के लिखे हुए एक ग्रन्थ से लिये गये हैं, जो हेमचन्द्राचार्य्य का बनाया हुआ है। ऊपर का चित्र हेमचन्द्राचार्य्य का और नीचे का राजा कुमारपाल का है।

ताड़-पत्र छोटे बड़े अनेक नाप के हैं। बड़े से बड़ा पत्रा ११/४० इंच, और छोटे से छोटा १४/१८ इंच लम्बा-चौड़ा है। ये सब ताड़-पत्र मलाबार * से मँगाये जाते थे। दक्षिण में भी ताड़-पत्र मिलते हैं, परन्तु वे विशेष चिकने, पतले और मज़बूत नहीं होते। मलाबारी ताड़पत्र बहुत कोमल और पतले होते हैं। दक्षिणी पत्रों पर लिखने की अपेक्षा अक्षर खोदे अधिक जाते हैं। इन पर लिखे अच्छे जमते हैं, खोदे नहीं। लेखक बहुधा कायस्थ, ब्राह्मण और बनिये होते थे। जैन साधु भी पुस्तकें लिखा करते थे। कितने ही आचार्यों ने तो यह नियम कर दिया था कि हर साधु को दिन भर में १२-२० श्लोक अवश्य लिखना चाहिए।

ताड़पत्रों पर संख्या-क्रम कुछ विलक्षण ही लिखा हुआ मिलता है। १-२-३-४ आदि अङ्कों के स्थान पर,

* भेंवर एक के भाण्डार में एक पुराना ताड़पत्र मिला है। उस पर किसी लेखक ने अपने कारणार्थ एक टिप्पण लिखा है। उसमें लिखा है—"संवत् १४८१ ओ० ब० ४ दिने इन्द्रः। वर्षे श्रुतज्ञानवर्धनार्थ ११४ पत्राणां [illegible]"।

१ कर्पूर-चरित्र भाण, २ रुक्मिणीपरिणय ईहामृग, ३ हास्य-चूड़ामणि प्रहसन और ४ किरातार्जुनीय व्यायोग—यहाँ ताड़-पत्र पर विद्यमान हैं। ये पुस्तकें कालिञ्जर के राजा परमर्दिदेव (ई० स० ११६५–१२०३) के महामात्य कवि वत्सराज की बनाई हुई हैं।

त्रिभुवनमल्ल सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ अभिलषितार्थ-चिन्तामणि नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें १०० अध्याय हैं। यह अभी तक कहीं सम्पूर्ण नहीं मिला। इसकी एक कापी मदरास की ओरिएंटल लाइब्रेरी में है। दूसरी यहाँ पर मिली है। यद्यपि यहाँ की प्रति भी अपूर्ण ही है, परन्तु मदरास की कापी से यहाँ की कापी में कुछ भाग अधिक है। जैन मन्त्री वस्तुपाल का बनाया हुआ नर-नारायणानन्द काव्य भी अलभ्य है। सुभद्रा-परिणयन के ढंग पर इसकी रचना हुई है। इसकी भी एक प्रति यहाँ है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र पर योगघम की नीति-निर्णय नामक टीका के भी कुछ पत्रे यहाँ विद्यमान हैं।

कागज़ पर लिखी हुई पुस्तकें।

जितनी पुरानी पुस्तकें ताड़पत्र पर मिलती हैं उतनी कागज़ पर नहीं मिलतीं। कागज़ बहुत काल तक नहीं ठहर सकता। हमारे देखने में जितने कागज़ आये उनमें सब से पुराना संवत् १३५६ का लिखा हुआ है। उसके पूर्व का कोई नहीं। कुछ लोगों का कथन है कि हिन्दुस्तान में कागज़ चौदहवीं सदी में प्रचलित हुआ है। परन्तु हम इससे सहमत नहीं। राजा कुमारपाल (संवत् ११९९–१२३०) के समय में कागज़ों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। कागज़ की आयु ताड़-पत्र की आयु के बराबर न होने के कारण पुराने ज़माने में जैन लोग ताड़-पत्र पर ही लिखना अधिक पसन्द करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक अधिक पुस्तकें ताड़-पत्र पर ही लिखी जाती थीं। इसके बाद, किसी कारण से, ताड़पत्रों का मलाबार से आना बन्द हो गया। तब कागज़ पर लिखने का अधिक प्रचार हुआ। संवत् १४७२ से १५०० तक २९ वर्षों में लाखों पुस्तकें ताड़-पत्रों से कागज़ पर नक़ल की गईं। जैन-भाण्डारों में यदि कागज़ की पुरानी पुस्तकें ढूँढ़ी जायँ तो अधिकांश इसी समय की लिखी हुई मिलेंगी। बहुत करके काश्मीरी कागज़ काम में लाया जाता था। पीछे से अहमदाबादी कागज़ पर भी पुस्तकें लिखी गईं।

कागज़ पर काली स्याही के सिवा हिंगुल की बनी हुई लाल स्याही से भी लेखक लिखते थे। सोने और चाँदी की सच्ची स्याही से लिखी हुई बहुत पुस्तकें मिलती हैं। जैनों का कल्पसूत्र पर्युषणों के त्योहारों पर हर जगह बाँचा जाता है। उसकी प्रतियाँ प्रायः ऐसी ही स्याही से लिखी हुई मिलती हैं। इस स्याही से लिखने में बड़ी मिहनत पड़ती है। अच्छे से अच्छा लेखक भी मुश्किल से दिन भर में १०—२० श्लोक लिख सकता है। सोने-चाँदी की स्याही में ख़र्च बहुत पड़ता है। १०० श्लोक लिखने में कम से कम २५—३० रुपये की लागत लगती है। ऐसी पुस्तकें बहु-मूल्य और दर्शनीय होती हैं। इन पर बेल-बूटे और चित्र-कारी भी रहती है। सफ़ेद कागज़ पर सुनहले अक्षर उतने अच्छे नहीं लगते जितने रङ्गीन कागज़ पर लगते हैं। इस लिए पहले कागज़ को लाल-पीले रङ्ग से लोग रँगते थे। फिर उस पर लिखते थे। ऐसा करने से अक्षरों की चमक बढ़ जाती थी। कोई कोई पुस्तक तो अधिक देर तक पढ़ी भी नहीं जा सकती। ऐसी पुस्तकें ४००—५०० वर्ष की पुरानी होने पर भी काली नहीं पड़तीं। उनकी चमक ज्यों की त्यों रहती है।

पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि जिस तरह पुरुष पुस्तकें लिखा करते थे उसी तरह स्त्रियाँ भी पुराने ज़माने में लिखा करती थीं। बड़े बड़े घरानों की स्त्रियाँ यह काम करती थीं। ऐसी कितनी ही स्त्रियों के लिखे हुए ग्रन्थ मेरे देखने में आये हैं, जिनकी लेखनकला बहुत ऊँचे दरजे की है। मेरे पास एक छोटा सा ग्रन्थ है, जो चित्तौर के राना के दीवान की पुत्री का लिखा हुआ है। यह खरतर-गच्छ के आचार्य जिनहंससूरि के शिष्य उपाध्याय कमल-संयम गणि को (संवत् १५४४—४५ में) भेंट किया गया था। इस ग्रन्थ के अक्षरों का सौन्दर्य आश्चर्य-जनक है।

ताड़-पत्रों की तरह कागज़ पर लिखे हुए ग्रन्थों की भी रक्षा की जाती है। ऊपर जैसा कागज़ कवर कर पुस्तक एक डिब्बे में रख दी जाती है। ये डिब्बे लकड़ी, कागज़ और चमड़े के बनते हैं और मज़बूत होते हैं। एक एक डिब्बे में

रोमन लिपि की तरह, विचित्र वर्ण लिखे हुए हैं। १, २, ३ की जगह क्रम से स्व, स्ति, श्री लिखा हुआ है। ४ के स्थान पर र्क, ५ के स्थान पर र्तृ, ६ की जगह फ्रु—इस प्रकार के विलक्षण अङ्क मिलते हैं। बड़ी बड़ी संख्याओं के लिए तो वर्ण लिखे ही न जाते थे। उनके लिए और ही चिह्न थे। यथा (८०), (४०), (६०)। इसी तरह और भी समझिए।

ताड़पत्रों के मध्य में एक बारीक छेद रहता है। उसमें सूत या रेशम की पतली डोरी डाल कर सब पत्र एक साथ बाँध दिये जाते हैं। पुस्तक के दोनों ओर मज़बूत लकड़ी की पट्टियाँ लगी हैं। उन पर पक्के रङ्गों से विविध जैन दृश्य चित्रित हैं। पुस्तकें रेशमी रूमालों से बँधी हुई हैं।

दुर्लभ ग्रन्थ।

पाटन में ताड़पत्रों पर जो ग्रन्थ हैं उनमें जैनों के सिवा, बौद्धों और ब्राह्मणों के भी बहुत से अलभ्य ग्रन्थ हैं। बौद्धों के अनेक प्राचीन तर्क-ग्रन्थ हिन्दुस्तान में अप्राप्य हो गये हैं। तिब्बतीय अनुवादों से ही उनके अस्तित्व का पता लगता है। उनमें से कितने ही ग्रन्थ यहाँ मौजूद हैं।

ब्राह्मणों और जैन तार्किकों ने तर्क-भाषा लिखी है। परन्तु इन दोनों से बौद्धों की तर्क-भाषा पुरानी है। वह यहाँ पर विद्यमान है। दसवीं शताब्दी के लगभग राजगच्छ-विहारीय यति मोक्षाकर गुप्त ने प्रत्यक्ष, स्वार्थानुमान और परार्थानुमान नामक तीन परिच्छेदों में इसकी रचना की है। न्यायबिन्दु के कर्ता का बनाया हुआ हेतुबिन्दु नाम का ग्रन्थ, और उस पर विनीतदेव (ई० स० ७८० के लगभग विद्यमान) की टीका भी यहाँ है। नालन्दा-विश्वविद्यालय के अध्यापक शान्तिरक्षित का रचा हुआ तत्त्वसंग्रह नाम का ग्रन्थ भी यहाँ है। उसमें अनेक दर्शनों की समीक्षा है। इसके ऊपर उक्त विद्यालय के अन्य-शास्त्राध्यापक आचार्य कमलशील की बनाई हुई तत्त्व-संग्रह-पञ्जिका नाम की संक्षिप्त टीका भी है।

इनके सिवा भासर्वज्ञ के न्यायसार ग्रन्थ का न्याय-भूषण नामक स्वोपज्ञविवरण, जयराशि का तत्त्वोपप्लव, भट्ट वादीन्द्र का शब्द की नित्यता के विषय में महाविद्याविडम्बन, परम-पाशुपताचार्य वामध्वज का न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकरण है। उस पर शिङ्गणपोम्मिदेव भूपति की कुसुमाञ्जलि की व्याख्या आदि ब्राह्मण-तर्क-ग्रन्थ भी यहाँ हैं।

काव्य, अलङ्कार, शिल्प आदि विषय के भी कितने ग्रन्थ इन भाण्डारों में विद्यमान हैं, जो अन्यत्र प्रायः अनुपलब्ध हैं। बिल्हण कवि का विक्रमाङ्कदेव-चरित प्रसिद्ध काव्य है। उसमें जिस विक्रमादित्य (चालुक्य) का वर्णन है उसी के पौत्र राजा भूलोकमल्ल सोमेश्वर ने अपने पिता को लक्ष्य करके विक्रमाङ्काभ्युदय नामक चम्पू-काव्य रचा था। उसका कुछ भाग यहाँ पर उपलब्ध है। यह राजा दक्षिण में ११२७-३८ ईसवी में हो गया है। बालरामायण, कर्पूरमञ्जरी आदि के कर्ता कवि राजशेखर का बनाया हुआ काव्यमीमांसा नामक ग्रन्थ है। उसका भी कुछ अंश उपलब्ध है। यह ग्रन्थ बड़े महत्त्व का है। इसमें १८ "अधिकरण" हैं। उनमें से अठारहवें अध्याय का प्रथमाधिकरण ही यहाँ है। इस ग्रन्थ में हिन्दुस्तान के जुदा जुदा भागों के लोगों की भाषा आदि का अच्छा उल्लेख है। लाट और सौराष्ट्र के निवासियों के विषय में लिखा है—

> पठन्ति लटभं लाटाः प्राकृतं संस्कृतद्विषः।
> जिह्वया ललितोल्लापलब्धसौन्दर्यमुद्रया ॥१॥
> सुराष्ट्रत्रवणाद्या ये च पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
> अपभ्रंशावदंशानि ते संस्कृतवचांस्यपि ॥२॥

वल्लभ कायस्थ कवि सोड्ढल की बनाई हुई उदयसुन्दरी नामक चम्पू-कथा विशेष उल्लेखनीय है। बाण के हर्षचरित की बराबरी करने के लिए कवि ने इसे आठ उच्छ्वासों में रचा है। इसके आरम्भ में कायस्थों की उत्पत्ति के विषय में कवि ने कितनी ही जानने योग्य बातें लिखी हैं।

दामोदर गुप्त का कुट्टनीमतम् (कुट्टनीमतम्) काव्य निर्णयसागर की काव्यमाला के तृतीय गुच्छक में छिपा है उससे यहाँ की प्रति में कोई १०० श्लोक अधिक हैं। कादम्बरी-कथा-सार के रचयिता अभिनन्द कवि के पिता का नाम कवि जयन्त था। उनका बनाया हुआ आगमडम्बर नाम का एक सुन्दर नाटक है, जिसमें षड्दर्शन की आलोचना है। साहित्यदर्पण के छठे परिच्छेद में, नाटक-प्रकरण में, समुद्र-मन्थन समवकार और त्रिपुरदाह डिम का उल्लेख है। इनके कर्ता के रचे हुए और भी चार नाटक—

१ कर्पूर-चरित्र भाण, २ रुक्मिणीपरिणय ईहामृग, ३ हास्य-चूड़ामणि प्रहसन और ४ किरातार्जुनीय व्यायोग—यहाँ ताड़-पत्र पर विद्यमान हैं। ये पुस्तकें कालिञ्जर के राजा परमर्दिदेव (ई० स० ११६२–१२०३) के महामात्य कवि वत्सराज की बनाई हुई हैं।

त्रिभुवनमल्ल सोमेश्वरदेव का बनाया हुआ अभिलषितार्थ-चिन्तामणि नाम का एक ग्रन्थ है। उसमें १०० अध्याय हैं। वह अभी तक कहीं सम्पूर्ण नहीं मिला। इसकी एक कापी मदरास की ओरियंटल लायब्रेरी में है। दूसरी यहाँ पर मिली है। यद्यपि यहाँ की प्रति भी अपूर्ण ही है, परन्तु मदरास की कापी से यहाँ की कापी में कुछ भाग अधिक है। जैन मन्त्री वस्तुपाल का बनाया हुआ नर-नारायणानन्द काव्य भी अलभ्य है। सुभद्रा-परिणयन के ढंग पर इसकी रचना हुई है। इसकी भी एक प्रति यहाँ है। कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र पर योगघम की नीति-निर्णय नामक टीका के भी कुछ पत्रे यहाँ विद्यमान हैं।

कागज़ पर लिखी हुई पुस्तकें।

जितनी पुरानी पुस्तकें ताड़पत्र पर मिलती हैं उतनी कागज़ पर नहीं मिलतीं। कागज़ बहुत काल तक नहीं ठहर सकता। हमारे देखने में जितने कागज़ आये उनमें सब से पुराना संवत् १३५० का लिखा हुआ है। उसके पूर्व का कोई नहीं। कुछ लोगों का कथन है कि हिन्दुस्तान में कागज़ चौदहवीं सदी में प्रचलित हुआ है। परन्तु हम इससे सहमत नहीं। राजा कुमारपाल (संवत् ११६२–१२३०) के समय में कागज़ों के अस्तित्व का उल्लेख मिलता है। कागज़ की आयु ताड़-पत्र की आयु के बराबर न होने के कारण पुराने ज़माने में जैन लोग ताड़-पत्र पर ही लिखना अधिक पसन्द करते थे। पन्द्रहवीं शताब्दी के अन्त तक अधिक पुस्तकें ताड़-पत्र पर ही लिखी जाती थीं। उसके बाद, किसी कारण से, ताड़पत्रों का व्यापार तो मानो बन्द हो गया। तब कागज़ पर लिखने का अधिक प्रचार हुआ। संवत् १४०२ से १५०० तक ९८ वर्षों में लाखों पुस्तकें ताड़-पत्रों से कागज़ पर नक़ल की गईं। जैन-भाण्डारों में यदि कागज़ की पुरानी पुस्तकें ढूँढ़ी जायँ तो अधिकांश इसी समय की लिखी हुई मिलेंगी। बहुत करके काश्मीरी कागज़ काम में लाया जाता था। पीछे से अहमदाबादी कागज़ पर भी पुस्तकें लिखी गईं।

कागज़ पर काली स्याही के सिवा हिंगुल की बनी हुई लाल स्याही से भी लोग लिखते थे। सोने और चाँदी की सच्ची स्याही से लिखी हुई बहुत पुस्तकें मिलती हैं। जैनों का कल्पसूत्र पर्युषणों के त्योहारों पर हर जगह बाँचा जाता है। उसकी प्रतियाँ प्रायः ऐसी ही स्याही से लिखी हुई मिलती हैं। इस स्याही से लिखने में बड़ी मिहनत पड़ती है। अच्छे से अच्छा लेखक भी मुशकिल से दिन भर में १०—२० श्लोक लिख सकता है। सोने-चाँदी की स्याही में ख़र्च बहुत पड़ता है। १०० श्लोक लिखने में कम से कम २५—३० रुपये की लागत लगती है। ऐसी पुस्तकें बहु-मूल्य और दर्शनीय होती हैं। इन पर बेल-बूटे और चित्र-कारी भी रहती है। सफ़ेद कागज़ पर सुनहले अक्षर उतने अच्छे नहीं लगते जितने रङ्गीन कागज़ पर लगते हैं। इस लिए पहले कागज़ को लाल-पीले रङ्ग से लोग रँगते थे। फिर उस पर लिखते थे। ऐसा करने से अक्षरों की चमक बढ़ जाती थी। कोई कोई पुस्तक तो अधिक देर तक पढ़ी भी नहीं जा सकती। ऐसी पुस्तकें ४००—५०० वर्ष की पुरानी होने पर भी काली नहीं पड़तीं। इनकी चमक ज्यों की त्यों रहती है।

पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि जिस तरह पुरुष पुस्तकें लिखा करते थे उसी तरह स्त्रियाँ भी पुराने ज़माने में लिखा करती थीं। बड़े बड़े घरानों की स्त्रियाँ यह काम करती थीं। ऐसी कितनी ही स्त्रियों के लिखे हुए ग्रन्थ मेरे देखने में आये हैं, जिनकी लेखनकला बहुत ऊँचे दरजे की है। मेरे पास एक छोटा सा ग्रन्थ है, जो चित्तौर के राजा के दीवान की पुत्री का लिखा हुआ है। वह खरतर-गच्छ के आचार्य जिनहंससूरि के शिष्य उपाध्याय कमल-संयम गणि को (संवत् १५४४—७० में) भेंट किया गया था। इस ग्रन्थ के अक्षरों का सौन्दर्य आश्चर्य-जनक है।

ताड़-पत्रों की तरह कागज़ पर लिखे हुए ग्रन्थों की भी रक्षा की जाती है। ऊपर कोरा कागज़ लपेट कर पुस्तक एक डिब्बे में रख दी जाती है। ये डिब्बे लकड़ी, कागज़ और चमड़े के बनते हैं और मज़बूत होते हैं। एक एक डिब्बे में

मिस्टर दादाभाई नौरोजी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

"राजस्थान" में इस विषय में जो लिखा है उसे नीचे उद्धृत करके इस लेख को समाप्त करता हूँ—

"जैनों ने एक अमूल्य रत्न को अपने हृदय से लगा कर उसकी रक्षा की है। मदमूर यवन-विप्लव के विग्राही अग्नि से जिस समय भारत के भाण्डारों की ग्रन्थावली भस्म हो रही थी उस समय जैनों ने ही उसकी रक्षा की थी। कठोर शासन और मदमूर अत्याचारों को सहन करके भी परम धार्मिक जैनों ने अपने ग्रन्थ-रत्नों को बचाया है।*

मुनि जिनविजय (पाटन)

धनी का संकट।

करके उपाय लाखों लाखों जमा किये हैं,
हमने कभी हज़ारों कर्ज़ा भी कर दिये हैं।
अपने असंख्य धन को हम मात्र देखते हैं;
सौ बार रात-दिन में यह कोष देखते हैं॥ १॥

सम्पूर्ण कामनायें हम लोक में हमारी
परिपूर्ण हो रही हैं सुख-चैन भोग भारी।
अधरात को मज़े में हम नित्य जागते हैं;
फिर पहर दिन चढ़े पर निज सेज त्यागते हैं॥ २॥

प्रति दिन नवीन भोजन स्वादिष्ट और ताज़े
हम मित्र-सहित पाते हैं प्रेम से विराजे।
दो बार हैं बदलते हम नित्य नये जोड़े,
हम राज-शौक़ में हैं जाते अनेक तोड़े॥ ३॥

ये पग सपूट पड़ते हैं मख़मली मही पर,
फिर पहुँचते यहाँ से हैं ठंढ़ी धौकड़ी पर।
निज हाथ से उठाते हम फूल भी नहीं हैं,
सुकुमार हम करों से क्या और कर सकीं हैं?॥ ४॥

निज और से बड़े को बस हम नहीं समझते,
दो शब्द बोलने में सद बार हैं अटकते।
करके अथक परिश्रम जब हम अचेत सोते
तब दूर से हमारा तन दास हैं भिगोते॥ ५॥

सुख-चैन से हमारा यों काल बीतता है,
पर साथ ही पुराना यह कोष रीतता है।
तो भी सभी लगाये हैं ध्यान शेष धन पर,
हर एक दिन घुमाये हैं दौड़ता भवन पर॥ ६॥

कोई अकाल कोई भूकम्प की कहानी
आ कर हमें सुनाता है दीन दीन बानी।
कोई बखानता है धन-हीन का फ़साना,
कोई पुकारता है बन जाय धर्मशाला॥ ७॥

यदि एक मांगता है अनमोल औषधालय
तो दूसरा बताता है अन्य वाचनालय।
है आज पाठशाला की फ़ीस-दान करा है;
इस ओर जल-झड़ी है उस ओर महाजन है॥ ८॥

हर एक हर तरह से हमको सता रहा है,
बातें बना बनाकर यों ही भुला रहा है।
बेहतर है यही जो हम दान भूल बैठें,
फिर नाम ये हमारा चाहे कभी न बैठें॥ ९॥

सुख-चैन छोड़ अपना हम क्यों रहें दानी!
सुनते रहें पड़ों की चिर-चावनी कहानी।
पर हाँ ख़िताब पावें तो दान भी सफल है;
यो दान-मान का ही संयोग आजकल है॥ १०॥

कुबेरदास।

मिस्टर दादाभाई नौरोजी।

दादाभाई नौरोजी का जन्म ४ सितम्बर सन् १८२५ ईसवी को बम्बई में हुआ था। आप का घराना छः सदी से पुरोहिती करता आया था। केवल दादाभाई ही ने उसे छोड़ कर राजनैतिक क्षेत्र में पदार्पण किया। परिणाम यह हुआ कि दादाभाई की कीर्ति की पताका आज सम्पूर्ण भारतवर्ष में फहरा रही है। इतना ही नहीं, विलायत में भी आप का नाम प्रायः प्रत्येक शिक्षित स्त्री-पुरुष को ज्ञात है। दादाभाई जिस समय ४ वर्ष के थे, उनके पिता का देहान्त हो गया था। इससे उनकी शिक्षा, तथा पालन-पोषण का भार उनकी माता पर पड़ा। यद्यपि माता के

---

* यह लेख लिखने में हमने श्रीयुत जिनवाला, एम० ए० के एक लेख से कुछ मदद ली है। इस लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। लेखक

पास कोई बड़ी आयदाद न थी तथापि दादाभाई को सुशिक्षित बनाने में उन्होंने कोई कसर नहीं की। उनकी माता स्वयं शिक्षिता न थीं। पर विद्या के लाभों से वे भले प्रकार परिचित थीं। अपढ़ रहने पर भी वे स्त्रीशिक्षा को लाभदायक समझती थीं। दादाभाई के पढ़ाने लिखाने में उनकी माता को एक बड़ा सुभीता यह था कि उस समय शिक्षा मुफ़्त दी जाती थी। आज कल की तरह उस समय न तो बहुत फ़ीस देनी पड़ती थी, न बहुत सी किताबें ही मोल लेनी पड़ती थीं। खाने पीने की चीज़ें भी बहुत सस्ती थीं। सारांश यह कि दादाभाई की शिक्षा के लिए समय हर तरह अनुकूल था।

विद्याध्ययन।

कुछ दिन एक सरकारी पाठशाला में शिक्षा पाने के बाद दादाभाई एल्फ़िन्स्टन इन्स्टीट्यूशन में, जो अब एलफ़िन्स्टन कालेज के नाम से प्रसिद्ध है, दाखिल हुए। इस पाठशाला में दादाभाई ने अपनी तीव्र बुद्धि और परिश्रम का अच्छा परिचय दिया। दादाभाई ने अनेक पारितोषिक और छात्रवृत्तियाँ प्राप्त कीं। आप सदैव क्लास में सब से प्रथम रहा करते थे। बीस वर्ष की आयु में दादाभाई की विद्या और योग्यता की कीर्ति सम्पूर्ण बम्बई-प्रान्त में फैल गई थी। बम्बई हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस उस समय सर एर्स्किन पेरी थे, जो शिक्षा-समिति के अध्यक्ष भी थे। आप दादाभाई की योग्यता पर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हें बैरिस्टरी पढ़ाने के लिए आधा ख़र्च स्वयं देने को तैयार हुए तथा आधा सर जमसेटजी जीजीभाई से दिलवाना चाहा। पर सर जमसेटजी जीजीभाई को डर लगा कि ऐसा न हो कि तरुण दादाभाई विलायत जाकर अपने पूर्वजों के धर्म को त्याग दें। इस कारण दादाभाई का विलायत जाना रुक गया। यह अच्छा भी हुआ, क्योंकि ७० वर्ष तक भारत की ऐसी सेवा कौन करता? इसके पश्चात् दादाभाई एलफ़िन्स्टन स्कूल में असिस्टेंट मास्टर नियुक्त किये गये। सन् १८५२ ईसवी में उसी कालेज में आप गणित तथा विज्ञान शास्त्र के मुख्याध्यापक नियुक्त हुए, जो उन दिनों एक बहुत बड़ा पद समझा जाता था। कारण यह था कि सिवा अँगरेज़ों के उस पद पर तब तक कोई हिन्दुस्तानी मुक़र्रर न हुआ था। दादाभाई के जीवन में यह पद बड़े गौरव और अभिमान का था। तब से आप "दादाभाई प्रोफ़ेसर" के नाम से प्रसिद्ध होने लगे। बहुत समय तक शिक्षित जन समुदाय उन्हें इसी उपाधि से पुकारता किया, परन्तु दादाभाई केवल अध्यापकी ही पर सन्तुष्ट न थे। उनके उत्साह की उमङ्ग बहुत बढ़ी हुई थी। उन्हें कई काम करने थे। बम्बई में आप ने, जितना ही विरोध होने पर, एक पुत्री-पाठशाला खोली। उसमें समय मिलने पर वे स्वयं पढ़ाया करते थे। इसके अतिरिक्त आप ने साहित्य और वैज्ञानिक सभा, बम्बई एसोसिएशन, ईरानी फ़ण्ड, पारसी व्यायाम-गृह, पुनर्विवाह सभा, विक्टोरिया तथा अलबर्ट नामक अजायबघर खोले। सन् १८५१ ईसवी में आप ने "रास्तगुफ़्तार" अर्थात् "सत्यवक्ता" नामक समाचार-पत्र निकाला। उसके द्वारा, सामाजिक, धार्मिक और शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों का आप ने प्रचार किया। रास्तगुफ़्तार को दो वर्ष तक आप ने ख़ूब योग्यता से चलाया, पर आज कल के और दादाभाई के समय के रास्तगुफ़्तार में बहुत भेद है। उसकी नीति अब बदली हुई है।

पहली विलायत-यात्रा।

सन् १८५५ ईसवी में दादाभाई, कामा कम्पनी के प्रतिनिधि होकर, विलायत सिधारे। विलायत में आप ५० वर्ष रहे, जितनी बहुतेरे लोगों की आयु भी नहीं होती। हैं बीच में कभी कभी आपने स्वदेश यात्रा भी की। विलायत में रह कर दादा-

भाई, कामा कम्पनी ही के सेवक नहीं रहे, साथ ही आप देश की भी सेवा करते रहे। आपने लन्दन इन्डियन एसोसियेशन, ईस्ट इन्डिया एसोसियेशन आदि सभायें स्थापित कीं, जिनके द्वारा देश का कितनाही उपकार हुआ और हो रहा है। दोनों सभायें अभी तक जीवित हैं। लन्दन के यूनीवरसिटी कालेज में आप गुजराती भाषा के अध्यापक नियुक्त हुए और सीनेट के मेम्बर भी रहे। सिवा इसके व्याख्यानों और लेखों द्वारा आप भारत की सेवा करते रहे। विलायतवासियों को तभी से मालूम होने लगा कि भारतवर्ष कौन देश है। विलायत में रह कर दादाभाई ने अपने मालिकों का कार्य बड़ी कुशलता और सचाई से किया। इससे उनकी कीर्ति और भी बढ़ने लगी। इतने में एक मित्र पर आपत्ति आई। उन्हें आप ने आर्थिक सहायता दी, जिसका नतीजा यह हुआ कि ख़ुद अपनी ही दूकान में तीन लाख का घाटा आया। पर आप के स्वामी इस पर ज़रा भी नाराज़ न हुए। कुछ मित्रों की सहायता द्वारा आप इस घाटे को पूरा करके, सन् १८६९ ईसवी में, १२ वर्ष विलायत रह कर, बम्बई लौट आये। बम्बई वालों ने आप का ख़ूब स्वागत किया। सर फ़ीरोज़शाह मेहता ने, जो उसी साल बैरिस्टरी पास कर घर आये थे, इस स्वागत में बहुत उत्साह दिखाया। बम्बई-निवासियों ने आप को एक मानपत्र दिया और भारतवर्ष की सेवा की यादगार में ३० सहस्र मुद्रा की थैली नज़र की। पर आपने उसमें से एक कौड़ी भी न ली। सब रक़म परोपकारी कामों में आप ने लगा दी। इतने पर भी बम्बई वाले सन्तुष्ट न हुए। अपनी अधिक प्रसन्नता प्रकट करने के लिए उनकी ८०००) लागत की एक तसवीर से फ़ामजी कावस जी इन्स्टीट्यूशन को विभूषित किया।

दूसरी विलायत-यात्रा।

सन् १८७२ ईसवी में आप फिर विलायत गये और पार्लमिन्टरी कमिटी में, जो हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा पर विचार करने के लिए बनाई गई थी और जिसके अध्यक्ष प्रसिद्ध अर्थशास्त्रवेत्ता फ़ासेट साहब थे, हिन्दुस्तान की आर्थिक दशा पर अपनी सम्मति दी। इस सम्मति द्वारा आप ने अच्छी तरह प्रकट कर दिया कि हिन्दुस्तान वस्तुतः बहुत ग़रीब देश है। हिसाब लगा कर आप ने बतलाया कि प्रत्येक भारतवासी की औसत वार्षिक आमदनी २०) से अधिक नहीं है। फिर भी प्रत्येक मनुष्य को औसत ३) वार्षिक टैक्स देना पड़ता है। इस कारण एंगलो-इन्डियन अख़बारों ने बड़ा कोलाहल मचाया, जिसका आप ने समाचारपत्रों द्वारा मुँहतोड़ उत्तर दिया। अन्त को आप की सम्मति बहुतांश में लार्ड रिपन के ख़ज़ानची, सर ईवलिन बेयरिंग साहब ने, स्वीकार कर ली।

बरौदे के दीवान।

सन् १८७४ ईसवी में आप विलायत से लौट आये। उस समय बरौदा-राज्य के स्वामी मल्हारराव गायकवाड़ थे, जो पीछे से गद्दी से अलग कर दिये गये थे। बरौदा-राज्य में उस समय बड़ी गड़बड़ थी। मल्हारराव तो बिगड़ी तबीयत के आदमी थे ही, उनके रज़ीडेन्ट भी कुछ कम न थे। वे अपनी ही चलाना चाहते थे। राजा और रज़ीडेन्ट में सदैव खटपट हुआ करती थी। दूसरी ओर अनेक रियासती बखेड़े मच रहे थे। पुलिस की दशा अच्छी न थी। सम्पूर्ण राज्य में अशान्ति थी। पर भाग्य से उसे ऐसा दीवान मिला जिसने थोड़े ही समय में अपनी बुद्धि, विद्या तथा साहस से कुल बुराइयों को जड़ से उखाड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि आज बरौदा राज्य न्याय, विद्या-प्रचार, सामाजिक सुधार इत्यादि में सभी रियासतों से बढ़ा चढ़ा है। परन्तु अच्छे कामों में सदैव विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं। अतएव दादाभाई की बातें स्वार्थी और ख़ुशामदी

को पसन्द न आई। अन्त को इन लोगों ने कई तरह के बखेड़े शुरू किये। पर ये सब दादाभाई की चतुर नीति के सामने चल न सके। दादाभाई की नियुक्ति स्वयं उस समय के गवर्नर लार्ड नार्थब्रुक ने की थी। इससे वैरी उनका कुछ भी न कर सके। आपने रिपोर्टों और पुस्तकों द्वारा सब पोल खोल दी। अन्त में आप की जीत हुई। आप के विपक्षियों ने हार मानी। इस सेवा की कृतज्ञता के बदले गायकवाड़ महाराज ने दादाभाई को पेंशन देदी, जो अब तक जारी है।

बम्बई-कारपोरेशन के समासद।

बड़ौदा से लौट कर आप दो वर्ष तक बम्बई-कारपोरेशन के मेम्बर रहे। वह ज़माना लार्ड लिटन का था। लोगों की ज़रा कम चलती थी। ये बातें दादाभाई को पसन्द न आईं। अतएव—"सार्ई चुप है बैठिए देखि दिनन को फेर"—की नीति का पालन कर आप कुछ दिन के लिए चुप हो बैठे। लार्ड लिटन का ज़माना गया, लार्ड रिपन बड़े लाट हुए। इस सुअवसर को पाकर दादाभाई ने फिर कारपोरेशन में प्रवेश किया और तन-मन से काम करने लगे। कारपोरेशन में उस समय बड़ा गोल-माल था। हिसाब-किताब भी गड़बड़ था। अतएव आपने सारा हिसाब सूक्ष्म दृष्टि से जाँचा और कारपोरेशन को कई लाख के नुक़सान से बचाया। सब लोग बहुत प्रसन्न हुए। उस समय बम्बई के गवर्नर लार्ड रे थे। वे दादाभाई के काम से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें तुरन्त अपनी कौंसिल का मेम्बर बनाया। कौंसिल में उन्होंने कई प्रशंसनीय काम किये। उसी साल के अन्त में बम्बई में कांग्रेस की बैठक हुई। उसके सभापति मिस्टर डब्लु॰ सी॰ बनर्जी बनाये गये थे। इस कांग्रेस में दादाभाई ने अच्छा काम किया।

तीसरी विलायत-यात्रा।

सन् १८८६ ईसवी में दादाभाई फिर विलायत गये। इस दफ़े उन्होंने पार्लमेन्ट में प्रवेश पाने का प्रयत्न किया। उदार दल वालों ने आपकी अच्छी सहायता की। परन्तु अभाग्यवश उस समय [illegible] पार्टी की तरफ़ से तीन उम्मेदवार थे। इस कारण आप मेम्बर न चुने जा सके। तो भी आप को [illegible] वोटें मिलीं, जो एक हिन्दुस्तानी के लिए कम गौरव की बात न थी। जब यह बात मालूम हुई कि पार्लमेन्ट की मेम्बरी के लिए एक भारतवासी भी उम्मेदवार था तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। अख़बारों में बड़े बड़े लेख निकले। लार्ड सालसबरी, जो उस समय संकीर्ण दल के नेता थे, एक भारतवासी की इस असाधारण सफलता पर बहुत चकित हुए। उन्होंने अपनी एक स्पीच में उन्हें "ब्लैक मैन" अर्थात् काला आदमी कह डाला। इस असभ्य शब्द पर उदार दल के समाचार-पत्रों ने अच्छी ख़बर ली। भारत में भी बड़ा कोलाहल मचा। मिस्टर ग्लैडस्टन इस समय प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने लार्ड सालसबरी से कहा कि यथार्थ में मिस्टर नौरोजी तुमसे भी गोरे हैं। इस पर लार्ड सालसबरी ने माफ़ी माँगी। सरस्वती के पाठकों को स्मरण होगा कि इस लेखक ने सेठ धर्मचन्द को, फाउन्टेन अस्पताल की रिपोर्ट में, काला आदमी लिख देनेवाले अस्पताल के सुपरिन्टेंडेन्ट से लिखापढ़ी करके इस असभ्य शब्द को निकलवाया था। सन् १८८६ के अन्त में मिस्टर नौरोजी भारतवर्ष को आये और कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति बनाये गये। फिर, सन् १८८७ ईसवी में, पबलिक सर्विस कमीशन में गवाही देकर लन्दन लौट गये।

चौथी विलायत-यात्रा।

लन्दन लौटने पर आपने फिर पार्लमेन्ट में प्रवेश पाने का प्रयत्न किया। परिणाम यह हुआ कि पाँच वर्ष के बाद, अर्थात् सन् १८९२ ईसवी में, आप सेंट्रल फ़िन्सबरी पार्ट की ओर से बड़ी धूम

बलगारिया के राजा ज़ार फ़र्डिनेंड।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

प्राम के साथ पार्लमेंट के मेम्बर चुने गये। इस असाधारण विजय पर भारतवर्ष और विलायत में बड़ी खुशी मनाई गई। पार्लमेंट में आप ने भारत की भलाई के लिए अनेक उत्तम कार्य किये, जो सदैव सब को याद रहेंगे। आप ने इण्डियन सिविल सरविस की परीक्षा भारत में होने का प्रस्ताव पास करवाया, जो कोई मामूली बात न थी। परन्तु शोक है कि वह अस्वीकृत हुआ। पार्लमेन्ट में उस समय मिस्टर केन और सर विलियम वेडरबर्न के सदृश भारत-हितैषी सभासद थे। उन की सहायता से आप ने पार्लमेन्टरी कमिटी स्थापित की। सन् १८९५ ईसवी में इस कमिटी के आन्दोलन से भारत के व्यय-संशोधन-सम्बन्धी कमीशन की नियुक्ति हुई। उसमें मिस्टर नौरोजी तथा अन्य मेम्बरों ने अच्छी सम्मतियाँ दीं। सन् १८९३ ईसवी में आप फिर भारत को लौटे और लाहोर-कांग्रेस के सभापति चुने गये। उस समय पञ्जाबी भाइयों ने मिस्टर नौरोजी के स्वागत में जो उत्साह दिखलाया वह कभी नहीं भूल सकता। आप की गाड़ी खुद ही पञ्जाबियों ने खींची। कहते हैं, ऐसा मान तब तक कांग्रेस के किसी प्रेसीडेंट का न हुआ था। प्रख्यात इतिहास-वेत्ता सर विलियम हन्टर ने उसे शाही स्वागत कहा था।

पाँचवीं विलायत-यात्रा।

लाहोर-कांग्रेस के सभापति होने पर आप लन्दन चले गये और सन् १९०५ ईसवी में मार्थ लेमबेथ महल्ले की ओर से प्रतिनिधि होने का प्रयत्न किया। पर अभाग्यवश उदार दल वालों में फूट हो जाने से तीसरा उम्मेदवार खड़ा हो गया। इस कारण मिस्टर नौरोजी के वोट कम आये और वे पार्लमेंट में प्रवेश न कर सके। इसी समय वृद्धावस्था के कारण आप का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चला। अतएव डाक्टरों की सम्मति से, सन् १९०७ ईसवी में, आप भारतवर्ष को लौट आये। यह लेखक उस समय लन्दन में था। उसे मिस्टर नौरोजी के दर्शन तभी हुए थे। आप का यहाँ लौट आना अच्छा ही हुआ। उस समय आप का स्वास्थ्य इतना बिगड़ा था कि लोगों ने उनके जीने की आशा ही छोड़ दी थी।

उपसंहार।

यह हाल मिस्टर नौरोजी के जीवन का है। बालकपन से वृद्धा वयस्था तक आप ने देश की सेवा की। इससे बढ़ कर कौन सेवा कर सकता है। यदि मिस्टर नौरोजी बैरिस्टर बनते तो लाखों कमाते और सरकारी सेवा करते तो हाईकोर्ट की जजी या किसी उच्च पद पर पहुँचते। पर देश-भक्ति और देशोद्धार के सामने आपने इन सब बातों को तुच्छ समझा। आप राजर्षि हैं। आप की सादगी अनुकरणीय है। अब आप अकेले हैं। स्त्री, पुत्र, पुत्री कोई नहीं है। केवल एक नातिन है, जो आप की सेवा में उपस्थित रहती है। वे डाक्टरी परीक्षा पास हैं। दादाभाई वरसोवा में, जो बम्बई के निकट है, जीवन-काल व्यतीत कर रहे हैं। ता० ४ सितम्बर १९१५ को आपकी ९० वीं वर्षगाँठ हुई थी। इतने वृद्ध होने पर भी आप तन्दुरुस्त हैं। जगत् में क्या हो रहा है, इस की अवगति के लिए आप समाचार-पत्र रोज़ पढ़ते हैं। प्रतिवर्ष कांग्रेस को शुभचिन्तक और उत्साहपूर्ण सँदेसे भेजा करते हैं। आप की मान सरकार और प्रजा सभी मानते हैं। आपकी वर्षगाँठ पर बड़े लाट, गवर्नर और राजा-महाराजा तार भेजते हैं। गत वर्ष बड़े लाट ने स्वयं आपके दर्शन किये थे। आपने "पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इन्डिया" नामक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है, जो सब के पढ़ने योग्य है। उसमें आप ने भारतवर्ष की दरिद्रता का अच्छा चित्र खींचा है। हाल ही में बम्बई-विश्व-विद्यालय ने आप को एल० एल० डी० की उपाधि प्रदान की है। ईश्वर आपको दीर्घायु

कोई एक हज़ार से ऊपर वाचनालय हैं। बड़े बड़े शहरों के मुख्य मुख्य स्थानों में व्याख्यान-भवन भी हैं। उनमें अच्छे अच्छे व्याख्यान-दाताओं के व्याख्यान हुआ करते हैं। इन व्याख्यानों के समय बड़ा समारोह होता है। सर्वसाधारण इन्हें बड़ी श्रद्धा से सुनते हैं।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, भारतवर्ष की तरह बल्गारिया भी कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के अधिकांश निवासी खेती ही का काम करते हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने खेत का कब्ज़ेदार समझा जाता है। वह अपनी खेती की पैदावार का दसवाँ हिस्सा कर के तौर पर राज्य को देता है। कर न अदा कर सकने की हालत में वह ज़मीन से बेदख़ल किया जा सकता है। कृषकों के सुभीते के लिए बल्गारिया में कृषिसम्बन्धी एक बैंक है। देश भर में उसकी शाखायें खुली हुई हैं। उनके द्वारा किसानों को कृषि के लिए आसानी से रुपया मिल जाता है। बल्गारिया में गेहूँ, धान, मक्का, जौ, बाजरा, ज्वार अधिक पैदा होता है। तम्बाकू, चुकन्दर और गुलाब की भी खेती यहाँ होती है। इन सब चीज़ों का चालान विदेश को होता है। गुलाब के फूलों से यहाँ इत्र बनता है। कोई ४० मन फूलों से आध सेर इत्र तैयार होता है। इत्र बड़ा बढ़िया होता है। वह पेरिस और लन्दन जाता है, जहाँ उससे अनेकों प्रकार के इत्र और तेल आदि बनते हैं।

बल्गारिया के मनुष्यों की रहन-सहन बहुत सीधी-सादी है। वे अपने घरों के ही बुने हुए मोटे कपड़े पहनते हैं। वे शौक़ीन नहीं। फ़िज़ूल चीज़ों के लिए वे अपना धन लुटाना उचित नहीं समझते। अमीर आदमी तक छोटे छोटे घरों में रहते हैं। इन घरों का फ़र्श मिट्टी का ही होता है। इन्हें चटक-मटक बिलकुल पसन्द नहीं। बल्गारिया के निवासी अपनी इस स्थिति से यथेष्ट सन्तुष्ट रहते हैं। यही कारण है जो वे सर्वदा प्रसन्न और हृष्ट-पुष्ट देख पड़ते हैं। मितव्यय करने के कारण वे हर साल कुछ न कुछ रुपया बचा लेते हैं।

बल्गारियावाले भले-बुरे काम का अच्छा ज्ञान रखते हैं। आप किसी से कोई अनुचित काम करने के लिए कहें तो वह फ़ौरन जवाब देगा कि ऐसा करने के लिए उसकी आत्मा गवाही नहीं देती; ऐसा करना उसके लिए लज्जाजनक है। वह अपना समय व्यर्थ वाद-विवाद और भले-बुरे की व्याख्या में न बितायेगा।

बल्गारिया में अनेक जातियों और धर्मों के मनुष्यों का निवास है। वे सभी अपने अपने विश्वास के अनुसार धर्माचरण करने के लिए स्वतन्त्र हैं। कभी किसी के धर्माचरण में किसी प्रकार का व्याघात नहीं होता। बल्गारिया का राज-घराना आरथोडाक्स चर्च नामक ईसाई सम्प्रदाय का अनुयायी है। इस सम्प्रदाय के प्रधान पादरी सर्वसाधारण प्रजा के द्वारा चुने जाते हैं।

बल्गारिया में लड़कों और लड़कियों के विवाह का समय नियत है। विवाह के समय लड़के की उम्र १८ और लड़की की १७ साल से कम न होनी चाहिए। विवाह का सारा कार्य यहाँ के पुरोहितों और धर्म-याजकों द्वारा सम्पन्न होता है। धर्म-याजक और पुरोहित ही पति-पत्नी के त्याग के मुक़द्दमों का भी विचार करते हैं। बल्गारिया के स्त्री-पुरुष कपट-प्रेम करना बहुत कम जानते हैं। पत्नी के अधिकारों पर पति आघात नहीं करता, पत्नी भी पति की हर प्रकार सहायता करती है। इसीसे पति-पत्नी में तलाक़ देने की नौबत बहुत कम आती है।

साधारण जीवन व्यतीत करने पर भी बल्गारिया के निवासियों की तन्दुरुस्ती अन्य देशों के निवासियों की तन्दुरुस्ती से अच्छी है। उनका शरीर ख़ूब दृढ़ और श्रमसहिष्णु होता है। रोग उन्हें कम सताता है।

बल्गारिया की राजधानी सोफ़िया बहुत सुन्दर

और मनोरम नगर है। बलगारिया के स्वतंत्र होने के पहले यह बड़ी बुरी दशा में था। उसकी आबादी उस समय केवल २० हज़ार थी। उसकी गलियाँ तङ्ग और गन्दी थीं। चौड़ी सड़कें बहुत कम थीं। किन्तु अब इस नगर की काया ही पलट गई है। अब तो इसकी आबादी कोई १,८५,००० है। चौड़ी चौड़ी सड़कें और साफ़-सुथरी गलियाँ इसकी शोभा को बढ़ा रही हैं। इसके अनेक दर्शनीय और विशाल भवनों की निराली छटा दर्शक के मन को मोह लेती है। ज़ार का राजभवन, बड़ा पोस्ट-आफ़िस, जातीय नाटक-भवन, युद्ध का दफ़्तर, नेशनल बैंक, विलियम ग्लैडस्टन हाईस्कूल, ग्रैंड होटल, जातीय एसेम्बली आदि अनेक विशाल इमारतें यहाँ अब शोभायमान हैं। नगर में रेल, तार, टेलिफ़ोन, मोटरकार, ट्रामवे, जल-कल और बिजली की रोशनी आदि का बहुत उत्तम प्रबन्ध है।

बलगारिया बहुत छोटा राज्य है। उसकी आबादी और उसका क्षेत्र-फल बहुत कम है। उसकी सेना-संख्या भी कोई चार ही पाँच लाख है। इस दशा में उसका युद्ध में सम्मिलित होना बड़े साहस की बात है। उसके इस अविचार का कारण आस्ट्रिया-जर्मनी का प्रलोभन ही मालूम होता है।

गृह-शासन ।

हमारा गृह-जीवन बड़ी दुर्गति को प्राप्त हो रहा है। हमारे गृहों की वर्तमान स्थिति सुखकर नहीं। जिधर देखिए उधर ही गृह-कलह का कोलाहल सुनाई पड़ता है। जो गृह किसी समय शान्ति-निकेतन थे वे आज अशान्ति के अखाड़े बन रहे हैं। जहाँ पहले सुख ही सुख था वहाँ आज एक निमिष भी इसे सुख नहीं मिलता। जिन गृहस्थों को इस बात का किसी समय गर्व था कि उनका कुटुम्ब पाँच या सात पुश्तों से एक ही में चला आता है, आज उन गृहस्थों और उनके कुटुम्बों की कैसी बुरी दशा हो रही है! अब सहोदर भाइयों में परस्पर नहीं पटती। पिता पुत्र पृथक् रहने के लिए झगड़ते हुए देखे जाते हैं। भतीजों का तो कहना ही क्या। हमारे पवित्र और सुखमय गार्हस्थ जीवन की आज कैसी शोचनीय दुर्दशा हो गई है!

एक कुटुम्ब में रहने की प्रणाली हिन्दुओं में बहुत दिनों से चली आती है। यह उनका जातीय चिह्न है। किन्तु अज्ञानवश वे अपने इस चिह्न को आज दूर कर रहे हैं। इसके दूर कर देने से उनका कैसा अनिष्ट हो रहा है, इस बात को वे सोचते तक नहीं। इस गये बीते ज़माने में भी भारत में जहाँ तहाँ ऐसे कुटुम्ब पाये जाते हैं जिनमें इस अति प्राचीन प्रणाली की आज भी पूजा हो रही है। हमारे पड़ोस के एक गाँव में एक सम्मिलित-कुटुम्ब रहता है। उसमें कोई सत्तर मनुष्य हैं। ये सबके सब एक ही में रहते हैं। ये लोग साधारण देहाती हैं। इनमें कोई भी ऐसा पुरुष नहीं जो सुशिक्षित हो। हाँ, दस पाँच ऐसे सज्जन हैं जो थोड़ा बहुत रोज़गार करते हैं। पर, इस दशा में भी ये लोग सुख से मिलजुल कर एक ही में रहते हैं।

यह तो अपढ़ों की बात है। अपढ़ मनुष्य भी सन्तोषपूर्वक एक साथ रहना जानते हैं। अब एक उदाहरण एक शिक्षित कुटुम्ब का देते हैं। इस कुटुम्ब में भी बीस मनुष्य हैं। ये सब शिक्षित हैं। सरकारी नौकरी करते हैं और सिर्फ़ रोटी खाते कमाते हैं। ये सब अलग अलग रहते हैं और किसी का किसी के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

कोई कोई कहते हैं कि हमारे गृह-कलह का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव है। पर, यह बात ठीक नहीं मालूम होती। ऊपर के दोनों उदाहरण इसके प्रमाण हैं। गृह-कलह का मूल कारण शिक्षा का अभाव कदापि नहीं माना जा सकता। हाँ, उसे हम गौण कारणों में से एक कारण मान सकते हैं।

एक बंगाली लेखक ने सरस्वती की पिछली किसी संख्या में इस गृह-कलह के विषय में एक निबन्ध प्रकाशित किया था। उसमें उन्होंने हमारे गृहों की वर्तमान स्थिति का अच्छी तरह विचार किया है। पर, उनका भी ध्या

वेस्ट मिनिस्टर एबे—नाम का गिरजाघर (लन्दन)।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

गृह-कलह के मूल कारण की ओर नहीं आकृष्ट हुआ। गौण कारणों के ही सम्बन्ध में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। लेख के अन्त में उक्त सज्जन ने यह सलाह दी है कि अब हमारे लिए सम्मिलित-कुटुम्ब प्रणाली लाभदायक नहीं। हमें अब एक दूसरे से अलग अलग रहना आवश्यक है। अर्थात् पाश्चात्य गृह-जीवन की छाया पर हमें भी अब अपने गृह-जीवन की प्रणाली का संस्कार करना चाहिए।

उपर्युक्त महाशय के विचार कहाँ तक ठीक हैं, इसकी मीमांसा के लिए इस लेख में स्थान नहीं। हमारा निवेदन यहाँ केवल इतना ही है कि हमें अब अपने गृह की शोचनीय स्थिति का मूल कारण खोजना चाहिए। यदि उसका मूल कारण हमें ज्ञात हो जाय और हम उसको दूर कर सकें तो क्यों हम अपने घर की चीज़ को छोड़ कर दूसरे की चीज़ से अपने अभाव की पूर्ति करें? सम्मिलित-कुटुम्ब-प्रणाली हमारे लिए क्यों उपयोगी नहीं है, इसका कोई अच्छा कारण नहीं बताया जा सकता। हेल्पस नामक एक अनुभवी अँगरेज़ लेखक ने एक निबन्ध लिख कर यह बात सिद्ध की है कि गृह की अशान्ति का मूल कारण गृह-शासन में हमारी अयोग्यता ही है।

आज हम यहाँ पर मिस्टर हेल्पस के उसी निबन्ध के आधार पर गृह-शासन के सम्बन्ध में कुछ निवेदन करना चाहते हैं। गृह का शासन किस तरह करना चाहिए और उसमें किन किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—इन्हीं बातों का इस लेख में विचार किया जायगा। गृह-शासन बड़ा कठिन कार्य है। राज्य-शासन इससे अधिक कठिन नहीं। नीति-शास्त्र का जानने वाला राजा अपने अच्छे मन्त्रियों के परामर्श से अपना कर्तव्य सुचारुरूप से सम्पादित कर सकता है। पर, गृह-शासक के लिए ऐसा कोई मार्ग नहीं। राज्य-शासन के लिए पहले ही से अनेकों ग्रन्थ रचे जा चुके हैं। अनेक राजाओं के जीवन-वृत्त भी पढ़ने को मिल जाते हैं। उनके सहारे शासक अपनी प्रजा का रंजन कर सकता है। ऐसा करने के लिए उसे सब प्रकार के सुभीते प्राप्त हैं। पर, बेचारे गृह-शासक को सब प्रकार का आधार ही अभाव है। वह न तो उतना योग्य ही होता है और न उसको गृह-शासन की ओर विशेष दत्तचित्त रहने के लिए अवकाश ही मिलता है। उसे सब कार्यों के लिए असुविधाओं का ही सामना करना पड़ता है। यही कारण है कि विरला ही गृह-शासक अपने कर्तव्य-पालन में सफल होता है। सचमुच गृह-शासन बड़ा कठिन कार्य है। इसके सम्बन्ध में पूर्वोक्त लेखक के ऐसे विचार सुनने लायक हैं—

गृह-स्वामी अपनी ही समझ के अनुसार अपने गृह का शासन करता है। यदि उसकी समझ परिष्कृत हुई तो उसका शासन भी उत्तम होगा। यदि उसकी समझ परिष्कृत न हुई तो उसका शासन भी अन्यायपूर्ण होगा। गृह-शासन का सारा दारोमदार गृह-स्वामी की समझ पर ही है। गृह-शासन की कठिनाइयों का सूत्रपात पहले गृह-स्वामी की समझ से ही होता है। गृह-स्वामी बहुधा यह मान लेता है कि उसे सब कुछ करने का अधिकार है। उसके मनोगत भाव नाना प्रकार की उलझनें पैदा कर देते हैं। कभी उसकी हालत ऐसी हो जाती है कि चलो जी, अमुक काम आज न सही कल हो जायगा। आज का अधूरा काम कल पूरा किया जायगा। आज अवकाश नहीं है। जब समय मिलेगा और अन्यान्य कामों से फ़ुरसत रहेगी तब सब ठीक कर लेंगे।

गृह-शासन से सम्बन्ध रखने वाली भूलों की आलोचना बहुत कम हुआ करती है। अतएव गृह-स्वामी अपनी भूलों का बहुत कम ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यदि काम करने का ढंग पहले ही से निश्चित न कर लिया जाय तो सम्भव है कि गृह-स्वामी अपने काम की सिद्धि में सफल-मनोरथ न हो।

गृह-स्वामी के लिए यह बात बहुत ज़रूरी है कि वह अपने कुटुम्बियों के स्वभाव का जानकार हो। यदि उसकी यह इच्छा हो कि उसका गृह-कार्य सुचारुरूप से सम्पादित हो तो उसे सदा इस यत्न में रहना चाहिए कि वह अपने कुटुम्बियों के मानसिक भावों से पूर्ण परिचित हो जाय। घर वालों पर गृह-स्वामी का बड़ा रोब रहता है। वे लोग एक प्रकार उससे भयभीत रहा करते हैं। तो भी वह अपने अधिकारों की न्यूनता पर रोया ही करता है। वह कहता है कि उसके कुटुम्बियों पर उसका बहुत कम प्रभाव है। वे लोग उसकी आज्ञा पर ध्यान नहीं देते। वह अपने शासन के प्रभाव का बहुत कम अन्दाज़ा लगा सकता है।

और अपनी सहानुभूति से उन्हें अभिज्ञ भी कर देना चाहिए। यदि गृह-स्वामी की यह इच्छा हो कि उसका अंतःकरण शुद्ध रहे तो उसे अपने कुटुम्बियों को अपने ऊपर विश्वास उत्पन्न कराना चाहिए। वह भय दिखा कर उन्हें शुद्धाचरणशील नहीं बना सकता। क्या यह ठीक नहीं है कि कुटुम्बियों की अधिक भूलें केवल गृह-स्वामी के भय के ही कारण होती हैं? क्या यह ठीक नहीं है कि कुटुम्बी बहुधा अपनी अर्थ-सिद्धि के लिए ही धोखेबाज़ी का आश्रय लेते हैं?

अनेक बार गृह-स्वामियों की शिकायत सुनी जाती है कि उनके कुटुम्बी उनका विश्वास नहीं करते। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि अधीन को अपने अधिकारी पर विश्वास करना कितना कठिन काम है। अधीनस्थ व्यक्ति तो बिना अपने स्वामी की सहानुभूति की आशा किये ऐसा करने की हिम्मत बड़ी कठिनाई से कर सकता है। गृह-स्वामी को यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि उसके कष्टों की अधिक संख्या उसके भूले आचरणों को व्यक्त करती है। यदि गृह-स्वामी अपने ऊपर अपने अधीन व्यक्तियों का विश्वास न जमा सके तो समझ लेना चाहिए कि उसका उनके प्रति अधिक अनुराग नहीं है।

जिसने गृह-धर्म के ऊपर विचार किया है वह अच्छी तरह जानता है कि गृह-शासन की प्रतिष्ठा न्याय की नेंव पर है। अतएव गृह-स्वामी को सर्वदा न्यायनिष्ठ होना चाहिए। परन्तु यह बहुत सम्भव है कि उसने इस बात का अनुमान ही न किया हो कि न्याय के पथ से ज़रा भी हटने से कैसी कैसी हानियों और बुराइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण लीजिए। बहुत लोग कहा करते हैं कि छोटी छोटी बातें उपेक्षणीय होती हैं। ऐसी बातों को वे देखी अनदेखी कर देते हैं। पर उनके इस कथन का मुख्य अर्थ यह हो सकता है कि वे किसी ख़ास बात की ओर ध्यान न देने का बहाना करते हैं। कोई कारण नहीं कि बात का असली स्वरूप क्यों न स्वीकार किया जाय? अपने इस ढंग से वे बहुधा साधारण बातों को भी दोष का स्वरूप दे देते हैं। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि वे उस बात को देखने से हिचकते हैं जिसे वे दोषपूर्ण समझते हैं। साथ ही यह भी होता है कि ऐसी बात उन्हें किसी प्रकार का कष्ट या हानि नहीं पहुँचाती। इसके साथ वे यह भी मान लेते हैं कि ऐसी बात करने वालों को भी किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती। चाहे जो अर्थ माना जाय, पर गृह-स्वामी का परम धर्म है कि वह बेधड़क प्रत्येक बात का निरीक्षण करे। उसे ज़रा भी सङ्कोच न करना चाहिए। अपनी सच्ची सम्मति स्पष्ट रीति से कह देना उसके लिए बहुत आवश्यक है। इस बात में वह ज़रा भी रिआयत न करे। अपने व्यवहार में जितनी अधिक सच्चाई और स्पष्टता से यह काम लेगा, उतना ही उसके लिए अच्छा होगा। किसी बात को अनदेखी सी करके टाल देना लोगों को भ्रम में डालना है। लोग सन्देह में पड़ जाते हैं कि इसी प्रकार के अन्य कार्य्यों के सम्बन्ध में भविष्यत् में न जाने उसकी कैसी सम्मति हो। यदि वह अपने इस प्रकार के व्यवहार पर विचार करे तो उसे अवश्य यह बात ज्ञात हो जायगी कि उसने उस अनदेखे कार्य्य के विषय में अभी तक यही निश्चित नहीं किया कि वह अनुचित है या उचित। वह समझ लेता है कि इस प्रकार की उधेड़-बुन में व्यर्थ कौन पड़े और मुफ़्त में अपने दिमाग़ को क्यों परेशान करे। पर, उसका ऐसा व्यवहार असत्यपूर्ण ढकोसलाबाज़ी मात्र है।

सुख और स्वतन्त्रता के उपभोग का अवकाश गृह-स्वामी अपने कुटुम्बियों को जितना दे उतना अपने हृदय से दे। सुख के उपभोग के लिए वह उन्हें उत्साहित करे और स्वयं भी उनके साथ उनके सुख में सम्मिलित हो। इसके विरुद्ध यदि वह उनके खेल-कूद में शरीक न हो, उनकी प्रसन्नता से वह सहानुभूति न रक्खे, तो वह कैसे आशा कर सकता है कि उसके कुटुम्बी उस पर विश्वास करेंगे? यह उनसे कहे कि जो कुछ वह करता है वह सब उनकी भलाई और कल्याण के लिए ही करता है। इस दशा में भी वे जब तक उसकी सहानुभूति का पता न पावेंगे तब तक उसके इस कार्य्य को उसके स्वभाव की एक उमङ्ग ही वे समझेंगे। वे इस बात में सन्देह करेंगे कि क्या वह यह जानता है कि उनके लिए क्या लाभदायक होगा? वह उतना नहीं जानता और न जानने का विचार ही करता है। उलटा वह उनके मनोरथों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है।

घर के गुरुजन को स्वयं दूसरों के लिए आदर्श बनना

भारतीय शासन-प्रणाली ।

[लेखक, पण्डित रामनारायण मिश्र, बी० ए०]

(१)

सत्रहवीं शताब्दी का अर्धांश समाप्त पर था । शाहजहाँ भारत की गद्दी पर विराजमान थे। एक दिन आगरे के महल में अत्यन्त कोलाहल सुनाई दिया। कारण यह था कि उनकी प्यारी पुत्री के कपड़ों में आग लग गई थी। जब तक लोग आग बुझाने दौड़े तब तक उसका शरीर बहुत कुछ झुलस चुका था। शहर के हकीम जमा किये गये। अच्छे से अच्छा इलाज होने लगा। पर फ़ायदे की कोई सूरत न दिखाई दी। शाहजहाँ घोर चिन्ता में थे। उन दिनों चारों तरफ़ देश में इस बात की चर्चा फैली हुई थी कि सूरत में कुछ विदेशी लोग व्यापार करने के लिए आये हैं। एक दरबारी ने नम्रतापूर्वक बादशाह से कहा कि सुनने में आया है, इन विदेशी व्यापारियों के साथ में एक बड़े होशियार इलाज करने वाले हैं। बादशाह की आज्ञा से तुरन्त एक दूत भेजा गया। उसे हुक्म हुआ कि उनमें से जो चिकित्सक सब से उत्कृष्ट हो उसको साथ ले आना। मिस्टर गबरील बौटन (Mr. Gabriel Boughton) साहब इस काम के लिए चुने गये। आगरे पहुँच कर उन्होंने इलाज शुरू किया और बादशाहज़ादी को बिलकुल अच्छा कर दिया। बादशाह की चिन्ता दूर हुई। उन्होंने प्रसन्न होकर बौटन से मनमाना इनाम माँगने के लिए कहा। बौटन ने प्रार्थना की—"मुझे अपने लिए धन की आवश्यकता नहीं। मेरी एक मात्र प्रार्थना यह है कि शाही फ़रमान द्वारा उन अँगरेज़ व्यापारियों को, जो सूरत में बस गये हैं, बङ्गाल में व्यापार करने की आज्ञा दी जाय। उनसे कोई कर न लिया जाय। उनको उस प्रान्त में कोठियाँ स्थापित करने की भी आज्ञा दी जाय"। देश-हितैषी डाक्टर की यह प्रार्थना स्वीकृत हुई।

व्यापारियों के इस दल का नाम ईस्ट इण्डिया कम्पनी था। इनका कार्य्य जहाँगीर बादशाह की कृपा से सूरत में आरम्भ हुआ था। आगे चल कर दिल्ली के मुग़ल बादशाहों और बङ्गाल के नवाबों की बदौलत इन्होंने हुगली में कोठियाँ और पटना, क़ासिम बाज़ार, ढाका और बालेश्वर में आढ़तें स्थापित कीं।

अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में जब फ़र्रुख़सियर गद्दी पर बैठा तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से दो योरप-निवासी बादशाह से मिलने के लिए भेजे गये। उनमें से एक का नाम डाक्टर विलियम हैमिल्टन (William Hamilton) था। उसके देहली जाने का हाल, बहुत पहले, सरस्वती में विस्तारपूर्वक छप चुका है। फ़र्रुख़सियर को एक बीमारी थी। उसके कारण राजपूताना की एक हिन्दू-रमणी से उसका विवाह रुका हुआ था। डाक्टर हैमिल्टन ने अपनी चिकित्सा से फ़र्रुख़सियर को चङ्गा कर दिया। अब क्या कहना था। जो इनाम माँगा जाता थोड़ा था। स्वार्थत्यागी डाक्टर ने कम्पनी ही का भला चाहा। उन दिनों बङ्गाल के नवाब ने अँगरेज़ों को मालगुज़ारी देने के लिए बहुत तङ्ग करना शुरू कर दिया था। डाक्टर हैमिल्टन ने यही इनाम माँगा कि कम्पनी के अधिकार बङ्गाल में बढ़ा दिये जायँ और नवाब लोगों के अन्याय से अँगरेज़ व्यापारी और ज़मींदार बचाये जायँ। शाही फ़रमान जारी हो गया। कम्पनी के पुराने अधिकार फिर से स्वीकृत हुए। उनका माल असबाब जाँच और टैक्स से बरी किया गया। वर्तमान कलकत्ता के निकट, नदी के दोनों ओर, ३८ मौज़े वार्षिक टैक्स पर उनको दिये गये। टैक्स भी नाम मात्र के लिए लगाया गया। साथ ही मुर्शिदाबाद की टकसाल भी उनके सिपुर्द हुई। इस फ़रमान से कम्पनी के

वेस्ट मिंनिस्टर नाम का पुल और पार्लियामेंट की इमारतें। (लन्दन)

है*। १७७३ में रेगुलेटिंग् एक्ट (Regulating Act), जिसका विवरण ऊपर दिया गया है, पास हुआ था।

१७९३ में, जब लार्ड कार्नवालिस गवर्नर जेनरल थे, यह अधिकार-पत्र २० वर्ष के लिए बदला गया। पर कम्पनी का स्वत्व ज्यों का त्यों बना रहा।

१८१३ में लार्ड मिन्टो गवर्नर जेनरल थे। विलायत में इस समय व्यापारियों ने आन्दोलन मचाया कि भारत का वाणिज्य किसी कम्पनी-विशेष के हाथ में न होना चाहिए। भारत के वाणिज्य पर केवल ईस्ट इंडिया कम्पनी ही का इजारा न होना चाहिए। पार्लमेंट ने ऐसा ही किया। कम्पनी को केवल चीन-समुद्र में व्यापार करने का अधिकार मिला। इसी समय कुछ उदार राजनीतिज्ञों ने अँगरेज़-जाति का ध्यान इस ओर दिलाया कि कम्पनी ने जब अपना आधिपत्य भारत पर जमा लिया है तब उसका यह कर्तव्य है कि इस देश की धार्मिक और सामाजिक अवस्था को सुधारे। इस पर पादरियों को भारतवर्ष में आकर धर्म और शिक्षा-प्रचार करने की आज्ञा मिली।

१८३३ में लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर जेनरल थे। तब से कम्पनी को चीन-समुद्र में भी व्यापार करने की आज्ञा न दी गई। इस प्रकार व्यापारियों का यह दल पूर्णरूप से राजनैतिक हो गया। आगरे का सूबा स्थायी गवर्नरी बनाया गया। परन्तु शीघ्र ही वहाँ लेफ़्टेनेन्ट गवर्नरी की गई। गवर्नर जेनरल को क़ानून बनाने का अधिकार दिया गया। क़ानून बनाने के लिए कौंसिल में क़ानून से सम्बन्ध रखने वाला एक सभासद-विशेष (Law Member) नियत हुआ। परन्तु उसको सम्मति देने का अधिकार न दिया गया। शासन के लिए यह मूल सिद्धान्त स्थिर किया गया कि कोई भारतवासी, जो कम्पनी की प्रजा है, अपने धर्म, जन्मस्थान, वंश, अथवा रङ्ग के भेद के कारण कम्पनी के अधीन किसी पद का अधिकारी होने के अयोग्य न समझा जायगा।

१८५३ में लार्ड डलहौसी गवर्नर जेनरल थे। इस बार बीसवें वर्ष अधिकार-पत्र के परिवर्तन का नियम उठा दिया गया। निश्चय हुआ कि पार्लमेंट जब तक चाहेगी कम्पनी को रक्खेगी। ब्रिटिश जाति ने भारत को अपना लिया और स्पष्ट लिख दिया कि कम्पनी इस देश को सम्राट् की ओर से अमानत के तौर पर रक्खेगी। बङ्गाल में लेफ़्टेनेन्ट गवर्नरी की गई। गवर्नर जेनरल की कौंसिल में नियमादि बनाने के लिए बाहरी (Additional) सभासद नियत करने का अधिकार मिला और कौंसिल का कार्य्य-विवरण सर्वसाधारण पर प्रकाशित किया जाने लगा। क़ानूनी मेम्बर (Law Member) को सम्मति देने का अधिकार मिला।

१८५८ के अन्त में सिपाही-विद्रोह समाप्त हो चुका था। ब्रिटिश जाति ने भारत के शासन को कम्पनी के अधीन रखना अब बिलकुल ही अनुचित समझा। कम्पनी से सारा अधिकार ले लिया गया। इँगलेंड के सम्राट् ने भारतीय राजराजेश्वर का पद ग्रहण किया। गवर्नर जेनरल को राजराजेश्वर के भारतीय प्रतिनिधि का अधिकार मिला और वे वाइसराय (Viceroy) नाम से अलङ्कृत हुए। सब से पहले यह सौभाग्य लार्ड कैनिंग को प्राप्त हुआ। उसी साल की १ नवम्बर को प्रयाग में राजराजेश्वरी विक्टोरिया का घोषणापत्र प्रकाशित किया गया। विलायत में बोर्ड आव् कंट्रोल (Board of Control) तोड़ दी गई। उसका काम करने के लिए भारतीय सेक्रेटरी आव् स्टेट (Secretary of State) का नवीन पद बनाया गया और उसके सहायतार्थ एक कौंसिल नियत हुई। इस समय तक राजकीय प्रणाली मिश्रित थी। स्वत्व कम्पनी

* इस ऐक्ट के अनुसार को भारत के शासन के बहुत से अधिकार मिले।

रासी. जो इसके समासद बनाये गये थे, वे थे—

सर कृष्णगोविन्द गुप्त

नवाब महम्मद हुसैन बिलग्रामी

इस समय जो समासद हैं उनके नाम हैं—

मिर्ज़ा अब्बास अली बेग

सरदार दलजीतसिंह

कोई समासद बिना पार्लेमेंट की आज्ञा के हटाया नहीं जा सकता। पार्लेमेंट का कोई मेम्बर कौन्सिल आव् इंडिया का समासद नहीं हो सकता। यह कौन्सिल पाँच समासदों के उपस्थित होने पर सप्ताह में एक दफ़े होती है। इसके कार्य्य समितियों में बँटे हुए हैं। इस कौन्सिल के सभापति सेक्रेटरी आव् स्टेट हैं। उनको अधिकार है कि जिस विषय पर चाहें वे कौन्सिल की सम्मति न लें। परन्तु वे विषय ऐसे ही होने चाहिए जो गुप्त रखने योग्य हैं। अर्थ-सम्बन्धी विषयों पर उनको बहु-सम्मति पर चलना पड़ता है। युद्ध की आज्ञा उनको पार्लेमेंट के दोनों अङ्गों से लेनी पड़ती है। भारतवर्ष की कौन्सिलों में जो क़ानून पास होते हैं उनकी स्वीकृति की आज्ञा उनको राजराजेश्वर से प्राप्त करनी पड़ती है। गवर्नर जेनरल, गवर्नर, हाईकोर्ट के जज इत्यादि ये राजराजेश्वर की आज्ञा से मुक़र्रर करते हैं। यदि किसी विषय पर वे अपनी आज्ञा दें तो सात दिन तक वह आज्ञा समासदों की सम्मति के लिए रुकी रहती है। समासदों के विरोध करने पर भी वह अपनी आज्ञा जारी कर सकते हैं, परन्तु ऐसी अवस्था में उनको इसका कारण स्पष्ट लिख कर देना पड़ता है। यदि कोई आज्ञा उन्हें विवश होकर अति शीघ्र निकालनी पड़े तो उसकी सूचना मेम्बरों को देना आवश्यक है।

सेक्रेटरी आव् स्टेट, उनकी कौन्सिल के सभासद, उनके दफ़्तर के अफ़सर और कर्मचारी—इन सब का वेतन भारतवर्ष देता है। परन्तु उपनिवेशों के सेक्रेटरी आव् स्टेट से सम्बन्ध रखने वाला सारा व्यय इँगलेंड की प्रजा देती है।

[असमाप्त

इँगलेंड के महान् पुरुषों की श्मशान-भूमि।

कोई छः सौ वर्ष से इँगलेंड में सबसे अधिक पवित्र देवालय वेस्ट मिनिस्टर अबे (West Minister Abbey) नामक गिरजाघर माना जाता है। अब तक इसकी भूमि में इँगलेंड के अनेक राजों, अनेक वीरों, अनेक विद्वानों और अनेक कवियों के मृत शरीर गाड़े गये हैं। आज इस विस्तृत गिरजे की ज़रा भी भूमि शेष नहीं जहाँ कोई और व्यक्ति गाड़ा जा सके।

इस गिरजे के भीतर प्रवेश करते ही मनुष्य का हृदय आदर और श्रद्धा से परिपूर्ण हो जाता है। गिरजे की इमारत बड़ी आलीशान है। यह लाखों रुपये की लागत की है। किन्तु सुन्दरता में वह उतनी अच्छी नहीं। इस इमारत के कई विभाग हैं। उनमें इँगलेंड के उन सपूतों की क़बरें और मूर्तियाँ हैं जिन्होंने इस छोटे से देश को संसार में उच्च और शक्तिशाली बनाया है, और जिनके कार्यों से इँगलेंड की कीर्ति आज संसार में चारों ओर व्याप्त हो रही है। यहाँ की भूमि में इँगलेंड के वे वीर अब विश्राम ले रहे हैं जिन्होंने अपनी जन्म-भूमि की नौका की पतवार पकड़ कर उसे बड़े बड़े तूफ़ानों से बचाया है, उसे आदरणीय और उच्च बनाने में अपना सारा जीवन व्यतीत किया है। यहाँ केनिङ्, पील, पिट, फ़ाक्स, ग्रेटन और वेकन्स-फ़ील्ड जैसे वीर शान्ति की शय्या पर सो रहे हैं।

ने बहुत कुछ लिखा है। बड़े आदमियों को अपने भविष्यत् का पता कभी कभी पहले ही लग जाता है।

इसके अनन्तर एक दालान ऐसी है जहाँ इँगलेंड के राजों और रानियों की समाधियाँ हैं। अपने समय की सबसे सुन्दर और वीर रानी मेरी भी यहीं गड़ी है। ४४ वर्ष की उम्र में इसे परम पाषाण और राजनीतिज्ञ रानी एलिज़बेथ ने फाँसी पर चढ़वा दिया था। मेरी की समाधि उसके पुत्र प्रथम जेम्स ने बनवाया था। उसकी मूर्ति से स्पष्ट मालूम होता है कि वह बड़ी दिलेर और सुन्दर थी। आगे चल कर रानी ऐन और राजा तृतीय विलियम की रानी मेरी की मूर्तियाँ हैं। रानी मेरी के बग़ल में ही राजा तृतीय विलियम भी गड़ा हुआ है। राजा तृतीय विलियम क़द में बहुत छोटा था। उसकी रानी उससे बहुत लम्बी थी। इस कारण मूर्तिकार ने राजा की मूर्ति को रानी की मूर्ति के बग़ल में एक तिपाई पर खड़ा किया है। इससे राजा रानी दोनों का क़द बराबर मालूम होता है। इसके आगे एक तहख़ाने में स्टुयर्ट-वंश के ३८ वीरों की समाधियाँ पास ही पास हैं। इनमें से कोई राजा, कोई पुजारी और कोई सैनिक था। बहुत काल बीत जाने के कारण इन लोगों की कीर्ति अब विस्मृतप्राय है। पर अपने समय में ये सब बड़े प्रसिद्ध वीर और शक्तिशाली थे।

इसके बाद एक और दालान है। उसके द्वार पर लिखा हुआ है—सप्तम हेनरी। उस समय के शिल्पकार बड़े चतुर थे। उन्होंने यहाँ पर बड़ी सुन्दर मूर्तियाँ बना कर रक्खी हैं। राजा हेनरी की मूर्ति बड़ी शानदार है। अपने समय के राजसी आडम्बर से यह सजी हुई है। उसी के पास उसकी रानी की मूर्ति है। दोनों मूर्तियाँ अपनी अपनी समाधि के ऊपर हैं। राजा की समाधि पर उसकी अन्तिम इच्छा खुदी हुई है कि वह गाड़ा जाय—"राजोचित सम्मान सहित, किन्तु बिना किसी आडम्बर के"।

इसके बाद प्रजा-पक्ष के क्रामवेल, ब्लेक और आयर्टन की समाधियाँ हैं। पास ही विद्वान् और वेदान्ती राजा प्रथम जेम्स की क़ब्र है। इसने अपने लिए अपनी कोई मूर्ति नहीं बनने दी। इसके बाद बकिंघम के ड्यूक विलियर्स की समाधि है। यह समाधि वैसी ही विशाल, विचित्र और सुन्दर है जैसा कि ड्यूक का इतिहास। पास ही वीर राजा द्वितीय विलियम की समाधि है। युद्ध-भूमि में अपनी सेना का स्वयं सञ्चालन करने वाला, इँगलेंड में, यही अन्तिम राजा हुआ है। इसके अनन्तर एक ऐसा कोना मिलता है, जहाँ उन राजकुमारों की हड्डियाँ पड़ी हुई हैं, जो लन्दन के प्रसिद्ध बुर्ज (Tower) में निर्दयता से मारे गये थे।

आगे चलने पर इँगलेंड की सबसे प्रसिद्ध रानी एलिज़बेथ की समाधि मिलती है। उसी के राज्य-काल से इँगलेंड के महत्व और गौरव का समय प्रारम्भ हुआ था। उसी के शासन-समय में इँगलेंड में प्रसिद्ध कवि शेक्सपियर और प्रसिद्ध वीर ड्रेक हुए थे। उसके चेहरे से वीरता, चतुरता और दृढ़ता के भाव झलकते हैं। यदि स्पेन के राजा ने इसे देख लिया होता तो वह कभी इँगलेंड पर चढ़ाई न करता। उसकी बाज़ पक्षी की सी नाक और दृढ़ता से जमे हुए होठों से सूचित होता है कि धन की उसे क्यों इतनी चाह थी, अपने प्रेमियों के साथ वह क्यों इतनी कड़ाई करती थी और उसकी प्रजा उस पर क्यों इतना विश्वास रखती थी। उसके कापट्य का पता उसके चेहरे से ही लग जाता है। यह रानी अपना सारा जीवन प्रेम करने ही में बिता कर अन्त तक कुमारी रही।

इसके बाद इस गिर्जे का सबसे पुराना और पवित्र भाग मिलता है। यहाँ भारतीय महर्षियों के तुल्य धार्मिक और महात्मा राजा एडवर्ड (Edward, the Confessor) गड़ा हुआ है। उसका शुभ शरीर एक सन्दूक़ के भीतर बन्द किया हुआ

प्रसिद्ध गायक (परलोकवासी) मौजाबख़्श ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

पङ्क से तो कमल ऐसा रत्न अर्पण कर दिया।
हाय, उसको आपने इतना मलिन कैसे किया!

पदुमलाल बख्शी।

पड़ोसिन*।

मेरी पड़ोसिन बाल-विधवा थी। मानों पाले की मारी, वृन्तरहित, शेफालिका के समान वह किसी कमरे की फूल-शय्या के लिए नहीं, किन्तु देवपूजा के लिए ही छोड़ दी गई हो।

मैं मन ही मन उसकी पूजा किया करता। इसके सिवा मैं उसे और किसी—दूसरी—निगाह से देखता था या नहीं—यह बताने की मेरी इच्छा नहीं। दूसरों से तो सहज ही नहीं, अपने आप से भी नहीं!

मेरा प्यारा मित्र नवीन-माधव भी इस विषय में कुछ न जानता था। अपने मन के आवेग को इस प्रकार गुप्त—अतएव निर्मल—रखने का मुझे कुछ गर्व भी था।

पर, मन का वेग पहाड़ी नदी के समान है। वह अपने जन्म-शिखर पर स्थिर रहना नहीं चाहता। किसी प्रकार बाहर निकलने की चेष्टा वह करता ही है। और, कृतकार्य्य न होने पर दिल को दुःख पहुँचाता है। इसी से मैं सोचने लगा कि कविता द्वारा अपने भाव प्रकाशित करूँ। किन्तु कुण्ठिता लेखनी ने आगे बढ़ने से साफ़ इनकार कर दिया।

आश्चर्य्य की बात यह हुई कि ठीक इसी समय मेरे मित्र नवीनमाधव को भी कविता करने की प्रबल इच्छा हुई। बेचारा भारी विपद् में फँस गया। छन्द और तुक का कुछ भी ज्ञान न होने पर भी उसने पीछे फिर देखा न चाहा। यह सब देख कर मैं अवाक् हो गया।

फिर नवीन ने इस विषय में सहायता और संशोधन के लिए मेरी शरण ली।

कविता का विषय नया न था, और पुराना भी न था। उसे बहुत नया भी कह सकते हैं, और बहुत पुराना भी। प्रेमी की कविता प्रियतमा के प्रति। मैंने हँस कर पूछा—क्यों मित्र ये कौन हैं?

नवीन ने कहा—अभी तक तो कुछ खबर नहीं!

नवीन की कविताओं का संशोधन करना मुझे बहुत अच्छा जान पड़ा। उन्हीं कविताओं द्वारा मैं उसकी काल्पनिक प्रियतमा के प्रति अपने रुद्ध आवेग का प्रयोग करने लगा। बेबच्चे की मुर्गी जिस प्रकार हंस का अण्डा पा कर उसे अपने कलेजे से लगा कर बैठती है, उसी प्रकार मैं भी नवीनमाधव के भाव को अपने हृदय के सारे उत्ताप से दबा बैठा। नवीन की कविता पर संशोधन मैं इतना अधिक करता कि उसमें प्रायः पन्द्रह आना मैं अपनी ओर से मिला देता।

नवीन विस्मित हो कर कहता—ठीक यही बातें मैं भी कहना चाहता था, पर कह न सका। तुम ये सारे भाव कहाँ से लाते हो?

और, मैं कवि की तरह उत्तर देता—कल्पना से। क्योंकि सत्य है नीरव, और कल्पना है मुखरा। सत्य घटना भाव-स्रोत को बन्द कर देती है, पर कल्पना उसके मार्ग को खोल देती है।

नवीन कुछ सोच कर बड़ी गम्भीरता से कहता— मैं भी तो यही देखता हूँ! ठीक है!— और फिर कुछ देर बाद कहता—ठीक! ठीक!!

नवीन ने कहा—कविताओं पर अधिकार तो तुम्हीं लिखते हो। अतएव उन्हें तुम्हारे ही नाम से निकालना ठीक होगा।

* रवीन्द्र बाबू के बँगला से अनुवादित।

रता था। पर यह बात उसने कहीं प्रकट न की थी। जिस मासिक पत्र में मेरी कविता नवीन के नाम से प्रकाशित होती थी वह उस विधवा के घर बराबर पहुँचा करता था। कविता व्यर्थ न जाती थी। बिना भेंट के मन खींचने का यह अच्छा उपाय मेरे मित्र ने खोज निकाला था।

किन्तु नवीन ने कहा कि उसने किसी गूढ़ विचार से यह काम न किया था। और तो क्या उसका विश्वास था कि विधवा पढ़ना-लिखना नहीं जानती। विधवा के भाई के नाम से पत्र की एक कापी बिना मूल्य वह प्रति मास भेज दिया करता था। मन को सान्त्वना देने के लिए यह एक प्रकार का पागलपन मात्र था। नवीन सोचता था कि देवता के उद्देश से मैं पुष्पाञ्जलि दे चुका—वे जानें या न जानें, ग्रहण करें या न करें।

विधवा के भाई के साथ नवीन ने जो बन्धुत्व जोड़ा था, नवीन का कहना था कि उसमें भी उसका कोई मतलब न था। जिसको कोई प्यार करता है उसके बन्धु-बान्धवों का साथ भी उसे योंही अच्छा जान पड़ता है।

पीछे, भाई की बीमारी में, नवीन की भेंट अपने उस बन्धु की बहन से कैसे हुई, यह बड़ी लम्बी कहानी है। नवीन के विवाह-प्रस्ताव पर विधवा पहले तो राज़ी न हुई, पर अन्त में नवीन ने मेरी सारी युक्तियों का प्रयोग करके और उसके आँसुओं से अपनी आँखों के दो-चार जलबिन्दुओं को मिला कर उसे मना लिया। अब विधवा के अभिभावक कुछ रुपया चाहते हैं।

मैंने कहा—अभी ले जाओ।

नवीन ने कहा—विवाह के बाद मेरे पिता मेरा ख़र्च पाँच-छः महीनों तक ज़रूर बन्द कर देंगे। तब हम दोनों के ख़र्च के लिए भी कुछ उपाय कर देना होगा। मैंने कुछ न कह कर एक चेक लिख दिया। मैं बोला—नवीन! अब तो उसका नाम-धाम मुझे बता दो। कुछ भय मत करो। अब उसके नाम से मैं कविता न लिखूँगा। अगर लिखूँगा भी तो उसे उसके भाई के पास न भेज कर तुम्हारे पास भेज दूँगा।

नवीन ने कहा—अरे, उसके लिए मुझे डर नहीं। विवाह करने के कारण विधवा लज्जा से कातर है। इसी कारण उन्होंने तुम्हारे साथ उनके विषय में आलोचना करने से मुझे मना कर दिया है। पर अब नाम छिपाना ठीक नहीं। वह तुम्हारी ही पड़ोसिन है, जो १९ नम्बर वाले मकान में रहती है।

हृत्-पिण्ड अगर लोहे का 'बायलर' होता तो उसी क्षण धक करके फट जाता।

मैंने पूछा—विवाह करने में अब उनकी असम्मति नहीं है?

नवीन ने हँस कर कहा—इस समय तो नहीं है!

मैंने कहा—क्या कविता पढ़ कर ही वे इतनी मुग्ध होगईं?

नवीन बोला—क्यों, मेरी कवितायें क्या ऐसी वैसी थीं?

मैंने मन ही मन कहा—धिक्कार! धिक्कार किसको? उसको, मुझको, या विधाता को; पर धिक्कार।

पारसनाथसिंह।

कालिदास का समय।

ढाका के भारतवर्ष नामक मासिक पत्र में, श्रीप्रसन्न मित्र, एम॰ ए॰, का लिखा हुआ एक लेख, कालिदास के विषय में, प्रकाशित हुआ है। उसका आशय नीचे दिया जाता है।

भारत के कालिदास का नाम आज विश्व-विश्रुत है। उनकी इस प्रसिद्धि के साथ ही उनके अस्तित्व और अस्तित्व

एक थारू सुन्दरी और उसकी माँ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हो जाती है। कवि अपनी कविता-द्वारा घोषणा करते रहते हैं—यह जीवन सुखोपभोग ही के लिए है, जीवन के उद्योग और जीव के उत्कर्ष के लिए ही ईश्वर की उपासना की आवश्यकता है। बोकेशियो और चासर, कविकुलगुरु कालिदास और शेक्सपियर आदि संसार में अवतीर्ण होते हैं। परलोकगत प्राणियों के विषय में कुछ भी कहने का प्रयास नहीं करते। जीव-जगत् को ही विश्व की अन्तरात्मा समझ कर उसी का वे यशोगान आरम्भ कर देते हैं। इसी समय प्रेम-विषयक तथा समाचार सुनाने के लिए एक और प्रकार के भी लोग जन्म लेते हैं। परलोक का अत्यन्त रम्य रूप-पट पर खचित रखने के लिए, उसे तिरोहित होने से बचाने के लिए और उसके द्वारा जगन्नियन्ता के विधानों को मानो समझाने के लिए किसी दान्ते या मिल्टन का जन्म होता है। हमारे यह सब लिखने का मतलब यह है कि कालिदास का आविर्भाव ऊपर बतलाये हुए किसी भी युग में नहीं हुआ। अतएव भारतीय साहित्य को, ज़रा देर के लिए, प्रत्नतत्त्व के फेर से बाहर निकाल कर साहित्य-सेवी की दृष्टि से हम उसमें कालिदास का स्थान निर्दिष्ट करना चाहते हैं। हम दिखाना चाहते हैं कि कालिदास का युग संस्कृत-साहित्य में एक अद्भुत युग है। उस समय उसके लिए वही समय था जिसे मैथ्यू आर्नल्ड ने "मध्य युग" कहा है। उसे माहेन्द्र योग कहना चाहिए। इस महान् किन्तु अल्पस्थायी "मध्य युग" का आविर्भाव उस समय होता है जिस समय किसी जाति के जीवन का पहले पहल उन्मेष प्रारम्भ होता है अथवा उसके अन्तिम संगीत का समय आता है—जिस समय विज्ञान, समाज, धर्म, साहित्य आदि सबके सब समभाव से सम्मान प्राप्त करते और उन्नत होते हैं—जिस समय साहित्य में इह जगत् और परजगत् दोनों, पानी और बर्फ की तरह, परस्पर सम्मिलित देख पड़ते हैं। इस युग के आविर्भाव के समय ही हमें सब प्रकार की विद्याओं और कलाओं में निष्णात, सब प्रकार की रचनाओं के पारदर्शी, कोई गेटी, शेक्सपियर या कालिदास प्राप्त होते हैं। नहीं कह सकते, हमारा यह मत इस समय टिकेगा या नहीं अथवा सारा संस्कृत साहित्य प्रत्नतत्त्वविशारदों के वाग्जाल की परवा न करके किसी साहित्य-सेवी के विशेष अनुभव की सहायता पाकर निरपेक्षित होगा। किन्तु कालिदास के काव्य जितना ही अधिक पाठ किये जाते हैं उतना ही अधिक हमारा पूर्वोक्त मत दृढ़ होता है। "रघुरपि काव्यम्" की सरल भाषा से हम जितना ही अधिक मुग्ध होते हैं उतना ही अधिक मन में यह निश्चय दृढ़ होता है कि भारत के जीवित समय में साहित्य की सरल भाषा और मनोहर भाव के आदिकवि जैसे महर्षि वाल्मीकि हैं, वैसे ही उसके अन्तिम समय के गायक कालिदास हैं। कालिदास के रघुवंश का जितना ही पाठ आप कीजिए, आपके मन में यह विश्वास उतना ही दृढ़ होता जायगा कि वह आर्यों के गौरव, आर्यों के प्राधान्य, आर्यों के एकच्छत्र राज्य के प्रकाशक निर्वाणोन्मुख दीपक की प्रज्वलित अग्निशिखा के समान है।

'गुप्त-मूल-प्रत्यन्त' रघु का भारत-विजय निर्विघ्न समाप्त हो गया; 'गुरु-सदृश' अज ने इन्दुमती को प्राप्त कर लिया; रामचन्द्र का धर्मराज्य भी हो चुका। किन्तु भविष्यत् में शीघ्र ही भारत की राजधानी अयोध्या के राजमार्गों पर गीदड़ों का समूह फिरने लगेगा—उसके महल टूट-फूट कर खँडहर हो जायँगे—उसके सुन्दर और रमणीक बावलियाँ जङ्गली भैंसों के घर बन जायँगे। कालिदास ने जान लिया था कि यद्यपि 'आसमुद्रक्षितीश' समुद्रगुप्त के समय से गुप्त राजाओं का एकच्छत्रराज्य भारतवर्ष में चला आता है, यद्यपि उन्होंने साकेत के उपवन में—रामचन्द्र की उसी पुरानी अयोध्या में—अपनी राजधानी की स्थापना कर दी है, यद्यपि उन्होंने हूणों का पराभव कर दिया है,—तथापि आर्य-जाति का यह अभ्युदय स्थायी नहीं, वह क्षणिक है। खण्ड राज्यों में विभक्त होकर भारत की दशा पुनः शीघ्र ही अवनत हो जायगी। आप लोग सोचते होंगे कि रघुवंश में गुप्त राजाओं का अप्रकृत प्रवेश हो गया! उसमें गुप्त राजाओं के संसर्ग का ज्ञान कहाँ से तुमने प्राप्त किया? सुनिए। भारतवर्ष के अधीश्वर समुद्रगुप्त का नाम आज यहाँ पाश्चात्य देश के पण्डितों की कृपा से सुपरिचित हो रहा है। यह, उसका पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त, जिसे आज कल के इतिहासज्ञ विक्रमादित्य बतलाते हैं, उसका पौत्र कुमारगुप्त और प्रपौत्र स्कन्द-गुप्त सभी भारतवर्ष के एकच्छत्र राजा थे। इन गुप्तवंशी राजाओं ने राजसूय यज्ञ तक किया था। अयोध्या में इन्होंने अपनी राजधानी भी स्थापित की थी। इसी कारण रघु के वंशजों के साथ, साहित्य में, ये भी अंकित हो गये हैं। आज कल एक प्रकार से यह निश्चित हो गया है कि कालि-

मारा गया। पर, भद्रश्रेण्य को मार कर भी दिवोदास बहुत दिन तक काशी का राजा न रह सका। हैहय राजों के साथ काशी के राजों का युद्ध बहुत समय तक होता रहा। पुराणकार लिखते हैं कि यह युद्ध कोई एक सहस्र वर्ष तक जारी रहा। युद्ध का आरम्भ यद्यपि हैहय-कुल से हुआ था तथापि भद्रश्रेण्य की मृत्यु के बाद वह हैहय तथा दक्षिण से बढ़ते हुए राक्षसों के साथ भी होता रहा। महाभारतकार लिखते हैं कि यह युद्ध काशी के चार राजों के समय तक जारी रहा। सहस्र वर्ष की अपेक्षा यह पिछला समय अधिक सम्भवनीय मालूम होता है। किन्तु महाभारत के अनुसार युद्ध का अन्त दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के समय में हुआ। पुराणों में दिवोदास नाम के एक ही राजा का पता चलता है। अब यदि इसी दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के समय में युद्ध का समाप्त होना माना जाय तो चार राजों के काल का उल्लेख ठीक नहीं जँचता और यदि काल का उल्लेख ठीक माना जाय तो दिवोदास प्रतर्दन का पिता नहीं हो सकता। इसलिए तर्क और अनुमान कहते हैं कि दिवोदास नाम के दो राजे हुए, और युद्ध का आरम्भ एक दिवोदास के समय में होकर अनन्तर दूसरे दिवोदास के पुत्र प्रतर्दन के समय में हुआ। यद्यपि इस तर्क की पुष्टि पुराणों से नहीं होती, तथापि महाभारत के कुछ उल्लेख इसके परिपोषक अवश्य हैं। पुराणों के अनुसार दिवोदास भीमरथ का पुत्र था, और महाभारतकार जिस प्रतर्दन के समय में युद्ध का अन्त लिखते हैं उसके पिता दिवोदास को वे सुदेव का पुत्र बतलाते हैं। इसके सिवा अष्टारथ और हर्यश्व नामक दो राजों के नाम भी महाभारत प्रतर्दन के समय में उसका अन्त हुआ। राक्षसों का आधिपत्य काशी पर था और दिवोदास द्वितीय ने गङ्गा और गोमती ... एक नया नगर बसाया। इसके अनन्तर राजा सगर के साहाय्य से पुनः काशी जीत, वहाँ अपना राज्य स्थापित किया।

राजा प्रतर्दन के बाद वत्स नामक उस... राजा हुआ। वत्स के पुत्र का नाम अलर्क था। अलर्क बड़ा प्रतापी और दीर्घायुषी हुआ। अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा की बड़ी ... लोपामुद्रा विदर्भ के राजा की पुत्री थी। पतिव्रता थी। उसी की कृपा से राजा ... हुआ था। राजा अलर्क के अनन्तर ... में कोई प्रबल राजा न हुआ। भगीरथ, अ... सुदास, दिलीप, रघु, दशरथ और राम अयोध्या के राजों के पराक्रम के सामने क... राजगण हीन-प्रभ ही रहे। यद्यपि ... कुश के समय तक काशी का राज्य किसी ... चलता रहा, तथापि उसमें पराक्रमशाली न हुआ। कुश के समय तक काशी में ... सुनीथ, क्षेम, केतुमत् द्वितीय, सुकेतु, ध... सत्यकेतु, विभु, सुविभु, सुकुमार, धृष्टकेतु, वे... और भर्ग नामक तेरह राजे हुए। भर्ग के स... इस राज्य को कुश ने अयोध्या के राज्य में... लिया। इस प्रकार अलर्क के कुछ समय ब... किसी प्रकार से बचा हुआ काशी का राज्य अ... के राज्य में सम्मिलित हो गया।

आनन्द-वंश।

। क्योंकि दक्षिण में उसके दूसरे भाइयों तथा पुरु राज्य होने के कारण वहाँ उसके राज्य का विस्तार अनुकूल न हो सकता था। अन्य दिशाओं की ओर का ा हिमालय तथा अन्यान्य पहाड़ों से घिरा था। इस रण उधर भी उसके बढ़ने का कोई उपाय न था। र प्रकार यद्यपि इस वंश के लोगों को राज्य बढ़ाने ा अवसर न मिला, तथापि इनका राज्य उत्तर की ोर होने से और अन्य राजों की उस पर दृष्टि न ड़ने से यह महाभारत के काल तक अविच्छिन्न चला ाया। इस कारण इन लोगों के नाम ही मात्र पाये ाते हैं। कचित् ही कहीं थोड़ा-बहुत विशिष्ट वर्णन ालता है।

उत्तर में राजा अनु के राज्य का विस्तार थोड़ा ा था। अनु के अनन्तर कालानल, सृञ्जय, रञ्जय, जनमेजय और महाशाल नाम के पाँच जे उसके वंश में हुए। महाशाल के महामनस् ामक पुत्र हुआ। पौरव राज्य जीत लेने के अनन्तर ादवों और हैहयों में जब झगड़े हो रहे थे तब इसने पनी दृष्टि दक्षिण की ओर दौड़ाई और धीरे धीरे हाँ के देशों को जीतना प्रारम्भ किया। महामनस् के श्चात् उशीनर, तितिक्षु और शिवि ने भी इस विजय का कार्य जारी रक्खा। राजा शिवि बड़ा राक्रमी था। वह अनेक देशों को जीत कर चक्रवर्ती हुआ। यद्यपि यह बड़ा प्रभुताशाली था तथापि सका नाम उसके पराक्रम से प्रसिद्ध नहीं, अपनी सत्यता तथा शरणागतवत्सलता से प्रसिद्ध है। राजा शिवि की कथा किसी से छिपी नहीं। अनेक कवियों ने उसके आख्यान पर अनेक कवितायें की हैं।

राजा शिवि का समय भारत में बड़ी अशान्ति का समय था। पौरव राज्य उस समय विच्छिन्न हो चुका था। यादव और हैहय काशी के राजाओं से एवं आपस में लड़ रहे थे। इन सब बातों के कारण अच्छा मौका पा कर शिवि ने देश में अपना आधिपत्य स्थापित किया और आनववंशी राजे इसी अवसर में गङ्गा के दक्षिण तट से बढ़ते बढ़ते मगध और बिहार की ओर बढ़ गये। थोड़े दिनों तक इन राजों के दो विभाग दोनों जगह राज्य करते रहे। शिवि का पुत्र केकय उत्तर में राजा हुआ और उसका एक वंशज रुषद्रथ नाम का पूर्व में राज्य करने लगा। केकय का वंश यद्यपि आगे कुछ समय तक चला, तथापि उसका विशेष वर्णन कहीं नहीं पाया जाता। पुराणकारों ने आनव वंश में रुषद्रथ की ही सन्तति का वर्णन किया है। रुषद्रथ के अनन्तर हेम, सुतपस् और बलि नामक तीन राजे हुए। राजा बलि के कोई सन्तान न थी। इस कारण उसने एक अन्य ऋषि से पुत्रोत्पत्ति कराई और नियोग-विधि का पहले पहल प्रारम्भ किया। इसके पहले पुराणों में कहीं नियोग-विधि का वर्णन नहीं पाया जाता। इसी नियोगविधि से इसके अङ्ग नामक पुत्र हुआ। अङ्ग-देश इसी राजा के नाम से विख्यात है। यह राजा दौष्यन्ति भरत का समकालीन था। अङ्ग के अनन्तर दधिवाहन, अनपान, दिविरथ और चित्र-रथ नामक चार राजे और हुए। चित्ररथ के बाद रोमपाद नामक राजा हुआ। यह दशरथ का सम-कालीन था। रोमपाद के अनन्तर चतुरङ्ग, पृथुलाक्ष और चम्प नामक राजे इस वंश में प्रसिद्ध हुए। राजा चम्प ने चम्पा नाम की पुरी बसाई और उसे ही उसने अपनी राजधानी बनाया। कनिङ्हम साहब के मत से यह नगरी भागलपुर से २४ मील पूर्व को थी। कहते हैं कि आज भी वहाँ चम्पानगर और चम्पापुर नाम के दो गाँव हैं। राजा चम्प की मृत्यु के पश्चात् कोई विशेष प्रसिद्ध राजा इस वंश में न हुआ। इसी समय मगध देश में कुरु के कुछ वंशज आ बसे और नया मागध-वंश अस्तित्व में आया। इस वंश के पराक्रमी राजों के सम्मुख आनव-वंशीय राजों का तेज फीका पड़ गया। ये लोग अपना छोटा सा राज्य किसी प्रकार चलाते रहे।

... उनके पश्चात् तेरह नाम इस वंश में और पाये जाते हैं। उनमें से हर्यङ्ग, भद्ररथ, बृहत्कर्मन्, बृहद्रथ, बृहद्भानु, बृहन्मनस, जयद्रथ, विजय, धृति, धृतव्रत, सत्यकर्मन् और अधिरथ ये बारह राजे प्रसिद्ध थे। अधिरथ के कोई सन्तति न थी। एक दिन उसे गङ्गाजी में बहता हुआ एक बालक मिला। उसी को उसने अपना पुत्र मान लिया। यह बालक कुन्ती की कोख से, कुमारी अवस्था में, सूर्यनारायण के वीर्य से हुआ था। इसका नाम कर्ण था। इसने दुर्योधन से मित्रता की और अन्त में उसी के लिए इसने अपने प्राण तक दे दिये। कर्ण ही आनव-वंश का अन्तिम राजा था। इसी के साथ इस वंश के राज्य की समाप्ति हुई। इसके पुत्र-पौत्र अन्त में पाण्डवों ही के साथ जा रहे।

चमेली।

(१)

सुन्दरता की रूपराशि तुम
　　उपवन की धाम, चमेली।
तुमसी कन्यायें भारत को
　　कब देगा भगवान्, चमेली॥

(२)

चहक रहे खग-वृन्द वनों में
　　अब न रही है रात, चमेली।
क्रमशः कमल कुसुमित होते हैं,
　　देखो हुआ प्रभात, चमेली॥

(३)

प्रेम-मग्न प्रेमी जन देखो
　　करें प्रभाती गान, चमेली।
जिसने तुम सा पुष्प लगाया
　　कर माली का ध्यान, चमेली॥

(४)

जग-यात्रा में आते होंगे
　　कभी कभी दुखभार, चमेली।
कार धीर से मत घबराना,
　　यह भी उसका प्यार, चमेली॥

(५)

भिन्न भिन्न डालों का होना
　　अपने ही हित जान, चमेली।
हरे हरे पत्ते निकलेंगे,
　　सुमनों के सामान, चमेली॥

(६)

भ्रमर-भीर गुञ्जार करेगी,
　　तुमसे हास-विलास, चमेली।
दिग-दिगन्त सुरभित होवेगा
　　पा कर सुखद सुवास, चमेली॥

(७)

अटल नियम को भूल न जाना—
　　जग में सब का नाश, चमेली।
अस्त अंशुमाली भी होता
　　भूम भरित आकाश, चमेली॥

(८)

नहीं रहेगा मूल न शाखा,
　　नहीं मनोहर फूल, चमेली।
निराकार से मिल कर होगा
　　प्रियतम पद की धूल, चमेली॥

मदन द्विवेदी गजपुरी

प्रसिद्ध गायक मौलाबख़्श।

मुसल्मानी धर्म के एक सम्प्रदाय
नाम सूफ़ी है। इस सम्प्रदाय
अनुयायियों के सिद्धान्त वेदान्त
सिद्धान्तों से मिलते जुलते
इन्होंने अमरीका में अपना एक
बनाया है। यहाँ से इन्होंने अपने धर्म की पुस्तक
निकलना आरम्भ किया है। एक त्रैमासिक पत्रि
भी इन्होंने निकाली है। उसके तीन चार अङ्क नि
चुके हैं। हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध गायक मौलाब

पौत्र मिस्टर इनायतख़ाँ उसके सम्पादक हैं। ये नामी गवैये हैं। निज़ाम हैदराबाद से आप ख़ूब [illegible]दृत हो चुके हैं। आप इस समय लन्दन में हैं। आपके कई साथी भी आपके साथ हैं। यहाँ आप अपनी सङ्गीत-विद्या का कौशल भी दिखा रहे हैं और सूफ़ी मत के सिद्धान्तों का प्रचार भी कर रहे हैं।

मिस्टर इनायतख़ाँ सूफ़ी की सम्पादित पत्रिका का नाम भी "सूफ़ी" है। यह अँगरेज़ी में निकलती है। उसके तीसरे अङ्क में इनायतख़ाँ के पितामह मौलाबख़्श का जीवनचरित निकला है। उसका सारांश सुन लीजिए।

मौलाबख़्श का जन्म भिवानी के एक ज़मींदार के घर, १८३३ ईसवी में, हुआ। बड़े होने पर उन्हें कसरत का शौक़ हुआ। ये अच्छे पहलवान बनने की चेष्टा करने लगे। इसी समय एक सूफ़ी फ़क़ीर भिवानी आया। मौलाबख़्श उससे मिले और उसकी अच्छी सेवा-शुश्रूषा की। फ़क़ीर ने कहा, गाना जानते हो तो कुछ सुनाओ। मौलाबख़्श ने उत्तर दिया कि बाक़ायदा गाना तो जानता नहीं, पर कुछ शेर मुझे ज़रूर याद हैं। उन्हें मैं आपको सुनाता हूँ। फ़क़ीर उन शेरों को सुन कर बहुत ख़ुश हुआ। उसने कहा, तुम्हारा गला बहुत अच्छा है। तुम पहलवान बनने की चेष्टा छोड़ दो। अच्छे गायक बनने की चेष्टा करो। थोड़े ही परिश्रम से तुम नामी गवैये हो जाओगे। मौलाबख़्श ने फ़क़ीर की आज्ञा मान ली। फ़क़ीर उन्हें आशीर्वाद देकर चला गया।

मौलाबख़्श ने गाना सीखने की प्रतिज्ञा की। पर सिखाये कौन? उस ज़माने में जिसे जो विद्या या कला आती थी वह उसे किसी को बताता ही न था। बताता भी था तो उसे जो जन्म भर अपने उस्ताद की सेवा करे। मौलाबख़्श ने सुना कि घसीटेख़ाँ नामक एक आदमी गाने की कला बहुत अच्छी जानता है। ये घर से चल दिये और उस शहर में आ पहुँचे जहाँ घसीटेख़ाँ रहता था। परन्तु वहाँ आने पर मालूम हुआ कि घसीटेख़ाँ किसी को भी गाना न सिखाता था। सीखने की इच्छा से कोई उसके पास तक न आने पाता था। अब क्या हो?

घसीटेख़ाँ का दरबान एक अफ़ीमची था। रात को वही दरवाज़े पर रहता था। मौलाबख़्श ने उससे दोस्ती पैदा कर ली। उससे मालूम हुआ कि घसीटेख़ाँ रात को १२ बजे के बाद गाता है। मौलाबख़्श रोज़ रात को पहुँचने और घसीटे का गाना सुनने लगे। रात को ये जो सुनते दिन को अपने घर उसका अभ्यास करते। कुछ ही दिनों में मौलाबख़्श का अभ्यास बढ़ गया। ये ख़ूब गाने लगे। जो लोग उनके घर के पास से निकलते वे उनका गाना सुन कर मोह जाते। जो इस कला के जानने वाले थे उन्हें मौलाबख़्श और घसीटेख़ाँ के गायन में अपूर्व सादृश्य मालूम होता। धीरे धीरे शहर में चर्चा होने लगी कि यहाँ एक और घसीटेख़ाँ पैदा हो गया है। घसीटेख़ाँ को भी इसकी ख़बर हुई। उसने कहा, यह मेरा जोड़ीदार कहाँ से आ गया। उससे न रहा गया। एक दिन वह मौलाबख़्श के मकान के पास से जो निकला तो मौलाबख़्श का गाना सुन कर वह फड़क उठा। वह मकान के भीतर चला गया। मौलाबख़्श ने उसे आदरपूर्वक बिठाया और अपना गाना सुनाया। सुन कर वह बहुत ख़ुश हुआ। उसे मन ही मन महा आश्चर्य हुआ। उसकी समझ में यह बात न आई कि मौलाबख़्श का गाना ठीक वैसा ही क्यों है जैसा कि उसका निज का है। जब यह भेद और किसी तरह मालूम होता न देखा तब उसने मौलाबख़्श से उसका कारण पूछा—

घसीटेख़ाँ। आप मेहरबानी करके यह तो बताइए कि आपका उस्ताद कौन है?

मौलाबख़्श। माफ़ कीजिए। आप मुझ से

यह सवाल न कीजिए। इसमें कुछ भेद है। और जो कुछ आप चाहें पूछ सकते हैं।

घसीटेखाँ। उस्ताद का नाम बताने से आप इनकार क्यों करते हैं? नाम बताने में हर्ज ही क्या है?

मौलाबख़्श। नाम बताने से मेरा बड़ा हर्ज है। बताने से सङ्गीत-विद्या में मेरी उन्नति न हो सकेगी। रहने दीजिए, आप मेरे उस्ताद का नाम न पूछिए।

घसीटेखाँ। मैं आपका गाना सुन कर बहुत ही ख़ुश हुआ। आपके उस्ताद आप से भी बड़े-चढ़े गवैये होंगे। कुछ भी हो, आपको उनका नाम बताना ही पड़ेगा।

मौलाबख़्श। बहुत अच्छा, मुझे आपकी आज्ञा मान्य है। पर, आपको भी मुझ से एक वादा करना पड़ेगा। वह यह कि नाम बताने से अगर मेरे उस्ताद मुझ से नाराज़ हो जायँ तो आपको मेरी मदद करनी पड़ेगी।

घसीटेखाँ। मुझे मन्ज़ूर है। मैं आपकी मदद करूँगा।

मौलाबख़्श। मेरे उस्ताद का नाम घसीटेखाँ है।

घसीटेखाँ। मैंने तो एक दफ़े के सिवा और कभी आपको देखा भी नहीं। मैं कैसे आपका उस्ताद हो सकता हूँ।

इस पर मौलाबख़्श ने अपना सारा हाल कह सुनाया। तब लाचार होकर घसीटेखाँ को अपना वादा पूरा करना पड़ा। उस दिन से वह मौलाबख़्श को गाना सिखाने लगा।

कुछ ही साल के बाद मौलाबख़्श नामी गवैये हो गये। उस्ताद घसीटेखाँ को इस कला का जितना ज्ञान था वह सब उन्होंने प्राप्त कर लिया। उस्ताद के मरने के बाद भी उन्होंने इस कला की उन्नति जारी रक्खी। जहाँ किसी अच्छे गवैये का हाल सुना वहीं वे पहुँचे। अगर कोई नई बात उसमें पाई तो उसे सीख लिया।

उत्तरी हिन्दुस्तान में घूम फिर कर मौलाबख़्श दक्षिण के लिए रवाना हुए। इस समय उन्हें मालूम होने लगा था कि मुसल्मानों के संसर्ग से हिन्दुओं की सङ्गीत-विद्या में विकार आ गया है। उसमें एक हद तक अरब और फ़ारिस की गायन-कला का मिश्रण हो गया है। इस कारण मौलाबख़्श ने सोचा कि दक्षिण चल कर देखना चाहिए वहाँ इस कला का क्या हाल है। वहाँ जाने पर मौलाबख़्श को मालूम हुआ कि उनका सन्देह ठीक था। द्रविड़-देश के सङ्गीत में अरब और फ़ारिस की कला का मिश्रण नहीं। वह अपने असली रूप में है और उत्तरी हिन्दुस्तान की गायन-कला से बढ़ी चढ़ी है।

इतने में माइसोर-दरबार की ख़बर सुनी कि उत्तरी भारत से एक बड़ा नामी गवैया आया है। दरबार में मौलाबख़्श का गाना हुआ। उसे सुन कर श्रोता लोग आनन्द के अतिरेक से मग्न हो गये। भारतीय सङ्गीत-शास्त्र के अनुसार उस देश की गायनकला बहुत विशुद्ध थी। उसकी जैसी विशुद्धता मौलाबख़्श के सङ्गीत की न थी। परन्तु मौलाबख़्श का गाना अपने ढँग का अद्वितीय था। नतीजा यह हुआ कि माइसोर-दरबार ने मौलाबख़्श को ख़िलअत देने का निश्चय किया। उसके लिए एक दिन भी नियत हो गया। परन्तु उसके पहले ही एक दिन मौलाबख़्श ने सुना कि माइसोर-दरबार के ब्राह्मण की लड़की वीणा बजाने में बड़ी प्रवीण है। इस कारण वे उसका वीणावादन सुनने के लिए गये। उसका वीणा बजाना सुन कर वे आनन्द में मग्न हो गये। लड़की से उन्होंने प्रार्थना की कि आप मुझे अपना शागिर्द बना लीजिए। परन्तु लड़की ने कहा—ब्राह्मण के सिवा और किसी को मैं यह विद्या नहीं सिखा सकती। तुम्हें सीखना है तो मर कर किसी ब्राह्मण के यहाँ जन्म लो। इस उत्तर को सुन कर मौलाबख़्श को

थारू-जाति का नाच।

थारू लोगों का होली खेलना।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
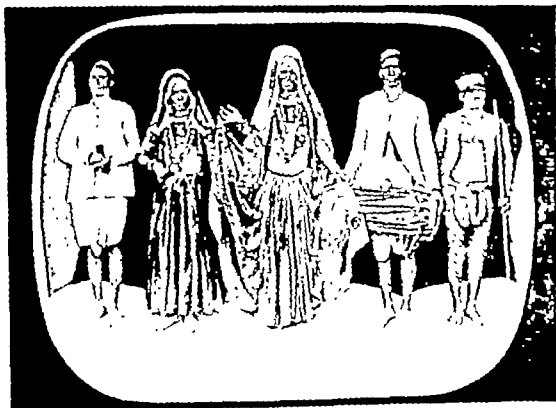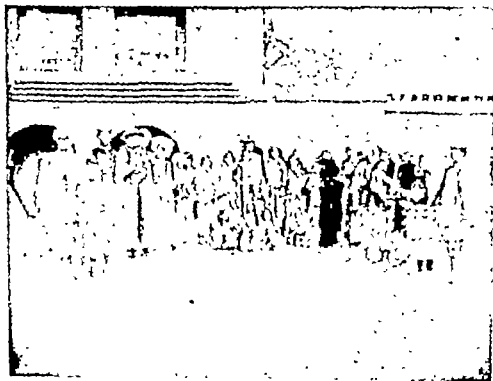
दूर हुआ। राजकीय पुरस्कार छोड़ कर वे वहाँ से चुपचाप चल दिये। वे एक चिट्ठी छोड़ गये। उसमें वे यह लिख गये कि मेरी सङ्गीत-विद्या में अभी कुछ कमी है। उसकी पूर्ति होने पर ही मैं मारसोरनिवासियों को अपना मुँह दिखाऊँगा।

घूमते फिरते वे तञ्जोर पहुँचे। वहाँ उन्हें पता लगा कि एक ब्राह्मण इस विद्या में बहुत प्रवीण है। वे उसके पास गये और अपनी सेवा-शुश्रूषा से उसे प्रसन्न कर लिया। ब्राह्मण ने अपनी सारी विद्या मौलाबख़्श को दे दी। रागप्रस्तार, ताल-प्रस्तार, स्वरप्रस्तार, गमक, काल, लय, सन्धि, मूर्च्छना आदि सङ्गीत-शास्त्र के जितने भेद थे सब सीख कर मौलाबख़्श इस विद्या में पारङ्गत हो गये।

इस प्रकार भारतीय विशुद्ध सङ्गीत-कला का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके मौलाबख़्श मारसोर को लौट आये। मारसोर के महाराज कृष्णराज ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। उनकी सङ्गीत-कला की जाँच करने के लिए दूर दूर से हिन्दू गवैये बुलाये गये। ११ महीने मौलाबख़्श वहाँ रहे। परीक्षा में वे पूरे उतरे। उस देश के गवैयों में से एक भी उनकी बराबरी का न निकला। सन्तुष्ट होकर महाराज मारसोर ने छत्र, चमर, कलँगी और सरपेच देकर उनका सम्मान बढ़ाया। वहीं मौलाबख़्श ने प्राचीन शाही घराने की एक लड़की से शादी की। उनकी कीर्त्ति दूर दूर तक फैल गई। राजा-महाराजों के दरबार से आमन्त्रण आने लगे।

उस समय बड़ोदे में महाराज खण्डेराव गद्दी पर थे। उनके बुलाने पर मौलाबख़्श बड़ोदे गये। परन्तु वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि गुणग्राहकता के कारण नहीं, किन्तु अपने दरबार की शोभा बढ़ाने के लिए ही वे महाराज द्वारा बुलाये गये हैं। एक दिन अपने एक दरबारी की मारफ़त महाराज खण्डेराव ने उनसे यह पुछवाया कि तुम तो एक गवैये मात्र हो। तुमने ये छत्र और चमर आदि राजसी चिह्न क्यों धारण कर रक्खे हैं? उत्तर में मौलाबख़्श ने कहा कि राजा तो अपने ही राज्य में आदर पाता है, पर विद्वानों और गुणी जनों का आदर सारी पृथ्वी पर होता है। इस दृष्टि से मुझे इन चिह्नों के धारण करने का पूरा अधिकार है।

महाराज खण्डेराव के दरबार में मौलाबख़्श की कई दफ़े परीक्षायें हुईं। क़ासिम हुसैन, अली हुसैन, बन्दई और नसीरख़ाँ इत्यादि बड़े बड़े गवैये दूर दूर से बुलाये गये। परन्तु मौलाबख़्श के मुक़ाबिले में एक भी न ठहर सका।

बड़ोदे में रह कर मौलाबख़्श ने सङ्गीत की बड़ी उन्नति की। उस प्रान्त में उस समय जो गवैये थे उनमें से प्रत्येक में कोई न कोई दोष उन्हें दिखाई दिया। उन्हें दूर करने के लिए मौलाबख़्श ने कितने ही शागिर्द तैयार किये। उनको विशुद्ध सङ्गीत की शिक्षा देकर मौलाबख़्श ने इस कला को निर्दोष बनाने की बड़ी चेष्टा की। स्वर-लिपि के चिह्न भी उन्होंने बनाये और उन्हें अपने शागिर्दों को सिखाया। मनोहर, बरवे, भीनप्पा, बोरकट, खिरे, जोशी, पाटनकर, लक्ष्मण आदि शागिर्दों ने मौलाबख़्श की शिष्यता स्वीकार करके इस कला में ख़ूब अभिज्ञता प्राप्त की। उनमें से दो एक ने तो सङ्गीत-लिपि के नये नये क्रम भी जारी किये।

मौलाबख़्श कलकत्ते में सङ्गीत-विद्या के आचार्य महाराज ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुर के बहुत दिन तक मिहमान रहे। महाराज ने मौलाबख़्श को वायसराय और गवर्नर जेनरल के सामने पेश किया। वायसराय की आज्ञा से वे देहली-दरबार में शामिल हुए। सङ्गीत-विद्या में वहाँ अपनी प्रवीणता दिखला कर उन्होंने बहुत कीर्ति कमाई। देहली दरबार से लौट कर, महाराज रामसिंह के आमन्त्रण पर, कुछ समय तक वे जयपुर में भी रहे। वहाँ भी उनका बड़ा आदर हुआ। निज़ाम ने भी उन्हें बहुत कुछ पारितोषिक देकर अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया।

बारात के दिन तेल-हल्दी लगा कर लड़के को न कराया जाता है। तांगों पर सवार पचास ५ मनुष्य धूम-धाम से बारात आते हैं। लड़के का बहनोई दूल्हे के साथ उसका रक्षक बन कर बराबर साथ रहता है। ससुराल के आँगन में बारात ठहरती है। लड़की की भाभी सिर पर लोटा और लोटे पर जलता हुआ चिराग़ रख कर दूल्हे की लड़की के पास नाचती और अपना हक़ लेती है। लड़के के रक्षक को भी नाचना पड़ता है। उससे स्त्रियाँ असभ्य छेड़ छाड़ करती हैं। भाँवर डालने के समय लड़की की बहिन और भाभी वर-कन्या की गाँठ जोड़ कर उन्हें खड़ा कर देती हैं। लड़की के हाथ पर लड़के का हाथ रख कर कन्यादान की रस्म अदा की जाती है। तब भाँवरें पड़ती हैं। भाँवरों में चार बार वर और एक बार कन्या आगे रहती है। दूसरे दिन प्रातःकाल खा-पीकर बारात बिदा हो जाती है।

दुल्हन के साथ दो तीन स्त्रियाँ दूल्हे के घर आती हैं। घर आने पर दोनों के बीच दूल्हे की बहन नाचती और अपना हक़ लेती है। लड़की वाले के साथ २०, २५ आदमी शाम तक दूल्हे के घर आजाते हैं। उनके आदर-सत्कार के लिए कई वर्षों से एतदर्थ पाले हुए बकरे काटे जाते हैं। बहुत सी शराब मँगाई जाती है। थारू-नाच की दिन रात धूम रहती है। खिस्सम भरना दूल्हे का मुख्य काम होता है। बैशाख में पहला और कुँआर में दूसरा गौना हो जाता है।

थारूजाति अपने देवताओं को ही कुशल-सुख का कारण समझती है। इस कारण वैद्यों, डाक्टरों और अस्पतालों की अपेक्षा अपने स्यानों (भरारों) पर उसकी अधिक श्रद्धा है। स्याने लोग अपने देवताओं पर शराब, मुर्ग़े तथा बकरे चढ़ा कर रोगी को नीरोग करते हैं। थारू इनकी आज्ञा पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहते हैं। थारू लोग मुर्दों को नदी किनारे उल्टा दबा देते हैं। फूँकने का रिवाज इनमें बहुत कम है। दूसरे तीसरे रोज़ मुर्दे की "टीरो" की जाती है। दिवाली पर उसके नाम से कुछ वस्त्र, बर्तन और अन्न मेहतर को दे दिया जाता है। बस उससे उऋण हो जाते हैं।

इस जाति का मुख्य व्यवसाय कृषि है। अन्य कृषकों को इस कार्य में जो कठिनाइयाँ भोगनी पड़ती हैं उनसे ये बहुत कुछ मुक्त हैं। क्योंकि कृषि की तीन आवश्यकतायें—श्रम, धन और धरती—इन्हें यथेष्ट प्राप्त हैं। सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के कारण इन्हें मज़दूरों की ज़रूरत नहीं पड़ती। हर थारू कुछ गायें ज़रूर पालता है। इस कारण बैल ख़रीदने में साहूकारों के ढोंगे कुठार से यह आहत नहीं होता। नैनीताल ज़िले का यह तराई भाग "ख़ाम" है। कृषक सरकार को लगान देते हैं। इस कारण थारू लोगों को ज़मींदारों की लाल पीली आँखें नहीं देखनी पड़तीं। इनकी अन्न-राशि ज़मींदारों के चक्कुल में बच जाती है।

इन लोगों का साधारण आहार माँड़ और मछली है। उत्तम श्रेणी के लोग दोनों वक़्त भात खाते हैं। बरसात में बहुत सी मछलियाँ सुखा कर या भून कर ये रख छोड़ते हैं। ये बारह महीने काम आती हैं। भादों-कुँआर में थारू लोगों के घरों के छप्पर मछलियों से पट जाते हैं। मारे बदबू के आँगन में ठहरा नहीं जाता। मछली के सिवा और जानवरों का मांस भी ये खाते हैं। सूअर का शिकार इन्हें बहुत पसन्द है। शिकार खेलने के फन्दे, जाल और हथियार ये ख़ुद बनाते हैं। ये मदिरा बहुत पीते और मुर्ग़ियाँ पालते हैं। इतने मांसाहारी होने पर भी इनके घर और बर्तन बहुत साफ़ रहते हैं। पुरुष प्रायः बाहर खाना खाते हैं। मगर स्त्रियाँ चौके से बाहर नहीं खा सकतीं।

थारू जाति के कई व्यवहार हिन्दुओं से भिन्न

हैं। ये लोग इसका कारण यह बताते हैं कि इनके पूर्वजों के साथ ब्राह्मणों ने विश्वास-घात किया, जिसके कारण यवनों से इनकी हार हुई और ये लोग घने जंगलों में जा छिपे। तभी से ये अपना कोई भी काम ब्राह्मणों से नहीं कराते। ब्राह्मणों के हाथ का भोजन क्या, उनके छुए छुए कच्चे घड़े का पानी भी ये नहीं पीते। भिन्न जातियों से पृथक्, दूर जङ्गलों में रहने, और अपनी आवश्यकतायें स्वयं ही पूरी कर लेने, के कारण इनके व्यवहार शायद ऐसे होगये हैं। पर अब धीरे धीरे इनमें ब्राह्मणों का मान होता जाता है। ये लोग कथायें कराने लगे हैं। दो थारुओं ने शिव-लिङ्ग का स्थापन भी किया है। हिन्दू तीर्थों को ये लोग मानते हैं। त्योहारों में केवल होली और दिवाली मनाते हैं, सो भी विचित्र ढंग से। इस जाति को ईसाई बहुत दिनों से लुभा रहे हैं। मगर अभी तक उनका कुछ भी प्रभाव इन पर नहीं पड़ा।

कम्बल इनका सबसे अधिक आवश्यक वस्त्र है। अधिकांश थारू टोपी ओढ़े और लँगोट बाँधे रहते हैं। लँगोट का एक सिरा सामने की तरफ़ लम्बा लटका करता है। यह कन्धे पर डाल लिया जाता है। जिनमें कुछ शिक्षा या सभ्यता का प्रवेश हो गया है उनकी पोशाक बदलती जाती है। स्त्रियाँ पेशानी पर सामने के बालों का बड़ा सुन्दर जूड़ा सा बनाती हैं। धनवान् घर की स्त्रियाँ दो या तीन भारी भारी हँसलियाँ, हमेल और पाँच के दामों की बहुत सी लड़ियाँ गले में पहनती हैं। पाँव में वे, टखने से ऊपर, काँसे-पीतल का एक भूषण, जिसे पैंड़ा कहते हैं, पहनती हैं। भुजदण्डों पर दो दो, तीन तीन, बाजूबन्द बाँधती हैं। उपरटा माथा काले रङ्ग का, ५ गज़ लम्बा और १२ गिरह चौड़ा, ओढ़ती हैं। बदन में बचपन ही से कञ्चुकी पहनाई जाती है। दामन फ़र्माक़-नुमा होता है। उसका अधिकांश पीछे सिमटा रहता है। आगे सिर्फ़ कटिदेश भर का पर्दा, नीचे ऊपर दबा, रहता है।

हर परिवार में एक मुखिया होता है। उ[सकी]
आज्ञा बिना घर का कोई काम नहीं हो सक[ता।]
यह समय समय पर अन्य परिवारों की म[ण्डली से]
हर काम के सम्बन्ध में मालूम करता रहता [है।]
इसी प्रकार घर भर की स्त्रियाँ एक स्त्री के [अधीन]
सत्ता में रहती हैं। इन लोगों में शिक्षित लो[गों के]
घरों की तरह कलह नहीं होता। सब लोग [प्रसन्न-]
चित्त रहते हैं। शायद यही कारण है, जो इन [लोगों]
में प्रपौत्र के पुत्र का दर्शन करने वाले मनुष्य [देखने]
में आते हैं।

थारू लोगों को नाच बहुत प्रिय है। पु[रुष]
साथ साथ बैठ कर नाच देखते हैं। हर गाँ[व में]
कुछ प्रसिद्ध गायक होते हैं। इनके रागों के [नाम]
पुराने हैं और प्रत्येक का समय नियत है।
खड़े होकर ऊँचे स्वर से गाते हैं। एक थारू [स्त्री]
का रूप बना कर नाचता है। हर पुरुष [के]
सामने कुछ देर बैठ कर यह अपने हाव[-भाव]
दिखाता और उसे प्रसन्न करता है। ताल पर
मण्डली पीछे भागती है। नाचने वाला बीच में
दौड़ा फिरता है। गाने वालों में खाली हाथ कोई
होता। कोई हुक्का, कोई लाठी, कोई कुछ
रहता है। थारू-नाच, सभ्य नाचों की तरह
धर्म और आयु का नाशक नहीं है।

इस जाति में पर्दे का रिवाज नहीं। स्त्रि[यों को]
पूर्ण स्वतन्त्रता है। ये चाहें तो पति का त्याग [करके]
दूसरे के घर जा सकती हैं। दूसरे से विवा[ह]
व्यय लेलिया जाता है। स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के [झुण्ड]
मीलों दूर नदी-नालाबों में मछलियाँ मारने [जाते]
हैं। वहाँ बड़ा कोलाहल मचाते और ख[ूब ...]
करते हैं। बेटे बेटी तक माता-पिता की लाज [नहीं]
करते। इसी प्रकार होली में स्त्री-पुरुष मतवाले
साथ साथ होली खेलते और मनमाने अपशब्द
गाते हैं। मछली मारने का दिन, होली खेल[ने ...]

।सेठ सूरजी वल्लभदास ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

न और रात में धान बीनने का दिन इन लोगों के आनन्द-दिवस है।

थारू लोग ईमानदार, सच्चे और सीधे-सादे हैं। इन्हें छल-कपट नहीं आता। पर अब नई शिक्षा और सभ्यता से शायद इनका स्वभाव बदल जाय।
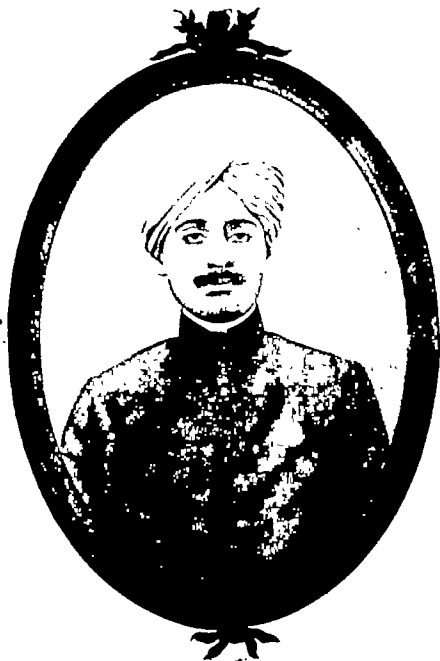
श्यामसुन्दर वर्म्मा
(नानक-मता, नैनीताल)

युद्ध और ब्रिटिश जाति की क्षमता।

[लेखक, श्रीयुत संत निहालसिंह, लन्दन]

(२)

फौज में भरती कर लेने ही से आदमी पूरे सिपाही नहीं बन जाते। पूरे सिपाही बनने के लिए युद्ध-विद्या में कुशलता प्राप्त करने की आवश्यकता है। जो लोग दफ़्तरों में क़लम घसीटते थे या दूकानों में दूकानदारी करते थे उन्हें लड़ाई के मैदानों में ले जाने योग्य बनाने के लिए उनके शरीर के रग-पुट्ठों को मज़बूत और पुष्ट करने की आवश्यकता है। पलटनों में नये भरती होने वाले मनुष्यों को बन्दूक चलाना और निशानेबाज़ी सिखलाना भी बहुत आवश्यक है। साथ ही जो लोग तोपख़ानों में भरती हों उन्हें गोलन्दाज़ी के सब प्रकार के काम का पूरा पूरा ज्ञान होना भी आवश्यक है। सवारों में भरती होने वालों को घोड़ों पर चढ़ना और उनकी रक्षा करना आदि जानना भी आवश्यक है। इस दशा में सरकार के फ़ौजी विभाग को यह बहुत ही आवश्यक है कि वह इन नये रेंगरूटों को क़वायद, परेड आदि सिखा कर सब प्रकार सुसज्जित रखने का प्रबन्ध करे। उसे चाहिए, कि वह देखता रहे कि फ़ौजी कामों में रेंगरूट इतने कुशल हो जायँ कि वे अन्य शिक्षित और रणनिपुण सैनिकों के साथ उन्हीं के सदृश सब काम अच्छी तरह समझ बूझ कर कर सकें।

हर आदमी को पूरा सिपाही बनाने का काम उसी समय से आरम्भ हो जाता है जिस समय से वह फ़ौज में भरती होता है। इसी प्रकार नई नई रेजिमेंटों के लिए नये नये अफ़सरों को भी शिक्षित करने की आवश्यकता पड़ती है। साधारण समयों में तो यह होता है कि अच्छे ख़ानदान के सुशिक्षित युवक वर्षों तक किसी फ़ौजी स्कूल में सेना-सञ्चालन की शिक्षा प्राप्त करते हैं। वहाँ उन्हें सेना-सञ्चालन की सब तरह की शिक्षा दी जाती है। पर, यह बात उस समय किसी प्रकार सम्भव नहीं जिस समय बहुत ही अल्प अवकाश में बहुत बड़ी सेना तैयार करनी पड़ती है।

युद्ध शुरू होने के पहले, सुनते हैं, लार्ड किचनर ने एक बार कहा था कि वे केवल ६ महीने के भीतर ही हर मनुष्य को, जो फ़ौज में नया भरती होगा, रण-विद्या में निपुण बना देंगे। लार्ड किचनर ने यह कहा था या नहीं, इसका सबूत यद्यपि मेरे पास नहीं, तथापि उनकी तैयार की हुई नई रेजिमेंटों ने छः महीने में ही युद्ध-विद्या सीख ली है। इस कारण उन्होंने यदि ऐसा कहा हो तो उनका कहना सच निकला।

मैं ऐसे कई मनुष्यों को जानता हूँ जो सेना में भरती होने के छः महीने बाद ही एक नये रूप में बदल गये। इन लोगों ने जिस समय अपना निज का व्यवसाय छोड़ा था उस समय इनके शरीर के रग-पुट्ठे बिलकुल ही पिलपिले थे। इनके चेहरे पीले और उतरे हुए थे। कई मनुष्यों को फ़ौज में भरती होते देख कर तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने अपने मन में सोचा कि ऐसे मनुष्यों से वास्तव में फ़ौज को कुछ भी लाभ नहीं पहुँच सकता। पर, कुछ ही महीनों बाद जो मैंने इन लोगों को फिर देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे ये सब बहुत ही मज़बूत और गठीले देख पड़े। अपनी ख़ाकी वरदी चढ़ाये और अपना सिर ऊपर को उठाये हुए ये चल रहे थे। इनकी छाती चौड़ी थी। इनकी पहले की धीमी चाल और चेहरे की उदासी एकदम दूर हो गई थी। इनकी प्रत्येक चाल से इनकी मज़बूती और तैयारी सूचित होती थी।

मैं यहाँ पर इस विषय का एक अत्यन्त ऐसा हुआ उदाहरण देता हूँ। एक मनुष्य बायस्कोप के तमाशे के समय विदूषक बनता था। वह एक प्रसिद्ध भाँड़ या मसख़रा था। उसका मामूली नाम हर्सास था। किन्तु बायस्कोप के तमाशबीन उसे पिंपक कहते थे। क्योंकि वह पिंपक ही

…ना इस प्रकार बन्दूक चलाना सिखाया जाता है जिससे …पर ठीक मार पड़े; कभी कुछ, कभी कुछ। इसी …के अनेक दृश्य दिखाये जाते हैं। इसके सिवा कसरती …हैं, ज़मीन पर पीठ के बल लेट जाना, बन्दूक उठा कर …पर वार करना आदि और भी बहुत से दृश्य सिपाहियों …को दिखाये जाते हैं। एक दिन मैंने सिपाहियों को मशीन …गन का अभ्यास करते देखा। यह दृश्य बड़ा आश्चर्य- …जनक था। बहुत से चमड़े के थैले और लट्ठ ऐसे हवादार… लटका दिये गये थे। सिपाही अपनी अपनी मशीनों के भीतर प्रवेश करते थे।

रँगरूटों को इस प्रकार शिक्षा देकर इतना शीघ्र दक्ष …बेना उन अफ़सरों के देश-भक्तिपूर्ण कर्तव्यों का फल …है जो युद्ध के पहले ही पेन्शन लेकर अलग हो गये थे, जो युद्ध का प्रारम्भ होते ही आकर फिर फ़ौज में भरती …गये। मुझे स्मरण है कि युद्ध शुरू होते ही लार्ड …चनर ने एक सूचनापत्र निकाल कर इन लोगों से फिर …ज में सम्मिलित होने की प्रार्थना की थी। उनकी इस …र्थना पर अनेक ओहदेदार उसी समय आकर सेना में मिल हो गये थे। इनमें से जो युद्ध के मैदानों में जाने योग्य न थे उन्हें रँगरूटों के तैयार करने का काम …ना गया।

एक समय की बात है। मैं रेल द्वारा सफ़र कर रहा …। गाड़ी के एक ऐसे हिस्से में मैं बैठा था जिसमें मुसाफ़िर …री करीब करीब केवल सैनिक ही सैनिक थे। मैंने देखा कि …छ ओहदेदार और सैनिक, पेन्शन से चुकने पर, फिर फ़ौज में भरती होने वाले दो ओहदेदारों की हँसी …ड़ा रहे हैं। कारण पूछने पर मुझे मालूम हुआ कि ये …हदेदार, पुराने होने के कारण, फ़ौज के नये नियमों से …रिचित नहीं। फ़ौज में जो क़ायदे-क़ानून पहले थे वे …ब प्रचलित नहीं। लड़ाई का तरीक़ा भी अब वह नहीं। …हाँ तक कि रेजिमेंटों के नाम और वरदियाँ भी बदल …ई हैं। इसी से नये सैनिक पुराने ओहदेदारों पर कभी …भी भाँति भाँति के व्यङ्ग्य करते हैं। अस्तु, जितने नये …रूट मुझे मिले सब की फुर्ती और चालाकी देख कर …मुझे आश्चर्य हुआ। फ़ौजी अफ़सरों ने उनमें नई जान …डाल दी है।

मैंने कई बार नई तैयार की गई रेजिमेंटों को युद्ध-स्थल के लिए जाते देखा है। इनकी विदाई ख़ास तौर पर की जाती है। एक दिन मैं एक सड़क से जा रहा था। मैंने देखा कि कुछ रेजिमेंटों की रवानगी के लिए बड़ी भारी तैयारी की जा रही है। मकानों की खिड़कियों और छज्जों पर लाल, हरी, सफ़ेद झण्डियाँ उड़ रही हैं। हर मकान के सामने पताकायें फहरा रही हैं। मार्ग में जगह जगह पर सजी हुई कमानियाँ और फाटक शोभा दे रहे हैं। उन पर देश-भक्तिपूर्ण वाक्य और कवितायें अङ्कित हैं। बड़ा ही मनोहर दृश्य दिखाई दे रहा है। यह सब तैयारी नगर-निवासियों ने नई सेना के सम्मानार्थ की थी।

फ़ौज के नये दलों को हाल में कई एक लड़ाइयों में लड़ने का अवसर मिला है। उनमें इन्होंने अपनी बहादुरी और कार्यदक्षता का अच्छा परिचय दिया है। इनके कार्यों से इनको दी हुई शिक्षा की उत्तमता साफ़ प्रकट है। वही आदमी, जो कुछ दिनों पहले बैंकों में बही-खाते लिखते थे और दूकानों में ग्राहकों के हाथ कपड़े बेचते थे, आज युद्ध के मैदानों में अद्भुत वीरता दिखा रहे हैं। वे शत्रु से लड़ कर चिरस्थायी गौरव प्राप्त कर रहे हैं। ये लोग तोपों की झड़ी में देश-प्रेम और देश-गौरव के गीत गाते हैं। इन्होंने बहुत बड़ी बहादुरी के साथ शत्रु की छोड़ी हुई विषाक्त "गैस" को सहन किया है। गोलियों की मार से इन्होंने ख़ूब ही शत्रुदलों का संहार किया है। सङ्गीनों की मार में भी ये किसी से कम नहीं रहे। इन वीरों ने असम्य सहिष्णुता के साथ युद्धस्थल में गरमी, सरदी और बरसात के अनेक कष्ट झेले हैं। यहाँ तक कि इनकी वीरता की प्रशंसा निर्दय शत्रु तक को करनी पड़ी है।

थोड़े ही दिन बीते, जर्मनों ने खुले तौर पर लार्ड किचनर के इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक सेना-संग्रह के कार्य्य की प्रशंसा की थी। लार्ड किचनर की नई सेना की वीरता की बदौलत जर्मनों के हमले अब वैसे भयङ्कर नहीं होते। मुझे यहाँ पर गुरु गोविन्दसिंह की बात याद आती है। जब वे पञ्जाब के अहदी जाटों और गँवार किसानों को लड़ाई के लिए तैयार करने लगे तब लोग उन पर बहुत हँसे। किन्तु शीघ्र ही उन्होंने दिखा दिया कि उनका प्रयत्न व्यर्थ न था। उन्होंने भेड़ियों को शेरों के जबड़े तोड़ने लायक़ बना दिया।

। बिना बन्दूक और संगीन के सिपाही सिपाही नहीं अतएव ये हथियार उसी समय मनुष्य को मिल जाने जिस समय वह फ़ौज में भरती हो। शत्रु ने बहुत पहले ही से ऐसी ऐसी भयानक तोपें बनवा रक्खी थीं जैसी कि और किसी जाति के पास उसने अपनी सेना को मेशीन से भरी जाने और बड़े-तोपों की भी यथेष्ट संख्या दे रक्खी थी। इनसे गोलों की लगातार बौछारें छूटती हैं। इनके सामने मनुष्य टिक सकता। वे प्रलय मचा डालती रहती हैं। शत्रु से ही से बड़ी बड़ी तैयारियाँ कर रक्खी थीं। इसीसे युद्ध का आरम्भ होते ही, अपनी सेना को गोले-और बारूद आदि पहुँचाने का बहुत ही प्रबन्ध कर लिया। उसने इतनी अधिक युद्ध-सामग्री ख़र्च आरम्भ किया कि आज तक संसार की किसी जाति किसी देश ने किसी भी युद्ध में नहीं किया था। इस में ब्रिटिश गवर्नमेंट शत्रु से जीतने की तभी आशा सकती थी जब उसके पास शत्रु से भी बहुत अधिक तोपें युद्ध-सामग्री हो। बहुत पहले से तैयारी किये बिना अधिक युद्ध-सामग्री का तैयार होना बड़ा कठिन काम इस कारण ब्रिटिश गवर्नमेंट को एक बहुत शोचनीय का सामना करना पड़ा।

किन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट ने अपने युद्धोपकरण-मन्त्री, र लायड जार्ज, तथा अन्य देश-भक्त स्त्री-पुरुषों की सहायता से इस विषय में भी अच्छी सफलता प्राप्त कर ली। तों कम कारख़ाने और लाखों मनुष्य जो पहले अन्यान्य यें तैयार करते थे, इस समय युद्ध की सामग्री तैयार ने में जी-जान से लगे हुए हैं।

युद्धोपकरणों के तैयार करने वालों में देश के बहुत बड़े आदमी भी हैं। इन लोगों ने अपने आराम और सुख का ख़याल बिलकुल ही भुला दिया है। वे सब रात-न ऐसे परिश्रम के काम कर रहे हैं जैसे इन्होंने कभी नहीं थे। बात यह है कि अपने इस परिश्रम-साध्य काम से अपनी जाति को शत्रु से अधिक बलवान् बना देना हते हैं। युद्ध-सामग्री तैयार करनेवालों में ब्रिटिश जाति उच्च घरानों की बहुत सी महिलायें भी हैं। ये पुरुषों की तरह बड़े ही परिश्रम से कारख़ानों में बैठी काम करती हैं। इनका भी यही उद्देश है। ये भी यही चाहती हैं कि युद्ध-क्षेत्र में हमारी जाति शत्रु से बढ़ जाय।

युद्ध आरम्भ हो जाने पर पिछले पत्रों को जब यह ख़बर लगी कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को युद्ध-सामग्री की बहुत बड़ी आवश्यकता है तब देश के हज़ारों स्त्री-पुरुष अपने अपने काम छोड़ कर सरकार के गोले-बारूद के कारख़ानों में आकर भरती हो गये। बहुत से मनुष्यों ने तो शाम-सबेरे और रविवार तथा छुट्टी के दिनों की भी परवा न की। उन्होंने अपना यह समय सरकार के इस काम के लिए बड़ी ख़ुशी से दे दिया। इन स्वयं-सेवकों में से बहुत से मेरे ख़ास मित्र हैं। कुछ लोग तो अपनी जीविका के लिए दिन भर कड़ा परिश्रम करते हैं। इस पर भी वे बड़ी प्रसन्नता से अपना अवकाश-समय गोले-बारूद आदि बनाने में लगाते हैं। बात यह है कि अपनी मातृ-भूमि के हित के लिए वे जो कुछ कर सकते हैं, बड़ी ख़ुशी से करना चाहते हैं और कर भी रहे हैं। ब्रिटिश जाति के इसी उत्साह ने ब्रिटेन को संसार के अन्य देशों से ऊँचा बना रक्खा है। जब तक यह उत्साह ब्रिटिश जाति में बना रहेगा तब तक, यह निश्चय जानिए, ब्रिटिश जाति उच्च ही बनी रहेगी।

अमीर और ग़रीब, पुतलीघरों और कारख़ानों के मालिक, तथा श्रमजीवी मज़दूर आदि सभी इस प्रयत्न में लगे हुए हैं कि सरकार को हर प्रकार की इतनी युद्ध-सामग्री प्राप्त हो जाय जिससे फिर उसे किसी समय उसका टोटा न पड़े। सूचना मिलते ही कारख़ानों और पुतलीघरों के अधिकारियों ने अपने काम रोक दिये। उन्होंने अपने मज़दूरों और कारीगरों को गोला-बारूद आदि तैयार करने में लगा दिया। यहाँ तक कि उन लोगों ने अपने अपने कारख़ानों की कलों को भी युद्ध का सामान बनाने में लगा दिया। मुझे एक प्रसिद्ध व्यापारी कोठी का हाल मालूम है। इस कोठी ने एक कारख़ाना सीने की नई कलें तैयार करने के लिए खोला। ये कलें युद्ध के पहले हज़ारों की संख्या में जर्मनी से यहाँ आती थीं। इस कारख़ाने की स्थापना करने-वालों का विश्वास था कि कलों की बिक्री से लाखों रुपया कमा लेंगे। उनकी बिक्री बहुत होती, क्योंकि जर्मनी से वे सस्ती पड़तीं। किन्तु युद्ध का आरम्भ होने पर गवर्नमेंट ने कारख़ाने के मालिकों को सूचना दी कि उनका कारख़ाना

ती है कि शक्ति की पूजा और बौद्ध-धर्म के विचार भी
ी धर्म के तत्वों के आधार पर यहाँ प्रचलित हुए थे।
यहाँ तक कहा जाय, वे कहते हैं कि बुद्ध भी ईरानी
थे !

डाक्टर साहब की पूर्वोक्त उक्तियों का थोड़ा-बहुत खण्डन
सज्जनों ने किया है। पर, अब तक कोई विशेष सबल
र सप्रमाण खण्डन हमारे देखने में नहीं आया।
जाता है, डाक्टर स्पूनर की यह गवेषणा पारसी धनी
पुत्र रतन टाटा की प्रसन्नता का कारण होगी। उन्हीं की
ायता से पाटलिपुत्र की खुदाई हो रही है।

२—क्या सभ्यता और बुद्धि-विकाश का सम्बन्ध किसी ऋतु-विशेष से है ?

सभ्यता और बुद्धि-विकाश का प्रथम जन्म भारतवर्ष,
ासीरिया, काल्डिया, मिस्र और चीन में हुआ था। इन
ेशों ने एक सीमा तक अपनी उन्नति अवश्य की, पर आगे
हीं कर सके। अनेक कारणों से उसका अपलोप हो गया।
कुछ देशों की सभ्यता तो नष्ट ही हो गई। इससे कुछ लोगों
ने यह निष्कर्ष निकाला है कि इन देशों का जल-वायु सभ्यता के
था विकाश के लिए अनुकूल नहीं। सभ्यता और विद्या-विज्ञान
का सब से अधिक विकाश ऐसे ही देशों में हो सकता है जो
न बहुत शीत ही हैं और न बहुत उष्ण ही। मतलब यह कि
ऐसे देश केवल योरप और अमेरिका हैं। अतएव भारत में
ऊँची सभ्यता और विद्या का विकाश नहीं हो सकता। इस
तर्क का उत्तर माडर्नरिव्यू के सम्पादक ने बड़ी योग्यता से दिया
है। उन्होंने इसे बिलकुल ही असत्य सिद्ध कर दिया है।
उनका कथन है कि—

देश, काल, समाज और प्राकृतिक अवस्थाओं का असर
मनुष्य पर अवश्य पड़ता है, पर वह सभ्यता-विरोधी बन्धनों
को काट कर अपनी अवस्था अवश्य उन्नत कर सकता है। ये
बन्धन ऐसे नहीं जो काटे न जा सकें। परमेश्वर के दरबार से
किसी जाति या देश विशेष ने कोई इजारा नहीं प्राप्त कर
ली कि वही सबसे अधिक उन्नति कर सकेगा। ईश्वर की
दृष्टि में सब मनुष्य एक से हैं। शीतप्रधान देशों के मनुष्यों में
ऐसी कौनसी विशेषता है जो अन्य देश के निवासियों में
नहीं ? विधाता ने न उन्हें चार आँखें दी हैं, न चार हाथ।
मस्तिष्क भी सब मनुष्यों का उसने एक ही सा बनाया है।
यदि ऋतु-विपर्यय के कारण ही भाग्य-विपर्यय होता तो
जिस समय भारत में विद्या, विज्ञान और सभ्यता का सूर्य
चमक रहा था उस समय योरप और अमेरिका के निवासी वन्य
जन्तुओं के सदृश क्यों जीवन-यापन करते ? उस समय यदि
भारतवासी भी यह निष्कर्ष निकालते कि शीत-प्रधान देशों के
निवासी अपनी धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक उन्नति नहीं कर
सकते तो उनका वह निष्कर्ष भी उसी तरह भ्रमात्मक सिद्ध होता
जिस तरह कि योरप और अमेरिका के वर्तमान निवासियों का
निष्कर्ष भ्रमात्मक है। बात यह है कि सुयोग मिलने और
विद्यमान बाधाओं के दूर होने पर सभी मनुष्य हर प्रकार की
उन्नति कर सकते हैं। अध्यात्म-विद्या और दर्शन-शास्त्रों में भारत
ने जितनी उन्नति की है उतनी शीत देशों के अधिवासियों ने
अब तक नहीं कर पाई। कई कारणों से भारत की उन्नति रुक
अवश्य गई, पर इससे यह सिद्ध नहीं कि उस उन्नति की वृद्धि
नहीं हो सकती। इसका प्रमाण वे भारतवासी हैं जिन्होंने वर्त-
मान समय में भी, अपनी प्रतिभा और विद्वत्ता के बल पर
अनेक नूतन तथ्यों का आविष्कार किया है और अब भी कर
रहे हैं। इन उदाहरणों से पश्चिमी देशों के विद्वानों का पूर्वोक्त
विचार समूल मिथ्या सिद्ध होता है। यदि उनके विचार को
भ्रममूलक न भी मानें तो भी भारतवर्ष के लिए निराश होने की
आवश्यकता नहीं। काश्मीर न अति शीत ही है और न अति
उष्ण ही। वह भारत ही के अन्तर्गत है। यदि ऐसीही आबो-
हवा उन्नति-प्रद सभ्यता के अनुकूल मानी जाय तो हम लोग
उसी प्रान्त में बड़े बड़े कालेज, स्कूल, विज्ञानागार आदि की
स्थापना करके अपनी उन्नति कर सकते हैं। परन्तु, सच तो
यह है कि पूर्वोक्त सिद्धान्त ही ठीक नहीं। वह विचारसह
नहीं। वह बिलकुल ही असार है। अतएव ऐसे शुष्क तर्क
की ओर दृक्पात न करके सुभीते के अनुसार अपनी उन्नति
के लिए हमें सदा सचेष्ट रहना चाहिए।

३—एक हिन्दी-प्रेमी गुजराती कुटुम्ब।

सरस्वती की गत संख्या में वैदिक प्रार्थना नामक एक
कविता प्रकाशित हुई है। इस कविता का हिन्दी और अंगरेज़ी
अनुवाद कवि-वर 'पूर्ण' जी का किया हुआ है। जिनकी प्रेरणा
से यह अनुवाद किया गया था और जिनकी कृपा से वह हमें
प्राप्त हुआ उनके विषय में जाँच करने पर हमें मालूम हुआ
कि आप में एकाधिक अनुकरणीय गुण हैं। उन गुणों में एक

५—स्त्रियों और लड़कियों के लिए ख़ास वज़ीफ़े।

स्त्री-शिक्षा का प्रचार जैसे जैसे बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे अध्यापिकाओं की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। पर वे यथेष्ट संख्या में नहीं मिलतीं। सरकारी स्कूलों के सिवा ग़ैर सरकारी स्कूल भी बहुत से खुल गये हैं, जिनमें लड़कियाँ शिक्षा पाती हैं। इन सिर्फ़ स्कूलों के लिए भी अध्यापिकायें चाहिए। स्त्रियों को अध्यापन-कार्य्य सिखाने के लिए इस प्रान्त में जो एक मात्र स्कूल है वह इस कमी को पूरा नहीं कर सकता। इसे जाने दीजिए, अध्यापन-कार्य्य के लिए काफ़ी पढ़ी लिखी स्त्रियाँ भी नहीं मिलतीं। इसी कमी की पूर्ति के लिए गवर्नमेंट ने कुछ ख़ास वज़ीफ़े देने का निश्चय किया है। ये वज़ीफ़े उन लड़कियों और स्त्रियों को मिलेंगे जो शिक्षा समाप्त होने पर अध्यापन-कार्य्य करने का वादा करेंगी। स्कूल के भिन्न क्लास (स्टैंडर्ड) में पढ़ने के लिए कितने वज़ीफ़े दिये जायँगे इसका विवरण नीचे देखिए—

(१) हाई (ऊँचे) स्टैंडर्ड में पढ़ने के लिए—

दो वज़ीफ़े—दस दस रुपये महीने के

(२) अपर मिडिल „ दो वज़ीफ़े—सात सात „

(३) लोअर „ „ आठ वज़ीफ़े—पाँच पाँच „

(४) अपर प्राइमरी „ नौ वज़ीफ़े—चार चार „

(५) लोअर „ „ पाँच वज़ीफ़े—तीन तीन „

लड़कियों के मदरसों की सर्किल इन्सपेक्ट्रेस की सिफ़ारिश पर चीफ़ इन्स्पेक्ट्रेस को ये वज़ीफ़े देने का अधिकार है। जिस सर्किल के स्कूल में पढ़ना हो उसी सर्किल की इन्स्पेक्ट्रेस को वज़ीफ़े के लिए अर्ज़ी देना चाहिए। अर्ज़ी के साथ एक नक़्शा भर कर भेजना होगा। उसका नमूना १ नवम्बर १९१२ के गवर्नमेंट गैज़ट में देखने को मिलेगा।

६—दो प्रशंसनीय दान।

गवर्नमेंट नहीं चाहती कि सस्टर के डाक्टर अपने नाम के पीछे बड़ी बड़ी पदवियाँ जोड़ कर चिकित्सा करें। इसी से वह क़ानून बना कर इस तरह के डाक्टरों के चिकित्सा-व्यवसाय को रोकना चाहती है। इस दशा में देश में जितने ही अधिक डाक्टरी सिखाने के कालेज और स्कूल खुलें उतना ही अच्छा। बम्बई में डाक्टरी का एक कालेज बहुत समय से है। अब एक और खुलने वाला है।

गुलजी सेठ नाम के एक धनी व्यापारी बम्बई में थे। उनके पुत्र का नाम सुन्दरदास और पौत्र का गोवर्धनदास था। इनमें से कोई भी जीवित नहीं। पौत्र को निःसन्तान मरे कोई दस वर्ष हुए। अपने वसीयतनामे में वे १२ लाख रुपया पुण्यार्थ लिख गये थे। यह अब तक झगड़े में पड़ा था। हाईकोर्ट ने उस झगड़े को अब मेट दिया है। गोवर्धनदास की विधवा गङ्गाबाई की रज़ामंदी से उनके पति की जायदाद के ट्रस्टियों ने इस १२ लाख रुपये के प्रामिसरी नोट बम्बई के म्यूनिसिपल कारपोरेशन को इस शर्त पर देना मंज़ूर किया है कि वह गोवर्धनदास के नाम से एक मेडिकल कालेज खोले और उसमें हिन्दुस्तानी ही अध्यापक और शिक्षक रक्खे। सो अब बम्बई में दो मेडिकल कालेज हो जायँगे।

दूसरा दान मदरास के नेलोर ज़िले के परलोकवासी ज़मींदार पिचय्याथ नायडू चौधरी का दिया हुआ है। वे अपने वसीयतनामे में लिख गये हैं कि उनकी वार्षिक आमदनी का एक चतुर्थांश उनके ज़िले में शिक्षा-प्रचार और परोपकार में लगाया जाय। चौथाई आमदनी कोई तीस हज़ार रुपया वार्षिक होगी। इसका यह अर्थ हुआ कि जिस जायदाद से इतनी आमदनी होगी उसकी मालियत आठ नौ लाख रुपये से कम नहीं।

७—बड़ौदा-राज्य में रसद का सुप्रबन्ध।

बड़ौदा-राज्य की शासन-रिपोर्ट देखने से मालूम होता है कि महाराजा गायकवाड़ अपनी प्रजा के सुभीते का कितना ख़याल रखते हैं। प्रजा को सुशिक्षित, सदाचरणशील, नीरोग और धनसम्पन्न बनाने की ओर उनका सदा ही ध्यान रहता है। इस निमित्त वे नये नये सुधार किया ही करते हैं। हर साल एक न एक नई बात वे जारी करते हैं। राज-कर्म्मचारियों के द्वारा प्रजा पर प्रायः सभी कहीं कुछ न कुछ अत्याचार होते हैं। इस ओर भी महाराजा का ध्यान गया है। अनेक प्रकार के प्रजापीड़न उनकी कृपा से बन्द हो गये हैं। एक निपीड़न के बन्द किये जाने का प्रबन्ध अभी कुछ ही दिनों से उन्होंने किया है। उसका सम्बन्ध रसद से है। सरकारी अफ़सर और कर्म्मचारी जब दौरे पर होते हैं तब उनके लिए देहातियों को रसद पहुँचानी पड़ती है। इस कारण प्रजा को बहुत कष्ट मिलता है। कितनी ही चीज़ें

९—सब-मेरीन का पता बताने वाला यन्त्र।

ग्रेट-ब्रिटेन की जहाज़ी शक्ति का मुक़ाबला करने वाला और कोई राज्य या साम्राज्य संसार में नहीं। जर्मनी ने पहले तो लुक छिप कर अपने समुद्री बेड़े द्वारा इधर उधर [illegible] और ब्रिटिश शक्ति को हानि पहुँचाने की चेष्टा की, पर जब उसकी कुछ न चली और जब उसे ज़्यादा हानि उठानी पड़ी तब उसने अपने बेड़ों को कील-नहर में बन्द कर दिया। यह देख कर जर्मनी की प्रजा ने कोलाहल मचाया। उसने कहा कि जिस नाविक शक्ति के समुत्पादन में करोड़ों क्या अरबों रुपये ख़र्च हुए हैं वह क्या इस तरह बन्दरगाहों में पड़ी पड़ी सड़ने के लिए है? इस सम्बन्ध में सर्वत्र चर्चा होने लगी। कहीं कहीं अशान्ति की ख़बरें भी उड़ने लगीं। इस पर इस शक्ति से कुछ काम लेने की ठहरी। अपने शत्रु शक्ति-त्रितय के निरपराध व्यापारी जहाज़ डुबोये जाने लगे। जर्मनी के सब-मेरीन (पानी के भीतर ही भीतर समुद्र में चलने वाले छोटे छोटे जहाज़) बिना सूचना के ही फ़्रांस, इँगलैंड और रूस के व्यापारी तथा मुसाफ़िरी और मालबरदार जहाज़ डुबोने लगे। ऐसा करना सर्वथा अन्याय था। पर आततायियों को न्याय अन्याय की क्या परवा? यह दशा देख फ़्रांस और इँगलैंड ने इस हानि से बचने की युक्तियाँ सोच निकालीं। इन जहाज़ों से छोड़े गये टारपीडो नामक अस्त्रों से बचने के कितने ही उपाय उन्होंने निकाल भी लिये। ऐसी अनेक सब-मेरीनों को उन्होंने डुबो भी दिया। यही कारण है, जो इनकी मार से फ़्रेंच और ब्रिटिश जहाज़ों के डूबने के समाचार अब बहुत ही कम सुन पड़ते हैं। कोई एक साल की परीक्षा और परिश्रम के बाद अब तो फ़्रांस ने एक ऐसा यन्त्र बना लिया है जो पचास साठ मील दूर से यह पता देता है कि समुद्र के भीतर अमुक स्थान पर सब-मेरीन है और अमुक गति से अमुक दिशा की ओर जा रहा है। यह यन्त्र जगह जगह पर समुद्र के भीतर लगा रहता है। उसके प्रयोग के लिए स्टेशन बन गये हैं। उन स्टेशनों पर तार लगे हैं। तार का सम्बन्ध उन जगहों से है जहाँ सब-मेरीन-नाशक जहाज़ों के बेड़े रहते हैं। ख़बर पाते ही वे जहाज़ दौड़ पड़ते हैं। यदि सब-मेरीन भाग न जायँ तो वे नष्ट किये जाने से न बचें। आज तक, इस तरह, न मालूम कितने सब-मेरीन जहाज़ों से जर्मनी को हाथ धोना पड़ा है। इस यन्त्र के निर्माण का अधिक यश संयुक्त-राज्य, अमेरिका, के एक विद्युच्छास्त्र-विशारद को है। उसका नाम है—विलियम ड्यूबीलियर। उसे व्योमयानों पर बेतार का तार लगाने के लिए फ़्रांस ने अपने यहाँ रक्खा है। उसी ने फ़्रांस के अध्यापक [illegible] के साथ महीनों मिहनत करके इस यन्त्र का आविष्कार किया है।

१०—अध्यापक जैकोबी की संस्कृत-रचना।

इसी संख्या में—"पाटन के जैन पुस्तक-भाण्डार" नाम का एक लेख प्रकाशित है। उसकी एक पाद-टीका में जर्मनी के बान-विश्वविद्यालय के अध्यापक हर्मन जैकोबी साहब की एक चिट्ठी का कुछ अंश उद्धृत है। हमारी प्रार्थना पर श्रीयुत मुनि जिनविजयजी ने यह चिट्ठी हमारे पास भेज दी है। यह चिट्ठी जून १९१[illegible] में बॉन नगर से भेजी गई थी। चिट्ठी साहित्य-विषयक है। अतएव उसकी नक़ल नीचे दी जाती है—

[illegible] १ जून

श्रीः

[illegible] ११ [illegible]

[illegible] ११६० [illegible]

[illegible]

श्री कान्तिविजयजी महाराजं प्रवर्तकं
प्रति याकोबीनाम्नो जर्मण्यादेशना-
सिन: पण्डितजेरात्य विज्ञप्तिरियम्

अर्बुदगिरौ वसता मया श्रुतं
श्रीमानणहिल्लपत्तने नगरे तिष्ठतीति
ज्ञायते च मया तत्र स्थाने श्री
हेमचन्द्रस्य महाभाण्डागारे
विद्यत इति । यदि श्रीमतां
कृपयाहं तद्द्रष्टुं शक्नुयां तदा

मामाज्ञापयतु श्रीमान् पण्डितेन
च लालनामिधेन सह शीघ्रमा
गमिष्यामि भवत्पार्श्वं मम चक्षु
र्युगलं च श्रीमद्दर्शनेन सफलतां
नयिष्यामीति ॥

तारायन्त्रेण संदेशोऽपेक्ष्यते

Jacobi
Rajputana Hotel
Mount Abu

जर्मनाचार्य हर्मन जैकोबी की संस्कृत-रचना और देवनागरी लिपि।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

माननीय रघुनाथ पुरुषोत्तम पराञ्जपे ने इसके आरम्भ में एक उपोद्घात जोड़ा है। महाराष्ट्र-प्रान्त में कर्वे महाशय का बड़ा नाम है। आप सच्चे सुधारक हैं। पहली पत्नी मरने पर आपने एक विधवा से विवाह करके यह दिखा दिया है कि वे नाममात्र के सुधारक नहीं। आपके साहस, धैर्य और अध्यवसाय की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। विधवाओं की दशा सुधारना और स्त्री-शिक्षा का प्रसार करना ही आपका प्रधान ध्येय है। पूने का अनाथ-बालिकाश्रम, महिला-विद्यालय, महिलाश्रम और निष्कामकर्म्ममठ आप ही के अनवरत परिश्रम का फल है। इन संस्थाओं की बदौलत सैकड़ों नहीं, हज़ारों स्त्रियों और बालिकाओं को असंख्य लाभ पहुँचा है और अब तक बराबर पहुँच रहा है। प्रस्तुत पुस्तक का नाम यद्यपि आत्मवृत्त है तथापि कर्वे महाशय का आत्मवृत्त पूर्वोक्त संस्थाओं ही का विस्तृत वृत्त है। मानसिक शक्ति और निश्चय-दृढ़ता होने से अल्पवित्त मनुष्य भी कैसे कैसे सर्वोपयोगी काम कर सकता है, यह बात इस पुस्तक के प्रति पृष्ठ से प्रकट होती है। पुस्तक में अनेक हाफ़टोन चित्र भी हैं। सुनते हैं, इसका हिन्दी-अनुवाद भी प्रकाशित होने वाला है। होना चाहिए।

☼

३—दो गुजराती-पुस्तकें। ये पुस्तकें बम्बई के सस्तु-साहित्य-वर्धक कार्यालय से प्राप्त हुई हैं। एक का नाम है—थियोडर पार्कर। इसकी पृष्ठ संख्या १०८ और मूल्य ८ आने है। स्व० नारायण हेमचन्द्र इसके लेखक हैं। यह इस पुस्तक की दूसरी आवृत्ति है। इसमें अमेरिका के एक धर्म्माचार्य्य, पादरी पार्कर, का जीवनचरित है। यह चरित बड़े महत्त्व का है। पादरी पार्कर गुलामों के व्यापार के विरुद्ध थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो उदारतापूर्ण काम किये उनका उल्लेख इस पुस्तक में पढ़ कर हृदय आनन्द में मग्न हो जाता है। दूसरी पुस्तक भी जीवनचरितात्मक है। इसका नाम है—महान शीख गुरुओ। इसकी पृष्ठ-संख्या १५२+२७२ और मूल्य १४ आने है। इसमें गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के चरित हैं। इनकी सामग्री हिन्दी, पञ्जाबी, अँगरेज़ी आदि कई भाषाओं की पुस्तकों से ली गई है। गुरु गोविन्दसिंह का चरित अधिक विस्तृत है। यह काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा प्रकाशित हिन्दी-पुस्तक का अनुवाद है। आरम्भ में गुरु गोविन्दसिंह का एक सुन्दर हाफ़टोन चित्र है। दोनों पुस्तकों पर अच्छी जिल्द है।

☼

४—राजकुमारी। भाषा मराठी; आकार मँझोला; पृष्ठ संख्या १६८; मूल्य ८ आने; अनुवादकर्त्री—श्रीमती सौभाग्यवती कमलाबाई किबे, देवास। यह पुस्तक देख कर चित्त बहुत प्रसन्न हुआ; इस लिए कि यह एक हिन्दी-पुस्तक का अनुवाद है और अनुवाद करने वाली हैं एक महाराष्ट्र-महिला। पुस्तक की प्रस्तावना में कमलाबाई ने हिन्दी-भाषा की बड़ी प्रशंसा की है। इन्दौर के डाक्टर सरयूप्रसाद की प्रेरणा से आपने हिन्दी सीखी है। यह अनुवाद उसी का फलस्वरूप है। इसके मूल लेखक हैं—पण्डित किशोरी-लालजी गोस्वामी। सरस्वती के पाठक गोस्वामीजी से परिचित ही हैं। अनुवाद उत्तम हुआ है। मूल का भावार्थ नहीं छूटने पाया। कहानी मनोरञ्जक, अतएव पढ़ने लायक़ है। छपाई साफ़-सुथरी है। श्रीमती कमलाबाई को ही लिखने से शायद यह पुस्तक मिलती है।

☼

५—पुस्तकद्वय। पण्डित नन्दकुमार देव शर्म्मा की लिखी हुई दो पुस्तकें हमें प्राप्त हुई हैं। पहली का नाम है—इटाली की स्वाधीनता। इसकी पृष्ठ-संख्या १०९ और मूल्य ६ आने है। अपनी खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए १८१५ से १८७० ईसवी तक इटली ने जो कुछ किया उसीका वर्णन इस पुस्तक में है। इसे इटली का आधुनिक इतिहास कहना चाहिए। वर्तमान महायुद्ध में इटली ने क्यों इँगलैंड का साथ दिया है, यह बात इस पुस्तक के पाठ से अच्छी तरह मालूम हो सकती है। पुस्तक महत्त्व की है—समयानुकूल भी है। दूसरी पुस्तक का नाम है—बालवीर-चरितावली। इसकी पृष्ठ-संख्या केवल ४०, पर मूल्य ८ आने है। इसमें ध्रुव, प्रह्लाद, अभिमन्यु, बादल, हकी-क़तराय आदि सात आठ धर्म्मवीर, ज्ञानवीर और पराक्रम-वीर भारतीय बालकों का रूपयुक्त वृत्तान्त है। यह पुस्तक भी अच्छी है। विशेष करके बालकों और नवयुवकों के पढ़ने लायक़ है। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—लेखकी कम्पनी, ४२ शिवठाकुर लेन, कलकत्ता।

☼

६—सुबोधग्रन्थमाला की पुस्तकें। इस माला का गुम्फन करने वाले पण्डित रामदहिन शर्म्मा काव्यतीर्थ हैं। आप

११—ज्योतिषशास्त्र। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १००, सचित्र, साधारण जिल्द बँधी हुई। मूल्य ८ आने, लेखक—बाबू दुर्गाप्रसाद खेतान, एम० ए०, बी० एल०; प्राप्ति-स्थान—साहित्य-संवर्द्धिनी समिति, ७९ कारन स्ट्रीट, कलकत्ता। अँगरेज़ी में जैसी साइंटिफ़िक प्राइमर्स हैं वैसी ही यह पुस्तक भी है। इसमें ज्योतिष की मोटी मोटी बातें हैं। ३१ चित्र देकर ये बातें समझाई गई हैं। ग्रहों की गति, उनका समय-काल, उनका परिमाण, उनका मण्डल, उनकी विशेषतायें आदि सरल हिन्दी में वर्णन करके लेखक महाशय ने पुस्तक को सर्वसाधारण के बोधगम्य बनाने की यथेष्ट चेष्टा की है। ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। विज्ञान की अन्यान्य शाखाओं पर भी ऐसी पुस्तकें निकलनी चाहिए।

☼

१२—शरीरतालिका। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ७६; मूल्य १ आने। इन्द्रप्रस्थ-वैदिक-विद्यालय के अध्यापक श्रीचतुरसेन शास्त्री ने इस छोटी सी पुस्तक में शरीर के अवयवों, नाड़ियों, अस्थियों और धातुओं आदि की तालिका देकर उनमें से किसी किसी का संक्षिप्त विवरण भी दिया है। आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिए यह तालिका विशेष उपयोगिनी है।

☼

१३—ताप। यह पुस्तक प्रयाग की विज्ञान-परिषद् के प्रबन्ध से प्रकाशित हुई है और उसी को लिखने से मिलती है। इसका आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १४ और मूल्य ४ आने है। इसे पण्डित प्रेमवल्लभ जोशी, बी० एस-सी० ने लिखा है। इसमें ११ अध्याय हैं। उनमें गरमी का प्रभाव, गरमी और पानी, गरमी का फैलना, गरमी क्या है—इत्यादि विषयों का सचित्र विवेचन है। बड़ी अच्छी पुस्तक है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। ऐसी पुस्तकों की बदौलत अपनी भाषा में भी हम लोग विज्ञान-विषयक स्थूल बातें सहज में सीख सकेंगे।

☼

१४—तेरापंथी-हितशिक्षा। पृष्ठ-संख्या १००, मूल्य ८ आने, लेखक, मुनिराज विद्याविजयजी, प्राप्ति-स्थान, श्रीयशोविजय-जैन-ग्रन्थमाला आफ़िस, भावनगर। जैनियों के एक सम्प्रदाय का नाम है—तेरापन्थी। इस पुस्तक से जान पड़ता है कि इस पन्थ के अनुयायी दया-दान को कुछ नहीं समझते और मूर्तिपूजा की परिपाटी के भी परिपोषक नहीं। उनकी इन्हीं बातों तथा उनके और कई सिद्धान्तों और आचारों का खण्डन इस पुस्तक में किया गया है। इस मत के चलाने वाले भीखमजी के चरित की विरुद्धालोचना भी की गई है। इसी का नाम लेखक महाशय ने हितशिक्षा लिखा है। पुस्तकान्त में शिक्षाशतक नाम का एक पद्यप्रबन्ध भी है। उसमें भी यही पूर्वोक्त बातें हैं। खेद की बात है, जैनियों में भी परस्पर विरोध-भाव की वृद्धि का सूत्रपात हो चला। पुस्तक हिन्दी में है और अच्छी छपी है।

☼

१५—कवि नर्मदाशङ्करनी साहित्यसेवा। भाषा गुजराती, आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ८२, लेखक—पोपटलाल कल्याणदास पटेल, हेडमास्टर, म्यूनीसिपल स्कूल, नानपुरा, सूरत—से प्राप्य। मूल्य ४ आने। इस पुस्तक में गुजराती के प्रसिद्ध कवि नर्मदाशङ्कर का चरित और उनकी साहित्य-सेवा का वर्णन है। गुजराती भाषा की पाँचवीं साहित्य-परिषद् ने इसे पसन्द करके लेखक को ५०) इनाम दिया है। निबन्ध पढ़ने लायक है।

☼

१६—रोज़नामचा। रामघाट, बनारस सिटी, 'की बी० एस० वापसी एंड कम्पनी ने अपने रोज़नामचे (Diary) की एक कापी भेजी है। यह रोज़नामचा १९१९ ईसवी का है। बड़ा सुन्दर है। पक्की जिल्द बँधी हुई है। पेंसिल रखने के लिए जगह है, कागज़ चिकना है। रोज़नामचा तो यह है ही, और भी कितनी ही ऐसी बातें इसमें हैं जिनका जानना बहुत ज़रूरी है। मूल्य १ आना है।

☼

१७—शिल्परत्नाकर। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ९४, मूल्य १२ आने, प्राप्ति-स्थान—गौड़हितकारी आफ़िस, मँसूरी। इसके पहले भाग में फ़ोटो लेने की तरकीब, दूसरे में घड़ियों के कल-पुरज़ों आदि के नाम, तीसरे में पालिश, वार्निश आदि के नुसख़े; चौथे में कुछ साधारण ओषधियाँ हैं।

☼

१८—शिशु-शिक्षा। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या २४, मूल्य २ आने। इस छोटी सी पुस्तक में माता का प्यार,

वन-कुसुम

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई कहानी तो ऐसी है कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती। मूल्य केवल चार आने है।

सदुपदेश-संग्रह

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुंसिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बराड़ के विद्या-विभाग में बहुत हुई। यह कई बार छापा गया। उसी नसीहत-नामा का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रन्थों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हीं में से छाँट छाँट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। शेखसादी का कथन है कि 'अगर भीत पर भी कोई उपदेशात्मक वचन लिखा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसे अपने कान में धर ले'। यह बिल्कुल ठीक है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उपदेश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। उनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

टाम काका की कुटिया

हमारे यहाँ से हिन्दी-भाषा में बहुत शीघ्र प्रकाशित होगी। यह बहुत रोचक उपन्यास है। अँगरेज़ी में यह पुस्तक बहुत ही विख्यात है। भारतीय भाषाओं में भी इसके अनुवादों के कई संस्करण हो चुके हैं।

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द-मूल्य केवल २॥)

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामायण संस्कृत में है। उसके हिन्दी-भाषानुवाद भी अनेक हुए हैं। पर यह अनुवाद अपने ढँग का बिल्कुल नया है। इसमें अक्षरशः अनुवाद है। भाषा सरल और सरस है। हिन्दू मात्र रामायण को धर्मपुस्तक मानते हैं। असल में यह पुस्तक ऐसी ही है। इसके पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—पाँच काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में रहेंगे। उत्तरार्द्ध छप रहा है, यह जल्दी छप कर प्रकाशित होगा। जल्दी मँगाइए।

गीताञ्जलि

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में कितना आदर है; यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बँगला भाषा जानते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य १) एक रुपया।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हिन्दी-शेक्सपियर

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। असल में आज तक जो कीर्ति शेक्सपियर को प्राप्त हुई है और जितना प्रचार शेक्सपियर की किताबों का संसार में हुआ है उतने यश का प्राप्त करनेवाला कोई नहीं हुआ, और न ऐसा किसी की किताब का ही प्रचार हुआ। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के शेक्सपियर का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) आने है और छहों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया है। जल्दी मँगाइए।

श्रीगौरांगजीवनी

मूल्य ≈) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का जन्म बङ्गाल में हुआ। उनका नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। ये वैष्णव धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके जीवन-चरित्र अनेक भाषाओं में छपे हुए हैं। हिन्दी-भाषा में उनके जीवन-चरित की बड़ी ज़रूरत थी। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है, किन्तु वैष्णव धर्मावलम्बियों को तो इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

सूचना

मेरे ग्रन्थ 'गीताय ईश्वरवाद' को हिन्दी में अनुवाद करने का एकमात्र हक़ किसरौल, मुरादाबाद के ज्यालादत्त शर्मा को है। किसी और महाशय को दी हुई अनुवाद की आज्ञा को मैं इस सूचना द्वारा मंसूख़ करता हूँ। यदि कोई और मनुष्य उक्त ग्रन्थ का अनुवाद करेगा तो वह हर्जे का देनदार होगा।

१३९ कार्नवालिस स्ट्रीट
कलकत्ता
५ अगस्त १५ ई०

हीरेन्द्रनाथ दत्त।

नये चित्र

श्री श्री रामकृष्ण परमहंस देव

आकार—२८" × १८" मूल्य डेढ़ रुपया।

वनविलासिनी

आकार—१८" × ११" मूल्य एक रुपया।

मन्दिर-पथ में एक रमणी

आकार—१८" × ११" मूल्य एक रुपया।

नक़शा मैदान जंग

यह हमने हिन्दी-उर्दू में छपाया है। घर बैठे लड़ाई की सैर कीजिए। मूल्य आठ आने।

बाला-पत्र-कौमुदी

मूल्य ≈) दो आने

यह बड़े आनन्द की बात है कि भारत-वर्ष के सभी प्रान्तों में कन्यापाठशालायें खुल गई हैं और उनमें हज़ारों कन्यायें शिक्षा पा रही हैं। स्त्री-शिक्षा से भारत का सौभाग्य समझना चाहिए। इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है। अवश्य मँगाइए।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

धोखे की टट्टी।

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती और नेकचलनी और एक अनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फ़ोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। ज़रा मँगाकर देखिए तो कैसी "धोखे की टट्टी" है। मूल्य ।=)

पार्वती और यशोदा।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षाएँ दी गई हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा अच्छा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता है। स्त्रियों के लिए ऐसे ऐसे उपन्यासों की अत्यन्त आवश्यकता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित कामताप्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास लिखकर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार किया है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।=)

सुशीला-चरित।

आज कल हमारे देश के स्त्री-समाज में ऐसे ऐसे दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुराचार घुसे हुए हैं जिनके कारण स्त्री-समाज ही नहीं पुरुष-समाज भी नाना प्रकार के दुःखजालों में फँस कर घोर नरक-यातना भोग रहा है। यदि भारतवासी अपने देश, धर्म और जाति की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से पहले, सब प्रकार की उन्नतियों के मूल स्त्री-समाज का सुधार करना चाहिए। फिर देखिए, आपकी सभी कामनायें आप से आप ही सिद्ध हो जायँगी। स्त्री-समाज के सुधार की शिक्षा देने में 'सुशीलाचरित' पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री को सुशीला-चरित अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

बाला-बोधिनी।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिनकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने लिए प्रकाशित हुई है। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बाला-बोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

समाज।

मिस्टर आर. सी. दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

सुखमार्ग।

इस पुस्तक का जैसा नाम है इसमें गुण भी वैसा ही है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

SARASVATI—Reg. No. A248.

भाग १] फ़रवरी, १९१६ [संख्या २, पूर्ण संख्या ४

वार्षिक मूल्य ४) सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी [प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची।

पृष्ठ

चित्र-सूची।

---

(५) नकालों से सावधान।

जे० एन० वर्म्मन की अचूक औषधियां।

यही नमक सुलेमानी मन्दाग्नि, भूख न लगना, हैज़ा, बदहज़मी, पेट का अफारा, खट्टी या धुयेंभी डकारों का आना, पेट का दर्द, पेचिश, बवासीर, कब्ज़, खीदा, वायुगोला आदि सभी उदरसम्बन्धी रोगोंको जड़मूल से नष्ट करता है। यही कारण है कि थोड़ेही दिनों से क़रीब सहस्त्रों शीशियां हमेशा बिकरही हैं। इसी लिये यह नाम का ही नहीं, बल्कि असली नमक सुलेमानी है। क़ीमत फ़ी शीशी १) बड़ी बोतल ५)

पीयूषधारा।

प्रत्येक पुरुष को, प्रत्येक मुल्क में, प्रत्येक घर में इसकी आवश्यकता है। क्योंकि यह पीयूषधारा आरोग्यता की अधिदेवी है। बूढ़ो बच्चों, युवा पुरुषों तथा स्त्रियों के प्रायः कुल रोगों को जो घरों में होते हैं अचूक इलाज है। यह प्रायः सैकड़ों प्रकार के रोगों के लिये एकही दवा ईजाद कीगई है। रोगों की संख्या सूची में पूरे तौर की दी हुई है मंगा देखिये। जिसने एकबार मंगाया सदा के लिये मित्र बनाया है। यह जान और माल दोनों को बचाता है। क़ीमत फ़ी शीशी १॥)

इसके सेवन से सब प्रकार की खाँसी, कफ, दमा, जाड़े का बोखार, हैज़ा, शूल, संग्रहणी, बायगोला, अतीसार, पेट का दर्द, कै होना, जी मिचलाना, बच्चों के हरे पीले दस्त होना, कुक्कुर-खाँसी, दूध पटकदेना आदि बीमारियां सब रामबाण की नाईं आराम होजाती हैं। यह अपूर्व गुण दिखलाने वाली स्वादिष्ट और सुगन्धित दवा सर्व-साधारण के लिये ईजाद की गई है। क़ीमत फ़ी बड़ी शीशी १) छोटी शीशी ॥)

और २ प्रसिद्ध दवाओं के लिये बड़ा सूचीपत्र मंगाइये।

पताः—जे० एन० वर्म्मन ऐंड को,

"सुलेमानी" कार्य्यालय पो० जहानाबाद-(गया)

इसे देखिये

लीजिये! जो चीज़ हिन्दी भाषा में कमी थी वो नहीं यह भी अब छप कर तैयार है। कोई भी हिन्दी पढ़ा लिखा न होगा जो इससे पूरा पूरा लाभ न उठा सके। ज़मींदार, नम्बरदार, तहसीलदार, सेठ, साहूकार, पटवारी, ठेकेदार, ओवरसियर, मिस्त्री व मालिक मकानों के लिये तो यह दो रत्न समझिये। आप ज़रूर देखियेः—

१ "सिविल इंजीनियरिंग" इसमें नये मकान बनाने, पुरानों की मरम्मत कराने के कुल सामान, ईंट पत्थर चूना कंक्रीट लकड़ी आदि का खुलासा बयान है। सब तरह के कच्चे पक्के कुए और तालाब बनवाने, मरम्मत कराने और उनसे खेतों में पानी लेने के नये नये तरीक़े चित्र दे दे कर समझाये हैं। इसमें सड़कों के बनाने, मरम्मत कराने का भी पूरा बयान है। इन सब के अलावा और भी अनेक उपयोगी बातों का बयान है। सचित्र पक्की जिल्द का १।)

२ "सर्वेइंग और लेवलिंग" मू० ॥।)
इसमें अनेक चित्र व नक़शे दे दे कर जरीब, कम्पास, सख़्ता (प्रेमटेबिल) और लेविल आदि सब तरह की पैमायशों के बड़े ही आसान तरीक़े बताये गये हैं। पुस्तक अनूठी है।

पं० निहालचन्द्र गौड़, १५० माधव कालेज
Ujjain उज्जैन (C.I.)

कविता-कलाप

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

इस पुस्तक में सरस्वती से आरम्भ करके ४६ प्रकार की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए०, बी० एल०, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रंगीन भी हैं। ऐसी उत्तम सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल २॥) दो रुपये।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढंग की अनोखी ही हैं। स्कूलों में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्रों को ये पुस्तकें पारितोषिक में देने योग्य हैं। प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को यह 'रत्नमाला' मँगाकर अपना कण्ठ अवश्य सुभूषित करना चाहिए। प्रत्येक भाग में ५० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अपूर्व ग्रन्थ

सीता-चरित।

अभी तक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी जिसमें आरम्भ से अन्त तक सुन्दर सीता जी की अनुकरणीय जीवन-घटनाएँ विस्तारपूर्वक वर्णन हो, जिसमें सीताजी के जीवन की प्रत्येक घटना पर स्त्रियों के लिए आवश्यक उपदेश दिया गया हो। इसी अभाव को दूर करने के लिए हमने "सीता-चरित" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सीताजी की जीवनी ही विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवन घटनाओं का महत्व भी विस्तार के साथ लिखा गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है। भारत वर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें केवल सीताचरित ही नहीं है, रामचरित भी है। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पति-धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। काग़ज़ मोटा। सचित्र। ये तो भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत ही कम। केवल १।) सवा रुपया।

कविता-कुसुम-माला।

इस पुस्तक में विविध विषयों पर सरस और सुन्दर सरल हिन्दी कविताओं का संग्रह है। हिन्दी-कविताओं का ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा। मूल्य ॥) आने।

चरित्रगठन ।

जो नवयुवक विद्यार्थी चरित्रगठन के अभिलाषी हैं वे तो इसे अवश्य ही पढ़ें, और विशेष कर उन्हीं के लिए यह पुस्तक बनाई गई है। वे इस पुस्तक को पढ़ कर आप तो लाभ उठावेंगे ही, किन्तु अपने भावी सन्तानों को भी विशेष लाभ पहुँचा सकेंगे। इस पुस्तक के सभी विषय सुपाठ्य हैं। जिस कर्तव्य से मनुष्य अपने समाज में आदर्श बन सकता है उसका उल्लेख इस पुस्तक में विशेष रूप से किया गया है। सम्पत्ति, उदारता, सुशीलता, दया, क्षमा, प्रेम, प्रतियोगिता आदि अनेक विषयों का वर्णन उदाहरण के साथ किया गया है। अतएव क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवा, क्या स्त्री सभी इस पुस्तक को एक बार अवश्य एकाग्र मन से पढ़ें और इससे पूर्ण लाभ उठावें। २३२ पृष्ठ की ऐसी उपयोगी पुस्तक का मूल्य नाममात्र के लिए केवल ॥) बारह आना है।

कुमारसम्भवसार ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

कवि-कुलगुरु कालिदास के "कुमार-सम्भव" काव्य का यह मनोहर सार छप कर तैयार हो गया। प्रत्येक हिन्दी-कविता-प्रेमी को द्विवेदी जी की यह मनोहारिणी कविता पढ़ कर आनन्द प्राप्त करना चाहिए। कविता बड़ी रसवती और प्रभावशालिनी है। मूल्य केवल ।) चार आने।

भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा ।

श्रीमान् पण्डित मनोहरलाल ज़ुत्शी, एम० ए० के नाम को कौन नहीं जानता। आप उर्दू और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध लेखक हैं। आपने "एजुकेशन इन ब्रिटिश इंडिया" नामक एक पुस्तक अँगरेज़ी में लिखी है और उसे इंडियन प्रेस, प्रयाग से छपवाकर प्रकाशित किया है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। उस पुस्तक का सारांश हिन्दी और उर्दू में भी छप गया है। आशा है हिन्दी और [illegible] पाठक इस उपयोगी पुस्तक को मँगाकर लाभ उठावेंगे। मूल्य इस प्रकार है—

एजुकेशन इन ब्रिटिश इंडिया (अँगरेज़ी) [illegible]
भारतवर्ष में पश्चिमीय शिक्षा (हिन्दी) [illegible]
हिन्द में मग़रबी तालीम (उर्दू में) [illegible]

कर्मयोग ।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग [illegible] व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद कर्म कर [illegible] योग" नामक पुस्तक छापी गई है। इस [illegible] अध्याय हैं। उनमें क्रमशः—१—कर्म का मनुष्य पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—[illegible] है ?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—वैराग्य क्या [illegible] त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का [illegible] इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी [illegible] किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के [illegible] को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य [illegible]

संक्षिप्त इतिहासमाला ।

लीजिए, हिन्दी में जिस चीज़ की [illegible] उसकी पूर्ति का भी प्रबन्ध हो गया। [illegible] प्रसिद्ध लेखक पण्डित श्यामबिहारी मिश्र, [illegible] और पण्डित शुकदेवबिहारी मिश्र, बी० [illegible] सम्पादकत्व में पृथ्वी के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध [illegible] हिन्दी में संक्षिप्त इतिहास तैयार होने का प्रबन्ध [illegible] गया है। यह समस्त इतिहासमाला कोई [illegible] संख्याओं में पूर्ण होगी। इसकी [illegible] इंडियन प्रेस, प्रयाग, से प्रकाशित होती [illegible] तक ये ६ पुस्तकें छप चुकी हैं :—

१—जर्मनी का इतिहास ...
२—फ्रांस का इतिहास ...
३—रूस का इतिहास ..
४—इंगलैंड का इतिहास ..
५—जापान का इतिहास ...
६—चीन का इतिहास

भाग १७, खण्ड १
फ़रवरी १९१६—माघ १९७२

संख्या २,
पूर्ण संख्या १९४

सूरदास ।

(भैरवी)

सूर को अन्धा कौन कहे ?
उसे लोक को जो आलोकित अन्धा नहीं रहे ! ॥१॥
क्या प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम-रूप ?
नहीं, घोर तम में दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥२॥
छिने बाहिरी चकाचौंध से सबके नेत्र बिगाड़,
अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको—सभी हटाई आड़ ॥३॥
नेत्र-रहित हो रस अथाह की पाई तुमने थाह,
नेत्र-सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥४॥
गही कृष्ण ने बाँह तुम्हारी हुई न अड़चन नेक,
तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनिया—थे तुम दोनों एक ॥५॥
जिस अन्तर ने अन्ध कूप से खींच किया दुख दूर,
कैद उसी को किया हृदय में, हो तुम सचमुच सूर ! ॥६॥
कहीं न देखा सुना गया था सूर-श्याम का साथ,
लेकिन तुमने कर दिखलाया यह भी हाथों हाथ ॥७॥
अलङ्कार-ध्वनि-रस-मय निकली हृदय-क्षेत्र से तान,
वही हमारे लिए बन गई मधुर अलौकिक गान ॥८॥
जिस सद्भक्ति-तत्त्व को उसने फैलाया सब ओर,
उसे भूल कर हन्त ! हुए हम आज घोर से घोर ॥९॥

बदरीनाथ भट्ट ।

हम उनकी आख्यायिकाओं पर विचार करते हैं, जिनका प्रचार वैदिक काल में था और जिनका उल्लेख जगह जगह पर उनके प्राचीन साहित्य में मिलता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में लिखा है—"तत्र नावा प्रभ्रंशन यत्र हिमवतः शिरः"—अर्थात् जहाँ पर नाव बाँधी जहाँ हिमवान की चोटी है। इससे हम कह सकते हैं कि कभी आर्य्यों ने हिमवान् की चोटी पर अपनी नाव बाँधी थी। यह घटना इतनी प्राचीन है कि वैदिक काल में इसका केवल प्रवाद मात्र रह गया था। उसके पूर्व की किसी घटना का उल्लेख किसी भी वेद-मन्त्र अथवा मन्त्रांश में नहीं मिलता। यह नाव आर्य्यों की किधर से आई और कब आई, इसका पता वेदों के उस अंश में, जो अब बच रहा है, कहीं नहीं मिलता। कहने की आवश्यकता नहीं कि वेदों के सब अंश इस समय प्राप्य नहीं। उनकी अनेक शाखाओं का लोप हो चुका है। कितनी ही लुप्तप्राय हैं। शतपथब्राह्मण में एक स्थल पर आर्य्यों का जलौघ के समय नाव पर चढ़ कर अपने निवासस्थान को छोड़ने का वर्णन पाया जाता है। आख्यायिका यह है—

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। १। स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति, कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति। २। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यामग्रे बिभरासि, स यदा तामतिवर्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति। ३। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धते ऽथेतिथीं समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति। ४। तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे स औघ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव। ५। स होवाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे। ६।

इसका सारांश यह है कि एक बार मनु पानी लेने गये। जब वे पानी ले रहे थे, अचानक उनके हाथ में एक मछली आ गई। मछली छोटी थी। वह मनु से बोली—मुझे आप ले चलिए। मैं आप को पार लगाऊँगी। मछली की बात सुन कर मनु को आश्चर्य हुआ। मनुजी ने कहा कि तू मुझे किससे पार करेगी। मछली ने कहा—ओघ से। एक ओघ उठेगा और सब लोग डूब जायँगे। मैं उसी ओघ से तुम्हें बचाऊँगी। अभी मैं छोटी हूँ। मुझे और मछलियाँ निगल जायँगी। मनुजी ने उसे लेकर कुम्भ में रख दिया। जब वह बढ़ कर घड़े में न अँट सकी तब गड्ढे में रक्खा। पर थोड़े ही दिनों में वह इतनी बड़ी हो गई कि वह गड्ढे में भी न आ सकी। फिर उसे समुद्र में छोड़ दिया। मछली बहुत बड़ी हो गई। फिर अचानक ओघ उठा और चारों ओर पानी भर गया। मनु ने एक नाव पर बैठ कर अपना प्राण बचाया। मछली इसी बीच में देख पड़ी। मनु ने अपनी नाव की डोरी को मछली की पीठ से बाँधा। मछली उत्तर की ओर चली और पर्वत पर पहुँची। वहाँ मनु ने अपनी नाव को मछली की पीठ से खोल कर बाँधा। वहाँ से ज्यों ज्यों पानी खिसकता गया, नाव नीचे खिसकती गई। उत्तर के पहाड़ पर जिस स्थान पर नाव खिसक कर पहुँची थी उसे मनु का अवसर्पण कहते हैं। उस ओघ में सब प्रजा डूब गई थी। मनु अकेले बच रहे थे।

इसी कथा का वर्णन पुराणों में मत्स्यावतार के सम्बन्ध में किया गया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य्य लोग कहीं दक्षिण के रहने वाले

हम उनकी आख्यायिकाओं पर विचार करते हैं, जिनका प्रचार वैदिक काल में था और जिनका उल्लेख जगह जगह पर उनके प्राचीन साहित्य में मिलता है। अथर्ववेद के एक मन्त्र में लिखा है—"तत्र नावा प्रभ्रंशन यत्र हिमवतः शिरः"—अर्थात् वहाँ पर नाव बाँधी जहाँ हिमवान की चोटी है।

इससे हम कह सकते हैं कि कभी आर्य्यों ने हिमवान् की चोटी पर अपनी नाव बाँधी थी। यह घटना इतनी प्राचीन है कि वैदिक काल में इसका केवल प्रवाद मात्र रह गया था। उसके पूर्व की किसी घटना का उल्लेख किसी भी वेद-मन्त्र अथवा मन्त्रांश में नहीं मिलता। यह नाव आर्य्यों को किधर से आई और कब आई, इसका पता वेदों के उस अंश में, जो अब बच रहा है, कहीं नहीं मिलता। कहने की आवश्यकता नहीं कि वेदों के सब अंश इस समय प्राप्य नहीं। उनकी अनेक शाखाओं का लोप हो चुका है। कितनी ही लुप्तप्राय हैं। शतपथब्राह्मण में एक स्थल पर आर्य्यों का जलौघ के समय नाव पर चढ़ कर अपने निवासस्थान को छोड़ने का वर्णन पाया जाता है। आख्यायिका यह है—

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे। १। स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति, कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति कथं ते भृतिरिति। २। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि, स यदा तामतिवर्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वाऽतिनाष्ट्रो भवितास्मीति। ३। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीं समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति। ४। तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे स औघ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव। ५। स होवाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे। ६।

इसका सारांश यह है कि एक बार मनु पानी लेने गये। जब वे पानी ले रहे थे, अचानक उनके हाथ में एक मछली आ गई। मछली छोटी थी। वह मनु से बोली—मुझे आप ले चलिए। मैं आप को पार लगाऊँगी। मछली की बात सुन कर मनु को आश्चर्य हुआ। मनुजी ने कहा कि तू मुझे किससे पार करेगी। मछली ने कहा—ओघ से। एक ओघ उठेगा और सब लोग डूब जायँगे। मैं उसी ओघ से तुम्हें बचाऊँगी। अभी मैं छोटी हूँ। मुझे और मछलियाँ निगल जायँगी। मनुजी ने उसे लेकर कुम्भ में रख दिया। जब वह बढ़ कर घड़े में न अँट सकी तब गड्ढे में रक्खा। पर थोड़े ही दिनों में वह इतनी बड़ी हो गई कि वह गड्ढे में भी न आ सकी। फिर उसे समुद्र में छोड़ दिया। मछली बहुत बड़ी हो गई। फिर अचानक ओघ उठा और चारों ओर पानी भर गया। मनु ने एक नाव पर बैठ कर अपना प्राण बचाया। मछली इसी बीच में देख पड़ी। मनु ने अपनी नाव की डोरी को मछली की पीठ से बाँधा। मछली उत्तर की ओर चली और पर्वत पर पहुँची। वहाँ मनु ने अपनी नाव को मछली की पीठ से खोल कर बाँधा। वहाँ से ज्यों ज्यों पानी खिसकता गया, नाव नीचे खिसकती गई। उत्तर के पहाड़ पर जिस स्थान पर नाव खिसक कर पहुँची थी उसे मनु का अवसर्पण कहते हैं। उस ओघ में सब प्रजा डूब गई थी। मनु अकेले बच रहे थे।

इसी कथा का वर्णन पुराणों में मत्स्यावतार के सम्बन्ध में किया गया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि आर्य्य लोग कहीं दक्षिण के रहने वाले

रिषी से मायु नामक जन्तु देखा था, जिसका उल्लेख उन्होंने यजुर्वेद में किया है।

जगन्मोहन वर्म्मा

जननी।

(१)

हे जननी, हे जन्मदायिनी जननी, मेरी,
    हो जाता मन विकल याद आते ही तेरी।
समझा तू ने सदा मुझे आँखों का तारा,
    मुझे समझती रही सदा प्राणों से प्यारा।
        तू ने अनेक दुख हैं सहे
            सुखपूर्वक मेरे लिए।
        तू ने मेरे कल्याण-हित
            क्या क्या यत्न नहीं किये।

(२)

कोई पीड़ा हुई ज़रा सी भी जब मुझको,
    देखा गया विशेष व्यथित व्याकुल तब तुझको।
रात रात भर तुझे दृगों में नींद न आई,
    जिस प्रकार हो सका हमारी विपद् व्यथा पराई।
        मेरे सुख में सुख था तुझे
            दुख में दुख रहा सदा।
        मुझ से सर्वत्र अभिन्न था
            तेरा तन मन सर्वदा॥

(३)

अर्द्धरात्रि के समय सभी जब सो जाते थे,
    जब अवनी-आकाश तिमिरमय हो जाते थे।
तू पंखे से व्यजन मुझे तब भी करती थी,
    थपकी देकर क्लान्ति सभी मेरी हरती थी।
        प्रभुवर के पुण्य प्रसाद सा
            मुझ पर तेरा स्नेह था।
        पाकर मैं उसको हे जननि,
            सुखी नि:सन्देह था॥

(४)

झुलसी-फोड़े जब कि हो गये मेरे तन में,
    मुझे देख कर घृणा हुई औरों के मन में।
तो भी माँ, तू मुझे हृदय से रही लगाये,
    वैसा ही वात्सल्य-भाव तू रही जमाये।
        तू रिझ जाती थी चित्त में
            मुझको मुदित निहार के।
        तू मुझे खिलाती थी सदा
            मुझ पर सब कुछ वार के॥

(५)

काटा मैंने नये उठे दाँतों से तुझको,
    किया और भी अधिक प्यार तब तूने मुझको।
डाल दिया जल शीतकाल में तेरे ऊपर,
    तब भी तू ने प्रेम किया माँ, मेरे ऊपर।
        अब इन बातों की याद ही
            मुझको आ जाती कभी,
        सच कहता हूँ मैं हे जननि,
            आँखें भर आतीं तभी॥

(६)

घोड़ा बन कर मुझे पीठ पर बैठाती थी।
    आज्ञा के अनुसार घूम कर सुख पाती थी।
कभी रिझा कर मुझे मुदित तू कर देती थी,
    कभी उचित उपदेश हृदय में भर देती थी।
        था "अ आ" पढ़ाना चाहता
            जब मैं गुरु बन कर तुझे,
        तब बन कर अति निर्बोध तू
            हर्षित करती थी मुझे॥

(७)

भोजन करता हुआ मचल जब मैं जाता था,
    जब न एक भी ग्रास और मुझको भाता था।
तब हे जननी, विविध प्रलोभन तू दे दे कर
    करती थी अनुरुद्ध मुझे गोदी में लेकर।
        अति ही अमूल्य थीं लोक में
            वे तेरी बातें सभी।
        उस समय हाय! इस बात का
            ज्ञान हुआ न मुझे कभी॥

(८)

जब मैं मन में कभी किसी कारण दुख पाकर,
    कर उठता था रुदन एक कोने में जाकर।

वैञ भगवान का चतुर्थ अवतार मानते हैं वैसे ही मरमसिंग भी इयस्सु (Iesnu) का अवतार माने जाते हैं।

मिश्र के समाज-सङ्गठन में भी भारतवर्ष के सामाजिक नियमों की छाया पाई जाती है। वहाँ भी जाति-भेद था। डायोडोरस (Diodorus) के मतानुसार वहाँ भी तीन जातियाँ मुख्य थीं।

राज्य-शासन में मेनेस (Menes) के बनाये हुए नियमों का पालन होता था। संसार भर में यह नाम विख्यात है। मिश्र में मेनेस (Menes); अरब में मन्न (Mamh); बिथीनिया (Bithynia) में मानी; लीडिया में मेन्स; क्रीट में माइनस (Minos); एथेन्स में मेन्स; इट्रूरिया (Etruria) में मान्तुस या मनुस (Mantus or Manus); जर्मनी में मन्नुस; डेन्मार्क में मन्नी और आइसलैंड में माना। ये सब हमारे भारतवर्ष के प्रसिद्ध मनुजी महाराज के बिगड़े हुए नाम मालूम होते हैं। जैसे जैसे भारतवासी अन्य देशों में बसते गये वैसे ही वैसे मनुजी का नाम भी विख्यात होता गया।

मिश्र-देश की भाषा के शब्द भी अधिकतर संस्कृत-शब्दों ही की तरह के हैं। ५६० शब्दों का प्रयोग तो दोनों भाषाओं में एक ही अर्थ में होता है।

मिश्र के विख्यात पेरामिड्स या स्तूपाकार मीनार हिन्दुस्तानी मन्दिरों ही के ढंग पर बने हुए हैं। चो-प्रायन साहब ने सिद्ध किया है कि आयरलैंड के टावर या स्तम्भ, जो ईसा के १३०० वर्ष पूर्व के बने हुए हैं, बिलकुल हिन्दुस्तानी ढंग के हैं।

मिश्र की समाधियाँ खोदी जाने पर, जो ईसा के १५०० वर्ष पूर्व की बनी हुई हैं, बहुत सी भारतवर्ष की चीज़ें प्राप्त हुई हैं। उनमें कुछ ऐसी चीज़ें लकड़ी की मिली हैं, जो भारत के दक्षिणी समुद्र-तट को छोड़ कर दूसरी जगह पैदा ही नहीं होतीं।

प्राचीन मिश्र-वासियों की खोपड़ियाँ, हमारे पूर्वज आर्य्य लोगों ही की सी हैं। थीब्ज़ (Thebes) और मेम्फ़िस (Memphis) के सैा मनुष्यों की खोपड़ियों में से अस्सी आर्य्यों की खोपड़ियों की त[...]

मिश्र में सिक्कों के नाम भी प्रायः वही [...] भारतवर्ष में हैं—जैसे दीनार, माशा इत्यादि।

नीलाब, शिव, मेरु इत्यादि नाम अब भी [...] की सभ्यता का आदिम स्थान भारत के [...] लिए वर्तमान हैं।

अञ्जीर, नारङ्गी, शफ़तालू, चावल और [...] ही तरकारियाँ तथा मेवे मिश्र में भारतवर्ष [...] लाये गये। एथेनियस (Athenaens) और [...] (Pliny) का ऐसा ही अनुमान है।

गोंद और तरह तरह की भारतीय ओषधियाँ [...] एशिया माइनर, रोम और ग्रीस में अब भी पाई [...] हैं। कई ग्रन्थकारों ने उनकी सूची भी दी है।

प्राचीन मिश्र में भारतीय सभ्यता के ये प्रमा[...] नहीं तो क्या हैं। तिस पर भी कितने ही उदा[...] पश्चिमी विद्वान् इस बात को नहीं मानते। हमा[...] ऐतिहासिक उदासीनता ने हमें इतना असहाय[...] कर दिया है कि हम चुपचाप बैठे सुना करते [...] कि भारतवर्ष अपनी निज की सभ्यता का आदि [...] स्थान नहीं। देखें ईश्वर की कृपा से कब [...] उदासीनता का अन्त होता है।

गङ्गानाथ मि[...]

सूर्य्यवर्म्मा का शिलालेख।

-र्ये [१८] तावद्दध्मितं स्फुरितभुजः कान्तारवीरव्यथी(१७) [।]
-स्या तावदकाण्डभङ्गभयदं सर्व्वं परावाभयं
-त्राणविरकारि यस्य जयताच्छान्तं वपुर्म्मेधसा ॥ [१८]
-न्यः शत्रुभुवः कथमहमनायेनभ्रम [१९] स्त्रोपमा
-ग्राहस्य मुखेन विपुलहसितोनोतिःकथासन्निभा [।]
-स्ता मन्मथितेव कामितपिपा गाढं निपीड्योरसा
-मेघाम्यमनुप्यसंभवहर्षं भावं परित्याजिता (१८) ॥ [१९]
-पानतोऽतिहृता [२०] मृगयागतेन दृष्ट्वाय (१९) कम्पकभित्ति
भवनं विशीर्णमेव [।]
-रम्भासमुत्पतमकारितमस्ममूर्ध्नः येनेश्वरमथितनामशशाङ्क
शुभम् ॥ [२०]
-कारयातिरिक्तेषु पद्सु शातित(२०)विद्विषि [।]
-तेषु शरदां [२१] पत्यौ भुवः श्रीशानवर्म्मणि ॥ [२१]
-सिस्फायेम्पुपारा नवगवसदयः प्रान्तसङ्गमपया
-स्वाभ्यासविताने स्फुरदुस्खलितः सान्द्रधीरं ध्वनन्तः [।]
-तामासाम्ति नीपाभ्रकुसुमचयामममूर्भौ [२२] कुमारशा-
-सिम्सुच्यमुनेपद्युति भवममरो निर्मितं शूलपाणेः ॥ [२१]
-मारशान्तेः पुत्रेण गर्गाराष्ट्र (२१) वासिना [।]
-लानुरागात्पूर्वेय (२२) अकारि रविशान्तिना ॥ [२२]
-त्कीर्ण्णा मिहिरवर्म्मणा [॥]

यह शिलालेख मुखर-वंशी सूर्य्यवर्म्मा का है। लेख के प्रथम दो श्लोक मङ्गलाचरणरूप हैं। उनमें शिवस्तुति है। इसके बाद राजा अश्वपति से मुखर-वंश की उत्पत्ति लिखी है। अनन्तर दो श्लोकों में प्रसिद्ध राजा हरिवर्म्मा का वर्णन है। युद्ध में जलती हुई आग सदृश उसका मुख देख कर शत्रु भयभीत होते थे। इसी से इसका नाम ज्वालामुख पड़ा था। उसका पुत्र आदित्यवर्म्मा हुआ। उसके यज्ञ से उठी हुई धूममाला को मेघ समझ कर मयूर कूकने लगते थे। उसका पुत्र ईश्वरवर्म्मा हुआ। ८,९,१० श्लोकों में उसका वर्णन है। उसका पुत्र ईशानवर्म्मा हुआ। ११—१६ श्लोकों में उसी की प्रशस्ति है। उसने हज़ार हाथीवाले आंध्राधिपति को जीता, (मू) लिकों के दस हज़ार घोड़ों का पराभव किया और अपने राज्य-विस्तार के लिए समुद्र के आश्रय से रहने-वाले गौड़ों को समुद्र-तट छोड़ने के लिए विवश किया। जब उसकी सेना चलती थी तब उससे उड़ी हुई धूल से सूर्य्य ढक जाता था और समय का ज्ञान केवल घण्टों की ध्वनि से होता था। कलियुग की झोंकों से रसातल को जाती हुई पृथ्वी उसी ने अपने गुणों से थाम ली। उसका पुत्र सूर्य्यवर्म्मा हुआ। श्लोक नं० १७,१८,१९ में उसी का वर्णन है। इसी सूर्य्यवर्म्मा ने एक बार शिकार को जाते समय एक सुन्दर शिवमन्दिर गिरा हुआ देख कर उसका जीर्णोद्धार किया। उस समय शत्रुओं का नाश करके ईशानवर्म्मा राज्य कर रहा था। ६११ साल में, वर्षर्तु के आरम्भ में, मन्दिर बनाया गया। इस प्रशस्ति का कवि गर्गरा-कट-वासी कुमारशान्ति का पुत्र रविशान्ति था और खोदनेवाला मिहिरवर्म्मा था। लेख का यही सार है।

अब इस लेख से इतिहास में किस नई बात का पता चलता है, यह देखना चाहिए। डाक्टर फ्लीट के गुप्त-शिलालेखों में ४७ नम्बर पर, आसीरगढ़ में मिली हुई एक मुहर पर खुदे हुए एक लेख की प्रतिकृति है। वह मुहर मौखरी राजाओं की है। वह ईशानवर्म्मा के पुत्र शर्ववर्म्मा की है। उसमें

(१७) व्यथी — पीड़ा देने में।

(१८) परित्याजिता — यहाँ विसर्ग खोदने में भूल हुई सी जान पड़ती है। एकवचन से भी अर्थ ठीक लगता है, पर उस दशा में प्रथम पद 'कस्मीः' होना चाहिए। तथापि यहाँ संयुक्त सकार इतना साफ़ है कि उसके लिए नीचे की पङ्क्ति में जगह भी छोड़नी पड़ी है।

(१९) भाव — भेद।

(२०) शातितविद्विषि — शातितविद्विट् अर्थात् जिसने शत्रु नाश किया हो। इस सप्तमी का सम्बन्ध 'ईशान-वर्म्मणि' से है।

(२१) गर्गराकट — यह नगर गर्गरा अर्थात् घाघरा नदी के तट पर होगा।

(२२) पूर्वं — प्रकाशित।

महाराज हरिवर्म्मा से लेकर शर्ववर्म्मा तक के नाम दिये हुए हैं। पर मुखर-राजा लोग अपनी पूर्व-परम्परा कहाँ तक ले जाते थे, इसका पता उस से नहीं चलता था। प्रस्तुत लेख से यह पता चल गया। अश्वपति राजा को वैवस्वत यम से जिन सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई उन्हीं पुत्रों के वंशज ये मुखर-राजे अपने को मानते थे। वैवस्वत यम के, तथा सौ पुत्रों के, उल्लेख से इस अश्वपति का पता लग सकता है। यह अश्वपति वही मद्रराज होना चाहिए जिसकी कन्या सावित्री शाल्वाधिपति द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान् को दी गई थी और जिस कन्या ने यम को प्रसन्न करके अपने पति को प्राण, श्वशुर को राज्य और पिता को सौ पुत्र प्राप्त कराये थे। यह कथा महाभारत के वनपर्व, अध्याय २९३-९९, में है। उसमें निम्नलिखित श्लोक है—

> पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि।
> मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः॥

इससे जान पड़ता है कि अश्वपति के सौ पुत्र मालव नाम से प्रसिद्ध थे। इसी से यह भी अनुमान किया जा सकता है कि मुखर-राजे भी मालव ही कहाते होंगे। मालवों का गण इतिहास-प्रसिद्ध है।

प्रथम-प्रसिद्ध मौखरी राजा हरिवर्म्मा के विषय में यही नई बात इस लेख से ज्ञात होती है कि यह ज्वालामुख नाम से भी प्रसिद्ध था। यह पिछले गुप्त राजाओं के मूल-पुरुष कृष्ण-गुप्त का समकालीन था। बहुत सम्भव है कि कृष्ण-गुप्त उसके अधीन रहा हो। कृष्ण-गुप्त की पुत्री हर्ष-गुप्ता हरिवर्म्मा के पुत्र आदित्यवर्म्मा को ब्याही थी। आदित्यवर्म्मा का पुत्र ईश्वरवर्म्मा हुआ। जौनपुर के शिलालेख में उसका नाम है। उसमें भी आन्ध्रों का उल्लेख है। इस लेख-गत आन्ध्र लोगों के उल्लेख से यह अनुमान होता है कि यह लेख भी ईशानवर्म्मा ही का होगा। जौनपुर का लेख केवल अन्तिम वर्णमात्र है।

ईशानवर्म्मा के विषय में इस लेख से बहुत बातें मालूम होती हैं। आसीरगढ़ की [illegible] केवल इतना ही ज्ञात हुआ था कि [illegible] राजाधिराज था। पर इसका पता कि [illegible] ईश्वरवर्म्मा का पुत्र ईशानवर्म्मा महा[illegible] कैसे हुआ, इसी लेख से चलता है। [illegible] न्ध्रिक तथा गौड़ देश जीत कर [illegible] धिराज हुआ। ईशानवर्म्मा के विषय में [illegible] महत्त्व की बात इस शिलालेख से यह [illegible] है कि यह मालव-संवत् ६११ में राज्य [illegible] था। आज तक मौखरी लोगों का कोई भी [illegible] काल निश्चयपूर्वक ज्ञात न था। ईशा[illegible] का काल केवल अनुमान से जाना जाता [illegible] शिलालेखों के सिवा ईशानवर्म्मा के कुछ [illegible] भी मिले हैं। उनमें से अधिकांश [illegible] ज़िले के भिटौरा गाँव में मिले हैं। उनमें से [illegible] वर्ष-संख्या ५१ है। इसे कलियुगादि मान ३६५१ कलिवर्ष, अर्थात् ६०१ विक्रम-संवत्, [illegible] नवर्म्मा का काल निश्चित किया जाता था। [illegible] सिवा एक और प्रकार से भी इस राजा का स्थि[illegible] जाना जाता था। पिछले गुप्त राजाओं में से [illegible] सेन गुप्त का काल हर्ष-संवत् ६६, अर्थात् विक्रम[illegible] ७२९, शाहपुर के एक शिलालेख में पाया जा[illegible] इस आदित्यसेन के दादे के दादा कुमारगु[illegible] ईशानवर्म्मा का पराभव किया था। अर्थात् [illegible] राजाओं के राज्यकाल के १२५ वर्ष घटा कर [illegible] विक्रम-संवत् ईशानवर्म्मा का काल माना जाता [illegible] पर अब यह काल केवल अनुमान-मूलक न [illegible] पूर्णतया निश्चित हो गया। मौखरी लोगों [illegible] मालवों का निकट सम्बन्ध इस बात से भी [illegible] होता है कि दोनों ने मालव-गणना का [illegible] किया है।

यह लेख एक और कारण से महत्त्व का है। [illegible] ६११, ईशानवर्म्मा का अन्तिम संवत्सर है। [illegible] भिटौरा में मौखरी राजाओं के जो सिक्के मि[illegible]

...में कुछ सिक्के ईशानवर्म्मा के पुत्र शर्ववर्म्मा के भी ...। उन पर गुप्त-संवत्सर २१४ अर्थात् विक्रम-संवत् ६१२ है। इससे तथा गुप्त-संवत्सर के प्रयोग से अनुमान किया जाता है कि कुमारगुप्त के हाथों से परास्त होकर ईशानवर्म्मा शीघ्र ही सुरपुर को सिधार गया होगा। इसके अनन्तर तीन साल तक शर्ववर्म्मा गुप्तों के अधीन रहा। पर कुमारगुप्त की मृत्यु के पश्चात् उसने हूणों का पराभव करके गुप्तों से लड़ाई की, जिसमें दामोदरगुप्त मारा गया। शर्ववर्म्मा का पुत्र अवन्तिवर्म्मा था। उसके भी सिक्के ईशानवर्म्मा तथा शर्ववर्म्मा के सिक्कों के साथ पाये गये हैं। यह अवन्तिवर्म्मा श्रीहर्षदेव की बहिन राज्यश्री का ससुर होगा।

सूर्य्यवर्म्मा का अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता। पर सम्भव है कि ईशानवर्म्मा के पश्चात् मौखरी राज्य विभक्त हो गया हो। यदि ऐसा हुआ होगा तो यज्ञवर्म्मा, शार्दूलवर्म्मा तथा अनन्तवर्म्मा नामक मौखरी नरेश, जिनका उल्लेख गुप्तशिलालेख नम्बर ४८,४९,५० में है, इसी सूर्य्यवर्म्मा वाली शाखा में हुए होंगे।

अच्छा इन मौखरी राजाओं की राजधानी कहाँ थी? पूर्वोक्त शिलालेखों में से कुछ तो मगध के पास और कुछ मध्य-भारत में मिले हैं। शर्ववर्म्मा मौखरी की मुहर आसीरगढ़ में (बुरहानपुर के पास) मिली है। पर उस मुहर की वहाँ प्राप्ति से नहीं कहा जा सकता कि शर्ववर्म्मा का राज्य उस प्रान्त तक था। क्योंकि यह मुहर ताम्रपत्रों पर की गई जान पड़ती है। और ताम्रपत्र बहुत दूर तक चले जा सकते हैं। इन लेखों के सिवा मुखर-नरेशों का उल्लेख नेपाल के कुछ शिलालेखों में भी है। बाण के हर्षचरित में भी मुखर-राजाओं का वर्णन है। इन सब बातों से यह अनुमान किया जा सकता है कि मुखर-राज्य के पूर्व में गुप्त लोगों का मागध राज्य रहा होगा, दक्षिण में मध्य-प्रान्त तथा आन्ध्र-प्रान्त, उत्तर में नेपाल-राज्य और पश्चिम तथा वायव्य में स्थानेश्वर तथा मालव-राज्य रहा होगा। इनमें से मगध-राजाओं से मुखर-नरेशों का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मगध के हर्षगुप्त की बहिन हर्षगुप्ता आदित्य-वर्म्मा को व्याही थी। आन्ध्रपति तो ईशानवर्म्मा से परास्त ही हुआ था। मध्य-प्रान्त में मुहर मिलने के कारण उसे सीमा पर मिली हुई समझने में विशेष बाधा नहीं। नेपाल के एक राजा को मुखर-नरेशों में से भोगवर्म्मा की लड़की तथा आदित्यसेनगुप्त की पौत्री व्याही थी। श्रीहर्षवर्धन की बहिन शर्ववर्म्मा के पौत्र ग्रहवर्म्मा को व्याही थी। मालव-राज ने इस ग्रहवर्म्मा को मार कर राज्यश्री को क़ैद किया था। हर्षचरित में इसी का वर्णन करते हुए बाण कवि लिखता है—

> भर्तृदारिकापि राज्यश्रीः कालायसनिगडितचरणा चौराङ्गनेव संयता कान्यकुब्जे कारायां निक्षिप्ता।

इससे यह तो स्पष्ट ही है कि राज्यश्री क़न्नौज में क़ैद की गई थी। पर यह क़न्नौज किसके राज्य में था, मालवे के या मुखरों के? पूर्वोक्त वाक्य से दोनों सम्भाव्य हैं। पर आगे चल कर बाण कवि लिखता है—

> देवभूयं गते राज्यवर्द्धने गृहीते च कुशस्थले

इससे जान पड़ता है कि मालव-राज्य का प्रधान नगर उस समय कुशस्थल था। यह कुशस्थल मध्यदेश में कहीं रहा होगा, क्योंकि राजशेखर-कवि ने कुशस्थलाधिपति को मध्य-देश-नरेन्द्र लिखा है। कुशस्थल मध्य देश में, अर्थात् विन्ध्यपर्वत के समीप था—इसका एक और भी प्रमाण है। यहीं से भाग कर राज्यश्री विन्ध्याटवी में चली गई थी। इन सब प्रमाणों से कान्यकुब्ज अर्थात् क़न्नौज ही मौखरी नरेशों की राजधानी जान पड़ती है।

यह लेख बाराबङ्की ज़िले में मिला है, जहाँ सूर्य्यवर्म्मा शिकार खेलने गया था। इसका कवि भी गर्गराकटवासी है। अर्थात् घाघरा नदी भी

मुग़ल-राज्य ही में होनी चाहिए। ये बातें भी इस अनुमान की पोषक हैं कि मुग़ल-नरेशों की राजधानी क़न्नौज ही में रही होगी। शिलालेख में उल्लिखित मन्दिर वर्षर्तु के आरम्भ में पूर्ण हो गया होगा। "नवकुसुमसयामप्रमृत्नी नीपाम्" इसी को सिद्ध करता है। नीप वृक्ष बरसात ही में फूलते हैं।

अन्त में "उत्कीर्णा मिहिरवर्मणा" वाक्य पर आधुनिक चित्रों के नीचे छपे हुए छापेख़ानों के नाम की याद आती है।

हरि रामचन्द्र दिवेकर।

इँगलेंड के मज़दूर।
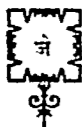
जैसी दशा इँगलेंड आदि पाश्चात्य देशों की इस समय है वैसी दशा अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में न थी। इस समय यूरोप का व्यापार उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है। किन्तु उस समय वहाँ का व्यापार साधारण अवस्था में था। जिस प्रकार आज कल बड़े बड़े कारख़ाने देखने में आते हैं उस तरह अठारहवीं शताब्दी में न थे। इस समय ऐसी ऐसी कम्पनियाँ मौजूद हैं जिनका कारोबार करोड़ों का है। देश की गवर्नमेंट पर भी उनका बड़ा दबाव है। पूर्वकाल में ऐसी कम्पनियाँ बिलकुल ही न थीं। आज कल जिस ढँग से व्यापार होता है उसका नाम फ़ैक्टरी सिस्टम (Factory System) है। इसमें हज़ारों मज़दूर एक स्थान पर इकट्ठे होकर एक स्वामी की अधीनता में काम करते हैं। काम कर चुकने पर अपनी मज़दूरी लेकर वे चल जाते हैं। फिर न मालिक को मज़दूर से काम और न मज़दूर को मालिक से। उस समय जिस ढँग से व्यापार होता था उसका नाम था—होम-इंडस्ट्री (Home-industry)। उसमें मज़दूर [illegible] थे। इस ढँग के मुताबिक़ नौकर और मालिक में सम्बन्ध रहता था। एक दूसरे के सुख-दुःख का ख़याल रहता था। इसका उदाहरण भारत में दर्ज़ियों, मोचियों आदि के [illegible] हैं। इस ढँग के व्यवसाय से ग़रीबों को [illegible] स्वतन्त्रतापूर्वक जीवनयात्रा करने का मौक़ा मिलता [illegible]। अठारहवीं सदी में विज्ञान ने आश्चर्यजनक उन्नति की। नई कलों का आविष्कार हुआ। नये नये सिद्धान्त [illegible]। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इँगलेंड के व्यापार में बड़ा परिवर्तन हुआ। आधुनिक ढँग की [illegible] का काम जारी हुआ। कलों के कारण जो काम सौ मनुष्यों से होता था वह बहुत कम मनुष्यों से होने लगा। इस कारण बहुत से मनुष्य बेकाम हो गये। [illegible] करने की इच्छा रखने पर भी लोगों को काम [illegible] लगा। किन्तु जीवनयात्रा के निर्वाह के लिए [illegible] आवश्यक था। इस लिए मज़दूर इतनी कम मज़दूरी [illegible] भी काम करने लगे जो जीवननिर्वाह के लिए [illegible] थी। जिन स्त्रियों को गृहस्थाश्रम का कार्य सुचारु [illegible] सम्पादित करना चाहिए था वे भी कारख़ानों में काम करने लगीं। अतएव अपने बाल-बच्चों को [illegible] देने तथा उनका लालन-पालन करने से वे लाचार हो गईं। छोटे छोटे सात सात वर्ष के दुधमुँहे बच्चे [illegible] पेट के लिए कारख़ानों में जाकर काम करने [illegible] हुए। मालिकों को इसकी कुछ भी परवा नहीं कि [illegible] को आराम है या तकलीफ़। वे जहाँ काम करते [illegible] स्थान स्वास्थ्यदायक है या नहीं। उन्हें तो चाहिए [illegible] काम। चाहे मज़दूर श्मशान को जाय, चाहे [illegible] जाय, मालिक को सिवा उनसे काम लेने के कुछ [illegible] नहीं। मज़दूरी की दर भी जितनी कम हो सके [illegible] अच्छा। मिस्टर सिडनी वेब (Sidney Webb) [illegible] समय के मज़दूरों की दशा का अच्छा वर्णन [illegible] ग़रीब स्त्रियाँ खानों में काम कर रही हैं। [illegible] है। नन्हें नन्हें बच्चे रुई के गुब्बारों की तरह। [illegible]

…न कर सकने के कारण, मार डाला। कितनी ही स्त्रियों …ख़ों के मारे प्राण-त्याग किया। क़ानून भी उस समय …ना कठोर था कि बेचारे मज़दूरों को मिथ्या दुःख भोगने …गैर कोई उपाय न था। उदाहरण के लिए एक ही घटना …उल्लेख पर्याप्त होगा। डोर्सेटशायर (Dorcetshire) …के मज़दूरों पर, एक मज़दूर-समिति (Trade Union) …मेम्बर होने के कारण ही, षड्यन्त्रकारी और बाग़ी होने …अपराध लगाया गया। उन्हें सात सात वर्ष के द्वीपान्तर-…की सज़ा मिली! उनमें से एक ने अपनी सफ़ाई में …। कि, हम लोगों ने किसी की बेइज़्ज़ती नहीं की, …सी को शारीरिक कष्ट भी नहीं दिया, किसी का धन भी …हीं छीना। हम केवल अपनी स्त्री, अपने बच्चे और अपनी …त्मा को भूखों मरने से बचाने के लिए एकत्र हुए थे। …उनकी एक न सुनी गई।

बच्चों की दशा उस समय कैसी थी यह १८४० के "Children's Employment Commission" …रिपोर्ट पढ़ने से मालूम होता है। इस रिपोर्ट का सम्बन्ध …ज़दूर-बच्चों से है। उसमें लिखा है कि बच्चे कारख़ानों …र कोयले की खानों में कभी कभी चार पाँच वर्ष की …र से और प्रायः सात आठ वर्ष की उम्र से ही काम करना …रम्भ करते थे। लोहे, ताँबे और शीशे की खानों में …या १२ वर्ष के बालक काम करते थे। मर्दों के समान …१ या १८ घण्टे उनसे काम लिया जाता था। कारख़ानों …जितने मज़दूर थे उनमें से छठे हिस्से से अधिक और …यले की खानों में जितने थे उनकी एक तिहाई १३ वर्ष …कम अवस्था के लड़के थे। कितनी ही कोयले की खानों …जाड़ों में कई हफ़्तों तक बेचारे बच्चों को सूर्यदेव के दर्शन …क करने का सौभाग्य न प्राप्त होता था।

धीरे धीरे मज़दूरों की ऐसी दशा हो गई कि सारा …दिनभर काम करता है, तो भी भर पेट भोजन नहीं मिलता। …भी कभी तो काम न मिलने के कारण कितनों ही को …भीख माँगनी पड़ी। तब कहीं देश के नेताओं का ध्यान …न ग़रीब मज़दूरों की ओर गया। उन्होंने इनके दुःख-दर्द …की बातें सुनीं और इनके उद्धार में दत्तचित्त हुए। इनके …निवारण का और कोई उपाय न था। उपाय केवल गवर्नमेंट …के हाथ में था। वही इनकी अवस्था सुधारे तो सुधरे।

पर उस समय सारे यूरोप में इस सिद्धान्त ने ज़ोर पकड़ रक्खा था कि गवर्नमेंट को प्रजा के वाणिज्य-व्यापार में हस्तक्षेप न करना चाहिए। जहाँ तक सरकार कम हस्तक्षेप करेगी वहीं तक लोगों को उत्साहपूर्वक काम करने का मौक़ा मिलेगा। प्रतिस्पर्धा ख़ूब होगी और देश के वाणिज्य में उन्नति होने से धन-सम्पत्ति की भी वृद्धि होगी। जातीय सम्पत्ति की वृद्धि के साथ ही साथ जातीय गौरव और बल की भी वृद्धि होगी। इस सिद्धान्त को अँगरेज़ी में लैसे फ़ेयर थियरी (Laisser Faire Theory) अर्थात् लैसे फ़ेयर का सिद्धान्त कहते हैं। इस सिद्धान्त के कारण सरकार को देश के व्यवसायियों के काम में रुकावट डालने की हिम्मत न पड़ी।

आपस की धक्का-धक्की के कारण देश के वाणिज्य की बड़ी उन्नति हुई। क्योंकि यह सिद्धान्त है कि दो समान व्यक्तियों में प्रतिस्पर्धा होने से दोनों की भलाई होती है। परिणाम यह होता है कि उनके साथ साथ देश की भी भलाई होती है। प्रारम्भ में जब कल-कारख़ाने स्थापित न हुए थे, सब काम अपनी अपनी दूकान पर लोग करते थे, तब इस सिद्धान्त ने ख़ूब कार्य्य किया। किन्तु कल-कारख़ानों के कारण मज़दूरों की दशा बुरी हो गई। अब जो आपस की धक्का-धक्की हुई तो वह समान पक्ष के मनुष्यों में न होकर कमज़ोर और बलवान में होने लगी। फल यह हुआ कि दोनों की उन्नति के स्थान में दोनों की अवनति होनी प्रारम्भ हुई। जो मालिक थे उनको तो स्वार्थ ने आ घेरा। वे मनुष्यत्व से दूर जा गिरे। जो मज़दूर थे उन बेचारों पर अत्याचार होने लगे। वे बिना अपराध ही पीसे जाने लगे।

सबसे प्रथम लार्ड शैफ़्ट्सबेरी (Lord Shaftesbury) का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ। किन्तु उस समय लैसे फ़ेयर (Laisser Faire) सिद्धान्त का इतना दबदबा था कि खान वालों का क़ानून (Collier's Bill), छींट छापने वालों का क़ानून (Calicoe Printer's Bill), मज़दूरों से दस घण्टे काम लेने का क़ानून (Ten Hours Bill) इत्यादि क़ानूनों के मसविदे जब सरकार के आगे रक्खे गये तब काब्डेन, ब्राइट, ग्लैडस्टन, पील (Cobden, Bright, Gladstone, Peel) के सदृश

उदारदल (Liberal) के राजनीतिज्ञों ने भी उनके विरुद्ध उँगलियाँ उठाईं। किन्तु समय क्या नहीं कर दिखाता। थोड़े ही दिनों के बाद लोगों की आँखें खुलीं। उस समय किस बात की आवश्यकता थी, इसकी ओर लोगों का ध्यान गया। सरकार के हस्तक्षेप करने के अतिरिक्त और कोई उपाय न देख सर्वसाधारण—विशेष करके मज़दूरों—के लाभ के लिए कई एक नये नये क़ानून पास हुए। उनसे मज़दूरों की दशा बहुत कुछ सुधर गई। स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ भी उनके द्वारा दूर हो गईं।

अब तो इन लोगों की रक्षा के लिए बहुत से क़ानून बन चुके हैं और बनते जा रहे हैं। तो भी इस समय इँगलैंड में मज़दूरों के काम-काज की बड़ी कठिन समस्या गवर्नमेंट के सम्मुख उपस्थित है। साधारण दिनों में भी लाखों मज़दूर बिना काम के हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। नौकरी ढूँढ़ने पर भी उसे पाने में वे असमर्थ हैं। गवर्नमेंट हैरान है कि क्या उपाय किया जाय। और कामों में तो यह होता है कि थोड़ा-मात्र होने पर भी लोग फिर उत्साह-पूर्वक काम करते हैं। किन्तु मज़दूरों को जब काम नहीं मिलता तब वे हताश होकर आलसी हो जाते हैं। थोड़े दिनों के बाद वे इतने निकम्मे हो जाते हैं कि काम देने पर भी वे काम नहीं करना चाहते। जब ऐसा समय आ पहुँचता है तब गवर्नमेंट को उन्हें शरण देनी पड़ती है। वे सरकार पर पलने-पोसने लगते हैं। उनके पालने-पोसने का भार बेचारी प्रजा के ऊपर पड़ता है। कारण यह कि टैक्स बढ़ा दिया जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्री-बच्चों की भी बड़ी दुर्दशा होती है। जिन स्त्रियों को घर का काम देखना चाहिए वे बाहर जाकर मज़दूरों की तरह काम करती हैं। जिन बच्चों को पाठशाला में जाना चाहिए वे भी कारख़ानों में काम करते हैं। परिणाम यह होता है कि जातीय जीवन को भारी धक्का पहुँचता है।

अच्छा तो इन मज़दूरों के बेकार बैठने का कारण क्या है। इसमें कुछ दोष तो मज़दूरों का है और कुछ आधुनिक व्यापार के ढंग का। कितने ही राजनीतिज्ञों का कथन है कि गवर्नमेंट की ओर से इनके लिए दुःख-निवारक काम (Relief Works) जारी किये जायँ। किन्तु इसमें बड़ी बड़ी बाधायें उपस्थित हो जाती हैं। इतिहास से प्रकट होता है कि जब जब ऐसा किया गया है तब तब परिणाम यह हुआ है कि लोगों का झुकाव इन सरकारी कामों ही की ओर हो रहा है, क्योंकि यहाँ अच्छी मज़दूरी मिलती है और काम कम लिया जाता है। इसलिए मज़दूर जान बूझ कर हालत ऐसी कर लेते हैं जिसमें वे बेकार समझे जायँ। इस तरह मज़दूरों की शारीरिक शक्ति क्षीण हो जाती है और जो ईमानदारी से अपनी जीविका का निर्वाह करते हैं उनको खेद होता है कि बिना कुछ काम किये रोटी मिल जाती है और हमें उसके लिए परिश्रम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह भी देखा गया है कि काम इस तरह के खोले गये हैं उनसे व्यापार को लाभ नहीं हुआ। उलटा प्रजा को हानि हुई है। इस प्रबन्ध के कारण लोगों के दिल में यह बात हो जाती है कि यदि काम न मिलेगा तो सरकार रक्खा ही हुआ है। इसलिए वे काम की खोज नहीं करते। किन्तु सबसे बड़ा दोष इसमें यह है कि सब बेकार मज़दूरों के लिए एक ही प्रकार का प्रबन्ध किया जाता है। कितने ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो कामचोरी से काम नहीं करते। कितने ही ऐसे होते हैं जो बीमारी के कारण काम करने के उपयुक्त नहीं होते। कितने ही ऐसे हैं जो इच्छा रखते हुए भी काम पाने में असमर्थ हैं। इन सबको काम मिल जाना अच्छा नहीं। जो के पात्र हों उन्हीं को काम मिलने से सफलता हो सकती है। जो अपने प्रमाद के कारण काम नहीं करते उन्हें काम तो नहीं, दण्ड देना उचित है।

इस विषय में स्विटज़रलैंड में जो नियम प्रचलित हैं बहुत अच्छे हैं। वहाँ का यह सिद्धान्त है कि को सहायता नहीं दी जा सकती। जो अपनी सुधारने की चेष्टा करते हैं उन्हीं को सहायता दी जाती है और जो अपने प्रमाद अथवा कुचाल से काम नहीं करते हैं की तरह कुछ दिनों तक रक्खे जाते हैं। जब उनकी हालत सुधर जाती है तब वे छोड़ दिये जाते हैं। मज़दूर हृदय से काम पाने की चेष्टा करता है और पाता उसे सरकार या तो म्युनिसिपैलिटी में अथवा किसी काम पर लगा देती है। पर इस बात का विचार रक्खा जाता है कि सरकारी कामों में मज़दूरी दर से कुछ कम ही रहे, जिसमें लोगों को दूसरी

...ाह रहे। कभी कभी कुछ समय तक सरकार लोगों
...रण-पोषण का प्रबन्ध कर देती है, किन्तु, इसी बीच में
...ा काम खोज लेना पड़ता है। बर्नी (Berne) नामक
... में यह नियम है कि जो मनुष्य ६० वर्ष से कम
...ा के हैं वे काम पाने पर यदि बराबर एक निश्चित
... वहाँ के एक दफ़्र (Insurance Bureau) में
...करते रहें तो जब उनको काम न मिलेगा तब उसी
... की तरफ़ से उनको भरण-पोषणार्थ द्रव्य मिलता
...ा । जब उसका मैनेजर उनके लिए काम खोज देगा
... द्रव्य देना बन्द हो जायगा। इस दफ़्र को सरकार
मदद देती है और कारख़ाने के मालिक तथा और लोग
...देते हैं।

किन्तु इतना होने पर भी बेकार होने के जो मूल
...ण हैं वे दूर नहीं होते । बेकार होने के दो कारण हैं।
... तो कला-कौशल का अभाव और दूसरा व्यसन
...(शराबख़ोरी) ।

जितने मनुष्य बेकार होते हैं उनमें अधिकांश मज़दू
...र हैं। जो कुछ कला-कौशल जानते हैं उनको प्रायः काम
... जाता है । अतएव स्वीज़रलैंड में माता-पिता अपने
...ों को शिक्षा देने के लिए बाध्य हैं। मालिकों को अपने
...नस्थ मज़दूरों को कला-कौशल सिखाने के लिए भी अनु-
... किया जाता है।

शराबख़ोरी दूर करने के लिए उपदेशक नियत किये जाते
...जो उपदेश के साथ साथ लोगों को खाना पकाना भी
...ाते हैं। विद्वानों का मत है कि पाकविधि अच्छी तरह
...ाने से शराबख़ोरी की आदत बहुत कम हो जाती है।

इन उपायों के अवलम्बन से स्वीज़रलैंड वालों को
...त लाभ हुआ है । यद्यपि इँगलैंड स्वीज़रलैंड से कहीं
...त देश है और वहाँ के सारे नियम इँगलैंड में पालन
...ीं किये जा सकते, तथापि प्रोफ़ेसर मार्शल का मत है कि
...गलैंड उनसे बहुत लाभ उठा सकता है।

सौभाग्य की बात है, भारतवर्ष में मज़दूरों को काम
...ाने का झंझट अभी नहीं उठ खड़ा हुआ। पहली बात
... है कि भारत ने यूरप के ढँग पर व्यापार करना अभी
...भी प्रारम्भ किया है । दूसरे यहाँ के जल-वायु के कारण
...ुष्य बहुत देर तक कोई काम नहीं कर सकता। चाहे कोई
कितनी ही मज़दूरी क्यों न दे, भारतीय मज़दूर जो नियम
करते आते हैं उससे अधिक काम वे नहीं कर सकते। अत-
एव हमें अभी इस झंझट में नहीं फँसना पड़ा। किन्तु
यह नहीं कहा जा सकता है कि यह प्रश्न यहाँ कभी उठेहीगा
नहीं। हाँ, कुछ लक्षण कभी कभी दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

ईश्वरदास मारवाड़ी

भारत-माता ।

जननि ! हम सी कौन जग में है अधम सन्तान ?
है हमें रहता नहीं तेरा तनिक भी ध्यान ।
दूर है करना सदा तेरा उचित सम्मान ;
है हमें तुमसे न निज सम्बन्ध का भी ज्ञान ॥१॥
भोगते तेरी कृपा से हम विविध सुख-भोग ;
किन्तु तेरे कार्य्य में देते नहीं कुछ योग ।
खेद है, यह बात हैं न विचारते हम लोग ,
शुक्र का सुख-भोग बन जाता भयङ्कर रोग ॥२॥
हो हमारा हृदय कैसे शब और मज़ार ,
है न उसमें लेश तेरी भक्ति का सञ्चार ।
प्राप्त हों कैसे हमें गुण शौर्य्य आदि अपार ,
देवि ! तेरी भक्ति उनकी भी सतत आधार ॥३॥
कर रही माता ! हमारा तू अतुल उपकार ,
सतत प्राणों से अधिक करती हमें है प्यार ।
किन्तु हम देते उपेक्षा का तुम्हे उपहार ,
है उचित ही जो हमें हँसता सकल संसार ॥४॥
क्यों न निज जीवन लगे हे जननि ! तुमको भार ,
तू अनेकों व्याधियों की है बनी आगार ।
कर रहे तो भी न हम तेरा उचित उपचार ,
है हमें धिक्कार, बारम्बार है धिक्कार ॥५॥
क्या भला आश्चर्य्य जो हैं शुष्क तेरे गात्र !
सह रही चिरकाल से तू कठिन विपदा-बाध ।
हाय ! अब भी विपद से होता न तेरा त्राण ,
किस तरह फिर हो हमारा हे जननि ! कल्याण ? ॥६॥
हाय ! तेरे पूर्व गौरव का न है अब लेश ,
हो रही तू दीन, हीन, मलीन मातृ ! विशेष ।
भिन्न हृदय करके पड़ा तू सह रही सब क्लेश ,
अस्थिमात्र शरीर तेरा रह गया है शेष ॥७॥

ठक। समय है राम का भवसर नहीं भव काम का।
भ कर म्यकर से लेखनी लूँ नाम मैं भी राम का ॥१०॥
"सनेही"

भारतीय शासन-प्रणाली।

(१)

वर्नर जेनरल (बड़े लाट साहब) और उनकी कौन्सिल।

गवर्नर जेनरल भारतीय गवर्नमेन्ट के प्रधान शासक हैं। ये इस देश में राजराजेश्वर के प्रतिनिधि भी हैं। इसलिए वे "वाइसराय" कहलाते हैं। १८५७ के ग़दर से पहले, जब कम्पनी का राज्य था, प्रधान शासक पत्र गवर्नर जेनरल कहलाते थे। परन्तु जब महारानी विक्टोरिया ने राज्य-शासन अपने अधिकार में र लिया तब से यह आवश्यक हुआ कि एक धान अधिकारी इस देश में इंग्लैंड के सम्राट् का तिनिधि समझा जाय। इस पर लार्ड कैनिङ्, जो स समय गवर्नर जेनरल थे, वाइसराय निश्चित ए। उस समय से दोनों पदों का अधिकार एक ी मनुष्य को प्राप्त होता है। शासक और नियम-र्माण-कर्ता की हैसियत में वे गवर्नर जेनरल कहलाते हैं और राजकीय शिष्टाचार, दरबार, देशी यासतों के साधारण सम्बन्ध में वे वाइसराय कहे जाते हैं। जब वे कौन्सिल में बैठेंगे तब नकी आज्ञायें गवर्नर जेनरल इन कौन्सिल के नाम प्रकाशित होंगी, वाइसराय के नाम से नहीं।

गवर्नर जेनरल को ५ वर्ष के लिए राजराजेश्वर वर्य मुक़र्रर करते हैं। वे प्रायः विलायत के ाइस घरानों में से चुने जाते हैं। उनको २½ ाख रुपया वार्षिक वेतन मिलता है। उनकी सहायता के लिए एक कौन्सिल भी है। उसको गवर्नर जेनरल की Executive Council (अर्थात् शासन कार्य-सभा) कहते हैं। इस कौन्सिल के सभासद् भी ५ वर्ष के लिए राजराजेश्वर ही नियत करते हैं। साधारण सभासदों की संख्या ५ है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर ६ सभासद् भी हो सकते हैं। इनमें एक बैरिस्टर होना चाहिए। तीन ऐसे होने चाहिए जिन्होंने दस वर्ष तक इस देश में सरकारी नौकरी की हो। उनको ६४,०००) साल मिलता है। सेना-विभाग के लाट (कमाण्डर-इन-चीफ़), जिनका पद गवर्नर जेनरल के बाद समझा जाता है, इस कौन्सिल के असाधारण सभासद् कहलाते हैं। उनका वेतन दो लाख रुपया साल है। इनके अतिरिक्त जिस प्रान्त में कौन्सिल की बैठक हो उस प्रान्त के गवर्नर भी कौन्सिल के असाधारण सभासद् माने जाते हैं।

इस कौन्सिल के सभापति गवर्नर जेनरल होते हैं। वे एक उप-सभापति भी चुन लेते हैं, जो उनकी अनुपस्थिति में सभापति का आसन ग्रहण करते हैं। उप-सभापति का भार प्रायः सबसे पुराने साधारण सभासद् को दिया जाता है। सभापति को सब काम बहुसम्मति से करना पड़ता है। परन्तु यदि किसी विषय पर बहुसम्मति भी हो जाय, पर गवर्नर जेनरल की सम्मति में उससे देश में अशान्ति की आशङ्का हो तो, ऐसी अवस्था में बड़े लाट साहब अपनी ज़िम्मेदारी पर अपनी सम्मति के अनुसार कार्य्य करते हैं। विपरीत सम्मति रखने वाले दो सभासद् भी यदि चाहें तो ऐसे विषय की सूचना सेक्रेटरी आफ़ स्टेट (भारत-सचिव) को देनी पड़ेगी।

भारतीय गवर्नमेंट का कार्य्यक्रम इस प्रकार है। शासन के सब काम अनेक विभागों (महकमों) में विभक्त हैं। प्रत्येक विभाग किसी सभासद्-विशेष के अधीन रहता है। जिस विभाग के जितने कार्य्य

होंगे सब उसी विभाग के सभासद् के पास आवेंगे। प्रत्येक विभाग का कार्य्यालय अलग अलग रहता है, जिसमें सेक्रेटरी इत्यादि उच्च अधिकारी और अनेक मुहर्रिर इत्यादि मुलाज़िम काम करते हैं। अपने विभाग के सम्बन्ध में उस विभाग का सभासद् गवर्नमेन्ट आफ़ इंडिया के नाम से आज्ञा प्रकाशित कर सकता है। महत्व के विषय ब[illegible] के पास आते हैं। कौन्सिल में सभासदों के विभाग-सम्बन्धी विषयों पर भी सम्मति [illegible] पूरा अधिकार है।

प्रत्येक विभाग और जिस सभासद् [illegible] अधीन है उसका विवरण नीचे लिखा [illegible]

विभाग	विषय	अधिकारी सभास[illegible]
(१) Foreign (वैदेशिक) विभाग	देशी रियासतों और सीमा-प्रान्तीय जातियों से सम्बन्ध इत्यादि।	सभापति अर्थात् [illegible] जेनरल
(२) सेना-विभाग	सेना का प्रबन्ध, सीमा-प्रान्तों की रक्षा, फ़ौजी छावनियों इत्यादि का प्रबन्ध।	जङ्गी लाट
(३) Home (आभ्यन्तरिक) विभाग	कचहरी, जेलख़ाने, पुलिस, कालेपानी आदि का प्रबन्ध।	होम-मेम्बर
(४) Legislative (क़ानूनी) विभाग	समस्त विभागों के नियमों को बनाना—चाहे वे नियम किसी विषय से सम्बन्ध रखते हों।	ला-मेम्बर
(५) शिक्षा-विभाग	शिक्षा, स्वास्थ्य (सफ़ाई-तन्दुरुस्ती) और पादरियों की नियुक्ति इत्यादि।	एजुकेशन-मेम्बर
(६) Finance (आय-व्यय-विषयक) विभाग	वार्षिक आय-व्यय का लेखा रखना, टकसाल, टैक्स इत्यादि।	फ़ाइनन्स-मेम्बर
(७) व्यापार और उद्योग-सम्बन्धी विभाग	रेल, डाकख़ाने, तार, व्यापार, मल्लाहख़ाना, नये कारख़ानों की रजिस्टरी, कुलियों को विदेश भेजना इत्यादि।	कामर्स एंड इंडस्ट्री [illegible]
(८) मालगुज़ारी और कृषि-सम्बन्धी विभाग	अकाल-कष्ट, जङ्गल, पशु-चिकित्सा, मालगुज़ारी इत्यादि का प्रबन्ध, कृषि का सुधार और उसकी उन्नति।	रेविन्यू एंड एग्रिक[illegible] मेम्बर
(९) Public Works (इमारत इत्यादि सम्बन्धी) विभाग	सड़क, नहरें, मकानों इत्यादि का बनाना।	

इस सूची को देखने से मालूम हो जायगा कि भारतीय गवर्नमेंट का शासन ९ विभागों में विभक्त है, जिनमें से एक का भार स्वयं बड़े लाट पर है और एक का जङ्गी लाट साहब पर। शे[illegible]

विभाग। इनमें से दो एक ही समासद् के अधीन हैं इसलिए (साधारण) अधिकारी समासदों की संख्या ६ है।

भारतीय गवर्नमेंट एक प्रकार से मध्यस्थ के समान है। उसका कर्त्तव्य है कि यह विलायत से आज्ञायें अथवा जो कार्य्यक्रम निर्दिष्ट हों उनकी सूचना प्रान्तिक सरकार को दे और प्रत्येक प्रान्त पर दृष्टि रक्खे कि कार्य्य भले प्रकार चलता है या नहीं।

जिन विभागों का ऊपर उल्लेख हुआ उनमें समय समय से समयानुसार परिवर्तन होता चला आया है। कम्पनी के समय में इतने विभाग न थे। जब क़ानून बनाने वाले समासद् (Law Member) की नियुक्ति हुई थी तब उसको सम्मति देने का अधिकार न था। लार्ड डलहौसी के समय से साधारण समासदों में उसकी गणना होने लगी। इस प्रकार तीन से चार समासद् हुए। लार्ड डलहौसी ही के समय में प्रत्येक समासद् के कार्य्य और अधिकार बांटे गये। १९०५ में व्यापारी और औद्योगिक विभाग खुला गया और १९१० में शिक्षा-विभाग। इसके पहले जिस महकमे के अधीन जेलख़ाना, पुलिस और कालापानी था, अर्थात् होम डिपार्टमेंट (Home Department) उसी के अधीन स्कूल और कालेज भी थे।

प्रत्येक महकमे के अधीन और भी महकमे हैं। इसीलिए यहाँ की शासन-प्रणाली के लिए अँगरेज़ी शब्द "Bureaucracy" का प्रयोग होता है। वैदेशिक विभाग देशी रियासतों पर अपना प्रभुत्व रेज़िडेन्ट (Resident) अथवा एजेन्ट (Agent) के द्वारा स्थिर रखता है। राजा महाराजाओं के पढ़ने के कालेज (Chiefs' Colleges), रियासतों की सेना, सीमान्त-पश्चिमोत्तर-प्रदेश, अजमेर-मेरवाड़ा और बिलोचिस्तान भी इसी महकमे के अधीन हैं। क़ानून बनाने वाला समासद् हमेशा बेरिस्टर होता है। इस पद पर पहला समासद् इंगलिस्तान का प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता लार्ड मेकाले (Lord Macaulay) था। हर महकमे में इस समासद् की ज़रूरत पड़ती है। इसलिए कौन्सिल में जितनी समितियाँ (Select Committees) होती हैं उनका यही सभापति होता है। एक प्रकार से यह गवर्नमेंट का क़ानूनी सलाहकार है।

शिक्षा-विभाग के समासद् और सेक्रेटरी इत्यादि के अतिरिक्त अब एक नया पद शिक्षा-कमिश्नर (Educational Commissioner) का हुआ है। इस विभाग के अधीन स्कूल, कालेज और अस्पताल तो हैं ही, (जिनका उल्लेख आगे होगा), परन्तु पादरियों का प्रबन्ध भी यही विभाग करता है। इस धर्म-सम्बन्धी विभाग को अँगरेज़ी में Ecclesiastical Department कहते हैं। इसके अधीन कलकत्ता, मदरास और बम्बई के प्रधान पादरी (बिशप) हैं, जिनका कर्त्तव्य चर्च आफ़ इंगलेंड (Church of England) के पादरियों की जाँच-पड़ताल और उनका सुप्रबन्ध है। कलकत्ते के बिशप भारतवर्षीय बिशपों के सरदार (Metropolitan) समझे जाते हैं। धार्म्मिक विषयों में आर्क-बिशप आफ़ कैंटरबरी (Archbishop of Canterbury) उनके मुख्य अधिष्ठाता हैं। कलकत्ते के बिशप की पेन्शन १५०० पौंड वार्षिक अर्थात् (८७५) रुपया मासिक होती है।

बड़े लाट, छोटे लाट और गवर्नर हिन्दुस्तान के बाहर नहीं जा सकते। उनको छुट्टी नहीं मिल सकती। बड़े लाट की कौन्सिल के समासद् ६ महीने की छुट्टी डाक्टरी सर्टिफिकेट पेश करने पर ले सकते हैं। पर अपने पद पर रहते हुए ये भी भारतवर्ष के बाहर नहीं जा सकते।

अँगरेज़ी राज्य में धर्म, वर्ण अथवा जन्मस्थान में भेद होने के कारण कोई किसी छोटे या बड़े पद पर नियुक्त होने से वञ्चित नहीं किया जा सकता।

जो स्थान ख़ाली हो उस पर वही रक्खा जायगा जो उसके योग्य हो। इसी सिद्धान्त के अनुसार कार्यकारी (Executive) कौन्सिल में अब एक हिन्दुस्तानी सभासद् नियुक्त किया जाता है। जब लार्ड मार्ले भारत-सचिव थे और लार्ड मिन्टो भारतीय बड़े लाट, तब से यह बात होने लगी है। अब तक जो हिन्दुस्तानी इस पद पर हुए हैं उनके नाम ये हैं—

सर सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह | बैरिस्टर
सर अलीइमाम |
सर शङ्कर नायर

पहले दोनों महाशय क़ानूनी-विभाग के अधिकारी थे। तीसरे महाशय इस समय शिक्षा-विभाग के सर्वश्रेष्ठ अधिकारी हैं। सर अलीइमाम के उत्तराधिकारी के आने में विलम्ब होने के कारण कई महीने तक कौन्सिल में दो भारतवासी थे। सर अलीइमाम पहले हिन्दुस्तानी हैं जो कौन्सिल के उप-सभापति बनाये गये।

(असमाप्त)

रामनारायण मिश्र।

हिन्दी आईन-अकबरी।

इस हिन्दी आईन-अकबरी की तलाश बहुत बरसों से थी और बाहर से भी पूछा जाता था कि यह कहाँ है, कैसी है और उसका क्या मोल है। निदान ढूँढ़ते ढूँढ़ते पिछले बरस उसका थोड़ा सा भाग हमें मिला। यह जैपुर की पुरानी लिपि और यहाँ की उर्दू मिली हुई हिन्दी बोली में है। इसको यहाँ के महाराजा सवाई प्रतापसिंह जी ने अकबर बादशाह के दीवान मुन्शी और वज़ीर, शेख़ अबुलफ़ज़्ल अल्लामी, की फ़ारसी और अरबी ज़बान में बनाई हुई आईन-अकबरी से अपने दरबार की बोली में लिखाया और मुन्शी गुमानीराम कायस्थ ने, संवत् १८५[illegible] में। यह प्रायः १२५ बरस पहले की गद्य हिन्दी का नमूना है। ऐसी हिन्दी उस समय जैपुर में चलती थी। पर अब बहुत कुछ बदल गई।

महाराजा प्रतापसिंह [illegible] माधोसिंह और दादा महाराजा सवाई [illegible] समान विद्वान् थे। किन्तु काव्य-कुशलता [illegible] रचना में तो ये दोनों ही से बढ़े हुए थे। [illegible] ग्रन्थ मोह-संग्राम और भर्तृहरी-शतक [illegible] हैं। इधर उनके मुन्शी गुमानीराम [illegible] फ़ारसी के अच्छे लेखक थे। उन्हीं ने [illegible] राजा के हुक्म से फ़ारसी में भी एक [illegible] राजपूतों के इतिहास का रचा। उसके [illegible] में जैपुर के कछवाहे राजपूतों के [illegible] और प्रधान लगते हैं। मैंने इसको भी देखा है। पर से हिन्दी आईन-अकबरी का नाम सुन[illegible] यह अनुमान किया था कि इसे भी इन्हीं [illegible] ने पूर्वोक्त विद्या-प्रेमी महाराजा प्रताप[illegible] हुक्म से बनाया होगा। इन महाराजा के [illegible] उपयोगी ग्रन्थों के उल्था कराने का चाव [illegible] है। महाराजा सवाई जैसिंहजी ने भी [illegible] उल्था कराया था। उसमें से एक हमारे देखने [illegible] आया है। परन्तु यह विशेष करके जैपुर की [illegible] है। उसका नमूना नीचे पादटीका में दिया [illegible]

महाराजा माधोसिंहजी ने भी इसी [illegible] सवाईसिंह-चरित्र नामक एक पुस्तक [illegible] भी मैंने देखी है। तलाश करने से और भी [illegible] पुस्तकें इन महाराजाओं की बनाई और [illegible]

* [illegible]

...सकती हैं। उनमें मुख्य और बड़े काम की यह ...न-अकबरी है। जो पूरी मिले और शुद्ध करके ...टिप्पणी के साथ छापी जावे तो हिन्दी-भाण्डार ...फ़ अपूर्व रत्न बढ़ जावे।

...हम हिन्दी-रसिकों और विशेष करके इतिहास-...यों के मनोरञ्जन के लिए इस हिन्दी आईन-...बरी के दो पत्रे ज्यों के त्यों आसान लिपि और ...री में प्रकाशित करते हैं और मूल-लेखक के दोनों ...लिए माफ़ी माँगते हैं।

देवीप्रसाद।

हिन्दी आईन-अकबरी का नमूना।

पहले दो श्लोक हैं। पीछे यह दोहा है—

सूरजवंशी धर्मकुल रवि सो तेज प्रताप।
तिमरनिसावन जगत को छत्रपती नृप आप ॥

श्रीमन महाराजाधिराज श्रीधरममूरति धरमावतार श्रीपति सुरिज-प्रताप सकल-नृप-शीरोमणि सुखनिधान ...देवंत विचक्षण गुणसागर रवि से प्रकासी इन्दु से सीतल ...ष्ण समान मंगयत्नां सब क्षत्रिय सिरमौर श्रीरामराजेन्द्र महाराजाधिराज श्रीसवाई प्रतापसिंहजी देव आज्ञानं ...न्थ आईन-अकबरी की भाषा-वचनका जथा-प्रति ...खी। दोहा—

हुकम नृपति को पाय के उदय भयो परकास।
जैसे रवि के उदय सौं अंधकार को नास ॥१॥

कवित्त

इन्द्रसम राजे रघुवंश-अंश रामचंद्र
गादी पर नीके आज गुण को जहाज है।
कोट काम सुंदर ताज है पातसा का
को अंस मुजस को पारावार रिपुदल गंड तेज तिमछत्र समाज है।
आलम धरा को अधिकारी भारी भाव
पेदुला सुत प्रतापसिंह राजत महाराज है* ॥

दोहा

संवत अठारह सर्ग पावन अधिक पुनीत।
पौस मास तिथि पंचमी कियो आरंभ इहि रीति ॥
हाथ मोर सिर नाय के नृप की आज्ञा पाय।
नाना विध भाषा लिखी ग्रन्थग्रंथ को भाय ॥२॥

खोवास दीवाखास मुनसी हुकम आयो। तब हुकम को सीस चढ़ायो अर लिखबे को आरंभ कियो। परम सेवक आज्ञाकारी गुमानीराम कायस्थ।

दोहा

देसी भाषा मवनकी भाषी है इय ठौर।
हो तो पंडित मत हंसो मत काढ़ीज्यो खोड़ ॥

अब शेष अबलफजल ग्रंथ को करता प्रभु को नमस्कार करके अकबर बादशाह की तारीफ लिखबे कूं कसद करे है अर बड़ाई के माफी बड़ाई अर पेदा अर निराकार कहां तक लिखें। कछु बात नहीं। तातें याको पराक्रम अर भांति भांति के दस्तूर वा मनसूबा दुनया में प्रगट भय। ताको संछेप लिख्यो है। प्रथम तो बादशाह के नाम संग्या को अर्थ लिखे हैं।

बाद—फारसी भाषा में नित रहे ताको कहे हैं। साह को अर्थ मालक वा साहब है। जो बादसाह की आसंग दुनिया में न होय तो जगत की भ्रांति कैसे मिटे अर संसार को अपनपो कैसे जाय। आदमी तो क्रोध वा तृष्णा में डूब रह्यो है। पातक हू पराव करे। तातें बादसाही का मदद करके दुनिया को विघन मिटे अर दुनिया का लोग आज्ञा में रहें। केतेक तो ऐसे हैं जो अपनी रजा खुसी सूं हुकम बजा लावें अर केतेक दहसत में—बदी छोड़बे की राह चलें। अर भी स्याह वसनूं कहते हैं के सब पर सरवोपर होय। जैसे स्याह सवार अर स्याह राह जो भला सवार अर भली राह। अर मेंसे के भी कहते हैं—जो दुनया रूपी दुखरूप केम करे। इन दोनूं अरथों में दोऊ के बकाला

---

* इस पद्य का एक चरण ग़ायब है। पिछले दो चरणों में भी गड़बड़ है।

...न देसों का राजा था पातस्यादों के प्रसंग ॥ दूसरा देश ...जौनपुर का पातस्याह। तीसरा अंक में मालवा का ...पातस्याह ॥

अन्त ॥ इति इफल गुलसन मासी तारीख की संछेप ...था संछेप हुई। संवत १८०६ अमावो शाके १७७१ ...वर्षसमे मिति चैत्र कृष्ण पक्षे नवम्यां ९ लिथी चंद्रवासरे ...प्रथम प्रहर लिपिकृतं ॥

महन्त का कालेज, चाँदबाग, देहरादून।

टपकेश्वर-महादेव, देहरादून।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

ड़ देने पड़ते हैं—पुस्तकालय है। उसमें अधिकतर त्वी की बड़ी बड़ी पुस्तकें हैं। ख़दीव के पुस्तका-य में इससे भी अधिक अरबी-पुस्तकों का संग्रह। पढ़ने के लिए जो कमरा है वह छोटा है। पढ़ने ले भी ६,७ से अधिक नहीं होते। इसका कारण। यहाँ के मुसल्मान अपने धर्म की पुस्तकों को ढ़ कर दूसरे विषय के ग्रन्थ बहुत कम पढ़ते हैं। र्म की पुस्तकें तो याद ही करनी पड़ती हैं। इस ए उन लोगों को पुस्तकालय की ज़रूरत नहीं हती। ज़रूरत न रहने से रुचि भी नहीं रहती।

दालानों में लड़के पढ़ते रहते हैं। विश्राम का मय मिलने पर वे वहीं खाते-पीते और आराम रते हैं। दाहिनी ओर कई कमरे हैं। उनमें कुछ ा छात्रों के अभ्यास के लिए हैं और कुछ उन लड़कों के लिए जो दूसरी जगह से यहाँ पढ़ने आते हैं। आगे बढ़ने पर विश्वविद्यालय की वृहत् व्याख्यानशाला मिलती है। यहाँ अध्यापक और छात्र विद्याभ्यास में लगे रहते हैं। लड़कों में चपलता नहीं। विवाद करना अथवा प्रश्न करना—जैसे दूसरी जगह के विद्यार्थी किया करते हैं—इन लोगों में नहीं पाया जाता। अध्यापक कभी स्वयं पढ़ता है, कभी वह लड़कों को पढ़ाता है, फिर उसे समझाता है।

विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने के कारण तीन और मसजिदें शिक्षा के काम में लाई जाती हैं। ये ये हैं—मुआयद, मरदानी, अज़रक। मुआयद और मरदानी अल-अज़हर से अच्छी बनी हुई हैं। भीतर की सजावट भी अच्छी है। ये सब छोटी छोटी कक्षाओं के लिए हैं। कुछ में तो बिलकुल प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है। जिस समय मैं गया उस समय एक क्लास में भूगोल पढ़ाया जा रहा था। आस्ट्रेलिया का नक़शा टँगा हुआ था। उस समय आस्ट्रेलियन सिपाही मिश्र में डेरा डाले हुए थे।

विद्यार्थियों की संख्या में अमेरिका के विश्व-विद्यालय इसकी समता नहीं कर सकते। १९१२ में यहाँ १४,९६० विद्यार्थी और ५८७ अध्यापक थे। अँगरेज़ों के आने पर इसकी बहुत उन्नति हुई है। इसके पहले विद्यार्थियों की संख्या आधी भी नहीं थी। प्रबन्ध तो नाम के लिए था। जो 'वक़्फ़' विश्वविद्यालय के लिए किये गये हैं उनकी आम-दनी से दूसरे ही लोग फ़ायदा उठाते थे। ख़ुद अब्बास, द्वितीय, जो पहले ख़दीव थे, ऐसा किया करते थे। लड़कों ने प्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर कई बार उत्पात (Strike) किया था। पर आज कल इसका प्रबन्ध अँगरेज़ों के हाथ में होने के कारण अच्छा है। सब काम, जैसा होना चाहिए, होता है। यहाँ लड़कों को शिक्षा मुफ़्त दी जाती है। उनसे फ़ीस नहीं ली जाती। इतना ही नहीं, उन्हें भोजन भी विश्वविद्यालय की ओर से मिलता है। ख़र्च के लिए भी प्रत्येक को कुछ न कुछ अवश्य दिया जाता है। अध्यापकों का वेतन भी साधारणतः ख़ासा है।

यहाँ की पाठावधि १७ साल की है। इतनी और किसी विश्वविद्यालय में नहीं है। विद्या-र्थियों की योग्यता जाँचने के लिए परीक्षायें ली जाती हैं। उत्तीर्ण होने पर ऊँचे दरजों में वे भेजे जाते हैं। परीक्षा में किसने कितना कण्ठाग्र कर लिया है इसका ख़याल रक्खा जाता है। इसमें दो विभाग हैं। नीचे विभाग का पाठक्रम प्रायः उतना ही है जितना इधर कालेजों में होता है। साहित्य, अलङ्कार-शास्त्र और धर्मशास्त्र, ये तो हर एक को पढ़ने पड़ते हैं। गणित और इतिहास पढ़ना इच्छा पर है। जो विद्यार्थी पढ़ना चाहे वह इन विषयों को ले सकता है। विज्ञान नहीं है। ऊँचे विभाग में 'डाक्टर' की उपाधि मिलती है। इसमें केवल दो विषय हैं—मीमांसा-शास्त्र और धर्मशास्त्र। धर्मशास्त्र में केवल क़ुरान और उसकी व्याख्या है। बस, इतना ही है।

"सर्व-साधारण का हित और एक आदमी का हित, दोनों, एक दूसरे के विरुद्ध नहीं; दोनों एक दूसरे के परिपोषक हैं। यह तुम्हें स्वीकार है न?"

उत्तर—"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई।"

प्रश्न—"मान लो, कोई डाकृर अपने ग्राहक बढ़ाने के लिए रोगियों की चिकित्सा बहुत अच्छी तरह करता है। वह उन्हें शीघ्र आराम करने वाली दवायें देता है। इस कारण उसके हाथ से अनेक रोगी अच्छे हुए। इस दशा में उसके द्वारा सर्व-साधारण को लाभ पहुँचा या नहीं?"

उत्तर—"पहुँचा"

प्रश्न—"इसी प्रकार अधिक नाम पाने की कामना से म्युनिसिपैलिटी का एक दारोगा शहर की सफ़ाई पर ख़ूब ध्यान देता है। उसके इस काम से भी सर्वसाधारण का हित हुआ या नहीं?"

उत्तर—"हुआ।"

इस प्रकार ऊपर के तर्कवाद को प्रतिपक्षी के स्वीकार कर लेने पर पहले व्यक्ति का पक्ष सिद्ध हो गया। ग्रीस के प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता अरिस्टाटल ने इसी प्रकार अपने कथन को सिद्ध करने के लिए न्यायशास्त्र-सम्बन्धी अपना ग्रन्थ बनाया था। उस ग्रन्थ की तर्क-प्रणाली का एक उदाहरण लीजिए—

सब मनुष्य मरेंगे।
हम मनुष्य हैं,
इस लिए हम भी मरेंगे।

ऊपर के कथनों और अरिस्टाटल के इन वाक्यों में अनुमान ही प्रधान है। इनमें अनुमान ही से अभीष्ट-सिद्धि की गई है। अँगरेज़ी में अनुमान करने की इस प्रणाली का नाम Syllogism है।

अब आप अपने न्यायशास्त्र की अनुमान-प्रणाली देखिए। हमारे यहाँ किसी बात के यथार्थ ज्ञान होने के चार कारण माने गये हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।

"इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्"।

प्रत्यक्ष-ज्ञान इन्द्रियों के सन्निकर्ष द्वारा प्राप्त होता है। प्रत्येक इन्द्रिय का विषय अलग अलग है। विषय के साथ इन्द्रिय के संयोग होने से प्रत्यक्ष-ज्ञान होता है—जैसे, आँख के साथ स्वरूप का और कान के साथ शब्द का संयोग होने से।

अनुमान के लिए कारण की आवश्यकता होती है। कारण ठीक होने से अनुमान सच्चा उतरता है। कार्य के साथ कारण का अबाध सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध "व्याप्ति" कहाता है। जैसे, "यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः" अर्थात् जहाँ धूम दिखाई देता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है। व्याप्ति द्वारा पर्वत पर धुआँ निकलते देख हम यह अनुमान करते हैं कि वहाँ अग्नि है; और हमारा यह अनुमान सच्चा निकलता है। इस प्रकार के ज्ञान का नाम अनुमान-ज्ञान है।

किसी वस्तु के सदृश किसी अन्य वस्तु का ज्ञान कराने वाला वाक्य उपमान कहाता है। मान लीजिए कि हमने घोड़ा कभी नहीं देखा। एक दिन एक आदमी ने हमें बताया कि घोड़े का आकार खच्चर के सदृश होता है। इस सादृश्य के बल पर घोड़े को देखते ही हमने उसे पहचान लिया। इस प्रकार का ज्ञान हमें उपमान-द्वारा हुआ। अतएव यह उपमान-ज्ञान हुआ।

शब्द-सम्बन्धी ज्ञान हमें आप्तजनों या विश्वसनीय लोगों से होता है। आप्त-वाक्यों का अर्थ है—यथार्थ बोलने वालों का कथन। वेदवाक्यों की गणना शास्त्रकारों ने आप्तवाक्यों में की है।

यथार्थ ज्ञान होने के अन्य कारणों को छोड़ कर अनुमान पर हमें कुछ और कहना है। अनुमान दो प्रकार का होता है—एक स्वार्थ, दूसरा परार्थ।

हमने रसोईघर में देखा कि आग जल रही है और उससे धुआँ निकल रहा है। इससे हमें "यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्राग्निः" की व्याप्ति का ज्ञान हुआ। इसी व्याप्ति के सहारे पर्वत से धुआँ निकलते देख हमने

सहानुभूति के बन्धन में नहीं बँधे, यह कार्य्य ग्रैार भी कठिन है।

जो भाषा सर्वाङ्ग-सुन्दर है ग्रैार जिस भाषा के बोलने वाले भारत की मनुष्य-संख्या के एक तृतीयांश से भी अधिक हैं, उसके पत्रों के सम्पादकों की कार्य्य-प्रणाली क्या सर्वथा निर्दोष है? यदि नहीं, तो कौन कौन सी बातें ऐसी हैं जिनमें सुधार होना चाहिए।

हमारे पत्रों के, ग्रैार विशेष करके मासिक पत्रों के, सम्पादकों का ध्यान कुछ दिनों से अपने अपने पत्रों को साहित्य की उच्च श्रेणी पर पहुँचाने की ग्रोर अधिक हो रहा है। अतएव अनेक लेख विज्ञान, पुरातत्त्व आदि गम्भीर विषयों पर प्रकाशित होते हैं। आज कल कवितायें भी बहुत प्रकाशित होती हैं। कदाचित् सैकड़े पीछे दस ही सम्पादक ऐसे होंगे जो कविता करना न जानते हों। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। क्योंकि हिन्दी में आरम्भ से ही लेखकों ने कविता करने की ग्रोर अधिक ध्यान दिया है। ग्रैार, यही कारण है कि हिन्दी का पुराना साहित्य काव्य-ग्रन्थों से भरा पड़ा है। हम यह नहीं कहते कि गम्भीर विषयों पर लेख न लिखे जायँ ग्रैार कवितायें न प्रकाशित हों। हम केवल यहाँ पूछने की धृष्टता करते हैं कि क्या हमारा समाज उस उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया है जिस पर पहुँचने से गम्भीर विषयों पर ही लिखे हुए लेखों की चाह ग्रैार आवश्यकता होती है, ग्रैार गल्प, प्रहसन, आख्यायिका, उपन्यास, भ्रमण-वृत्तान्त आदि अनावश्यक समझे जाते हैं? हम तो समझते हैं कि उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई जाति को भी मनोरञ्जन की सामग्री आवश्यक होती है। उदाहरण-स्वरूप ब्रिटिश जाति को ही लीजिए। अँगरेज़ी का हमने ऐसा कोई भी दैनिक, साप्ताहिक या मासिक पत्र नहीं देखा जिसमें मनोरञ्जन की सामग्री न हो। टाइम्स प्रभृति दैनिक पत्रों

को देखिए। उनमें नियमित रूप से [illegible]
ग्रैार एक धारावाही कहानी प्रकाशित हो[illegible]
इंगलैंड के दैनिक पत्र भी नियमित रूप से [illegible]
प्रकाशित करते हैं। परन्तु हमारे पत्रों [illegible]
इसका अभाव रहता है। बहुत कम लेखक [illegible]
पर क़लम उठाते हैं। वे कहानी लिखना [illegible]
समय का अनुचित व्यवहार करना ग्रैार [illegible]
बट्टा लगाना समझते हैं। हिन्दी-पत्रों में [illegible]
कभी कहानियाँ निकलती हैं वे बहुधा बँगला [illegible]
आदि भाषाओं की अनूदित होती हैं। स्वतन्त्र [illegible]
लिखने वाले हिन्दी में बहुत ही कम हैं। [illegible]
ग्राहक-संख्या न बढ़ने का है। हमारा [illegible]
मनोरञ्जक बनाने की ग्रोर बहुत कम है। [illegible]
कविवचनसुधा, भारत, हिन्दीप्रदीप, [illegible]
कौमुदी आदि पुराने पत्रों की फ़ाइलें देखें [illegible]
उनमें हम अनेक आख्यायिकायें, प्रहसन [illegible]
हास्य-परिहास के लेख पाते हैं। इस पर [illegible]
के सम्पादकों पर किसी किसी ने आक्षेप [illegible]
परन्तु हमारे विचार में तो उनका [illegible]
ही उत्तम था। जिस भाषा में मनोरञ्जक [illegible]
पढ़ने वाले नहीं, उसके गम्भीर लेखों को [illegible]
पढ़ेगा? पाश्चात्य देशों के पत्रों की ग्रोर [illegible]
वे लोग हम से अधिक शिक्षित ग्रैार [illegible]
होते हुए भी मनोरञ्जन की आवश्यकता [illegible]
है। पारस्परिक झगड़े का काम पत्रों के [illegible]
इनों सम्पादकों को ही अधिकता से [illegible]
चाहिए। यदि वे अपने अपने पत्रों को [illegible]
रञ्जक बनाने की चेष्टा करें तो [illegible]
अवश्य हो जायगी। साथ ही उनके पत्रों की [illegible]
संख्या की भी वृद्धि होगी। मराठी भाषा के [illegible]
मासिक पत्रों में [illegible]
[illegible], नाटक, गल्पें आदि विषयों के [illegible]
मिलते हैं। इतना होने पर भी वे [illegible]
बढ़ाने के लिए यात्रा-वृत्तान्त, आख्यायिकायें,

र, चुटकुले आदि सर्वदा निकाला करते हैं। यही
ल बँगला के पत्रों का भी है। इसी कारण मराठी
था बँगला बोलने वालों की संख्या कम होने पर
उक्त भाषाओं के पत्रों की ग्राहक-संख्या हिन्दी
-पत्रों से अधिक है। अतएव हमारे सम्पादकों
था लेखकों को भी उक्त भाषाओं के पत्रों
लेखकों तथा सम्पादकों का अनुकरण करना
ाहिए। साहित्य के कुछ ही अंशों की पूर्त्ति
रना और इने गिने मनुष्यों को ही विद्वान् बनाना
मारा उद्देश न होना चाहिए। हमें यावज्जीवन
कर यथासाध्य प्रत्येक देशबन्धु को विद्या-प्रेमी
नाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हमारे
ाननीय सम्पादक सर्वसाधारण के पढ़ने योग्य
मनोरञ्जक लेख प्रकाशित करें।

जिस भाषा का साहित्य अभी उन्नति की आर-
म्भिक अवस्था में है उस भाषा के पत्रों के सम्पादकों
ो कार्य में यदि कठिनता उठानी पड़े तो कोई
आश्चर्य्य की बात नहीं। क्योंकि आरम्भ में सभी
कार्य्यों में यह बात होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं
कि सम्पादकों के सिर बड़ी ज़िम्मेदारी रहती है।
एक मनुष्य के लिए सब को प्रसन्न रखना असाध्य है।
क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति प्रायः
भिन्न होती है। तथापि यथासम्भव सब को प्रसन्न
रखना चाहिए।

हमारे अनेक पत्रों का यह नियम है कि वे धर्म्म-
सम्बन्धी लेखों को स्थान नहीं देते। परन्तु उन
पत्रों के योग्य सम्पादक कभी कभी अपना रुख़ उस
धर्म विशेष पर, जिसके कि वे स्वयं अनुयायी हैं,
स्पष्ट रूप से बतला ही देते हैं। कोई कोई पत्र तो,
जिनका नियम सर्वसाधारण से सम्बन्ध रखने वाले
उपयोगी लेख लिखना है, ताल ठोंक कर अपने धर्म
का समर्थन करते हैं। सारांश यह कि धर्म से सम्बन्ध
न रखने वाले पत्र भी, किसी न किसी रूप में, अपने
धार्मिक विचार प्रकट ही कर देते हैं। यह सर्वथा
अनुचित नहीं, क्योंकि इँगलेंड आदि देशों में भी वहाँ
के पत्र किसी न किसी दल का पक्ष अवश्य ही ग्रहण
करते हैं। चाहे और जगह यह बात हानिकारक न
हो, परन्तु भारत के लिए तो यह अवश्य ही हानिकर
है। कारण यह कि ऐसा करने से आपस में भ्रातृ-
भाव की उत्पत्ति बहुत कम होती है, और जो भेद-
भाव हमारी अवनति का मुख्य कारण है उसकी
कुछ न कुछ अवश्य ही वृद्धि होती है। अतएव
हमारी राय में खण्डन-मण्डन वाली तथा अन्य-धर्म-
सम्बन्धी पुस्तकों की समालोचना न होनी चाहिए।
किसी धर्मसंस्थापक, सञ्चालक अथवा सहायक
का जीवनचरित प्रकाशित करते समय उसके
धार्मिक विचार तथा धार्मिक जीवन पर आक्षेप भी
न करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से लाभ के
बदले हानि ही अधिक होती है।

न मालूम हमारे अधिकांश भाई राजनैतिक बातों
से क्यों दूर रहते हैं। कुछ अदूरदर्शी लोगों ने अपने
कुत्सित कर्मों से समाज में खलबली अवश्य डाल
दी है। पर उन दस पाँच मनुष्यों और नवयुवकों के
विकृत मस्तिष्क के कामों की सभी निन्दा कर रहे
हैं। ये तो देश के शत्रु हैं। उनके कारण हमें न्यायानु-
मोदित राजनैतिक चर्चा करना न छोड़ देना चाहिए।
कोई भी देश उस समय तक उन्नति नहीं कर
सकता जिस समय तक कि राजनैतिक सुधार उसमें
न हों। आप चाहे संसार भर का इतिहास देख
डालें, कोई भी देश ऐसा न मिलेगा जिसने बिना
राजनैतिक सुधार किये अपनी वास्तविक उन्नति की
हो। उदाहरण के लिए जापान, इँगलेंड, इटली आदि
को देखिए। रूस, फ़ारिस, चीन आदि क्यों अभी तक
अवनति के गड्ढे में पड़े हुए हैं? केवल राजनैतिक
सुधार न होने से ही। इससे पाठक विचार कर
सकते हैं कि यह विषय कितने महत्त्व का है।
कुछ विद्वानों का कथन है कि भारतीयों को अभी
सामाजिक, धार्मिक तथा शिक्षा-सम्बन्धी सुधार की

आदमी में देश की धुनी रमी,
जोग ही में भाग कितनों का पका।
क्या हुआ घर से किनारे हो गये,
कौन मतलब से किनारा कर सका ॥११॥
है पढ़ाती पीर की गरदन नपी,
है सती की भी चिता कढ़ती नहीं।
है बड़ी धुन मौहरों से भी कड़ी,
आंच मतलब की नहीं किसने सही ॥१२॥
जाति के हित की सभी तानें सुनीं,
देश हित के भी छिपे सब राग धुन।
लोक-हित की गिटकिरी कानों पड़ी,
पर हमें सब में मिली मतलब की धुन ॥१३॥
रङ्ग ढँग औदार्य्य का देखा गया,
रहतें सारी दया की देख लीं।
साधुता के पेट की बातें सुनीं,
मतलबों को साथ लेकर सब चलीं ॥१४॥
कौन उसके बोझ पर सीधा नहीं,
कौन सुनता है नहीं उसकी कही।
सब जगह, सब काल, सारे काम में,
मतलबों की बोलती तूती रही ॥१५॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

देहरादून।

देहरादून नाम सुन कर प्रत्येक पाठक के चित्त में यह बात पैदा हो सकती है कि इसका नाम देहरादून क्यों? इस विषय में मत-भेद है। कुछ लोग तो यह कहते हैं कि यहाँ द्रोणाचार्य्य ने पहाड़ों के च में तपस्या की थी। इस कारण इसका नाम दरादून पड़ा। "दून" का अर्थ पहाड़ी भाषा में घाटी" है। कुछ लोग कहते हैं कि सिक्खों के गुरु मरायजी पञ्जाब से आकर यहाँ रहे थे। उन्होंने त "दून" के बीच में डेरा लगाया था। अतएव इसका नाम "डेरादून" पड़ा। धीरे धीरे "डेरा" शब्द का अपभ्रंश "देहरा" हो गया। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि गुरु रामराय ने यहाँ अपनी "देह" त्यागी थी; इसलिए इसका नाम देहरादून पड़ गया।

पहले यह नगर एक छोटा सा गाँव था। परन्तु करनपुर आदि कई गाँवों के मिल जाने से अब इसकी छटा और ही हो गई है। अब यह अच्छा शहर हो गया है। बड़ा बाज़ार, दिलाराम का बाज़ार, करनपुर, डालनवाला, खोखूवाला, मानसिंहवाला, धामवाला, नया नगर, पल्टन बाज़ार, फ़ास्टर लैन, मुहल्ला झण्डा, पीपलमण्डी, हाथी बड़कला, दुनिया मुहल्ला, नौ नम्बरी, पुरानी पल्टन और अखाड़ा मुहल्ला आदि बड़े बड़े बाज़ार और मुहल्ले देहरादून में हैं। नगर के पूर्व-पश्चिम रिस्पना और बिंदाल नाम की दो नदियाँ बहती हैं। शहर दोनों नदियों के मध्य में है। बिंदाल के दाहिने तट पर चाँद-बाग़ और इम्पीरियल फ़ारेस्ट रीसर्च इन्स्टीट्यूट और कालेज हैं। चाँद-बाग़ में एक बड़ी सुन्दर और आलीशान इमारत बनी हुई है। बाग़ सघन वृक्षों से सुशोभित है। उसी के भीतर जङ्गलात का कालेज है। थकित पान्थ के श्रम को पल भर में दूर करने वाला अन्य स्थान यहाँ पर नहीं। जङ्गली वस्तुओं का अजायबघर और जङ्गलात का कालेज भी बहुत उमदा है और अच्छे स्थान पर बना हुआ है।

अजायबघर और कालेज का भवन दो-मञ्ज़िला है। नीचे के भाग में जङ्गली वस्तुओं का सञ्चय है और ऊपर के भाग में सब प्रकार की लकड़ियों के नमूने रक्खे हुए हैं। इसी के एक हिस्से में कई प्रकार के पक्षियों की ऊपरी चमड़ी से मढ़े हुए नमूने भी अल्मारियों में रक्खे हुए हैं। मैटाल सर्प, जिसको हम लोग प्रायः अजगर कहते हैं, यहाँ बहुत जगह घेरे हुए है। इसे देखते ही मनुष्य के मानस

। करते हैं । इस स्थान के दर्शन से हिन्दुओं के प में भक्ति-भाव का विशेष सञ्चार हो जाता है। मीनारायणजी का मन्दिर पल्टन-बाज़ार के उत्तरी : पर है। पास ही एक छोटा सा कुण्ड है। यह दर बड़े अच्छे मौक़े पर है। बाज़ार में आते जाते यों को शिवजी के दर्शन हो जाते हैं। कचहरी- : पर एक पञ्चायती शिवालय है। उसके दक्षिण देधोजी का एक मन्दिर है, जिसको भक्त देवियां ाम्रन ने बनवाया था। एक शिवालय जक्रूमदास मन्दिर कहाता है। उसके भीतरी चौक में धुओं के ठहरने का स्थान है। मन्दिर पुराना लूम होता है।

गङ्गाधर शर्म्मा

अनाथ बालिका ।

(१)

[डा]क्टर रामनाथ, एम० डी० का व्यवसाय साधारण नहीं है। शहर के छोटे-बड़े—अमीर ग़रीब—सभी उनको अपनी बीमारी में बुलाते हैं। इसके कई कारण हैं। एक तो आप साधु त हैं, दूसरे बड़े स्पष्टवक्ता हैं, तीसरे सदाचार की मूर्त्ति । पचीस वर्ष की अवस्था हो जाने पर भी आपने अपना याह नहीं किया। ईश्वर की कृपा से आपके पास धनमे और म की कमी नहीं। अतुल धन और अमित सम्मान के धिकारी होने पर भी आप बड़े जितेन्द्रिय, निरभिमान और दाचारी हैं। गोरखपुर में आपको डाक्टरी शुरू किये सिर्फ़ ल ही वर्ष हुए हैं, पर शहर के छोटे बड़े सबकी ज़बान पर क्टर बाबू का नाम इस तरह चढ़ गया है मानों वे जन्म से । यहाँ के निवासी हैं। आपका क़द ऊँचा, शरीर छरेरा र चेहरा कान्ति-पूर्ण गोरा है। मरीज़ से बात-चीत करते । उसकी तकलीफ़ आप कम कर देते हैं। इस कारण धारण लोग आपको अवतार तक समझते हैं। आपके परिवार में सिर्फ़ बूढ़ी माता हैं। एक भानजे का भरण-पोषण भी आप ही करते हैं। भानजा सलीफ़ कालेज में पढ़ता है।

डाक्टर राम बाबू ने अनेक मरीज़ों से फ़ारिग़ होकर आज का दैनिक उठाया ही था कि उनके सामने एक ११—१२ वर्ष की ग़रीब बालिका, आँखों में आँसू भरे हुए, आ खड़ी हुई। डाक्टर साहब समझ गये कि इस बालिका पर कोई भारी विपत्ति आई है। उन्होंने दैनिक को मेज़ पर रख कर बड़े स्नेह के साथ उससे पूछा—

"बेटी, क्यों रोती हो" ?

"डाक्टर साहब कहाँ हैं, मैं उनके पास आई हूँ। मेरी माँ का बुरा हाल है"।

"मैं ही डाक्टर हूँ। तुम्हारी माँ को क्या शिकायत है" ?

"डाक्टर साहब, मेरी माँ को बड़े ज़ोर का बुख़ार चढ़ा है। तीन दिन से वह बेहोश थी। आज कुछ होश हुआ है तो आपको बुलाने के लिए भेजा है। हमारा घर बहुत दूर नहीं है। आप चल कर देख लीजिए"।

"मैं अभी चलता हूँ। तुम घबराओ मत। ईश्वर तुम्हारी माँ को नीरोग कर देगा"।

डाक्टर साहब अपना हैंड-बेग उठा कर लड़की के साथ पैदल ही चल दिये। लड़की के मना करने पर भी उन्होंने नहीं माना और कहा—तुम्हारा मकान बहुत क़रीब है। मैं भी प्रातःकाल से गाड़ी में बैठे बैठे थक सा गया हूँ। इसलिए थोड़ी दूर पैदल चलने को तबीयत चाहती है।

डाक्टर साहब पेंचदार गलियों से निकलते हुए एक बहुत छोटे मकान में दाख़िल हुए। मकान की अवस्था देखते ही डाक्टर साहब ने समझ लिया कि इसमें रहनेवालों पर चिरकाल से लक्ष्मीजी का कोप मालूम होता है। उन्होंने मकान के भीतर जाकर देखा कि एक छप्पर के नीचे चार-पाई पर लड़की की माँ लिहाफ़ ओढ़े लेटी हुई है। आँगन में नीम का एक पेड़ है। उसके पत्तों से आँगन भर रहा है। मालूम होता है कि कई दिनों से घर में झाड़ू तक नहीं लगाई गई। लड़की ने अपनी माँ की चारपाई के पास पहले से ही एक मूँढ़ा बिछा रक्खा था, क्योंकि उसने अपनी माँ से सुना था कि कोई भी ग़रीब आदमी डाक्टर साहब के घर से निराश नहीं लौटाया जाता। डाक्टर साहब मूँढ़े पर बैठ गये। लड़की ने माँ के कान में ज़ोर से आवाज़ दी कि

...स मिला। पर उसमें भी उसने वही स्नेह-रस-परिप्लुत ...म-धाम पाया।

सरला ने पहले तो कुछ सङ्कोच अनुभव किया। पर ...पूर्णा की ममता-पूर्ण और डाक्टर साहब की स्नेह-भरी ...ने उसको बता दिया कि वह मानो अपने ही घर में है। ...टर साहब ने सरला की शिक्षा का भी समुचित प्रबन्ध ...दिया।

सरला भी डाक्टर साहब की यथा-शक्य सेवा करने ...। पर नौकरों की तरह नहीं, घर के बच्चे की तरह। ... डाक्टर साहब को अपने हाथ से भोजन कराती। अन्न-...जी यद्यपि अपने देवोपम पुत्र के लिए स्वयं ही भोजन ...यार करतीं, पर सरला फिर भी उनको कुछ कम सहायता ...देती। सरला को धीरे धीरे पाक-शास्त्र की शिक्षा मिलने ...ी। वृद्धा अन्नपूर्णा के निरीक्षण में निरामिषभोजी डाक्टर ...हब के लिए विविध प्रकार के शाक, खीर, हलुआ ...दि अनेक सु स्वादु और पौष्टिक पदार्थ वह बनाने लगी। ...तःकाल होते ही, अन्नपूर्णा की पूजा का सामान भी वह ...कर देती। घर के बग़ीचे से फूल लाकर सजा देती ...र चन्दन आदि सामग्री यथा-स्थान रख देती। अपनी ...ा और सु-स्वभाव से—मतलब यह कि—सरला ने डाक्टर ...हब और उनकी वृद्धा माता के हृदय में सम्मान से बड़ ...र स्नेह पैदा कर लिया।

... बड़े दिन की छुट्टियों में सतीश घर आया। उसने देखा ...घर में एक देवी-स्वरूपिणी कन्या रहती है। उसके ...लोक से उसने मानों सारा मकान आलोकित पाया। माता ...से पूछने पर उसको मालूम हुआ कि वह भी उनकी एक ...त्मीया है और कुछ दिनों तक उनके यहाँ रहने के लिए ...ली आई है। दो-चार दिन तक सतीश को उसके साथ ...त-चीत करने में सङ्कोच सा मालूम हुआ। उधर लज्जा-...शीला भी एक नये आदमी के साथ बात-चीत करने में ...िझकती रही। पर कुछ ही दिनों में दोनों की तबीयतें ...मिल गईं। फिर तो वे आपस में खूब आलाप करने लगे। ...तीश ने सरला से उसका कभी परिचय न पूछा। क्योंकि ...ह माताजी की बात को वेद भगवान् की बात समझता था। ...र सरला ने ही अपना प्रकृत परिचय देने की आवश्यकता ...समझी। इसमें सन्देह नहीं कि सरला की योग्यता, गृह-कार्य्य-कुशलता और उसके पवित्रता-पूर्ण आचरण पर सतीश मन से मुग्ध हो गया। सरला भी सतीश के कामों का बड़ा ध्यान रखती। सतीश प्रायः देखता कि उसके कपड़े तह किये हुए यथा-स्थान रक्खे हैं, वह अपने पढ़ने की पुस्तकें भी, जिनको वह इधर उधर बिखरी और खुली हुई छोड़ गया था, बन्द की हुई और चुनी हुई पाता। छुट्टियों के अल्पकाल में ही सरला ने उसके हृदय में स्थान कर लिया। उसको न मालूम क्यों हर समय सरला का ध्यान रहने लगा। वह अपने मन से भी इसका कारण कई दफ़े पूछ कर कुछ उत्तर न पा चुका था। परन्तु वह जाने या न जाने—और जानने की ज़रूरत भी नहीं—प्रेमदेव की पवित्र किरणों से उसका हृदयाकाश अवश्य ही आलोकित रहने लगा। वह कभी सरला को पढ़ाता—सीसियों नई नई बातें बताता—और कभी अच्छी ख़ासी इधर उधर की बातें ही करता। मतलब यह कि इन दोनों की मैत्री दिन पर दिन मज़बूत होने लगी। छुट्टियाँ समाप्त होने पर जब सतीश कालेज को जाने लगा तब उसे मकान छोड़ने में बड़ा तीव्र दर्द-रूप मोह मालूम हुआ। पर वह तत्काल सँभल गया और हमेशा की तरह माताजी और पुत्रा के चरण छू कर सरला से आँखों ही आँखों उसने विदा ली।

(३)

सतीश सेन्ट्रल हिन्दू-कालेज में पढ़ता है। इस वर्ष वह एम॰ ए॰ की अन्तिम परीक्षा देगा। सतीश बड़ा धार्मिक है। वैसे तो हर लड़के को, जो हिन्दू-कालेज के बोर्डिङ्ग हौस में रहता है, स्नान-ध्यान और धार्मिक कृत्य सम्पादन करने पड़ते हैं, किन्तु सतीश ने अपनी बाल्यावस्था के कुछ वर्ष अपने मामा डाक्टर राजा-बाबू के साथ काटे हैं। इसलिए नित्य प्रातःकाल उठना, सन्ध्योपासन करना और परोपकार के लिए दत्त-चित्त रहना उसका स्वभाव सा हो गया है। सतीश छः वर्ष से इसी कालेज में पढ़ रहा है और हर वर्ष परीक्षा में बड़ी नामवरी के साथ पास कर रहा है। सतीश अपने दैवी गुणों के लिए सब लड़कों में प्रसिद्ध है। हर एक लड़का, किसी न किसी रूप में, उसकी कृपा का पात्र बना है। अनेक कमज़ोर (शरीर में नहीं, पढ़ाई में) लड़कों ने उससे पढ़ा है, अनेक ग़रीब विद्यार्थियों की उसने आर्थिक सहायता की है। किसी लड़के के रोग-ग्रस्त होने पर सहोदर-

प्रतिज्ञा के साथ अपना और अपनी प्यारी बेटी का पेट
ा। मैंने "मान को रक्षा जान गँवा कर"। बस मेरा
रहस्य है। अब यदि आप मेरा पूरा परिचय प्राप्त करना
हैं तो दूसरे लिफ़ाफ़े को खोलिए। उसमें आपको मेरे सेठ
लिखा हुआ एक रजिस्टर्ड इकरारनामा मिलेगा। उसमें
उन्होंने मेरे पति की सम्पत्ति को अपनी सम्पत्ति से अलग,
और विभक्त, बताया है। उसमें मेरे पतिदेव का पूरा पता
मसहरका था गया है। उसको आप साधारण कागज़
समझिए। उसके द्वारा मेरी एक मात्र कन्या सरला—
अगर उसे सामन्द रखने—एक दिन लाख रुपये से अधिक
स्थावर सम्पत्ति की अधिकारिणी बन सकती है। पर मैं
नहीं चाहती कि उसका प्रयोग किया जाय। मुझे पूर्ण आशा
कि मेरी सरला अपने गुणों के कारण ही बहुत बड़ी
सम्पत्ति की अधिकारिणी होगी।

अन्त में मैं आपको हृदय से आशीर्वाद देती हूँ कि
ईश्वर आपका भला करे। क्योंकि आपने मेरा और मेरी कन्या
का भला किया है।"

डाक्टर राजनाथ को पत्र पढ़ कर बड़ा आश्चर्य हुआ।
बहुत देर तक ईश्वरीय माया और मरनेवाली सती की
प्रतिज्ञा पर विचार करते रहे। उन्होंने दूसरा लिफ़ाफ़ा
बिना पढ़े ही अपने बाक्स में बन्द कर दिया।

(२)

जब डाक्टर राजनाथ ने सतीश के पत्र में यह पढ़ा कि वह
परीक्षा देकर मकान पर न आवेगा तब उनको बड़ी चिन्ता
हुई। उसका विचार कुछ दिनों इधर उधर घूमने का है और
खर्च के लिए पाँच सौ रुपये उसने माँगे हैं। राजनाथ ने
पाँच सौ रुपये का नोट नीचे लिखी चिट्ठी के साथ उसके
पास भेज दिया—

"प्रिय सतीश,

मुझे बड़ा विस्मय है कि तुम किधर जा रहे हो और
क्यों? माताजी तुमको देखने के लिए बड़ी व्यग्र हैं। पर,
मुझे भरोसा है कि तुम किसी अच्छे उद्देश से ही जा रहे हो।
रुपये भेजता हूँ। यथा-साध्य शीघ्र लौटना।

शुभानुध्यायी
राजनाथ"।

पाँचवें छठे दिन इसका उत्तर आ गया। उसमें
लिखा था—

"पूज्य मामाजी, प्रणाम।

कृपापत्र और ५००) का नोट मिला। मेरे मित्र
पण्डित रामसुन्दर को आप जानते ही हैं। उनका एक बहुत
ही आवश्यक कार्य है, जिसमें वे मेरी सहायता चाहते हैं।
उस कार्य के लिए इधर उधर घूमना पड़ेगा। मैं आपको
पहले पत्र में ही यह कार्य बता देता, जिसके लिए यह
तैयारी है, पर उसको गुप्त रखने के लिए उन्होंने ताकीद कर
दी है। अब आप यदि आज्ञा दें तो मैं उनके साथ चला
जाऊँ। आपके उत्तर की मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

सेवक—सतीश।"

पत्र को पढ़ कर राजा बाबू कुछ देर तक सोचते रहे।
फिर उन्होंने नीचे लिखा हुआ प्रत्युत्तर अपने भानजे
को भेजा—

"प्रिय सतीश,

मैं बड़ी प्रसन्नता से तुमको अपने मित्र के कार्य में
सहायता देने की आज्ञा देता हूँ। खर्च के लिए जिस क़दर
रुपये की और ज़रूरत हो निस्संकोच मँगा लेना। यात्रा
से लौटते समय अपने मित्र को भी एक दिन के लिए इधर
लाना। उनको बहुत दिनों से मैंने नहीं देखा। देखने को
तबीयत चाहती है। आशा है, वे मेरी प्रार्थना स्वीकार
करेंगे।

शुभैषी
राजनाथ।"

राजा बाबू ने पत्र समाप्त ही किया था कि सरला ने
चाँदी की तश्तरी में कुछ ताज़े हुए फल उनके सामने रख
दिये। राजा बाबू फल खाते खाते सरला से इधर उधर की
बातें करने लगे।

(३)

गरमी की बड़ी छुट्टियों के ८—१० दिन ही बाक़ी हैं।
सतीश ने अबके बार छुट्टी के तीनों महीने बाहर ही काटे।
कल उसकी चिट्ठी आई है कि वह आज रात को रामसुन्दर
सहित मकान पहुँचेगा। उसका कमरा साफ़ किया गया है।
बूढ़ी माता भी आज बड़ी खुशी से भोजन बना रही हैं।
सरला के मन की आज अद्भुत दशा है। कभी तो वह हर्ष

कचहरी देहरादून ।

अमीर याकूबख़ाँ की कोठी—देहरादून ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

तब फिर फिर कर उसकी ओर देखा किये। अब तुम्हारी धृष्टता इतनी बढ़ गई कि मुझसे भी उसी प्रकार के प्रश्न करने लगे। मुझे तुम्हारी नैतिक अवस्था पर बड़ा दुःख है।

सतीश की यह बकवास सुन कर रामसुन्दर को ज़रा भी क्रोध न आया। उसने बड़े विनीत भाव से कहा—

"भाई साहब, आप क्या कह रहे हैं। जो कुछ आपने मेरे आचरण के विषय में कहा ठीक है। पर यह आचरण किस दृष्टि से देखना चाहिए, इस पर आपने विचार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि हमारा सैकड़ों मील इधर उधर घूमना बेकार हुआ। जिसकी हमको तलाश थी वह हमारे ही घर में मौजूद है। मैं सच कहता हूँ कि कई बार मेरे जी में आया कि अपनी नन्हीं को हृदय से लगा लूँ। आप मामाजी से इसके विषय में पूछिए तो। मेरा हृदय कूद रहा है। कार्य्य सिद्ध हो गया।

बड़े ही विस्मय और सरलता के साथ सतीश ने पूछा—"रामसुन्दर क्या सच कहते हो यही तुम्हारी बहिन—नन्हीं है"?

"मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी जब प्यारी नन्हीं हम से जुदा हुई थी। मुझे अब तक उसका चेहरा ख़ूब याद है। वह हँसता हुआ और स्वर्गीयकान्ति-पूर्ण चेहरा आज भी मेरी आँखों के सामने फिर रहा है। सरला से उसका चेहरा बहुत मिलता है। मुझे ख़ूब याद है, उसके गाल पर दो छोटे छोटे स्याह तिल थे। सरला के चेहरे पर भी वैसे ही हैं। चलिए, मामाजी से इसके विषय में पूछ पाछ करें।"

दोनों मित्र तत्काल डाक्टर साहब के कमरे में आये। डाक्टर साहब आराम-कुरसी पर बैठे कोई व्यवसाय-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ना ही चाहते थे कि ये दोनों वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा,—

"सतीश, अब आराम करो। बहुत थके हो"।

सतीश ने धीरे से कहा—"मामाजी, रामसुन्दर सरला के विषय में आपसे कुछ पूछना चाहते हैं।"

डाक्टर साहब ने आश्चर्यपूर्ण दृष्टि से रामसुन्दर को देखा, जिसका चेहरा हर्ष और विस्मय के मिले हुए भाव से एक विशेष प्रकार का आकार धारण कर रहा था।

डाक्टर साहब ने कहा—

"सरला के विषय में आप क्या और क्यों पूछना चाहते हैं?"

रामसुन्दर बड़े विनीत भाव से बोला—

"मामाजी! आज मैं अपने घर का एक रहस्य सुनाता हूँ। उसी के विषय में मैं और भाई सतीश इधर उधर सैकड़ों मील घूमा किये। मगर सफलता तो क्या, उसके चिह्न तक भी नहीं मिले। अब मैं उस रहस्य को सुनाता हूँ। मेरे पिता दो भाई थे—रामप्रसाद और शिवप्रसाद। रामप्रसादजी मेरे पिता थे। शिवप्रसादजी के एक कन्या थी, जिसको घर के लोग स्नेह-वश नन्हीं कहा करते थे। वह मुझसे छः वर्ष छोटी थी। मेरे चाचा, नन्हीं के पिता, का देहान्त मेरे पिता के सामने ही हो गया था। मेरी चाचीजी का स्वभाव बड़ा उग्र था। वे अपनी आन की बड़ी पक्की थीं। एक दिन मेरे पिता ने किसी घरेलू बात पर ग़ुस्सा होकर उनसे घर से निकल जाने की बहुत ही बुरी बात कह दी। उसके लिए उनको सदा पश्चात्ताप रहा और इस बड़े भारी कलङ्क को साथ लिये ही उन्होंने इह-लोक परित्याग किया। मेरी चाची ने उसी रात को घर छोड़ दिया। नन्हीं को भी वे साथ ले गईं। मेरे पिता ने बहुत तलाश की, पर पता न लगा। मरते समय उन्होंने मुझको अन्तिम वसीयत के तौर पर यही कहा कि जिस तरह हो अपनी चाची और बहिन का पता लगाना। यदि पता लग जाय तो उनकी सम्पत्ति मै उस दिन तक के सूद के उनको दे देना। इस तरह मेरी आत्मा के कलङ्क को धोने की चेष्टा करना। मेरा गया-श्राद्ध इसे ही समझना। यदि पता न लगे तो तू भी विवाह मत करना। अपने शरीर के साथ ही वंश की समाप्ति कर देना। क्योंकि इस कलङ्क के साथ वंशवृद्धि करना मानो कलङ्क को ज़िन्दा रखना है। बेटा, वंश-नाश ही इस पाप का एक छोटा सा, पर भयानक प्रायश्चित्त है। आशा है, तुम इस प्रायश्चित्त द्वारा मेरे कारण अपने वंश पर लगे इस कलङ्क से उसको मुक्त करने का—ज़रूरत हुई तो—सुप्रयत्न करोगे।" यह कहते कहते मेरे पिता के प्राणपखेरू उड़ गये। उनकी मृत्यु के बाद से ही मैं व्यग्र था कि इस विषय में क्या करूँ। भाई सतीश-चन्द्र से मैंने अपना रहस्य खोल कर कह दिया था और इन्होंने सदा की तरह मेरे इस दुःख में भी भाग लेना स्वीकार कर लिया था। अब, जैसा कि आपको मालूम है, हम लोग सैकड़ों मील का चक्कर और न मालूम किन किन मुसीबतों को झेल कर वापिस आ गये और कार्य्य-सिद्धि न हुई। पर, यहाँ आकर आपके यहाँ सरला को देख कर मेरी अन्तरात्मा

तब फिर फिर कर उसकी ओर देखा किये। अब तुम्हारी धृष्टता इतनी बढ़ गई कि मुझसे भी उसी प्रकार के प्रश्न करने लगे। मुझे तुम्हारी नैतिक अवस्था पर बड़ा दुःख है।

सतीश की यह बकवास सुन कर रामसुन्दर को ज़रा भी क्रोध न आया। उसने बड़े विनीत भाव से कहा—

"भाई साहब, आप क्या कह रहे हैं। जो कुछ आपने मेरे आचरण के विषय में कहा ठीक है। पर यह आचरण किस दृष्टि से देखना चाहिए, इस पर आपने विचार नहीं किया। मैं समझता हूँ कि हमारा सैकड़ों मील इधर उधर घूमना बेकार हुआ। जिसकी हमको तलाश थी वह हमारे ही घर में मौजूद है। मैं सच कहता हूँ कि कई बार मेरे जी में आया कि अपनी नन्हीं को हृदय से लगा लूँ। आप मामाजी से इसके विषय में पूछिए तो। मेरा हृदय कूद रहा है। कार्य्य सिद्ध हो गया।

बड़े ही विस्मय और उत्सुकता के साथ सतीश ने पूछा—"रामसुन्दर क्या सच कहते हो यही तुम्हारी बहिन—नन्हीं है"?

"मेरी अवस्था आठ वर्ष की थी जब प्यारी नन्हीं हम से जुदा हुई थी। मुझे अब तक उसका चेहरा ख़ूब याद है। वह हँसता हुआ और स्वर्गीयकान्ति-पूर्ण चेहरा आज भी मेरी आँखों के सामने फिर रहा है। सरला से उसका चेहरा बहुत मिलता है। मुझे ख़ूब याद है, उसके गाल पर दो नन्हे छोटे स्याह तिल थे। सरला के चेहरे पर भी वैसे ही हैं। चलिए, मामाजी से इसके विषय में पूछ पाछ करें।"

दोनों मित्र तत्काल डाक्टर साहब के कमरे में आये। डाक्टर साहब आराम-कुरसी पर लेटे कोई व्यवसाय-सम्बन्धी पुस्तक पढ़ना ही चाहते थे कि ये दोनों वहाँ पहुँच गये। उन्होंने कहा,—

"सतीश, अब आराम करो। बहुत थके हो"।

सतीश ने धीरे से कहा—"मामाजी, रामसुन्दर सरला के विषय में आपसे कुछ पूछना चाहते हैं।"

डाक्टर साहब ने आश्चर्य दृष्टि से रामसुन्दर को देखा, जिसका चेहरा हर्ष और विस्मय के मिले हुए भाव से एक विशेष प्रकार का आकार धारण कर रहा था।

डाक्टर साहब ने कहा—

"सरला के विषय में आप क्या और क्यों पूछना चाहते हैं?"

रामसुन्दर बड़े विनीत भाव से बोला—

"मामाजी! आज मैं अपने घर का एक रहस्य सुनाता हूँ। उसी के विषय में मैं और भाई सतीश इधर उधर सैकड़ों मील घूमा किये। मगर सफलता तो क्या, उसके चिह्न तक भी नहीं मिले। अब मैं उस रहस्य को सुनाता हूँ। मेरे पिता दो भाई थे—रामप्रसाद और शिवप्रसाद। रामप्रसादजी मेरे पिता थे। शिवप्रसादजी के एक कन्या थी, जिसको घर के लोग स्नेह-वश नन्हीं कहा करते थे। वह मुझसे दो वर्ष छोटी थी। मेरे चाचा, नन्हीं के पिता, का देहान्त मेरे पिता के सामने ही हो गया था। मेरी चाचीजी का स्वभाव बड़ा उग्र था। वे अपनी आन की बड़ी पक्की थीं। एक दिन मेरे पिता ने किसी घरेलू बात पर गुस्सा होकर उनसे घर से निकल जाने की बहुत ही बुरी बात कह दी। उसके लिए उनको सदा पश्चात्ताप रहा और इस बड़े भारी कलङ्क को साथ लिये ही उन्होंने इह-लोक परित्याग किया। मेरी चाची ने उसी रात को घर छोड़ दिया। नन्हीं को भी वे साथ ले गईं। मेरे पिता ने बहुत तलाश की, पर पता न लगा। मरते समय उन्होंने मुझको अन्तिम वसीयत के तौर पर यही कहा कि जिस तरह हो अपनी चाची और बहिन का पता लगाना। यदि पता लग जाय तो उनकी सम्पत्ति मैं उस दिन तक के सूद के उनको दे देना। इस तरह मेरी आत्मा के कलङ्क को धोने की चेष्टा करना। मेरा गया-श्राद्ध इसे ही समझना। यदि पता न लगे तो तू भी विवाह मत करना। अपने शरीर के साथ ही वंश की समाप्ति कर देना। क्योंकि इस कलङ्क के साथ वंशवृद्धि करना मानो कलङ्क को जिन्दा रखना है। बेटा, बड़-भाग्य ही इस पाप का एक थोड़ा सा, पर यथोचित प्रायश्चित्त है। आशा है, तुम इस प्रायश्चित्त द्वारा मेरे कारण अपने वंश पर लगे इस कलङ्क से उसको मुक्त करने का—अवसर हुई तो—प्रयत्न करोगे।" यह कहते कहते मेरे पिता के प्राणपखेरू उड़ गये। उनकी मृत्यु के बाद से ही मैं व्यग्र था कि इस विषय में क्या करूँ। भाई सतीशचन्द्र से मैंने अपना रहस्य खोल कर कह दिया था और इन्होंने सदा की तरह मेरे इस दुःख में भी भाग लेना स्वीकार कर लिया था। अब, जैसा कि आपको मालूम है, हम लोग सैकड़ों मील का चक्कर और न मालूम किन किन मुसीबतों को झेल कर वापिस आ गये और कार्य्य-सिद्धि न हुई। पर, यहाँ आकर आपके यहाँ सरला को देख कर मेरी अन्तरात्मा

हिन्दू-गर्ल्स-स्कूल, लखनऊ।

(लखनऊ में हिन्दू-लड़कियों का स्कूल)

इस स्कूल को, सन् १८९५ ईसवी में, श्रीबाबू हीरालालजी राय ने बङ्गाली लड़कों और लड़कियों के लिए स्थापित किया था। उस समय इसमें बँगला और अँगरेज़ी की शिक्षा दी जाती थी। कुछ समय पश्चात् उस उत्साही पुरुष के मन में यह आया कि इस प्रान्त की कन्यायें भी विद्या से वञ्चित न रहें। इस कारण उन्होंने इस नगर के निवासियों को स्त्री-शिक्षा के प्रचार के लिए प्रोत्साहित करके हिन्दी के दरजे खोल दिये और सन् १९१० ईसवी में डाक्टर हरिदत्त पन्त को स्कूल की प्रबन्ध-कर्तृ-सभा का प्रधान नियत किया। जिस समय से डाक्टर साहब प्रधान हुए, इस स्कूल ने बड़ी उन्नति की। डाक्टर साहब के परिश्रम से बड़े बड़े राजा-महाराजा भी इस स्कूल में पधारे और यथोचित सहायता भी की।

महारानी विजयानगर ने ५००० रुपये इमारत के कोश में दिये। रानी हथुआ ने ५०० रुपये और कुँवर भुवन-रञ्जन मुकुरजी, ताल्लुक़ेदार, शङ्कर-पुर (रायबरेली) ने भी ५०० रुपये से सहायता की। इसी तरह और भी कितने ही उदार-हृदय सज्जनों ने कोई दो हज़ार रुपया स्थायी कोश में दिया।

१९१० ईसवी तक इस स्कूल में हिन्दी और बँगला के दरजे पृथक् पृथक् बने रहे। १ अक्टोबर १९१० ईसवी से चीफ़ इन्सपेक्टर्स के आज्ञानुसार बँगला के दरजे महाकाली-पाठशाला में मिला दिये गये और उस पाठशाला की हिन्दी पढ़ने वाली कन्यायें इस पाठशाला में आ गईं। उस समय से इसमें संस्कृत, हिन्दी, अँगरेज़ी, सीना-पिरोना, क़सीदा, चित्रकारी, भोजन बनाने की विधि, स्वास्थ्यरक्षा के नियम, धर्म्मशिक्षा आदि सरकारी पाठ-विधि के अनुसार दी जाती है।

१९१० ईसवी तक यह स्कूल केवल चौथे दरजे तक ही था। जबसे हिन्दी मुख्य भाषा हुई तब से इसमें विशेष उन्नति हुई। अब यह स्कूल लोअर मिडिल तक है। कई लड़कियाँ मिडिल परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुकी हैं। इसमें धर्म्म-शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

इस स्कूल में पारितोषिक वितरण के लिए श्रीमान् लाट साहब महोदय ने भी दो बार पधारने की कृपा की है। प्रथम बार हर आनर हिवेट साहब, २७ नवम्बर १९०७ ईसवी को, सपत्नीक पधारे थे। दूसरी बार सर जेम्स मेस्टन, २२ फ़र्वरी सन् १९१५ ईसवी को, सपत्नीक पधारे। श्रीमान् हिवेट महोदय इस स्कूल से इतने प्रसन्न हुए कि २०० रुपया मासिक सहायता देना उसी समय से स्वीकार कर लिया। श्रीमान् सर जेम्स मेस्टन कन्याओं की वक्तृता तथा भजन आदि सुन कर इतने प्रसन्न हुए कि एक कन्या के स्त्री-शिक्षा-विषयक व्याख्यान पर आपने अपनी समालोचना में यह कहा कि जो कुछ इस छोटी सी कन्या ने कहा है उससे अधिक मैं नहीं कह सकता। आपने यह भी कहा कि जिस समय स्कूल की इमारत के लिए सहायता माँगी जायगी उस समय गवर्नमेंट विशेष ध्यान देगी।

१९१२ ईसवी से इसमें स्त्री-समाज भी स्थापित हुआ। राय ज्वालाप्रसाद साहब की धर्म्मपत्नी और उनकी पुत्र-वधुओं ने बड़ी उमङ्ग के साथ इस सभा का काम किया। अब बाबू मुरारीलाल जी की धर्म्मपत्नी तथा उनकी पुत्री विष्णुदेई और पण्डित गोकर्णनाथजी मिश्र की माता तथा धर्म्मपत्नी इस समाज के मुख्य अङ्ग हैं।

तो इस मानने का यह अर्थ होगा कि वे कोई स्वतन्त्र वस्तुयें हैं। जब वे वस्तुयें मान ली गईं तब उनका रूप भी होना चाहिए। परन्तु उनका कोई रूप दिखाई नहीं देता, और न ध्यान ही में आ सकता है। जैसे वृक्ष, पर्वत आदि के रूपों का स्पष्ट चित्र मन में बन जाता है वैसे उनके रूप का ज्ञान नहीं होता। जब किसी वस्तु का विचार किया जाता है तब वह विचार उस वस्तु के गुणों के द्वारा ही होता है। गुणों के कारण ही एक वस्तु दूसरी से भिन्न कही जाती है। तो आकाश और काल के गुण क्या हैं? आकाश में लम्बाई-चौड़ाई है—अर्थात् वह विस्तारमय है। यही उसका लक्षण हुआ। आकाश में सिवा विस्तार के और कोई चीज़ ही नहीं। मतलब यह कि विस्तार और आकाश एक ही वस्तु है। इसका यह अर्थ हुआ कि विशेष्य और विशेषण एक ही चीज़ हैं। काल का भी यही हाल है। उसका विचार करने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है। संसार की जितनी वस्तुयें हैं सभी परिमित (Limited), अर्थात् सीमाबद्ध, हैं। परन्तु आकाश और काल के विषय में न तो हम यह कह सकते हैं कि इनकी कोई सीमा है और न यह कि इनकी कोई सीमा नहीं है। जो आकाश और काल अपरिमित और सीमारहित हैं उसकी कोई कल्पना मन के द्वारा नहीं हो सकती। हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि इन दोनों के विभाग हो सकते हैं। इस लिए आकाश और काल का ज्ञान न तो वस्तु के रूप में हो सकता है, न वस्तु के विशेषण-रूप में हो सकता है, और न अवस्तु के रूप ही में हो सकता है। आकाश और काल का ज्ञान तो नहीं हो सकता, तथापि यह मानना ही पड़ता है कि वे हैं अवश्य।

दूसरा मत यह है कि आकाश और काल केवल मनःकल्पित हैं। उनकी पृथक् कोई सत्ता नहीं। कान्ट (Kant) नामक विज्ञानवेत्ता ने लिखा है कि आकाश और काल केवल बुद्धि के विकार हैं। इस मत में ये दोष हैं—

यदि आकाश और काल मन के भीतर ही हैं तो मन के बाहर उनकी पृथक् स्थिति नहीं—अर्थात् सांसारिक प्रकृति से उनका कोई सम्बन्ध नहीं, सम्बन्ध केवल आत्मा से है। पर ऐसी कल्पना करना असम्भव है। कान्ट का कथन है कि आकाश और काल का ज्ञान पहले ही से मन में चला आता है, और यह ज्ञान इतना दृढ़ है कि किसी तरह हट ही नहीं सकता। यदि इस ज्ञान को हम हटा नहीं सकते तो ये दोनों चीज़ें मन के बाहर अवश्य ही उपस्थित होंगी। क्योंकि मन के भीतर से इनका ज्ञान हट ही नहीं सकता।

इस विषय के विचार को अब और आगे बढ़ाइए। यह प्रत्यक्ष मालूम होता है कि आकाश और काल मन में नहीं, किन्तु मन के बाहर हैं, और ऐसे स्वतन्त्र रूप वाले हैं कि यदि मन का नाश हो जाय तो भी वे वर्तमान रहेंगे। यदि हम आत्मा को विशेष्य और आकाश को विशेषण मानें, तो यह भी नहीं हो सकता। कान्ट के कथनानुसार आकाश और काल बुद्धि के विकार हैं। यदि ये बुद्धि के विकार हैं तो बुद्धि इनका चिन्तन क्यों नहीं कर सकती? वह इन्हें ग्रहण करने में असमर्थ क्यों है? यह असम्भव है कि कोई वस्तु बुद्धि का विकार भी हो और उसका उपादान कारण भी हो। यदि आकाश और काल ज्ञेय पदार्थ हैं तो वे ज्ञान के रूप कैसे हो सकते हैं। यदि काल के द्वारा मन की कल्पनायें होती हैं तो जब आकाश और काल के बिना कल्पना करेंगे तब वह कल्पना बिना किसी बन्धन के होगी। अर्थात् आकाश और काल का बन्धन उसमें न होगा। परन्तु यह बात नहीं हो सकती। बिना आकाश और काल के मन द्वारा कोई कल्पना हो ही नहीं सकती। सिद्धान्त यह निकला कि आकाश और काल ऐसी वस्तुयें हैं

ज्ञान होना असम्भव है वैसे ही प्रकृति का जानना भी असम्भव है। प्रकृति के रूप आदि के वर्णन से सम्बन्ध रखने वाले जितने मत हैं सब में एक न एक दोष है। इस लिए प्रकृति भी अज्ञेय है।

गति (MOTION)

जब किसी वस्तु पर ठोकर मार कर चलाते हैं तब वह चलती है और उस तरफ़ चलती हुई दिखाई देती है जिस तरफ़ वह चलाई गई थी। उसके चलने में, और उस निर्दिष्ट दिशा की ओर चलने में, इन दोनों बातों में कोई सन्देह नहीं रहता। परन्तु वास्तव में ये दोनों ही बातें असत्य हैं। न तो वह चाल उस वस्तु ही की होती है, और न वह चाल उस निर्दिष्ट दिशा की ओर ही होती है। उदाहरण लीजिए—

कल्पना कीजिए कि किसी मध्यरेखा पर कोई जहाज़, पश्चिम की तरफ़ मुँह किये, लङ्गर डाले खड़ा है। जहाज़ का कप्तान जहाज़ के मुँह की तरफ़ से पीछे की ओर जहाज़ की छत पर टहल रहा है। अब बताइए कप्तान किस तरफ़ जा रहा है। उत्तर यही होगा कि पूर्व की तरफ़। जहाज़ का लङ्गर उठा और जहाज़ पश्चिम की तरफ़ रवाना हुआ, और उतनी ही चाल से चला जितनी चाल से कप्तान जहाज़ पर चल रहा है। बताइए कप्तान किस तरफ़ जा रहा है। हम यह नहीं कह सकते कि पूर्व की तरफ़, क्योंकि कप्तान को जहाज़ उसी चाल से पश्चिम की तरफ़ लिये जा रहा है जिस चाल से कि वह पूर्व को जा रहा है। हम यह भी नहीं कह सकते कि वह पश्चिम को जा रहा है। जहाज़ के बाहर जितनी चीज़ें हैं उनकी दृष्टि से तो कप्तान ठहरा हुआ है, पर जो जहाज़ पर हैं उनको वह चलता हुआ मालूम होता है। अब बताइए कि कप्तान स्थिर है या चल रहा है। पृथिवी अपनी धुरी के चारों तरफ़ घूमती है। यदि पृथिवी की इस चाल को ध्यान में रख कर देखा जाय तो कप्तान हज़ार मील फ़ी घण्टे के हिसाब से पूर्व को जा रहा है। पृथिवी अपनी कक्षा (Orbit) पर भी ६८,००० मील फ़ी घण्टे के हिसाब से चलती है। यदि इस चाल को ध्यान में रख कर देखा जाय तो कप्तान ६७,००० मील फ़ी घण्टे के हिसाब से पूर्व को जा रहा है। यह बात मध्याह्न-काल के समय को लक्ष्य करके कही गई है। इतने पर भी अभी ठीक चाल मालूम नहीं हुई, और न ठीक दिशा ही मालूम हुई। यदि पृथिवी की कक्षा वाली चाल के साथ, सूर्य्य-मण्डल (Solar System) की वह चाल भी ध्यान में रक्खी जाय जिससे कि वह हरक्यूलेज़ नामक नक्षत्र की ओर जा रहा है, तो मालूम होगा कि कप्तान न पूर्व ही की तरफ़ जा रहा है, और न पश्चिम ही की तरफ़, किन्तु क्रान्ति-मण्डल (Elliptic) के धरातल की तरफ़ झुकी हुई रेखा में जा रहा है। यदि तारा-मण्डलों का हाल मालूम हो और उनकी चाल का भी ख़याल रक्खा जाय तो पूर्वकथित चाल में कुछ और भी अन्तर पड़ जायगा।

इस दशा में किसी चीज़ की चाल और उस चाल की दिशा जो हम समझते हैं वह ठीक नहीं। जो चाल प्रत्यक्ष दिखाई देती है वह देखने से तो ठीक मालूम होती है और सच भी मानी जाती है, परन्तु यथार्थ में बात कुछ और ही है। असली चाल को न हम ख़याल में ला सकते हैं और न समझ ही सकते हैं। इसके अतिरिक्त जब तक किसी स्थान को लक्ष्य में रख कर गति का विचार नहीं किया जाता तब तक गति अथवा चाल का चिन्तन ही नहीं हो सकता। गति का अर्थ है—स्थान-त्याग। परन्तु आकाश में किसी स्थान का कोई निश्चित ठिकाना नहीं। इस लिए वहाँ स्थान-त्याग की कल्पना ही नहीं हो सकती। यदि यह कहिए कि आकाश में,सी . उसकी सीमाओं को लक्ष्य में रखने

से स्थान की योजना हो सकती है तो प्रश्न यह होता है कि आकाश सीमा-सहित है या सीमा-रहित। इसका यही उत्तर होगा कि आकाश सीमा-रहित है। यदि आकाश सीमारहित है तो स्थान का ख़याल हो ही नहीं सकता। जब सीमायें ही नहीं हैं तब सभी जगहें एक सी दूरी पर होंगी। अतएव लाचार होकर हमें यही कहना पड़ता है कि गति या चाल है तो अवश्य, परन्तु उसका समझना हमारी बुद्धि के बाहर की बात है।

गति के बदलने का विषय भी बड़ा टेढ़ा है। कल्पना कीजिए कि एक गेंद ठहरी हुई है। दूसरी गेंद जो उसकी तरफ़ फेंकी गई तो पहली गेंद चलने लगी। अच्छा तो पहली गेंद चलने क्यों लगी? बात क्या हो गई कि पहले वह ठहरी हुई थी और अब चलने लगी? उत्तर में आप यह कहेंगे कि चाल या गति में परिवर्तन हो गया। पर यह उत्तर ठीक नहीं। बताइए वह वस्तु है क्या जिसका परिवर्तन हो गया। गेंद तो जैसी थी वैसी अब भी है। उसमें तो परिवर्तन हुआ नहीं। गेंद के जो विशेषण थे उनमें भी कुछ अन्तर न आया।

निष्कर्ष यह निकला कि वह वस्तु जो परिवर्तित होती है मालूम नहीं हो सकती। गति के विश्राम के विषय में एक पुरानी बात अब तक सुनी आती है। वह यह है कि जो चीज़ चल रही है वह तब तक कभी नहीं ठहर सकती जब तक कि जितनी तरह की चालें हो सकती हैं सब शान्त न हो गई हों। पहले तेज़ चाल थी, फिर धीमी हुई। इस तरह बराबर घटती हुई चालों की मन में कल्पना करते जाओ। तब भी ऐसी चाल तक हम नहीं पहुँच सकते जिससे कम और कोई चाल ही न हो। शून्य चाल की अपेक्षा सूक्ष्म से सूक्ष्म भी चाल बड़ी है। चाहे आकाश को लक्ष्य करके विचार किया जाय, चाहे प्रकृति को लक्ष्य करके, और चाहे गति के विश्राम को लक्ष्य करके, परन्तु गति का ज्ञान होना असम्भव है। हम ज्यों ज्यों समझने की चेष्टा करते हैं त्यों त्यों रहस्य गूढ़तर होता जाता है। इस लिए यही मानना पड़ता है कि गति या चाल का ज्ञान सम्भव नहीं।

शक्ति (Force)

जब किसी कुर्सी को हम ऊपर उठाते हैं तब जितना भार कुर्सी का है उसी के बराबर हमें अपना बल काम में लाना पड़ता है। दो तुल्य पदार्थों ही में बराबरी हो सकती है, परन्तु यहाँ बात इसके विपरीत है। क्योंकि बल तो हमारे भीतर है और कुर्सी का भार बाहर कुर्सी में है। जो चीज़ हमारे भीतर है अर्थात् मन में है, वह मन का विकार है—वह तो चेतन का भाव है। कुर्सी तो जड़ है। उसमें ऐसी शक्ति का होना, जो चेतन के भाव के तुल्य है, बड़े आश्चर्य की बात है। इससे यह ज्ञात हुआ कि शक्ति को चैतन्य-युक्त मानना मूर्खता है। परन्तु बात ऐसी नहीं, क्योंकि हमारे भीतर जो शक्ति है वह मन का विकार है, और मन चेतन है। इस लिए शक्ति भी चेतन ही है।

शक्ति और प्रकृति में परस्पर क्या सम्बन्ध है, इसका निर्णय करना चाहिए। जिसे प्रकृति कहते हैं वह केवल शक्ति के कारण ही दिखाई देती है। प्रकृति (Matter) से यदि प्रतिरोधता (Resistance) निकाल डाली जाय तो केवल विस्तार (Extension) रह जायगा। पर बिना प्रकृति के विस्तार समझ ही में नहीं आ सकता। यदि यह कहा जाय कि प्रकृति शक्ति के उन अणुओं से बनी है जिनमें विस्तार नहीं, तो यह बात कल्पना के बाहर है। यह बात भी समझ में नहीं आ सकती कि विस्तार वाले अथवा बिना विस्तार वाले, शक्ति के अणु, बिना किसी प्रकार की प्राकृतिक सहायता के आपस में आकर्षण और प्रत्याकर्षण कर सकते हैं।

न्यूटन और बोस्कोविच के विचार इस विषय

में दोषरहित नहीं हैं, क्योंकि ये ख़ाली आकाश के द्वारा एक चीज़ का असर दूसरी चीज़ पर होना बताते हैं। इस कमी की पूर्ति के लिए इन विद्वानों का कथन है कि एक प्रकार की द्रव्यवस्तु परमाणुओं अथवा शक्ति के अणुओं में होती है। उसी वस्तु के द्वारा एक परमाणु दूसरे परमाणु पर असर डालता है। अच्छा, तो यह द्रव्य वस्तु क्या है। इसका उत्तर देने में वही कठिनता उपस्थित होती है जो परमाणुओं के रूप बताने में उपस्थित हुई थी। यदि ज्योतिषशास्त्र के विचार से देखा जाय तो यह सङ्कट और भी विकट हो जाता है। सूर्य से हमें प्रकाश और गरमी मिलती है। सूर्य से पृथ्वी तक पहुँचने में प्रकाश को ८ मिनट लगते हैं। इसमें दो बातें कारणीभूत हैं। (१) शक्ति और (२) गति। सूर्य और पृथ्वी के बीच ९,२०,००,००० मील का अन्तर है। यह अन्तर शून्यमय है। इस शून्य में शक्ति का प्रयोग होना समझ के बाहर है। चलने वाली चीज़ही की चाल होती है। अचल की चाल नहीं हो सकती। परन्तु यहाँ चलने वाली कोई चीज़ नहीं। आकर्षण-शक्ति के विषय में न्यूटन ने लिखा है कि जब तक दो वस्तुओं के बीच कोई ज़रिया नहीं होता तब तक एक चीज़ दूसरी का आकर्षण नहीं कर सकती। कल्पना कीजिए कि वह चीज़ ख़ालिस हवा (Ether) है, जो बहुत छोटे छोटे परमाणुओं की बनी है। यह मानने पर भी परमाणुओं के बीच शून्य का अभाव नहीं होता। शून्य या अन्तर चाहे थोड़ा हो चाहे बहुत, रहता अवश्य है। अतएव लाचार होकर हमें मानना पड़ता है कि प्रकृति के परमाणु चाहे भारी हों चाहे हलके, चाहे छोटे हों चाहे बड़े, आकाश के द्वारा ही एक दूसरे पर असर डालते हैं। परन्तु यह बात ऐसी है जो ध्यान ही में नहीं आ सकती।

(१) पूर्वोक्त विचार से यह सिद्ध हुआ कि प्रकृति के परमाणु आकाश के द्वारा ही आपस में एक दूसरे पर असर डालते हैं।

(२) उससे यह भी सिद्ध हुआ कि प्रकृति के परमाणु एक दूसरे पर और सब परमाणुओं पर भी एक ही सा आकर्षण-प्रभाव डालते हैं, चाहे बीच की जगह भरी हो चाहे ख़ाली हो। उदाहरण—एक सेर के बाँट को आप ऊपर की ओर उठाइए। पृथ्वी और बाँट के बीच का स्थान ख़ाली है। यह बीच का स्थान चाहे ख़ाली छोड़ दिया जाय चाहे किसी क़िस्म की चीज़ों से भर दिया जाय, पर बाँट की आकर्षण-शक्ति में कुछ भी अन्तर न पड़ेगा। पृथ्वी का प्रत्येक परमाणु इस बाँट पर एक सा असर डालता रहेगा। बीच में चाहे कुछ हो चाहे न हो। ८००० मील की गहरी पृथ्वी के उस पार वाले परमाणु भी इस बाँट पर एक सा आकर्षण-प्रभाव डालेंगे। बाँट और परमाणुओं के बीच में कोई चीज़ है या नहीं, इसका कुछ भी असर उस आकर्षण-शक्ति पर न होगा।

सारांश यह कि न तो हम शक्ति के रूप का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और न इस बात का कि उस शक्ति के बल का किस तरह प्रयोग होता है। इस लिए शक्ति भी अज्ञेय है।

ज्ञान या मन (Consciousness or Mind.)

प्राकृतिक वस्तुओं का विचार छोड़ कर अब हम मन के विषय में लिखते हैं। ज्ञान की अनेक अवस्थायें हैं। इन अवस्थाओं की कल्पना एक शृङ्खला के रूप में कर लीजिए। अब प्रश्न यह है कि यह शृङ्खला अनन्त है या सान्त। अनन्त तो हो नहीं सकती। क्योंकि अनन्त वस्तु की कल्पना ही नहीं हो सकती। यदि सान्त मानते हैं तो यह भी सिद्ध नहीं, क्योंकि इस शृङ्खला के दोनों छोरों में से एक का भी प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं। अर्थात् न तो हम उस अवस्था का बोध कर सकते हैं जिससे कि हमारे ज्ञान की उत्पत्ति हुई,

और न उसी का जो ज्ञान के विकास के अन्त की होगी। ज्ञानोदय और ज्ञान-समाप्ति की अवस्थाओं में से किसी का भी प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं हो सकता। स्मरण-शक्ति के द्वारा हम पीछे की कितनी ही बातें क्यों न याद करें, परन्तु हम यह नहीं जान सकते कि पहले पहल जब बोध होना आरम्भ हुआ था तब कौन सी अवस्था थी। यह अनुमान करना भी सर्वथा असम्भव है कि इस ज्ञानावस्था की शृङ्खला का अन्त, कभी न कभी, आगे जाकर हो जायगा। उसका अनुभव ही नहीं हो सकता। क्योंकि जिस अवस्था को हम अन्त की समझेंगे वह अन्त की न होगी, किन्तु उससे पहले की होगी। क्योंकि जिसे हम ज्ञान की अन्तिम अवस्था समझेंगे वह तो उस अवस्था का अनुभव करने में, जो अभी हो चुकी है, चली जायगी। इस तरह न तो हम इस शृङ्खला का पहला ही सिरा जान सकते हैं और न पिछला ही। ज्ञान को परिमित समझना यद्यपि हमारी बुद्धि के बाहर की बात है, तथापि ऐसा अनुमान किया अवश्य जा सकता है। सारांश यह कि न तो ज्ञान को हम अनन्त ही मान सकते हैं और न अन्त वाला ही। पर इतना अनुमान ज़रूर कर सकते हैं कि वह अनन्त या अपरिमित नहीं किन्तु परिमित है।

अब इस बात का विचार कीजिए कि ज्ञान है क्या चीज़। प्रत्येक मनुष्य को अपने होने का पूर्ण विश्वास है, और इस सत्य को सभी विज्ञानवेत्ताओं ने माना है। जब तक मानसिक दशा ठीक है तब तक अपने होने में कोई सन्देह नहीं कर सकता। अब यह बताइए कि जिन सङ्कल्पों और विचारों से ज्ञान बनता है वे क्या हैं? क्या वे मनोविकार हैं? वे मन में उत्पन्न होते हैं, इस लिए जिसे मन कहते हैं क्या उसी का नाम जीव है? 'हाँ' कहने से यह सिद्ध होगा कि जीव कोई स्वतन्त्र चीज़ है; अथवा यह कि सङ्कल्प और विचार मन या जीव के विकार नहीं, किन्तु जीव की रचना के कारणीभूत पदार्थ हैं। इससे यह भी सिद्ध होगा कि जीवात्मा निराला बनी रहने वाली चीज़ है, क्योंकि विकार किसी चीज़ के ही हो सकते हैं। नास्तिकों का यह मत कि जो सङ्कल्प और विचार होते हैं वही सत्य हैं, जिस अन्तःकरण या मन में वे होते हैं वह कोई चीज़ नहीं, केवल ढकोसला है। यह ठीक नहीं, क्योंकि बिना आधार के सङ्कल्प-विकल्प का होना असम्भव है। इस नास्तिक-मत में परस्पर विरोध है। जब किसी चीज़ में आत्मा या जीव ही नहीं मानते, केवल सङ्कल्प-विकल्पों ही को जीव मानते हो, तब यह कैसे कह सकते हो कि हमारे भी कोई सङ्कल्प और विचार हैं। जब सङ्कल्पों को सत्य मान लिया तब यह सङ्कल्प कि 'मैं हूँ', कैसे झूठा माना जा सकता है?

अपने अस्तित्व का विश्वास तो सब को है। परन्तु यह बात युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकती। यह कोई नहीं कह सकता कि जैसे गुण-समूह का नाम प्रकृति है वैसे ही विचार-समूह का नाम भी मन है। ज्ञान-प्राप्ति की रीति के विचार से यह सिद्ध होता है कि ज्ञान प्राप्त करने में दो चीज़ों की आवश्यकता है—एक तो ज्ञाता की, दूसरे ज्ञेय की। अर्थात् एक तो उसकी जिसे ज्ञान-प्राप्ति हो और दूसरे उसकी जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाय। जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है उस वस्तु को यदि आत्मा या जीव नाम लें तो ज्ञान करने वाला कौन होगा? यदि ज्ञान करने वाले ही को आत्मा मानें तो वह आत्मा कौन सी है जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस दशा में अपने होने से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान का यह अर्थ है कि ज्ञान प्राप्त करने वाला, और जिस चीज़ का ज्ञान प्राप्त किया जाय वह—ये दोनों एक ही हैं। अर्थात् अपने होने का निश्चय करने में ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं। परन्तु विज्ञानवेत्ताओं के मत से यह बात सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि आत्मा वह है जिसको ज्ञान हो—विज्ञानवेत्ता आत्मा का यही लक्षण बताते हैं। ज्ञेय तो

उससे सर्वथा अलग है। यदि यह बात मान ली जाय तो आत्मा का ज्ञान ही नहीं हो सकता।

सारांश यह कि वैज्ञानिक विषयों का मूल आधार कुछ विशेष वस्तुयें हैं। उनके विषय में यह तो स्वीकार करना पड़ता है कि ये सत्य अवश्य हैं। पर साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि ये ज्ञान का विषय नहीं। कितना ही परिश्रम क्यों न किया जाय उनका ज्ञान हो ही नहीं सकता। संसार में, और अपने मन के भीतर भी, निरन्तर ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं जिनका साद्यन्त हाल जानना असम्भव है। उसमें बुद्धि नहीं काम करती। यदि यह माना जाय कि पहले संसार फैली हुई दशा में था, अर्थात् यह छिन्न-भिन्न था, तो यह बताना कठिन है कि यह क्यों ऐसी दशा में था। यदि इस बात का विचार किया जाय कि भविष्यत् में संसार का क्या रूप होगा, तो जो घटनायें और दृश्य निरन्तर होते रहते हैं उनकी अन्तिम सीमा बाँधना दुस्साध्य है। मन के भीतर का हाल देखिए। उसकी परीक्षा से आप को मालूम होगा कि ज्ञान-दशाओं की शृङ्खला इतनी अपरिमित है कि उसके दोनों छोरों में से एक छोर को भी बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। किसी चीज़ का असली रूप यदि हम जानना चाहें तो हज़ार प्रयत्न करने पर भी हम नहीं जान सकते। यदि हम सब वस्तुओं को घटाते घटाते किसी शक्ति-विशेष तक पहुँचें और उसका आधार आकाश तथा काल मानें तो यह कठिनता उपस्थित होती है कि शक्ति, आकाश और काल इनमें से किसी के भी रूप का निश्चय नहीं हो सकता। इसी तरह यदि सारे मानसिक कार्यों को घटाते घटाते उनका आधार सङ्कल्प और विचार मान लें तो यह बताना असम्भव होगा कि सङ्कल्प-विकल्प क्या चीज़ है और वह क्या चीज़ है जिसमें सङ्कल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं। इसी कारण बाहर-भीतर की जितनी मूलाधार चीज़ें हैं उनके सम्बन्ध में न तो यही ज्ञान हो सकता है कि उनका असली रूप क्या है और न यही कि वे उत्पन्न कैसे हुई हैं। इस खोज में मनुष्य की सब चेष्टायें निष्फल होती हैं। लाचार होकर यही मानना पड़ता है कि बुद्धि की सीमा बहुत अल्प है। बुद्धि केवल उन्हीं विषयों को ग्रहण कर सकती है जिनका अनुभव हो सकता है। उन विषयों को वह नहीं जान सकती जो अनुभव के परे हैं। किसी चीज़ के असली रूप का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है।

(असमाप्त)

कन्नोमल, एम० ए०

विविध विषय।

१—वर्तमान युद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़र्च।

अगस्त १९१४ से इस महा युद्ध को होते कोई डेढ़ वर्ष हुआ। यह अब दिनों दिन और भी भीषण रूप धारण करता जाता है। अभी तक इसमें लाखों आदमी मारे जा चुके और अरबों रुपये ख़र्च हो चुके। युद्ध-विषयक सभी देशों के ख़र्च का ठीक ठीक तो ज्ञात नहीं, किन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट के ख़र्च का ठीक प्रकाशित हुआ है। ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़र्च इस समय इतना अधिक है कि उस पर साधारण आदमियों को विश्वास नहीं हो सकता। मिस्टर एस्क्विथ (Mr. Asquith) के कथनानुसार उसका प्रति दिन का ख़र्च ५२,००,००० पौंड अर्थात् पाँच करोड़ पच्चीस लाख रुपया है। यह पाठक जानते ही होंगे कि एक पौंड १५ रुपये का होता है। इस हिसाब से प्रति घण्टे का ख़र्च २१,८७,५०० और प्रति मिनिट का ३६, ४५८ रुपया हुआ। क्या हमने कभी ऐसे अन्धाधुन्ध ख़र्च का अनुमान किया है!

हमारे यहाँ के एक साधारण रजवाड़े की साल भर की आमदनी ब्रिटिश गवर्नमेंट को कुछ मिनटों या घण्टों ही के लिए युद्ध-क्षेत्र में रख सकती है। एक रुपया रोज़ पानेवाले सवा पाँच करोड़ मनुष्यों की दिन भर की कमाई से कहीं

और न उसी का जो ज्ञान के विकास के अन्त की होगी। ज्ञानोदय और ज्ञान-समाप्ति की अवस्थाओं में से किसी का भी प्रत्यक्ष-ज्ञान नहीं हो सकता। स्मरण-शक्ति के द्वारा हम पीछे की कितनी ही बातें क्यों न याद करें, परन्तु हम यह नहीं जान सकते कि पहले पहल जब बोध होना आरम्भ हुआ था तब कौन सी अवस्था थी। यह अनुमान करना भी सर्वथा असम्भव है कि इस ज्ञानावस्था की शृङ्खला का अन्त, कभी न कभी, आगे जाकर हो जायगा। उसका अनुभव ही नहीं हो सकता। क्योंकि जिस अवस्था को हम अन्त की समझेंगे वह अन्त की न होगी, किन्तु उससे पहले की होगी। क्योंकि जिसे हम ज्ञान की अन्तिम अवस्था समझेंगे वह तो उस अवस्था का अनुभव करने में, जो अभी हो चुकी है, चली जायगी। इस तरह न तो हम इस शृङ्खला का पहला ही सिरा जान सकते हैं और न पिछला ही। ज्ञान को परिमित समझना यद्यपि हमारी बुद्धि के बाहर की बात है, तथापि ऐसा अनुमान किया अवश्य जा सकता है। सारांश यह कि न तो ज्ञान को हम अनन्त ही मान सकते हैं और न अन्त वाला ही। पर इतना अनुमान ज़रूर कर सकते हैं कि यह अनन्त या अपरिमित नहीं किन्तु परिमित है।

अब इस बात का विचार कीजिए कि ज्ञान है *क्या चीज़।* प्रत्येक मनुष्य को अपने होने का पूर्ण विश्वास है, और इस सत्य को सभी विज्ञानवेत्ताओं ने माना है। जब तक मानसिक दशा ठीक है तब तक अपने होने में कोई सन्देह नहीं कर सकता। अब यह बताइए कि जिन सङ्कल्पों और विचारों से ज्ञान बनता है वे क्या हैं? क्या वे मनोविकार हैं? वे मन में उत्पन्न होते हैं, इस लिए जिसे मन कहते हैं क्या उसी का नाम जीव है? 'हाँ' कहने से यह सिद्ध होगा कि जीव कोई स्वतन्त्र चीज़ है, अथवा यह कि सङ्कल्प और विचार मन या जीव के विकार नहीं, किन्तु जीव की रचना के कारणीभूत पदार्थ हैं। इससे यह भी सिद्ध होगा कि जीवात्मा निरन्तर बनी रहने वाली चीज़ है, क्योंकि विकार किसी चीज़ के ही हो सकते हैं। नास्तिकों का यह मत कि जो सङ्कल्प और विचार होते हैं वही सत्य हैं, जिस अन्तःकरण या मन में वे होते हैं वह कोई चीज़ नहीं, केवल ढकोसला है। यह ठीक नहीं, क्योंकि बिना आधार के सङ्कल्प-विकल्प का होना असम्भव है। इस नास्तिक-मत में परस्पर विरोध है। जब किसी चीज़ में आत्मा या जीव ही नहीं मानते, केवल सङ्कल्प-विकल्पों ही को जीव मानते हो, तब यह कैसे कह सकते हो कि हमारे भी कोई सङ्कल्प और विचार हैं। जब सङ्कल्पों को सत्य मान लिया तब यह कहना कि 'मैं हूँ', कैसे झूठा माना जा सकता है?

अपने अस्तित्व का विश्वास तो सब को है, परन्तु यह बात युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकती। यह कोई नहीं कह सकता कि जैसे गुण-समूह का नाम प्रकृति है वैसे ही विचार-समूह का नाम मन है। ज्ञान-प्राप्ति की रीति के विचार से यह सिद्ध होता है कि ज्ञान प्राप्त करने में दो चीज़ों की आवश्यकता है—एक तो ज्ञाता की, दूसरे ज्ञेय की। अर्थात् एक तो उसकी जिसे ज्ञान-प्राप्ति हो और दूसरे उसकी जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाय। जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है उस वस्तु को यदि आत्मा या जीव मान लें तो ज्ञान करने वाला कौन होगा। यदि ज्ञान करने वाले ही को आत्मा मानें तो वह आत्मा कौन सी है जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इस दशा में अपने होने से सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान का यह अर्थ है कि ज्ञान प्राप्त करने वाला, और जिस चीज़ का ज्ञान प्राप्त किया जाय वह—ये दोनों एक ही हैं। अर्थात् अपने होने का निश्चय करने में ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते हैं। परन्तु विज्ञानवेत्ताओं के मत से यह बात सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि आत्मा वह है जिसको ज्ञान हो—विज्ञानवेत्ता आत्मा का यही लक्षण बताते हैं। ज्ञेय तो

उससे सर्वथा अलग है। यदि यह बात मान ली जाय तो आत्मा का ज्ञान ही नहीं हो सकता।

सारांश यह कि वैज्ञानिक विषयों का मूल आधार कुछ विशेष वस्तुयें हैं। उनके विषय में यह तो स्वीकार करना पड़ता है कि वे सत्य अवश्य हैं। पर साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वे ज्ञान का विषय नहीं। कितना ही परिश्रम क्यों न किया जाय उनका ज्ञान हो ही नहीं सकता। संसार में, और अपने मन के भीतर भी, निरन्तर ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं जिनका साद्यन्त हाल जानना असम्भव है। उसमें बुद्धि नहीं काम करती। यदि यह माना जाय कि पहले संसार फैली हुई दशा में था, अर्थात् वह छिन्न-भिन्न था, तो यह बताना कठिन है कि वह क्यों ऐसी दशा में था। यदि इस बात का विचार किया जाय कि भविष्यत् में संसार का क्या रूप होगा, तो जो घटनायें और दृश्य निरन्तर होते रहते हैं उनकी अन्तिम सीमा बाँधना दुःसाध्य है। मन के भीतर का हाल देखिए। उसकी परीक्षा से आप को मालूम होगा कि ज्ञान-दशाओं की शृङ्खला इतनी अपरिमित है कि उसके दोनों छोरों में से एक छोर को भी बुद्धि नहीं ग्रहण कर सकती। किसी चीज़ का असली रूप यदि हम जानना चाहें तो हज़ार प्रयत्न करने पर भी हम नहीं जान सकते। यदि हम सब वस्तुओं को घटाते घटाते किसी शक्ति-विशेष तक पहुँचें और उसका आधार आकाश तथा काल मानें तो यह कठिनता उपस्थित होती है कि शक्ति, आकाश और काल इनमें से किसी के भी रूप का निश्चय नहीं हो सकता। इसी तरह यदि सारे मानसिक कार्यों को घटाते घटाते उनका आधार सङ्कल्प और विचार मान लें तो यह बताना असम्भव होगा कि सङ्कल्प-विकल्प क्या चीज़ है और वह क्या चीज़ है जिसमें सङ्कल्प-विकल्प उत्पन्न होते हैं। इसी कारण बाहर-भीतर की जितनी मूलाधार चीज़ें हैं उनके सम्बन्ध में न तो यही ज्ञान हो सकता है कि उनका असली रूप क्या है और न यही कि वे उत्पन्न कैसे हुई हैं। इस खोज में मनुष्य की सब चेष्टायें निष्फल होती हैं। लाचार होकर यही मानना पड़ता है कि बुद्धि की सीमा बहुत अल्प है। बुद्धि केवल उन्हीं विषयों को ग्रहण कर सकती है जिनका अनुभव हो सकता है। उन विषयों को वह नहीं जान सकती जो अनुभव के परे हैं। किसी चीज़ के असली रूप का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है।

(असमाप्त)

कन्नोमल, एम० ए०

विविध विषय।

१—वर्तमान युद्ध में ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़र्च।

अगस्त १९१४ से इस महा युद्ध को होते कोई डेढ़ वर्ष हुआ। यह अब दिनों दिन और भी भीषण रूप धारण करता जाता है। अभी तक इसमें लाखों आदमी मारे जा चुके और अरबों रुपये ख़र्च हो चुके। युद्ध-विषयक सभी देशों के ख़र्च का ठीक तो ज्ञात नहीं, किन्तु ब्रिटिश गवर्नमेंट के ख़र्च का ठीक प्रकाशित हुआ है। ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़र्च इस समय इतना अधिक है कि उस पर साधारण आदमियों को विश्वास नहीं हो सकता। मिस्टर एसक्विथ (Mr. Asquith) के कथनानुसार उसका प्रति दिन का ख़र्च ३५,००,००० पौंड अर्थात् पाँच करोड़ पच्चीस लाख रुपया है। यह पाठक जानते ही होंगे कि एक पौंड १५ रुपये का होता है। इस हिसाब से प्रति घण्टे का ख़र्च २१,८७,५०० और प्रति मिनिट का ३६,४५८ रुपया हुआ। क्या हमने कभी ऐसे अन्धाधुन्ध ख़र्च का अनुमान किया है!

हमारे यहाँ के एक साधारण रजवाड़े की साल भर की आमदनी ब्रिटिश गवर्नमेंट को कुछ मिनटों या घन्टों ही के लिए युद्ध-क्षेत्र में रख सकती है। एक रुपया रोज़ पानेवाले सवा पाँच करोड़ मनुष्यों की दिन भर की कमाई से कहीं

उसका एक दिन का ख़र्च चल सकता है। इस थोड़े से नोट को पढ़ने में आप जितना समय ख़र्च करेंगे उतने समय में ही यहाँ लाखों रुपये पानी की तरह बहा दिये जायँगे।

ब्रिटिश सरकार को इँगलैंड से १९१३—१४ के साल में १९,८६,६०,००० पौंड की आमदनी हुई। साल भर की यह आमदनी इसे युद्ध में सिर्फ़ ४४ दिन का ख़र्च दे सकी है। ३१ मार्च १९१४ को इँगलैंड पर राष्ट्रीय ऋण (National Debt) ६०,७६,४४,११० पौंड था। कोई ९ महीने में ही यह बढ़ कर १,१६,१६,४१,००२ पौंड हो गया। अर्थात् युद्ध के कारण यह ५४ करोड़ पौंड के लगभग बढ़ गया। इँगलैंड की मनुष्य संख्या में इसे बाँटने से प्रति मनुष्य इस समय २५ पौंड का ऋणी है।

मिस्टर हाग पारलियामेंट के मेम्बर हैं। आपके कथनानुसार शान्ति के समय इँगलैंड, फ्रांस, बेलजियम, जापान, रूस, सरविया और इटली इन सब की सेनाओं का ख़र्च प्रति वर्ष २१,१०,००,००० पौंड होता है, और जर्मनी, आस्ट्रिया और टर्की का ११,९०,००,००० पौंड। अर्थात् ब्रिटिश गवर्नमेंट के ७ महीने से भी कम के युद्ध के ख़र्च से इन देशों की सेना का ख़र्च एक साल तक चल सकता था।

फ्रांस और जर्मनी के बीच सन् १८७०—७१ में जो युद्ध हुआ था उसमें कुल ख़र्च ३१,६०,००,००० पौंड हुआ था। बोर युद्ध में २१,१०,००,००० पौंड ख़र्च हुआ था, और रूस जापान वाले युद्ध में १०,००,००,००० पौंड। अर्थात् इन तीनों युद्धों में कुल ६२,००,००,००० पौंड ख़र्च हुआ था। किन्तु वर्तमान युद्ध में अँगरेज़ी ब्रिटिश गवर्नमेंट का केवल ८ महीने का ख़र्च इन तीनों युद्धों के ख़र्च से अधिक हो गया है।

ब्रिटिश गवर्नमेंट का ख़र्च जो अधिक हो रहा है, इसका कारण यह है कि उसे अपने कई मित्र राष्ट्रों को क़र्ज़ भी देना पड़ता है।

इँगलैंड पहले से ही धनवान् है। पहले भी, उन लड़ाइयों में भी, जो सन् १७९३ से १८१५ तक नैपोलियन बोनापार्ट के ज़माने में हुई थीं, उसने प्रशिया, रूस, आस्ट्रिया, स्पेन आदि को लगभग ४,६२,००,००० पौंड क़र्ज़ दिया था। किन्तु वर्तमान युद्ध में अपने मित्रों को साल, सवा साल के भीतर ही, लगभग ४२,००,००,००० पौंड वह क़र्ज़ दे चुका है, जो कि उपर्युक्त २२ वर्ष की (१७९३—१८१५) लड़ाइयों में दिये हुए क़र्ज़ से कोई १० गुना अधिक है। गत १५ सितम्बर को प्रधान सचिव (Prime Minister) ने कहा था कि इस समय प्रति दिन १५,००,००० पौंड से भी अधिक क़र्ज़ मित्रों को दिया जा रहा है। यह भी प्रकट है कि युद्ध का ख़र्च दिनों दिन बढ़ता जाता है। इसलिए यदि मार्च १९१६ तक युद्ध जारी रहा तो लगभग एक अरब पौंड के तो मित्रमण्डली पर ब्रिटिश गवर्नमेंट का क़र्ज़ ही हो जायगा।

इसीसे केवल इँगलैंड का ही प्रति दिन का ख़र्च ५०,००,००० पौंड अर्थात् ७,५०,००,००० रुपये से अधिक हो जाता है। पाठक इसीसे इस महायुद्ध के कुल ख़र्च का अनुमान करें।

देवीप्रसाद गुप्त

९—लन्दन में भारतीय सङ्गीत।

सरस्वती के अनेक पाठक श्रीयुत ठाकुर [illegible] स्वामी से परिचित होंगे। भारतीय कला-कौशल के सम्बन्ध में उनके लेख भारतीय पत्रों में समय समय पर निकला करते हैं। जैसे देश-भक्त आप हैं वैसी ही आपकी धर्मपत्नी श्रीमती रतनदेवीजी भी हैं। वे भी भारत से बहुत प्रेम रखती हैं। अँगरेज़ी महिला होने पर भी आपका प्रेम सभी भारतीय वस्तुओं पर है। आपने कई वर्षों के कठिन परिश्रम से भारतीय सङ्गीत में प्रवीणता प्राप्त की है। अभी गत अगस्त के अन्त में लन्दन के प्रसिद्ध सङ्गीतालय "ब्रोलियन हाल" में आपने अपने सङ्गीत का स्वाद लन्दन की सर्व-साधारण जनता को चखाया। टिकट का दाम अधिक होने पर भी सङ्गीतालय के नीचे और ऊपर सभी कहीं ख़ासी भीड़ थी।

थोड़ी वक्तृता के बाद, जिसमें आपके पति स्वामी साहब ने भारतीय सङ्गीत की महिमा का वर्णन किया, जब आप अपनी पूरी भारतीय पोशाक में सामने आईं तब दर्शक चकित हो उठे। लोगों को ऐसे वस्त्राभूषणों में देख कर वे लोग आश्चर्य में डूब गये। मुझे तो ऐसा मालूम होता था मानो हमारे भारत की कोई वैदिक-कालीन महिला सामने खड़ी हो गई है। गोरे बदन पर बढ़िया अँगिया और सिर पर गोटेदार चुनी (चादर) बड़ी ही शोभायमान प्रतीत होती थी। हाथों में उनके तँबूरा था। [illegible]

(१) तारेश्वरी देवी। (२) गार्गी देवी। (३) सरस्वती देवी।
(४) श्रीमती गोमेश्वरी देवी। (५) कमला देवी। (६) श्रीमती चम्पावती देवी।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पर बिछे हुए गद्दे पर घुटनों के बल बैठ कर इन्होंने पहले हिन्दी में ईश्वर-प्रार्थना भैरवी धुन में गाई। इसके अनन्तर "वन्दे मातरम्" गाया। फिर काफ़ी, पहाड़ी, जंगला-पहाड़ी, बिहाग, राग-कल्याण आदि कई राग और रागिनियाँ गाईं।

आपके गानों में अँगरेज़ीपन बिलकुल न था। ऐसा प्रतीत होता था कि लन्दन में भारत उतर आया है। इनके काश्मीरी गीत बड़े ही प्यारे थे। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को गीत गा गा कर सुलाती है, यह इन्होंने अच्छी तरह गा कर बतलाया। प्रत्येक गान के बाद तालियों की ध्वनि से कमरा गूँज उठता था। इन्हें कई गीत दो बार गाने पड़े।

दूसरे दिन लन्दन के समाचार-पत्रों में भारतीय सङ्गीत की बड़ी प्रशंसा छपी। हमारी सभ्यता का आदर्श इस देश के निवासियों को दिखला कर श्रीमती रतनदेवीजी ने हमारा बड़ा उपकार किया। इसी प्रकार यदि और लोग भी समझ कर से हमारी उच्च सभ्यता का आदर्श विलायत वालों को दिखलावें तो इनके हृदयों में हमारे देश की स्थिति बहुत ऊँची हो जाय।

जगन्नाथ खन्ना, बी॰ एस-सी॰

(इम्पीरियल कालेज आफ़ सायंस, लन्दन)

३—सूत्रधार का अर्थ।

संस्कृत के नाटकों में, और उनके अनुकरण में बने हुए हिन्दी तथा दूसरी भाषाओं के नाटकों में भी "सूत्रधार" का प्रवेश सबसे पहले कराया जाता है। यह प्रसिद्ध बात है। इस विषय में हमको कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हम केवल 'सूत्रधार' शब्द के अर्थ पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। संस्कृत के प्रसिद्ध कोश "शब्द-कल्पद्रुम" में इसके अर्थ में कोई विशेष बात नहीं बताई गई। साधारणतः इसका प्रयोग नाटक के प्रधान कर्त्ता के अर्थ में होता है। सर विलियम जोन्स ने संस्कृत-नाटकों के अँगरेज़ी-अनुवाद में सूत्रधार का अर्थ "Manager" किया है। किन्तु यथार्थ इसका क्या कारण है? शब्द में ऐसी कोई ध्वनि नहीं जिससे उसका वह अर्थ निकलता हो जो किया जाता है। अच्छा तो "सूत्रधार" का प्रथमांश 'सूत्र' क्या कहता है? उसका अर्थ क्या यज्ञ-सूत्र—जनेऊ—है? ऐसा तो नहीं हो सकता, क्योंकि "सूत्रधार" की जो जाति लिखी हुई है वह यज्ञोपवीत धारण कर सकती है या नहीं, इस पर विवाद हो सकता है। नाटक में और कौन सा "सूत्र" हो सकता है? "कथा-सूत्र" से अभिप्राय हो तो उसका धारण करना कैसा? हमारी तुच्छ बुद्धि में तो इस शब्द से इन अर्थों का बोध नहीं होता। वास्तव में यह शब्द नाटक से सम्बन्ध रखनेवाला नहीं; नाटक के समान एक दूसरे व्यापार से सम्बन्ध रखता है।

ऐसा ज्ञात होता है कि नाटकों के प्रचार के पहले या साथ ही अभिनय का कार्य्य कठ-पुतलियों से लिया जाता था। नाटक काठ की पुतलियों के द्वारा ही अभिनीत होते थे। संस्कृत-साहित्य के पुराने ग्रन्थों में कठपुतलियों का वर्णन भी बहुत स्थानों में मिलता है। श्रीमद्भागवत में भी इसका प्रमाण है। कठपुतलियों के अभिनय में सबसे प्रधान वस्तु "सूत्र" ही होता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। पूर्व-काल में जिस मनुष्य के हाथ में इन पुतलियों का "सूत्र" रहता होगा वही "सूत्रधार" कहलाता होगा, क्योंकि सूत्र-सञ्चालन ही इसमें विशेष और महत्त्व की बात है। धीरे धीरे कठपुतलियों का स्थान मनुष्यों ने ग्रहण कर लिया होगा। इस कारण अभिनय की पहली रीति का प्रधान शब्द सूत्रधार—इस दूसरी रीति में भी आ गया होगा, अथवा इसके कहने से यह समझा जाता होगा कि, जिस प्रकार पुतलियों के अभिनय में सूत्रधार प्रधान होता है उसी प्रकार मनुष्याभिनय में भी उसका वह प्रधान कर्त्ता होता है। जो हो, इतना तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा कि यह शब्द कठपुतलियों के "सूत्रधार" के अनुकरण और उन दोनों में समान-गुण होने से ही प्रयुक्त होता है। भगवान् "जगत्सूत्रधार" कहे जाते हैं। यह भी उसी अर्थ की पुष्टि करता है। जिस प्रकार कठपुतली का चलना-फिरना "सूत्रधार" के हाथ में होता है उसी प्रकार मनुष्यों या जगत् के कार्य्य ईश्वर के हाथ में हैं। विशेषज्ञ पाठक इस पर विचार करने की अवश्य कृपा करें।

श्रीगौरचरण गोस्वामी।

४—हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाने के लिए एक महाराष्ट्रीय विद्वान् की सम्मति।

श्रीयुत प्रोफ़ेसर गोविन्द चिमणाजी भावे, एम॰ ए॰, मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक हैं। मराठी के मासिक मनोरञ्जन में आपके प्रवास-विषयक लेख बहुधा निकला करते हैं। आपका—"मान्या अटके पार प्रवास" शीर्षक एक लेख कई महीनों से उसमें निकल रहा है। उसके गत दिसम्बर के

अङ्क में आपके उस लेख में जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय का वर्णन है। आपने विद्यालय के प्रत्येक वर्ग में घूम फिर कर उसका निरीक्षण किया। अन्त में विद्यालय के सञ्चालक लाला देवराज की प्रार्थना पर, विद्यालय की सम्पूर्ण बालिकाओं के सामने आपने एक व्याख्यान भी दिया। पर, व्याख्यान हुआ अँगरेज़ी में। क्योंकि भाटे महोदय को अच्छी हिन्दी नहीं आती। इस पर खेद प्रकट करते हुए—हिन्दी भाषा में भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता स्वीकार करते हुए—भाटे महोदय ने जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद हम नीचे देते हैं—

"......सब बालिकाओं के एकत्र हो जाने पर लाला देवराज ने मुझसे कुछ बोलने के लिए कहा। उस समय मेरे हृदय की जो अवस्था हुई उसकी कल्पना तक पाठकों के मन में न हो सकेगी। मेरे सम्मुख मेरे ही देश की बालिकायें उपस्थित हैं। सब हिन्दू हैं। सब नवीन आर्यसमाजपन्थी हैं। उनके धर्म-ग्रन्थ और हमारे धर्म-ग्रन्थ एक ही हैं। रामायण और महाभारत तथा उनमें वर्णित महान् स्त्री-पुरुषों के चरित से दोनों ही परिचित हैं। सारांश यह कि प्राचीन संस्कार एक होने पर भी मुझे अपने हृद्गत विचारों को प्रकट करने के लिए विदेशी अँगरेज़ी-भाषा का आश्रय लेना पड़ा। इससे मुझे बड़ी लज्जा हुई। मैं सोचने लगा—यदि अपने देश में एक-जातीयता को पद्ममूल करना है, यदि अपनी सन्तान के हृदय में बचपन ही से राष्ट्रीय भाव उत्पन्न करना है, तो भारतवासियों के लिए एक देश-व्यापक भाषा का होना आवश्यक है। पर इसके लिए अँगरेज़ी-भाषा उपयुक्त नहीं। तैंतीस कोटि प्रजा को अँगरेज़ी का यथेष्ट ज्ञान-सम्पादन करना दुष्कर है। मेरी समझ में हिन्दी-भाषा ही हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा हो सकती है।..."

आशा है, इस लेख से और नहीं तो मराठी के उन विद्वानों की आँखें अवश्य खुल जायँगी जो हिन्दी को भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा बनाने के विरोधी हैं। अपने मातृभाषा-प्रेम की परवा न करते हुए, निरपेक्ष और निर्भय होकर, उचित और सच्ची सम्मति प्रकट करने के लिए भाटे महोदय को अनेक धन्यवाद।

प्यारेलाल गुप्त

५—दाक्षिणात्यों की हिन्दी।

बम्बई से सुवर्णमाला नाम की एक मासिक पुस्तक निकलती है। उसमें पौराणिक और ऐतिहासिक आदि बातें चित्रों में प्रकाशित होती हैं। उसका संक्षिप्त विवरण भी अँगरेज़ी, मराठी, गुजराती और हिन्दी में रहता है। उसके एप्रिल १९१९ के अङ्क में, जो नवंबर १९ में निकला है, राजा अम्बरीष और दुर्वासा से सम्बन्ध रखनेवाली पौराणिक घटना चित्रों में चित्रित है। इस घटना का जो संक्षिप्त वृत्तान्त हिन्दी में दिया गया है उसका पूर्वार्द्ध नीचे उद्धृत किया जाता है—

राजे में दुर्वासा आये। फिर वह [illegible] अम्बरीष [illegible] "[illegible]" [illegible]। [illegible] तरह [illegible]। परन्तु अम्बरीष [illegible]। [illegible] "[illegible]" [illegible] "[illegible]" [illegible] दुर्वासा की तरह [illegible]। [illegible] दुर्वासा [illegible]। फिर [illegible]। [illegible]। [illegible] नहीं। [illegible] विष्णु [illegible]। [illegible] विष्णु ने कहा कि:—तुम [illegible] तुम्हारे लिये [illegible] निवारण [illegible]। [illegible] अम्बरीष [illegible]। [illegible] दुर्वासा अम्बरीष [illegible]। [illegible] अम्बरीष [illegible]। [illegible] दुर्वासा [illegible]। [illegible] अम्बरीष [illegible] दुर्वासा [illegible]। [illegible] अम्बरीष [illegible]। [illegible] परिक्रमा [illegible]।

यह हिन्दी निःसन्देह किसी ऐसे सज्जन की लिखी हुई है जिसकी मातृभाषा या तो मराठी या गुजराती है। इस अवतरण को भाषा के दोष दिखाने के इरादे से हमने नहीं दिया। हम सिर्फ़ यह दिखाना चाहते हैं कि जिन दाक्षिणात्यों ने हिन्दी का व्याकरण नहीं पढ़ा और जिन्होंने हिन्दी लिखने का अभ्यास भी नहीं किया वे भी, आवश्यकता पड़ने पर, हिन्दी बोल ही नहीं सकते, किन्तु लिख भी सकते हैं। ऐसे महाशयों की हिन्दी-भाषा देखने में दुर्बोध होने पर भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है। अतएव हिन्दी की व्यापकता और सर्व-सुगमता में शङ्का करने के लिए बिलकुल ही जगह नहीं।

६—शिक्षा-सम्बन्धी खर्च।

किसी किसी का ख़याल है कि गवर्नमेंट शिक्षा का सारा ख़र्च ख़ुद ही देती है। यह सच नहीं। कहीं कहीं

भी होता तो जो रुपया गवर्नमेन्ट ख़र्च करती वह उसका निज का रुपया न माना जाता। क्योंकि कर के रूप में प्रजा से जो रुपया गवर्नमेन्ट लेती है वही ख़र्च भी करती है। किसी और जगह से वह रुपया नहीं ले आती। इस समय इस मद में जो ख़र्च होता है उसका कुछ अंश गवर्नमेन्ट देती है और कुछ फ़ीस तथा सर्व-साधारण के चन्दे आदि से चलता है। हर साल गवर्नमेन्ट एक पुस्तक प्रकाशित करती है। उसमें शासन आदि से सम्बन्ध रखने वाले ख़र्चों की तफ़सील रहती है। इस पुस्तक का नाम है—स्टैटिस्टिकल एब्स्ट्रैक्ट (Statistical Abstract) १९१३-१४ की इस पुस्तक की पाँचवीं जिल्द में लिखा है कि उस साल गवर्नमेन्ट ने २५ फ़ी सदी ख़र्च प्रजा से प्राप्त हुए कर से किया। बाक़ी ७५ फ़ी सदी ख़र्च सीधे प्रजा से प्राप्त हुआ—अर्थात् ६१ फ़ी सदी फ़ीस से और १४ फ़ी सदी चन्दे इत्यादि से। यों तो सभी रुपया प्रजा ही का है। पर गवर्नमेंट के ज़रिये से दिया गया रुपया छोड़ देने पर भी सौ रुपये में ७५ रुपया फ़ीस और चन्दे आदि के रूप में प्रजा ही से मिला। इस दशा में गवर्नमेंट को चाहिए कि शिक्षा के सम्बन्ध में वह प्रजा के सुभीते का अधिक ख़्याल रक्खे। जैसे और जितने स्कूल तथा कालेज प्रजा चाहे वैसे और उतने खोलने के लिए वह यथासम्भव यथेष्ट प्रबन्ध कर दे। छात्रों के प्रवेश आदि की कठिनाई को भी उसे दूर कर देना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा की यहाँ सब से अधिक आवश्यकता है। परन्तु इस मद में गवर्नमेंट बहुत ही कम ख़र्च करती है। इतना कम कि फ़ी छात्र के लिए साल में वह ४ रुपये भी नहीं ख़र्च करती। नीचे का नक़्शा देखिए—

वार्षिक ख़र्च, फ़ी छात्र

विद्यालय	प्रजा के दिये हुए कर से [गवर्नमेंट से प्राप्त]			म्यूनीसिपैलिटी और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के रुपये से			फ़ीस और चन्दे वग़ैरह से			टोटल		
	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
प्रारम्भिक मदरसे	१	१	६	२	१	७	१	१०	३	४	१३	१०
माध्यमिक स्कूल	५	६	१	२	१	५	१७	८	१०	२५	०	४
नार्मल स्कूल	११०	५	३	१०	१४	४	१३	६	६	१५१	१३	०
विशेष प्रकार के अन्य स्कूल	१०	८	५	३	१५	१	१०	२	०	२२	६	१
कालेज	५६	१०	३	१	०	५	६२	११	०	१२०	१३	३
व्यवसाय की शिक्षा देने वाले कालेज	२४५	८	०	१	०	११	८४	१४	११	३३१	०	१०
वार्षिक ख़र्च, फ़ी छात्र, सब प्रकार के विद्यालयों में	३	१२	३	३	३	०	५	१	१	१०	२	४

देखिए। केवल रु० ४-१३-१० फ़ी छात्र साल में वह ख़र्च करती है। इस रुपये में से भी रुपया १-१०-३ फ़ीस इत्यादि के रूप में सीधे प्रजा के पाकेट से आता है। माध्यमिक स्कूलों और कालेजों का अधिकांश ख़र्च तो सीधे

श्रीमती सत्यदेवी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

इस नक़्शे से एक विलक्षणता ध्यान में आये बिना नहीं रहती। प्रजा से प्राप्त हुई फ़ीस और चन्दे आदि की रक़म जाने दीजिए। जो रुपया गवर्नमेंट अपने ख़ज़ाने से देती है उस पर विचार कीजिए। जिन प्रान्तों की आबादी अधिक है और जहाँ शिक्षा का प्रचार कम है वहाँ तो रुपया ख़र्च करने में किफ़ायत की जाती है और जहाँ की आबादी कम और जहाँ शिक्षा की दशा अच्छी है वहाँ बड़ी उदारता से ख़र्च किया जाता है। हमारे प्रान्त की आबादी कोई ४८ करोड़ है। शिक्षा का यह हाल है कि स्कूल जाने योग्य उम्र के १०० लड़कों में से केवल १२ लड़के स्कूल जाते हैं। तिस पर भी इस प्रान्त की गवर्नमेंट साल में केवल ४६ लाख ७३ हज़ार रुपया ख़र्च करती है। उधर बङ्गाल, मदरास और बम्बई प्रान्तों की आबादी हमारे प्रान्त की आबादी से कम है और शिक्षा-प्रचार भी वहाँ यहाँ से अधिक है। पर ख़र्च हमारे प्रान्त से वहाँ लगभग ड्योढ़ा किया जाता है!

यहाँ ख़र्च से हमारा मतलब गवर्नमेंट के दिये हुए रुपये के ख़र्च से है। देखिए, स्कूल जाने योग्य उम्र के १०० लड़कों में से किस प्रान्त में कितने लड़के स्कूल जाते हैं—

मदरास	२४
बम्बई	२२
बङ्गाल	२२
संयुक्त-प्रान्त	१२
पञ्जाब	१२
ब्रह्मदेश	१८
बिहार और उड़ीसा	१६
मध्यप्रदेश और बरार	१६
आसाम	२०
पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त	१७
कुर्ग	२१
देहली	२१

सो पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तक शिक्षा में हमारे प्रान्त से आगे बढ़ा हुआ है। फिर भी हमारी शिक्षा के लिए ख़र्च कम किया जाता है।

हमारे यहाँ के कालेजों की शिक्षा में भी वृद्धि नहीं। नीचे का नक़्शा देखिए—

१९१३—१४ में कालेजों और छात्रों की संख्या

[स्त्रियों के कालेज शामिल नहीं]

सूबा	कालेजों की संख्या	छात्रों की संख्या	छात्रों की औसत संख्या, फ़ी कालेज
बङ्गाल	२६	१०,८००	३८८
मदरास	३०	८,०११	२११
बम्बई	१२	६,०२२	४०१
संयुक्त-प्रान्त	४४	६,२२८	१४१
बिहार और उड़ीसा	११	२,२०२	२००
पञ्जाब	१०	४,१११	४११
मध्यप्रदेश और बरार	६	१,०२६	१०६
ब्रह्मदेश	२	४४६	२२३
आसाम	२	४४१	२२०

बम्बई के १२ कालेजों में भी छः हज़ार छात्र और हमारे प्रान्त के ४४ कालेजों में भी छः हज़ार! अर्थात् हमारे यहाँ फ़ी कालेज १४१ ही छात्रों का औसत पड़ा। इस दशा में भी छात्रों की संख्या निर्दिष्ट करना और ऐसे *नियम बनाना जिनके कारण कालेजों में छात्रों की भरती* होने में कठिनाई उपस्थित हो, शिक्षा-प्रचार के लिए सुभीते की बात नहीं। गवर्नमेंट को चाहिए कि वह कृपा करके इस प्रकार की बाधाओं को दूर कर दे।

७—मातृभाषा के द्वारा शिक्षा की महत्ता— एक सरकारी अफ़सर की राय।

प्रत्येक विश्व-विद्यालय हर साल एक जलसा करता है। उसमें एम॰ ए॰ और बी॰ ए॰ आदि पास हुए छात्रों को पदवियाँ और पदक दिये जाते हैं। कोई प्रतिष्ठित पुरुष—विशेष कर विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध रखनेवाला—वक्तृता

इसका पालन बाबू अक्षयकुमारदत्त को किये कोई बीस वर्ष हुए। इन्होंने बँगला में एक पुस्तक लिखी है। उसमें सिराजुद्दौला के समय का इतिहास है। उसके जीवन की प्रायः सभी प्रधान प्रधान घटनाओं का वर्णन भी है। उसी में इन महाशय ने प्रमाण-पूर्वक यह सिद्ध किया है कि काल-कोठरी वाली घटना हालवेल साहब की कपोल-कल्पना मात्र है। ऐसी कोठरी का इतिहास में कहीं पता नहीं। तत्कालीन अँगरेज़ी और नवाबी कागज़-पत्रों में कहीं उसका उल्लेख नहीं। न सन्धि-पत्रों में ही कहीं उसका नाम है, न पुराने मुसलमानी इतिहास में ही। क्लाइव के पत्रों और रिपोर्टों में भी उसकी गन्ध नहीं। सिराजुद्दौला के कारण ईस्ट इंडिया कम्पनी को जो नुकसान उठाना पड़ा था उसके बदले में सिराजुद्दौला को बहुत कुछ दण्ड देना पड़ा था। पर इस काल-कोठरी के कारण उससे एक कौड़ी भी नहीं ली गई। इसके सिवा १८—१८ फुट की कोठरी में १४६ आदमी आ ही नहीं सकते। फिर, उस समय कलकत्ते में इतने अँगरेज़ थे ही नहीं। इसी तरह के अखण्डनीय प्रमाण देकर बाबू अक्षयकुमार ने इस काल-कोठरी को हालवेल साहब के दिमाग़ की कल्पना मात्र बताया है। पर इससे अँगरेज़ी के बड़े बड़े समाचार-पत्रों और अधिकारियों को सन्तोष नहीं हुआ। स्मरण होता है कि लार्ड कर्ज़न के समय में इस कल्पित काल-कोठरी की याद दिलाने के लिए कहीं पर कोई स्मृति-चिह्न भी खड़ा या स्थापित किया गया था। अब इतने समय बाद, जान पड़ता है, अक्षयकुमार बाबू की खोज का निष्कर्ष वे लोग भी मान लेंगे, जो अब तक न मानते थे। मुर्शिदाबाद के मिस्टर लिटल ने अभी हाल में एक गवेषणा-पूर्ण लेख प्रकाशित कराया है। यह लेख अँगरेज़ी की बेंगाल पास्ट ऐंड प्रेज़ेंट नामक एक सामयिक पुस्तक में निकला है। इस लेख में लिटिल साहब ने भी अनेक प्रमाण दे कर यह सिद्ध किया है कि काल-कोठरी की घटना का वर्णन कहानी के सिवा और कुछ नहीं। उन्होंने अक्षयकुमार दत्त के दिये हुए प्रमाणों के सिवा और भी कितने ही प्रमाण अपनी बात की पुष्टि में दिये हैं। उन्होंने यह भी बताया है कि इस कहानी की कल्पना का कारण क्या था। लिटिल साहब की इस खोज की बदौलत, सम्भव है, अब इस काल-कोठरी की कहानी पर सदा के लिए परदा पड़ जाय।

१२—पारसियों के भारतागमन की जयन्ती।

पारसियों को ईरान से भारत आये पूरे १२०० वर्ष हो गये। इस उपलक्ष्य में इन्होंने बम्बई में, दो तीन महीने हुए, एक उत्सव किया था। यद्यपि इन लोगों को यहाँ आकर बसे इतना दीर्घ काल हो गया तथापि अब तक इन्होंने अपनी रहन-सहन, वेश-भूषा और धर्म्म-कर्म्म को प्रायः पूर्ववत् ही अक्षुण्ण बना रक्खा है। इन बातों में इन्होंने बहुत ही कम परिवर्तन होने दिया है। किसी अन्य जाति और अन्य देश में सौ दो सौ वर्ष रहने से भी भिन्न देश-वासी उसी जाति और उसी देश के निवासियों में बहुत कुछ मिल जाते हैं। एक पारसी ही ऐसे हैं जो इस नैसर्गिक प्रवृत्ति से बचे हुए हैं। ये लोग अपने धर्म्म के बड़े पक्के हैं। ये उसमें परिवर्तन के बड़े प्रतिकूल हैं। इसी से इस सम्बन्ध में ये भारत-वासियों से सदा अलग ही रहे हैं और अब तक भी अलग हैं। इनमें धर्म्मविषयक रक्षणशीलता इतनी प्रबल है कि इन्होंने अपनी जन्म-भूमि ईरान को छोड़ दिया, पर धर्म्म न छोड़ा।

कोई एक हज़ार वर्ष तक इनका आधिपत्य ईरान पर रहा। ग्रीक और रोमन लोगों ने इनके देश पर कई बार आक्रमण करके इनको पादाक्रान्त किया, तथापि ये फिर भी सँभल गये। पर अरब वालों से इन्होंने हार खाई। इस्लाम-धर्म्म के अनुयायी अरब-निवासियों ने इनसे इनका देश ही न छीन लिया, इनका धर्म्म भी इन्होंने छुड़ाया। उस समय ईरानी पारसियों का राजा यज़्देगिर्द था। ६२१ ईसवी में अरबों ने उसे मार कर ईरान का तख़्त उससे छीन लिया। इसके बाद उन्होंने ईरानियों को तलवार के ज़ोर से मुसलमान बनाना शुरू किया। इसमें भी वे यथेष्ट सफल हुए। जिन थोड़े से अक्खड़ ईरानियों ने मुसलमानी धर्म्म न ग्रहण किया वे दूरवर्ती स्थानों को भाग गये। पर वहाँ भी उनकी रक्षा न हुई। इन भागे हुए ईरानियों में से कुछ लोग ख़ुरासान के आस पास कहीं जा बसे थे। वहाँ भी मुसलमान पहुँचे। तब वे लोग वहाँ से भी भागे और फ़ारिस की खाड़ी के किनारे आकर दाख़िल हुए। वहाँ से जहाज़ पर सवार होकर मालूम नहीं कहाँ जाने का वे इरादा रखते थे कि तूफ़ान का मारा इनका जहाज़ खम्भात की खाड़ी में सञ्जान नामक बन्दर के पास आ लगा। बेचारों

प्रधान अध्यक्ष नियत हुआ है। डेढ़ दो सौ नये सैनिक हवाबाज़ों का काम सीख रहे हैं। कितने ही सीख भी चुके हैं। जो सीख रहे हैं उनकी शिक्षा समाप्त होने पर और भी सैकड़ों सैनिक उड़ने की विद्या सीखने के लिए सीखने के मैदानों में भेजे जायँगे। इस प्रकार फ़्रांस हज़ारों व्योमयानों के बेड़े तैयार करके जर्मनी के बड़े बड़े नगरों, क़िलों और कारख़ानों का ध्वंस नाश करने के लिए बड़ी भारी तैयारी कर रहा है। फ़्रांस के सेनानायकों का ख़याल है कि जितने ही अधिक व्योमयान तैयार होंगे और जितनी ही अधिक संख्या में वे शत्रु-देश पर हमला करेंगे उतनी ही अधिक हानि भी वे पहुँचा सकेंगे। वे कहते हैं कि जो काम बड़ी बड़ी तोपों से अब तक नहीं हुआ वह व्योमयानों के बेड़ों से सहज ही हो सकेगा। एक अच्छे बेड़े की अग्निवर्षा से वे एसन नामक नगर का समूल नाश कर देने की आशा रखते हैं। इसी एसन में क्रप का नामी कारख़ाना है। यहीं जर्मनी के लिए बड़ी बड़ी तोपें तथा अन्यान्य अस्त्रशस्त्र बनते हैं। मेसोपोटामिया, फ़ाकेण्डा, बालकन, फ़्लैंडर्स, जर्मनी आदि में शत्रुओं पर हमला करने के लिए बड़े बड़े बेड़े तैयार भी हो चुके हैं। वे शायद अब शीघ्र ही रवाना होंगे।

फ़्रांस ने दो नये व्योमयान बनाये हैं। उनमें से एक बहुत ही बड़ा है। वह तीन तल्ले का है। उसके पंख ७० फ़ुट के हैं। ऊँचाई २० फ़ुट है। १२ आदमी उस पर सवार हो सकते हैं। डेढ़ इंच वाली चार तोपें उस पर रहेंगी। वह यान ८० मील फ़ी घण्टे के हिसाब से उड़ता है। फ़्रांस को इससे बड़ी बड़ी आशायें हैं। दूसरा यान केवल ७ फ़ुट ऊँचा है। पर उसकी उड्डयनशक्ति ग़ज़ब की है। वह एक घण्टे में १०० मील जाता है और चालीस ही सेकंड में एक हज़ार गज़ ऊँचा उड़ जाता है! इस यान पर बैठ कर सैनिक अपने शत्रुओं के मोरचों आदि की देख-भाल करेंगे।

१६—स्वामी विष्णुदास यति।

गहिर-गम्भीर प्रेस (रोपड़) के मैनेजर, बाबा भगवान-दास ने, स्वामी विष्णुदास यति का एक चित्र भेजा है और स्वामीजी का संक्षिप्त चरित भी लिखा है। चरित का सारांश नीचे दिया जाता है—

स्वामीजी का जन्म मेहगाँव, ज़िला लुधियाना, में संवत् १६१०, चैत्र कृष्ण दशमी को हुआ। दस वर्ष की उम्र में आप स्वामी महताबदास उदासीन के चेले हुए और विद्याभ्यास करने लगे। आपने अच्छा [illegible] किया। विद्योपार्जन कर चुकने के बाद आपको [illegible] निश्चय हो गया कि सिक्ख मत में बहुत कुछ [illegible]। अतएव आपने गहिर-गम्भीर मत की नींव [illegible] यह आपके सिक्ख-इतिहास के मनन और [illegible] फल था। १६ ६१ संवत् में आपने अपना [illegible] श्रीगहिर-गम्भीर-सुखसागर नाम का ग्रन्थ [illegible] छपा कर प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है [illegible] ४ रुपये में मिलता है। इसके बाद आपने [illegible] मतबोध, मूर्तिनाशक, निष्कलनामा, कर्तेक और [illegible] बानी आदि ग्रन्थों का भी प्रकाशन किया। [illegible] गहिर-गम्भीर प्रेस की छपी हुई गुरमुखी पुस्तकें [illegible] को मुफ़्त बाँटते हैं। स्वामीजी का मत है कि [illegible] में एक प्रकार का अनुपम गुरुवाणी के लिए [illegible] और शास्त्रों को गुरु साहब मानते थे। [illegible] को भी मानना चाहिए। मांस, मदिरा, भंग, [illegible] से सिक्खों को परहेज़ रखना चाहिए।

सुनते हैं, पञ्जाब में स्वामीजी के चेले दो हज़ार हैं। आपने सरहिन्द में एक गहिर-गम्भीर-मन्दिर बना [illegible] और वहीं रहते हैं।

१७—तम्बाकू।

कुछ समय से अमृतसर में एक दूकान [illegible] उसकी मालिक है—काशी देवाके मैन्यूफ़ैक्चरिंग [illegible] यह अँगरेज़ी नामधारिणी देशी दूकान तम्बाकू [illegible] करती है। इसके मैनेजर साहब ने कई प्रकार की [illegible] के नमूने भेजे हैं। नमूने बर्रों के भी हैं, [illegible] गोलियों के भी हैं। एक मसाला भी है। कुछ [illegible] कुछ महँगे हैं। पत्र के साथ जो विज्ञापन है [illegible] कि यह कम्पनी अनेक प्रकार की तम्बाकू—खाने, [illegible] सूँघने की—तैयार करती है। इसके भेजे हुए [illegible] नमूने हमने खाकर देखे तो खुशगवार मालूम हुए। [illegible] नमूनों में केसर का अंश भी हमें मिला। तम्बाकू [illegible] इस दूकान का पता, चाहें तो, नोट कर लें।

—

गह्वर-गम्भीर मत के प्रवर्तक स्वामी विष्णुदास यति ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

नई पुस्तक।

वन-कुसुम

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई कहानी तो ऐसी है कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती। मूल्य केवल चार आने है।

सदुपदेश-संग्रह

मुंशी देवीप्रसाद साहब, मुन्सिफ़, जोधपुर ने उर्दू भाषा में एक पुस्तक नसीहतनामा बनाया था। उसकी क़द्र पञ्जाब और बरार के विद्या-विभाग में बहुत हुई। यह कई बार छापा गया। उसी नसीहतनामा का यह हिन्दी अनुवाद है। सब देशों के ऋषि-मुनि, और महात्माओं ने अपने रचित ग्रन्थों में जो उपदेश लिखे हैं उन्हीं में से छाँट छाँट कर इस छोटी सी किताब की रचना की गई है। ग्रन्थकर्ता का कथन है कि 'अगर भीत पर भी कोई उपदेशात्मक वचन लिखा हो तो मनुष्य को चाहिए कि उसे अपने काम में धर ले'। यह बिलकुल ठीक है। बिना उपदेश के मनुष्य का आत्मा पवित्र और बलिष्ठ नहीं हो सकता।

इस पुस्तक में चार अध्याय हैं। उनमें २४१ उपदेश हैं। उपदेश सब तरह के मनुष्यों के लिए हैं। उनसे सभी सज्जन, धर्मात्मा, परोपकारी और चतुर बन सकते हैं। मूल्य केवल ।) चार आने।

टाम काका की कुटिया

हमारे यहाँ से हिन्दी-भाषा में बहुत शीघ्र प्रकाशित होगी। यह बहुत रोचक उपन्यास है। अँगरेज़ी में यह पुस्तक बहुत ही विख्यात है। भारतीय भाषाओं में भी इसके अनुवादों के कई संस्करण हो चुके हैं।

नई पुस्तक॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण—पूर्वार्द्ध

(हिन्दी-भाषानुवाद)

सरस्वती के समान ६०० पृष्ठ, सजिल्द-मूल्य केवल ४)

आदि-कवि वाल्मीकि मुनि-प्रणीत रामायण संस्कृत में है। उसके हिन्दी-भाषानुवाद भी छपे हुए हैं। पर यह अनुवाद अपने ढंग का निराला हुआ है। इसमें अक्षरशः अनुवाद है। भाषा भी सरल और सरस है। हिन्दू मात्र रामायण को धर्मग्रन्थ मानते हैं। असल में यह पुस्तक वैसी ही है। इसे पढ़ने पढ़ाने वालों को सब तरह का ज्ञान प्राप्त होता है और आत्मा बलिष्ठ बनता है। इस पूर्वार्द्ध में आदि-काण्ड से लेकर सुन्दर-काण्ड तक—काण्डों का अनुवाद है। बाक़ी काण्ड उत्तरार्द्ध में रहेंगे। उत्तरार्द्ध छप रहा है, यह जल्दी ही प्रकाशित होगा। जल्दी मँगाइए।

गीताञ्जलि

डाक्टर श्री रवीन्द्रनाथ टाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक बँगला पुस्तक का संसार में कितना आदर है; यह बतलाने की ज़रूरत नहीं। इस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बँगला भाषा जानने हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य १) एक रुपया।

पुस्तक मिलने का पता— मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला कन्नोमल एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माघय कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द्र कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। अब तक कवियों के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं उन से इसमें कई तरह की नवीनता है। पुस्तक छोटी होने पर भी बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

बाल-कालिदास

या

कालिदास की कहावतें

यह बालसखा पुस्तकमाला की २४ वीं पुस्तक है। इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उसका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अममोल रत्न हैं। उन में सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। कालिदास की उक्तियाँ मनुष्य मात्र के काम की हैं। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।)

सचित्र

देवनागर-वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।=)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी। इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है। देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बड़े काम की किताब है। बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पाते ही यह खेल कूद कर किताब के सौन्दर्य को देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा। खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है। एक बार मँगा कर इसे ज़रूर देखिए।

संक्षिप्त वाल्मीकीय-रामायणम्

[संपादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। मूल्य भी उसका अधिक है। सर्वसाधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से संपादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। ऐसा करने से पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। पुस्तक यों तो संस्कृत जानने वाले सर्वसाधारण के काम की है ही; पर कालिज के विद्यार्थियों और संस्कृत की परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के बड़े काम की । सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। कल्पित नहीं। श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसाद जी, मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक़ चीज़ है। मूल्य ।=)

इन्साफ़-संग्रह

दूसरा भाग।

मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ़ की बनाई हुई 'इन्साफ़-संग्रह, पहला भाग' पुस्तक पाठकों ने पढ़ी होगी। ठीक उसी ढँग पर यह दूसरा भाग भी मुंशीजी ने लिखा है। इसमें ४७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।=) छः आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

का

हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया। इसमें महाराष्ट्रवीर शिवाजी की वीरता-पूर्ण ऐतिहासिक कथायें लिखी गई हैं। वीररसपूर्ण उपन्यास है। हिन्दी पढ़ने वालों को एक बार इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ॥=)

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

राजपूत-जीवन-सन्ध्या।

का भी अनुवाद तैयार हो गया। इसमें राजपूतों की वीरता कूट कूट कर भरी है। पर, साथ ही राजपूतों के वीरता-पूर्ण जीवन की सन्ध्या के वर्णन को पढ़ कर आपको दो आंसू ज़रूर बहाने पड़ेंगे। उपन्यास पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

शेखचिल्ली की कहानियाँ।

इस पुस्तक की अँगरेज़ी में हज़ारों कापियाँ बिक गईं, बँगला में भी खूब बिक रही हैं। लीजिए, अब हिन्दी में भी यह किताब छप कर तैयार हो गई। बड़े मज़े की किताब है। इन कहानियों की प्रशंसा में इतना ही कह देना बहुत होगा कि इन्हें शेख़-चिल्ली ने लिखा है। सरस्वती में जो हीरा और लाल की कहानी छपी थी उसे इस किताब की कहानियों की बानगी समझिए। मूल्य ॥)

भारतीय विदुषी।

इस पुस्तक में भारत की ... विदुषी देवियों के संक्षिप्त ... इसके देखने से मालूम होगा कि ... कैसी विदुषी होती थीं। स्त्रियों ... पढ़नी ही चाहिए, ... उपयोगी बातें ऐसी ... से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

रॉबिन्सन क्रूसो।

क्रूसो की कहानी बड़ी मनोरञ्जक, बड़ी चित्ताकर्षक और शिक्षादायक है। नवयुवकों के लिए तो यह पुस्तक इतनी उपयोगी है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। प्रत्येक हिन्दी पढ़े लिखे को यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। क्रूसो के अदम्य उत्साह, असीम साहस, अद्भुत पराक्रम, घोर परिश्रम और विकट वीरता के वर्णन को पढ़ कर पाठक के हृदय पर ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ता है कि जिसका नाम नहीं। कूपमण्डूक की तरह घर पर ही पड़े पड़े सड़नेवाले आलसियों को इसे अवश्य पढ़ कर अपना सुधार करना चाहिए। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य १।)

क्षय-रोग।

(जनसाधारण की बीमारी तथा उसका इलाज)

(अनुवादक, पण्डित बालकृष्ण शर्मा)

क्षयरोग की भयङ्करता जगत्प्रसिद्ध है। यह बड़ा बुरा संक्रामक रोग है। नहीं मालूम कितने प्राणी प्रतिवर्ष इस रोग-राक्षस के पंजे में फँस कर इस लोक से चल बसते हैं। जर्मनी के बड़े बड़े डाक्टरों और विद्वानों ने एक सभा की थी। उसमें इस रोग से बचने के उपायों पर कितने ही निबन्ध पढ़े गये थे। एक निबन्ध सर्वोत्तम समझा गया। उसी ... पारितोषिक भी मिला था। उसी पुस्तक ... तक कोई २२ भाषाओं में हो चुका ... का अनुवाद है। इसमें ... अब फ़ी सदी ७५ ... है। पुस्तक बड़े ... है। भाषा बड़ी

❋ ❋ ❋ इंडियन प्रेस, प्रयाग, की सर्वोत्तम पुस्तकें ❋ ❋ ❋

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "पारस्योपन्यास" अर्थात् करेलियम माट्स की कहानियाँ पढ़ी हैं उनके सामने यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। परमदेशीय सहस्र-रजनी-चरित्र के पढ़ने वालों को एक बार पारस्य उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

भाषाव्याकरण ।

श्रीयुत पण्डित चन्द्रमौलि शुक्ल, एम. ए. असिस्टेंट हेडमास्टर, गवर्नमेंट हाईस्कूल, प्रयाग-रचित। हिन्दी भाषा की यह व्याकरण-पुस्तक व्याकरण पढ़ानेवाले अध्यापकों के बड़े काम की चीज़ है। विद्यार्थी भी इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी-व्याकरण का बोध प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ॥)

कालिदास की निरङ्कुशता ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने "सरस्वती" पत्रिका के बारहवें भाग में "कालिदास की निरङ्कुशता" नामक जो लेख-माला प्रकाशित की थी वह, अनेक हिन्दी-प्रेमियों के आग्रह करने पर, पुस्तकाकार प्रकाशित कर दी गई। आशा है, सभी हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को मँगा कर अवश्य देखें। मूल्य केवल ।) चार आने।

आरोग्य-विधान ।

नीरोग रहने के सुगम उपायों का वर्णन। मूल्य ≡)॥

दुर्गा सप्तशती ।

इसमें यह दुर्गा की पोथी बड़ी सुन्दर छपी है। कागज़ भी इसका मोटा और अक्षर भी बड़े मोटे हैं। चश्मा लगानेवाले बिना चश्मा लगाये ही इसका पाठ कर सकते हैं। बड़ी शुद्ध छपी है। कीलक, कवच, अङ्गन्यास, करन्यास, रहस्य और विनियोग आदि सभी बातें इसमें मौजूद हैं। इसमें यह भी लिखा गया है कि किस काम के लिए किस मंत्र का संपुट लगाना चाहिए। ऐसी अनुपम पोथी का दाम केवल ॥≡)

तार्किकमोदप्रकाश (कृतविद्यों का मु दतोड़ जवाब)	।)
रसरहस्य (प्रेमियों के देखने योग्य) ...	॥)
प्रीतमविहार (श्रीरामचन्द्र जी के प्रेमप्रसङ्ग)	।≈)
दृष्टान्तसमुच्चय (उपदेश भरे दृष्टान्तों का संग्रह)	॥)
महिम्नस्तोत्र	≡)
पञ्चमुखी हनुमत्कवच	≡)

नूतनचरित्र ।

(बाबू रामचन्द्र बी० ए० वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि इस 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

षोडशी ।

बँगला के प्रसिद्ध आख्यायिकालेखक श्रीयुत प्रभातकुमार बाबू की प्रभावशालिनी लेखनी से निकली हुई १६ आख्यायिकाओं का यह संग्रह बँगला में बड़ा प्रसिद्ध है। उसी षोडशी का यह हिन्दी अनुवाद तैयार है। ये कहानियाँ हिन्दी में एकदम नई हैं और पढ़ने योग्य हैं। मूल्य ३२५ पृष्ठ की पोथी का १)

विचित्रवधूरहस्य ।

बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत प्रतापचन्द्र मजुमदार लिखित "बऊठाकुरानीर हाट" नामक बँगला उपन्यास का यह हिन्दी अनुवाद 'विचित्रवधूरहस्य' के नाम से तैयार हो गया। उपन्यास कितना रोचक है, इसकी घटनायें कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, उपन्यास का भाव कैसा उत्तम है, पाठकों पर इसकी कथाओं का कैसा प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातें उपन्यास के पाठकों को स्वयं विदित हो जायँगी। मूल्य ॥)

पुस्तक मिलने का पता— मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

※ ※ ※ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ※ ※ ※

धोखे की टट्टी ।

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। ज़रा मँगाकर देखिए तो कैसी "धोखे की टट्टी" है। मूल्य ।=)

पार्वती और यशोदा ।

इस उपन्यास में स्त्रियों के लिए अनेक शिक्षायें दी गई हैं। इसमें दो प्रकार के स्त्री-स्वभावों का ऐसा अच्छा फ़ोटो खींचा गया है कि समझते ही बनता है। स्त्रियों के लिए ऐसे ऐसे उपन्यासों की अत्यन्त आवश्यकता है। 'सरस्वती' के प्रसिद्ध कवि पण्डित कामताप्रसाद गुरु ने ऐसा शिक्षादायक उपन्यास लिखकर हिन्दी पढ़ी लिखी स्त्रियों का बहुत उपकार किया है। हर एक स्त्री को यह उपन्यास अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य ।=)

सुशीला-चरित ।

आज कल हमारे देश के स्त्री-समाज में ऐसे ऐसे दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुराचार घुसे हुए हैं जिनके कारण स्त्री-समाज ही नहीं पुरुष-समाज भी नाना प्रकार के दुःखजालों में फँस कर घोर नरक-यातना भोग रहा है। यदि भारतवासी अपने देश, धर्म और जाति की उन्नति करना चाहते हैं तो सब से पहले, सब प्रकार की उन्नतियों के मूल स्त्री-समाज का सुधार करना चाहिए। फिर देखिए, आपकी सभी कामनायें आप से आप ही सिद्ध हो जायँगी। स्त्री-समाज के सुधार की शिक्षा देने में 'सुशीलाचरित' पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। प्रत्येक पढ़ी लिखी स्त्री को सुशीला-चरित अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

बाला-बोधिनी ।

(पाँच भाग)

लड़कियों के पढ़ने के लिए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता थी जिनमें भाषाशिक्षा के साथही साथ लाभदायक उपयोगी उपदेशों के पाठ हों और उनमें ऐसी शिक्षा भरी हो जिसकी, वर्तमान काल में, लड़कियों के लिए अत्यन्त आवश्यकता है। हमारी बालाबोधिनी इन्हीं आवश्यकताओं के पूर्ण करने लिए प्रकाशित हुई हैं। क्या देशी और क्या सरकारी सभी पुत्री-पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में बाला-बोधिनी को नियत करना चाहिए। इन पुस्तकों के कवर-पेज ऐसे सुन्दर रङ्गीन छापे गये हैं कि देखते ही बनता है। मूल्य पाँचों भागों का १।) और प्रत्येक भाग का क्रमशः =), ≡), ।), ।-), ।=), है।

समाज ।

मिस्टर आर. सी. दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

सुखमार्ग ।

इस पुस्तक का जैसा नाम है इसमें गुण भी वैसा ही है। इस पुस्तक के पढ़ते ही सुख का मार्ग दिखाई देने लगता है। जो लोग दुखी हैं, सुख की खोज में दिन रात सिर पटकते रहते हैं उनको यह पुस्तक ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

हिन्दी-शेक्सपियर

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। असल में आज तक जो कीर्ति शेक्सपियर को प्राप्त हुई है और जितना प्रचार शेक्सपियर की किताबों का संसार में हुआ है उतने यश का प्राप्त करनेवाला कोई नहीं हुआ, और न वैसा किसी की किताब का ही प्रचार हुआ। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के शेक्सपियर का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) आने है और छःहों भाग एक साथ लेने पर ३) तीन रुपया है। जल्दी मँगाइए।

श्रीगौरांगजीवनी

मूल्य ≈) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का जन्म बङ्गाल में हुआ। उनका नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनके जीवन-चरित्र अनेक भाषाओं में छपे हुए हैं। हिन्दी-भाषा में उनके जीवन-चरित की बड़ी ज़रूरत थी। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है, किन्तु वैष्णव धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

बाला-पत्र-कौमुदी

मूल्य ≈) दो आने

यह बड़े आनन्द की बात है कि भारत-वर्ष के सभी प्रान्तों में कन्यापाठशालायें खुल गई हैं और उनमें हज़ारों कन्यायें शिक्षा पा रही हैं। स्त्री-शिक्षा से भारत का सौभाग्य समझना चाहिए। इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है। अवश्य मँगाइए।

सूचना

नीचे लिखी पुस्तकें छपकर बिकने के लिए तैयार हो गई।

कविता-कलाप			२)
हिन्दी-कोविदरत्नमाला, पहला भाग			१॥)
सीताचरित	१।)	प्रकृति	१)
कर्तव्य-शिक्षा	१)	प्रबोध	१।)
कविता-कुसुममाला	॥=)	राजर्षि	॥=)
आपामदर्पण			॥)
पार्वती और यशोदा			।=)
ईसाफ़संग्रह, पहला भाग			।=)

मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणरस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

गारफ़ील्ड ।

इस पुस्तक में अमरीका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एब्राम गारफ़ील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफ़ील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उत्साह, साहस और संकल्प के कारण, अमरीका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के नव युवकों को इस पुस्तक से बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, हमारी राय में, अभी तक कहीं नहीं छपी। एक हिन्दी ही नहीं इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

कविशिरोमणि कालिदास के नाम को कौन नहीं जानता? शकुन्तला नाटक, उन्हीं कविचूड़ामणि कालिदास का रचा हुआ है। इस नाटक पर यहाँ वाले नहीं विदेशी विद्वान भी लट्टू हैं। संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। लीजिए, देखिए तो इसके पढ़ने में कैसा अनुपम आनन्द आता है। मूल्य १)

मुकुट ।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्र बाबू के बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। भाई भाई में परस्पर अनबन होने का परिणाम क्या होता है—इस छोटे से उपन्यास में यही बड़ी विलक्षणता के साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग अपने मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। मूल्य ।)

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के नाम से सभी शिक्षित जन परिचित हैं। उन्हीं के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

स्वर्णलता ।

(रोचक और शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास)

यह उपन्यास प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना चाहिए। इस उपन्यास को गृहस्थाश्रम का सच्चा सखा समझना चाहिए। बँगला में इस उपन्यास की इतनी प्रतिष्ठा हुई है कि १९०८ तक इसके १७ संस्करण निकल चुके हैं। इस उपन्यास की शिक्षा बड़े महत्त्व की है। हिन्दी में यह उपन्यास अनुपम है। २९२ पृष्ठ की पोथी का मूल्य १।)

बालविनोद ।

प्रथम भाग -) द्वितीय भाग -)। तृतीय भाग -) चौथा भाग ।-) पाँचवाँ भाग ।=) ये पुस्तकें लड़के लड़कियों के लिए प्रारम्भ से शिक्षा शुरू करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। इनमें से पहले तीनों भागों में एक और भी विशेषता है कि रंगीन तसवीरें भी दी गई हैं। इन पाँचों भागों में सदुपदेशपूर्ण अनेक कवितायें भी हैं। बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इनमें से पहले तीनों भागों को अपने स्कूलों में जारी कर दिया है।

उपदेश-कुसुम ।

यह गुलिस्ताँ के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक़ और शिक्षा-दायक है। मूल्य =)

मुसल्लिम नागरी ।

उर्दू जाननेवालों को नागरी सीखने के लिए इसे बस समझिए। इसमें उर्दू और नागरी दोनों छापी गई हैं। इससे बड़ी जल्दी नागरी पढ़ना लिखना आ जाता है। मूल्य ।)

भाषा-पत्र-बोध ।

यह पुस्तक बालकों और स्त्रियों के ही उपयोगी नहीं सभी के काम की है। इसमें हिन्दी में पत्रव्यवहार करने की रीतियाँ बड़ी उत्तम रीति से लिखी गई हैं। इस किताब को पढ़ कर छोटे छोटे बालक भी अच्छी तरह पत्र-व्यवहार करना सीख जाते हैं। मूल्य -)।

व्यवहार-पत्र-दर्पण ।

काम-काज के दस्तावेज़ और अदालती काग़ज़ों का संग्रह।

यह पुस्तक काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के आज्ञानुसार उसी सभा के एक सभासद द्वारा लिखी गई है। इसमें एक प्रसिद्ध वकील की राय से अदालत के सैकड़ों काम-काज के काग़ज़ों के नमूने छापे गये हैं। इसकी भाषा भी वही रक्खी गई है जो अदालतों में लिखी पढ़ी जाती है। इसकी सहायता से लोग अदालत के ज़रूरी कामों को भाषा में सुगमता से कर सकते हैं। क़ीमत ।)

कादम्बरी ।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम गद्य उपन्यास का अनुपम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह का किया है। कथा तो सर्वोत्तम प्रसिद्ध है ही, इसकी भाषा भी बड़ी शुद्ध, मधुर और सरल है। इसे सर्वथा पठन-योग्य समझ कर कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने एफ़० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। यह उपन्यास हिन्दी-प्रेमियों के योग्य है। दाम ॥), संक्षिप्त संस्करण ।≈)

पाकप्रकाश

इसमें रोटी, दाल, कढ़ी, भाजी, पकौड़ी, चटनी, अचार, मुरब्बा, पूरी, कचौरी, मिठाई, पुआ, आदि के बनाने की रीति लिखी गई है। पुस्तक स्त्रियों के बड़े काम की है। मूल्य ≈)

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

धर्मशास्त्र-प्रवेशिका ।

सनातनधर्म के मूल सिद्धान्तों के समझने के लिए इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ना चाहिए। अवश्य लीजिए, बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ।)

सरस्वती में विज्ञापन

यह तो आपको विदित ही है कि अब सरस्वती का प्रचार भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रान्तों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक बढ़ता जाता है। भारतवर्ष का ऐसा कोई प्रतिष्ठित नगर नहीं जहाँ "सरस्वती" के अनेक ग्राहक न हों। यही नहीं, किन्तु लन्दन, अमरीका, अफ्रीका, फ़ीजी द्वीप आदि दूरदेशों में भी सरस्वती के उत्साही ग्राहक बढ़ते जाते हैं। यह हमारा अनुभव ठीक है कि एक एक ग्राहक के पास से सरस्वती ले लेकर पढ़ने वालों की संख्या आठ-आठ, दस-दस, तक पहुँच जाती है। ऐसी दशा में सरस्वती का प्रत्येक विज्ञापन प्रतिमास तीस-चालीस हज़ार सभ्य मनुष्यों के दृष्टिगोचर हो जाता है। इसलिए सरस्वती में विज्ञापन छपाने वालों को विशेष लाभ रहता है। सन् १९१३ ईसवी से तो सरस्वती का प्रचार और भी अधिक बढ़ रहा है।

आशा है कि आप भी "सरस्वती" में विज्ञापन छपा कर उससे लाभ उठाने का शीघ्र प्रयत्न करेंगे और बहुत जल्द विज्ञापन भेज कर एक बार अवश्य परीक्षा करके देख लेंगे।

छपाने के नियम ये हैं:—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	... ...	१२॥)	प्रतिमास
½ ,, या १ ,,	,, ...	७)	,,
¼ ,, या ½ ,,	,, ...	४)	,,
⅛ ,, या ¼ ,,	,, ...	२॥)	,,

१—विज्ञापन बिना देखे छापने की स्वीकृति दी जाती।

२—एक कालम या इससे अधिक विज्ञापन छपानेवाले को सरस्वती बिना मूल्य भेजी जाती है। औरों को नहीं।

३—विज्ञापन की छपाई पेशगी देनी होगी।

४—साल भर के विज्ञापन की छपाई एक साथ पेशगी देनेवालों से ≈) फ़ी रुपया कम लिया जायगा।

५—सरस्वती का वार्षिक मूल्य ... ... ४)
नमूने की एक कापी का मूल्य ... ... ।≈)

पत्र-व्यवहार इस पते से कीजिए,

मैनेजर, सरस्वती,

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

सरस्वती के नियम।

१—सरस्वती प्रतिमास प्रकाशित होती है।

२—डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मूल्य ४) है। प्रति संख्या का मूल्य ।≈) है। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं भेजी जाती। पुरानी प्रतियाँ सब नहीं मिलतीं। जो मिलती भी हैं उनका मूल्य ॥) प्रति से कम नहीं लिया जाता।

३—अपना नाम और पूरा पता साफ़ साफ़ लिख कर भेजना चाहिए। जिसमें पत्रिका के पहुँचने में गड़बड़ न हो।

४—जिस मास की सरस्वती किसी को न मिले तो उसकी प्राप्ति के लिए उसी मास के भीतर हमको लिखना चाहिए। अन्यथा बहुत दिन बाद लिखने से वह अङ्क बिना मूल्य न मिल सकेगा।

५—यदि एक ही दो मास के लिए पता बदलवाना हो तो डाकखाने से उसका प्रबन्ध करा लेना चाहिए और यदि सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो तो उसकी सूचना हमें अवश्य देनी चाहिए।

६—सरस्वती की डाक लेने वाले सब जगह हैं। हमारे पास बहुधा पत्र आया करते हैं कि अमुक मास की पत्रिका नहीं पहुँची। परन्तु, यहाँ से बार अच्छी तरह जाँच कर भेजी जाती है। इससे ग्राहकों को इस विषय में सावधान रहना चाहिए।

७—लेख, कविता, समालोचना के लिए पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक "सरस्वती" जुही, कानपुर, के पते से भेजने चाहिएँ। मूल्य तथा प्रबन्धसम्बन्धी पत्र "मैनेजर, सरस्वती, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद" के पते से आने चाहिएँ। ग्राहक-नम्बर लिखना न भूलिएगा।

८—किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, तथा उसे लौटाने या न लौटाने का अधिकार सम्पादक को है। लेखों के घटाने बढ़ाने का भी अधिकार सम्पादक को है। जो लेख सम्पादक लौटाना मंज़ूर करें उनका डाक और रजिस्टरी खर्च लेखक के ज़िम्मे होगा। बिना उसे भेजे लेख न लौटाया जायगा।

९—अधूरे लेख नहीं छापे जाते। स्थान के अनुसार लेख एक या अधिक संख्याओं में प्रकाशित होते हैं।

१०—इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक या धर्मसम्बन्धी लेख न छापे जायँगे जिनका सम्बन्ध वर्तमानकाल से होगा।

११—जिन लेखों में चित्र रहेंगे, उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे, तब तक वे लेख न छापे जायँगे। यदि चित्रों के प्राप्त करने में व्यय आवश्यक होगा तो वही प्रकाशक देंगे।

१२—यदि लेख पुरस्कार देने योग्य समझे जायँगे और यदि लेखक उसे लेना स्वीकार करेंगे, तो सरस्वती के नियमों के अनुसार पुरस्कार भी प्रसन्नता-पूर्वक दिया जायगा।

SARASVATI—Reg. No. A248

भाग १७, खण्ड १]　　मार्च, १९१६　　[संख्या ३, पूर्ण संख्या १९५

वार्षिक मूल्य ४)　　सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी　　[प्रति संख्या ।=)

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

लेख-सूची ।

चित्र-सूची ।

कविता-कलाप

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

इस पुस्तक में सरस्वती से आरम्भ करके ४६ प्रकार की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए, बी० एल, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रंगीन भी हैं। ऐसी उत्तम सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपये।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढँग की अकेली ही हैं। स्कूलों में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्रों को ये पुस्तकें पारितोषिक में देने योग्य हैं। प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को यह 'रत्नमाला' मँगाकर अपना कण्ठ अवश्य सुभूषित करना चाहिए। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित।

अभी तक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी जिसमें आरम्भ से अन्त तक मुख्यतया सती सीता जी की अनुकरणीय जीवन-घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन हो, जिसमें सीताजी के जीवन की प्रत्येक घटना पर स्त्रियों के लिए लाभदायक उपदेश दिया गया हो। इसी अभाव को दूर करने के लिए हमने "सीता-चरित" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सीताजीकी जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवन-घटनाओं का महत्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है भारत वर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी है। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २२५। काग़ज़ मोटा। सजिल्द। पर, तो भी *सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत* ही कम। केवल १।) सवा रुपया।

कविता-कुसुम-माला।

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी १०९ कविताओं का संग्रह है। हिन्दी-कविताओं का ऐसा उपादेय संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा। मूल्य ॥=) दस आने।

बालसखा-पुस्तकमाला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से "बालसखा-पुस्तकमाला" नामक सीरीज़ में जितनी किताबें आज तक निकली हैं वे सब हिन्दी-पाठकों के लिए, विशेष कर बालक-बालिकाओं और स्त्रियों के लिए, परमोपयोगी प्रमाणित हो चुकी हैं। इस 'माला' की सब किताबों की भाषा ऐसी सरल—सबके समझने योग्य—रक्खी है कि जिसे थोड़े पढ़े लिखे बालक भी बड़ी आसानी से पढ़ कर समझ लेते हैं। इस 'माला' में अब तक जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं उनका संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जाता है:—

बालभारत—पहला भाग।

१—इसमें महाभारत की संक्षेप से कुल कथा ऐसी सरल हिन्दी भाषा में लिखी गई है कि बालक और स्त्रियाँ तक पढ़कर समझ सकती हैं। यह पाण्डवों का चरित बालकों को अवश्य पढ़ाना चाहिए। मूल्य ॥) मूल्य आठ आने।

बालभारत—दूसरा भाग।

२—इसमें महाभारत से छाँट कर बीसियों ऐसी कथायें लिखी गई हैं कि जिनको पढ़कर बालक अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हर कथा के अन्त में कथानुरूप शिक्षा भी दी गई है। मूल्य वही ॥)

बालरामायण—सातों काण्ड।

३—इसमें रामायण की कुल कथा बड़ी सीधी भाषा में लिखी गई है। इसकी भाषा की सरलता में इससे अधिक और क्या प्रमाण दें कि गवर्मेंट ने इस पुस्तक को सिविलियन लोगों के पढ़ने के लिए नियत कर दिया है। भारतवासियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

बालमनुस्मृति।

४—आज कल आय-सम्मान अपनी प्राचीन धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक रीति-रस्मों को न जान कर कैसे घोर अन्धकार में धँसती चली जा रही है सो किसी भी विचारशील से छिपा नहीं है। इसी दोष के दूर करने के लिए 'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य ।)

बालनीतिमाला।

५—नीतिविद्या बड़े काम की विद्या है। हमारे यहाँ चार नीतिज्ञ बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। शुक्र, विदुर, चाणक्य और कणिक। इन्हीं के नाम से चार पुस्तकें विख्यात हैं। शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति। ये सब पुस्तकें संस्कृत में हैं। हिन्दी जाननेवालों के उपकार के लिए हमने इन चारों पुस्तकों का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद छापा है। इनकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—लीजिए, 'श्रीमद्भागवत' की कथा भी अब सरल हिन्दी-भाषा में बन गई। जो लोग संस्कृत नहीं जानते, केवल हिन्दी-भाषा ही जानते हैं, वे भी अब श्रीमद्भागवत की भक्ति-रस-भरी कथाओं का स्वाद चख सकते हैं। इस 'बालभागवत' में 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षादायक और भक्ति रस से भरी हुई हैं। हर एक हिन्दी-प्रेमी हिन्दू को इस पुस्तक की एक एक कापी ज़रूर खरीदनी चाहिए। मूल्य ॥) आने

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला।

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद "सीतावनवास" छप कर तैयार है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

गारफ़ील्ड ।

इस पुस्तक में अमेरिका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एब्राम गारफ़ील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफ़ील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उत्साह, साहस और अध्यवसाय के कारण, अमेरिका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के नव युवकों को इस पुस्तक से बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, हमारी राय में, अभी तक कहीं नहीं छपी। एक हिन्दी ही नहीं इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक ।

कविशिरोमणि कालिदास के नाम को कौन नहीं जानता ? शकुन्तला नाटक, उन्हीं कविकुलमणि कालिदास का रचा हुआ है। इस नाटक पर यहाँ वाले नहीं विदेशी विद्वान भी लट्टू हैं। संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। लीजिए, देखिए तो इसके पाठ में कैसा अनुपम आनन्द आता है। मूल्य १)

मुकुट ।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्र बाबू के बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। भाई भाई में परस्पर अनबन होने का परिणाम क्या होता है, इस छोटे से उपन्यास में यही बड़ी विलक्षणता के साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग अपने मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। मूल्य ।)

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के नाम से सभी शिक्षित जन परिचित हैं। उन्हीं के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद छपकर तैयार है। यह उपन्यास स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ॥)

स्वर्णलता ।

(रोचक और शिक्षाप्रद सामाजिक उपन्यास)

यह उपन्यास प्रत्येक गृहस्थ को पढ़ना चाहिए। इस उपन्यास को गृहस्थाश्रम का सच्चा चित्र समझना चाहिए। बँगला में इस उपन्यास की इतनी प्रतिष्ठा हुई है कि १९०८ तक इसके १४ संस्करण निकल चुके हैं। इस उपन्यास की शिक्षा भी अनूठी है। हिन्दी में यह उपन्यास अनुपम है। ३५० पृष्ठ की पोथी का मूल्य १)

कर्तव्य-शिक्षा

अर्थात्

महात्मा चेस्टर फील्ड का पुत्रोपदेश।

(अनुवादक—पं॰ रूपीश्वरनाथ भट्ट, बी॰ ए॰, माड)

हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की बड़ी कमी है जिनको पढ़ कर हिन्दी-भाषा-भाषी बालक शिष्टाचार के सिद्धान्तों को समझ कर नैतिक और सामाजिक विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। चाहे कोई कितना ही विद्वान् क्यों न हो, यदि उसको सांसारिक नियमों का ज्ञान नहीं, यदि उसको नैतिक और सामाजिक रीतियों का बोध नहीं तो तण्डुलरहित तुषों के समान उसकी विद्वत्ता निष्प्रयोजन है। हमारी हिन्दी का बालकोपयोगी साहित्य अभी ऐसी पुस्तकों से ख़ाली पड़ा है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए हमने यह पुस्तक अँगरेज़ी से सरल हिन्दी में अनुवादित करा कर प्रकाशित की है।

जो लोग अपने बालकों को कर्तव्यशील बनाकर नीति-निपुण और शिष्टाचारी बनाना चाहते हैं उनको "कर्तव्य-शिक्षा" की पुस्तक मँगा कर अपने बालकों के हाथ में ज़रूर देनी चाहिए। बालकों को ही नहीं, यह पुस्तक हिन्दी जाननेवाले मनुष्यमात्र के काम की है। पौने तीन सौ पृष्ठ की भारी पोथी का मूल्य केवल १) एक रुपया।

प्रकृति।

यह पुस्तक पण्डित रामेन्द्रसुन्दर त्रिवेदी, एम॰ ए॰ की बँगला 'प्रकृति' का हिन्दी-अनुवाद है। बँगला में इस पुस्तक की बहुत प्रतिष्ठा है। विषय वैज्ञानिक है। हिन्दी में यह पुस्तक अपने ढँग की एक ही है। इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी जाननेवालों को अनेक विज्ञान-सम्बन्धी बातों से परिचय हो जायगा। इसमें सौर जगत् की उत्पत्ति, आकाशतरंग, पृथिवी की आयु, मृत्यु, आर्यजाति, परमाणु, प्रलय आदि, १४ विषयों पर बड़ी उत्तमता से निबन्ध लिखे गये हैं। जाता है, हिन्दी-प्रेमी इस पुस्तक को बड़े चाव के साथ मँगाकर पढ़ेंगे और अनेक लाभ उठावेंगे मूल्य १) एक रुपया।

राजर्षि।

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप-कर अपने प्रेमी पाठकों की प्रतीक्षा कर रहा है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निश्छल भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे ख़यालात से दिमाग़ भर आता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं। उपन्यास पढ़ने पर जो हर्ष होगा, जो शिक्षा मिलेगी और जो हृदय में पवित्र भाव का सञ्चार होगा, उसके आगे इस इतने बड़े ओजस्वी उपन्यास का ॥।=) आना मूल्य कुछ नहीं के बराबर ही समझना चाहिए।

सचित्र

शरीर और शरीर-रक्षा।

पण्डित चन्द्रमौलि सुकुल, एम॰ ए॰ की लिखी हुई किताबें कैसी अच्छी और लाभप्रद होती हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। जिन्होंने उनकी लिखी हुई किताबें पढ़ी हैं, वे ख़ूब जानते होंगे। यह पुस्तक भी उन्हीं पण्डित जी की क़लम की करामात है। इस में शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। मनुष्य के अङ्गावयव-सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है। मूल्य केवल ॥) आने हैं।

यवनराजवंशावली।

(लेखक—मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ़)

छोटी होने पर भी पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक से आप को यह बात विदित हो जायगी कि भारतवर्ष में मुसलमानों का पदार्पण कब से हुआ। किस किस बादशाह ने कितने दिन तक कहाँ कहाँ राज्य किया और यह भी कि कौन बादशाह किस सन् संवत् में हुआ। यही नहीं बल्कि बादशाहों की मुख्य मुख्य जीवन-घटनाओं का भी इसमें वर्णन किया गया है। हिन्दीवालों और विशेष कर इतिहास-प्रेमियों के लिए यह पुस्तक परम उपयोगी है। मूल्य ≈)

विक्रमाङ्कदेवचरितचर्चा।

यह पुस्तक सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीर-प्रसाद द्विवेदी जी की लिखी हुई है। बिल्हण कवि-रचित 'विक्रमाङ्कदेवचरित' काव्य की यह आलोचना है। इसमें विक्रमाङ्कदेव का जीवनचरित भी है और बिल्हण-कवि की कविता के नमूने भी जहाँ तहाँ दिये हुए हैं। इनके सिवा इसमें बिल्हण-कवि का भी संक्षिप्त जीवनचरित लिखा गया है। पुस्तक पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥)

आघातों की प्रारम्भिक चिकित्सा।

[डाकृर बन्नूलाल स्मारक पुस्तकावली सं० १]

जब किसी आदमी के चोट लग जाती है और शरीर की कोई हड्डी टूट जाती है तब उसको बड़ा कष्ट होता है। जहाँ डाकृर नहीं हो वहाँ और भी दिक्कत होती है। इन्हीं सब बातों को सोचकर, इन्हीं सब दिक्कतों के दूर करने के लिए, हमने यह पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सब प्रकार की चोटों की प्रारम्भिक चिकित्सा, घावों की चिकित्सा और विषचिकित्सा का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक में आघातों के अनुसार शरीर के भिन्न भिन्न अंगों की ९५ तसवीरें भी छाप कर लगा दी हैं। पुस्तक बड़े काम की है। मूल्य ॥।)

नाट्य-शास्त्र।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, लक्षण, जवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। हिन्दी-प्रेमियों को और विशेषकर उन सज्जनों को, जो नाटकमण्डलियाँ स्थापित करके अच्छे अच्छे नाटकों द्वारा देश में सुरुचि का बीजारोपण कर रहे हैं, यह नाट्य-शास्त्र अवश्य ही देखना चाहिए।

लड़कों का खेल।

(पहली किताब)

ऐसी किताब हिन्दी में आज तक कहीं छपी ही नहीं। इसमें कोई ८४ चित्र हैं। हिन्दी पढ़ने के लिए बालकों के बड़े काम की किताब है। कैसा ही खिलाड़ी बालक क्यों न हो और कितना ही पढ़ने से जी चुराता हो तो भी वह इस किताब से हिन्दी पढ़ना लिखना बहुत जल्द सीख सकता है। मूल्य ≈)॥

खेलतमाशा।

यह भी हिन्दी पढ़नेवाले बालकों के लिए बड़े मज़े की किताब है। इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरों के साथ साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है। इसे बालक बड़े चाव से पढ़कर याद कर लेते हैं। पढ़ने का पढ़ना और खेल का खेल है। मूल्य ≈)

हिन्दी का खिलौना।

इस पुस्तक को लेकर बालक ख़ुशी के मारे कूदने लगते हैं और पढ़ने का तो इतना शौक़ हो जाता है कि घर के आदमी मना करते हैं पर वे किताब हाथ से रखते ही नहीं। लीजिए, अपने प्यारे बच्चों के लिए एक खिलौना तो ज़रूर ही ले दीजिए। मूल्य ।~)

❀ ❀ ❀ इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें ❀ ❀ ❀

हिन्दी-शेक्सपियर

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। असल में आज तक जो कीर्ति शेक्सपियर को प्राप्त हुई है और जितना प्रचार शेक्सपियर की किताबों का संसार में हुआ है उतने यश का प्राप्त करनेवाला कोई नहीं हुआ, और न वैसा किसी की किताब का ही प्रचार हुआ। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के शेक्सपियर का हिन्दी में अनुवाद किया गया है। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ।) आने है और छःओं भाग एक साथ लेने पर १) तीन रुपया है। जल्दी मँगाइए।

श्रीगौराङ्गजीवनी

मूल्य ⌐) दो आने

चैतन्य महाप्रभु का जन्म बङ्गाल में हुआ। उनका नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। ये वैष्णव धर्म के प्रवर्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इनके जीवन-चरित्र अनेक भाषाओं में छपे हुए हैं। हिन्दी-भाषा में इनके जीवन-चरित की बड़ी ज़रूरत थी। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है, किन्तु वैष्णव धर्मावलम्बियों को तो इसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

बालिका-पत्र-कौमुदी

मूल्य ⌐) दो आने

यह बड़े आनन्द की बात है कि भारतवर्ष के सभी प्रान्तों में कन्यापाठशालायें खुल गई हैं और उनमें हजारों कन्यायें शिक्षा पा रही हैं। इसी शिक्षा से भारत का सौभाग्य समझना चाहिए। इस छोटी सी पुस्तक में लड़कियों के योग्य अनेक छोटे छोटे पत्र लिखने के नियम और पत्रों के नमूने दिये गये हैं। कन्यापाठशालाओं में पढ़ने वाली कन्याओं के लिए पुस्तक बड़े काम की है। अवश्य मँगाइए।

बहराम-बहरोज़

यह पुस्तक मुन्शी देवीप्रसाद जी, मुन्सिफ़ की लिखी हुई है। उन्होंने इसे तवारीख़ रोज़गुनराज़ से उर्दू भाषा में लिखा था, उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। उर्दू पुस्तक को यू० पी० के विद्यार्थियों ने पसन्द किया। इसलिए यह कई बार छापी गई। अनेक विद्याविभागों में उसका प्रचार रहा। बहराम और बहरोज़ दो भाई थे। उन्हीं का इसमें वर्णन क़िस्से रूप में है। तेरह क़िस्सों में यह पूरी हुई है। पुस्तक बड़ी मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। लड़कों के बड़े काम की है। मूल्य ।) तीन आने।

तरलतरंग

इंडियन प्रेस, प्रयाग, से जो इतिहासमाला निकल रही है उसके सहायक सम्पादक पंडित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को पाठक जानते ही होंगे। उन्हीं की लिखी हुई यह 'तरलतरंग' पुस्तक तैयार हो गई है। इसमें—अपूर्व शिक्षक का प्रथम स्नान—एक बढ़िया उपन्यास है। और—सावित्री-सत्यवान नाटक तथा चन्द्रहास नाटक—ये दो नाटक हैं। यह पुस्तक विशेष मनोरंजन ही की सामग्री नहीं किन्तु शिक्षाप्रद और उपदेशप्रद भी है। मूल्य ⌐) छः आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पहुँचाना उचित न समझा। उसकी मुझे यह सज़ा मिल रही है। ख़ैर!"

ठेकेदार लोग वहाँ से चले तो बातें होने लगीं।

मिस्टर गोपालदास बोले—"अब बच्चे दाल का भाव मालूम हो जायगा"।

डाक्टरसाहब ने कहा—"किसी तरह इसका जनाज़ा निकले तो यहाँ से"।

सेठ चुन्नीलाल ने फ़रमाया—"इंजिनियर से मेरी जान पहचान है। मैं उनके साथ काम कर चुका हूँ। उन्हें ख़ूब लथेड़ूँगा"।

इस पर बूढ़े हरिदास ने उपदेश दिया—"यारो स्वार्थ की बात और है। नहीं, सच तो यह है कि यह मनुष्य नहीं, देवता है। भला और नहीं तो साल भर में कमीशन के १० हज़ार तो होते होंगे। इतने रुपये को ठीकरे की तरह तुच्छ समझना क्या कोई सहज बात है? एक हम हैं कि कौड़ियों के पीछे ईमान बेचते फिरते हैं। जो सज्जन पुरुष हमसे एक पाई का रवादार न हो, सब प्रकार के कष्ट उठा कर भी जिसकी नीयत डाँवाडोल न हो, उसके साथ हमको ऐसा नीच और कुत्सित बरताव करना पड़ता है। इसे अपने अभाग्य के सिवा और क्या समझें"।

डाक्टरसाहब ने फ़रमाया—"हाँ इसमें तो कोई शक नहीं कि यह शख़्स नेकी का फ़रिश्ता है"।

सेठ चुन्नीलाल ने गम्भीरता से कहा—"ख़ाँ साहब! बात तो यही है; जो तुम कहते हो। लेकिन किया क्या जाय। नेकनीयती से तो काम नहीं चलता। यह तो धूम-धक्कड़ की दुनिया है।"

मिस्टर गोपालदास, बी॰ ए॰, पास थे। वे गर्व के साथ बोले—"उन्हें जब इस तरह रहना था तो नौकरी करने की क्या ज़रूरत थी? यह कौन नहीं जानता कि नीयत को साफ़ रखना अच्छी बात है। मगर यह देखना भी तो चाहिए कि उसका दूसरों पर क्या असर पड़ता है। हमको तो ऐसा आदमी चाहिए जो ख़ुद खाय और हमें खिलावे। ख़ुद हलुवा खाय, हमें रूखी रोटियाँ ही खिलावे। वह अगर एक रुपया कमीशन लेगा तो उसकी जगह पाँच का फ़ायदा करा देगा। इन महाशय के यहाँ क्या है? इसलिए आप जो चाहें कहें। मेरी तो कभी इनसे निभ ही नहीं सकती"।

डाक्टरसाहब बोले—"हाँ, नेक और पाकसाफ़ रहना ज़रूर अच्छी चीज़ है। मगर ऐसी भी नेकी, जो दूसरों की जान ही ले ले"।

बूढ़े हरिदास की बातों की जिन लोगों ने पुष्टि की थी वे सब गोपालदास की हाँ में हाँ मिलाने लगे। निर्बल आत्माओं में सचाई का प्रकाश, जुगनू की चमक है!

(५)

सरदार साहब के एक पुत्री थी। उसका विवाह मेरठ के एक वकील के लड़के से ठहरा था। लड़का होनहार था। जाति-कुल में ऊँचा था। सरदार साहब ने कई महीने की दौड़-धूप में इस विवाह को तै किया था। और सब बातें तो पुरी हो चुकी थीं केवल दहेज का निर्णय न हुआ था। आज वकील साहब का एक पत्र आया। उसने इस बात का भी निश्चय कर दिया। मगर विश्वास, आशा और वचन के बिलकुल प्रतिकूल। पहले वकील साहब ने एक ज़िले के इंजिनियर के साथ किसी प्रकार का ठहराव व्यर्थ समझा। बड़ी सज्जनता प्रकट की। इस लज्जित और घृणित व्यापार पर ख़ूब आँसू बहाये। मगर जब ज़ियादह पूछ-ताछ पर सरदार साहब के धन-वैभव का भेद खुल गया तब दहेज़ का ठहराना आवश्यक हो गया। सरदार साहब ने आशंकित हाथों से पत्र खोला। पाँच हज़ार रुपये से कम पर विवाह नहीं हो सकता। वकील साहब को बहुत खेद और लज्जा थी कि वे इस विषय में स्पष्ट होने पर मजबूर किये गये। मगर वे अपने ख़ानदान के कई बूढ़े, ख़ुर्राट, विचारशील

योगिराज श्रीस्वामी कल्याणजी—जन्म सं० १८०१—मृत्यु सं० १९०२।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

स्वार्थान्ध महात्माओं के हाथों बहुत तङ्ग थे। उनका कोई बस न था। इञ्जिनियर साहब ने एक लम्बी साँस खींची। सारी आशायें मिट्टी में मिल गईं। क्या सोचते थे, क्या हो गया! विकल होकर कमरे में टहलने लगे—

उन्होंने ज़रा देर पीछे पत्र को उठा लिया और अन्दर चले। विचार था कि रामा को यह पत्र सुनायें। मगर फिर ख़याल आया कि यहाँ सहानुभूति की कोई आशा नहीं। क्यों अपनी निर्बलता दिखाऊँ? क्यों मूर्ख बनूँ? वह बिना व्यङ्ग्य कहे न रहेगी। यह सोच कर वे आँगन से लौट गये।

सरदार साहब स्वभाव के दयालु थे। और, कोमल हृदय आपत्तियों में स्थिर नहीं रह सकता। वे दुःख और ग्लानि से भरे हुए सोच रहे थे कि मैंने ऐसे कौन से कर्म किये हैं जिनका मुझे यह फल मिल रहा है। बरसों की दौड़-धूप के बाद जो कार्य्य सिद्ध हुआ था वह क्षणमात्र में नष्ट हो गया। अब वह मेरे सामर्थ्य से बाहर है। मैं उसे नहीं सँभाल सकता। चारों ओर अन्धकार है। आशा का प्रकाश नहीं। कोई मेरा सहायक नहीं। उनके नेत्र सजल हो गये।

सामने मेज़ पर ठेकेदारों के बिल रक्खे हुए थे। वे कई सप्ताह से यों ही पड़े थे। सरदार साहब ने उन्हें खोल कर भी न देखा था। आज इस आत्मिक ग्लानि और नैराश्य की अवस्था में उन्होंने इन बिलों को सतृष्ण आँखों से देखा। ज़रा से इशारे पर ये सारी कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। चपरासी और क्लार्क केवल मेरी सम्मति के सहारे सब कुछ कर लेंगे। मुझे ज़बान हिलाने की कोई ज़रूरत नहीं। न मुझे लज्जित ही होना पड़ेगा। इन विचारों का इतना प्राबल्य हुआ कि वे वास्तव में बिलों को उठा कर ग़ौर से देखने और हिसाब लगाने लगे कि उनमें कितनी निकासी हो सकती है।

मगर शीघ्र ही आत्मा ने उन्हें जगा दिया—आह! मैं किस भ्रम में पड़ा हुआ हूँ! क्या उस आत्मिक पवित्रता को, जो मेरी आजन्म की कमाई है, केवल थोड़े से धन पर अर्पण कर दूँ! मैं जो अपने सहकारियों के सामने गर्व से सिर उठाये चलता था, जिससे मोटरकार वाले मेरे भ्रातृगण आँखें नहीं मिला सकते थे, वही आज अपने उस सारे गौरव और मान को—अपनी सम्पूर्ण आत्मिक सम्पत्ति को—दस पाँच हज़ार रुपयों पर त्याग दूँ! ऐसा कदापि नहीं हो सकता।

तब उस कुचेष्टा को परास्त करने के लिए, जिसने क्षण मात्र के लिए उन पर विजय पा लिया था, वे उस सुनसान कमरे में ज़ोर से ठट्ठा मार कर हँसे। चाहे यह हँसी उन बिलों ने और कमरे की दीवारों ने सुनी हो चाहे न सुनी हो, मगर उनकी आत्मा ने अवश्य सुनी। उस आत्मा को एक कठिन परीक्षा से पार पड़ने पर परमानन्द हुआ।

सरदार साहब ने उन बिलों को उठा कर मेज़ के नीचे डाल दिया। फिर उन्हें पैरों से ख़ूब कुचला। तब इस भारी विजय पर मुसकराते हुए वे अन्दर गये।

(५)

बड़े इञ्जिनियर साहब नियत समय पर शाहजहाँपुर आये। उनके साथ सरदार साहब का दुर्भाग्य भी आया। ज़िले के सारे काम अधूरे पड़े हुए थे। उनके ख़ानसामा ने कहा—"हुज़ूर! काम कैसे पूरा हो। सरदार साहब ठेकेदारों को बहुत तङ्ग करते हैं"। हेडक्लार्क ने दफ़्तर के हिसाब को भ्रम और भूलों से भरा हुआ पाया। उन्हें सरदार साहब की तरफ़ से न कोई दावत दी गई, न कोई भेंट। तो क्या वे सरदार साहब के कोई नातेदार थे जो ग़लतियाँ न निकालते?

ज़िले के ठेकेदारों ने एक बहुमूल्य डाली सजाई और उसे बड़े इञ्जिनियर साहब की सेवा में लेकर

हाज़िर हुए। वे बोले—"हुज़ूर! चाहे गुलामों को गोली मार दें। मगर सरदार साहब का अन्याय अब नहीं सहा जाता। कहने को तो कमीशन नहीं लेते, मगर सच पूछिए तो जान ले लेते हैं"।

चीफ़ इञ्जिनियर साहब ने मुआइने की किताब में लिखा—"सरदार शिवसिंह बहुत ईमानदार आदमी हैं। उनका चरित्र उज्ज्वल है। मगर वे इतने बड़े ज़िले के कार्य्य का भार नहीं सँभाल सकते"।

परिणाम यह हुआ कि वे एक छोटे ज़िले में भेज दिये गये और उनका दरजा भी घटा दिया गया।

सरदार साहब के मित्रों और स्नेहियों ने बड़े समारोह से एक जलसा किया। उसमें उनकी धर्मनिष्ठा और स्वतन्त्रता की प्रशंसा की। सभापति ने सजल नेत्र होकर कम्पित स्वर में कहा—"सरदार साहब के वियोग का दुःख हमारे दिल में सदा खटकता रहेगा। यह घाव कभी न भरेगा"। मगर "फ़ेयरवेल डिनर" में यह बात सिद्ध हो गई कि स्वादिष्ट पदार्थों के सामने वियोग का दुःख दुस्सह नहीं होता"।

यात्रा के सामान तैयार थे। सरदार साहब जलसे से आये तो रामा ने उन्हें बहुत उदास और मलिन-मुख देखा। उसने बार बार कहा था कि बड़े इञ्जिनियर के ख़ानसामों को इनाम दो। हेडक्लर्क की दावत करो। मगर सरदार साहब ने उसकी बात न मानी थी। इसलिए जब उसने सुना कि उनका दरजा भी घटा और बदली भी हुई तब उसने बड़ी निर्दयता से अपने व्यङ्ग्य-बाण चलाये। मगर इस वक्त उन्हें उदास देख कर उससे न रहा गया। बोली—"क्यों इतने उदास हो?" सरदार साहब ने उत्तर दिया "क्या करूँ, हँसूँ?" रामा ने गम्भीर स्वर से कहा—"हँसना ही चाहिए। रोये तो वह जिसने कौड़ियों पर अपनी आत्मा भ्रष्ट की हो—जिसने रुपयों पर अपना धर्म बेचा हो। यह बुराई का दण्ड नहीं है। यह भलाई और सज्जनता का दण्ड है। इसे सानन्द झेलना चाहिए"।

यह कह कर उसने पति की ओर देखा तो नेत्रों में सच्चा अनुराग भरा हुआ दिखाई दिया। सरदार साहब ने भी उसकी तरफ़ स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखा। उनकी हृदयेश्वरी का मुखारविन्द सच्चे आमोद से विकसित था। उसे गले लगा कर वे बोले—"रामा! मुझे तुम्हारी ही सहानुभूति की ज़रूरत थी। अब मैं इस दण्ड को सानन्द सहूँगा"।

प्रेमचन्द।

तैमूरलङ्ग के बारह विधान।

भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल [illegible] हेस्टिंग्स को कौन नहीं जानता? ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में भारत के [illegible] गवर्नर जनरल यही नियुक्त किये गये थे।

भारत में अँगरेज़ व्यापारी कम्पनी का जब पूरे [illegible] इँगलैंड के राजा और उनकी पार्लियामेंट ने उसके [illegible] पर हस्तक्षेप करना राजनैतिक दृष्टि से उचित समझा। फिर पार्लियामेंट में, सन् १७७३ में, रेगुलेटिङ्ग एक्ट [illegible] एक क़ानून "पास" हुआ। इस क़ानून की रू से [illegible] सरकार को कम्पनी के कार्यों की देखभाल और [illegible] प्रबन्ध तथा प्रधान अधिकारियों आदि की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त हो गया। इसी के अनुसार बङ्गाल का [illegible] कम्पनी के अधिकार में आये हुए भारत के [illegible] का भी गवर्नर जनरल बनाया गया। बङ्गाल के [illegible] इस समय वारेन हेस्टिङ्गज़ थे। अतएव वही बङ्गाल, मद्रास और बम्बई के गवर्नर जनरल बने। ये सब बातें इँगलैंड के लार्डों से छिपी नहीं।

वारेन हेस्टिङ्गज़ सन् १७७४ से सन् १७८५ तक भारत के गवर्नर जनरल के पद पर रहे। इस [illegible] उन्होंने अपनी कौशल बुद्धि के बल से कम्पनी के [illegible] की सीमा का विस्तार कर दिया। भारत में उस समय [illegible]

प्रकार का राष्ट्र-विप्लव हो रहा था। मुग़ल-सम्राट् की शक्ति नाममात्र को शेष रह गई थी। छोटे छोटे रजवाड़े इधर उधर भूमि पर कब्ज़ा कर रहे थे। इस उलट-पलट के समय हेस्टिंग्ज़ ही का काम था जो उन्होंने कम्पनी के राज्य को सुव्यवस्थित बना दिया। यह उन्हीं की राजनीतिज्ञता का फल था जो उन्होंने मराठों और हैदर जैसे पराक्रमी शत्रुओं को युद्ध में परास्त करके कम्पनी के आर्थिक और सामरिक बल को स्थिरता प्रदान की।

पर, हेस्टिंग्ज़ से दो एक कार्य्य ऐसे हो गये जिनके कारण इँगलेंड के कितने ही लोग उनके विरोधी बन गये और जब वे अपने पद से इस्तेफ़ा देकर इँगलेंड को लौटे तब उनके विरोधियों ने पार्लियामेंट में उन पर मनमाना शासन करने के सम्बन्ध में अभियोग चलाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। उनका प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। एक कमिटी सङ्गठित हुई। उसको अभियोग चलाने का काम सौंपा गया। इस कमिटी के मुखिया बर्क, फाक्स, शेरिडन जैसे उस ज़माने के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ थे।

पार्लियामेंट में यह अभियोग बारह वर्ष तक चला। इसके सम्बन्ध में बर्क ने बहुत ज़बरदस्त और युक्तिपूर्ण बहस की। उनकी बहस से पता लगता है कि उन्हें भारत के सम्बन्ध में कितना ज्ञान था। यहाँ की साधारण से साधारण बात तक उनसे छिपी न थी। बर्क उन अँगरेज़ों में से थे जिन्होंने किसी भारतीय का मुख तक भी नहीं देखा था, भारत में आने जाने की बात तो दूर है। पर उनके अभियोग-सम्बन्धी व्याख्यानों को पढ़ने से मालूम होता है कि उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों के आचार-विचार और स्थिति का पूरा पूरा ज्ञान था। वास्तव में बर्क ने इस अभियोग के चलाने में अपना सारा पाण्डित्य ख़र्च कर डाला।

हेस्टिंग्ज़ पर जो जो अभियोग लगाये गये थे उनका खण्डन उनके बैरिस्टरों ने बड़ी योग्यता से किया। उत्तर देते हुए उन लोगों ने एक जगह यह दिखाया कि हेस्टिंग्ज़ ने भारत के लोगों के स्वभाव के अनुकूल ही वहाँ शासन किया है। वहाँ के लोग, हिन्दू-मुसलमान दोनों, अनियन्त्रित शासन के ही आदी हैं। उनके यहाँ परम्परा से अनियन्त्रित शासन-प्रणाली ही चली आई है। अतएव यदि गवर्नर जनरल ने प्रजा के स्वभाव और रुचि को जान कर पूर्वीय रीति की शासन-प्रणाली ही वहाँ के लिए उपयुक्त समझी तो उन्होंने कोई पाप नहीं किया।

इस उक्ति का खण्डन करते हुए बर्क ने हिन्दू-मुसलमानों के धर्म्म-ग्रन्थों से अनेक उदाहरण दिये और यह सिद्ध कर दिया कि प्रजा-सत्ताक शासन-प्रणाली उन लोगों को अज्ञात न थी। इसके सिवा उन्होंने कठोर शासकों के उदाहरण देकर यह सिद्ध किया कि अनियन्त्रित शासक होने पर भी उन लोगों के भाव कैसे उदार थे। इतिहासप्रसिद्ध तैमूरलङ्ग के बारह नियमों का अनुवाद विचारकों के समक्ष उपस्थित करके यह सिद्ध किया गया कि उस निरङ्कुश शासक के विचार भी प्रजा-सत्ताक शासन-प्रणाली के भावों से सर्वथा शून्य न थे। तैमूरलङ्ग के इन बारह नियमों या विधानों का अनुवाद बर्क ने तुर्की-भाषा के मूल-ग्रन्थ से किया था। आज हम बर्क के उसी अनुवाद का स्वतन्त्र भाषान्तर सरस्वती के पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ देते हैं। सम्भव है, हमारा भाषान्तर मूल से बहुत दूर चला गया हो। पर, उसका अधिकांश भाव इसमें अवश्य आ गया है।

तैमूरलङ्ग अपने ग्रन्थ में लिखता है—राज्य-विजेता मेरे बेटों, और मेरी शक्तिशाली सन्तानों को, ज्ञात हो कि—

सर्व्वशक्तिमान् परमात्मा से मैं आशा रखता हूँ कि मेरे बाल-बच्चों और सन्तानों में से अनेक लोग बल, पराक्रम और स्वाधीनता के अधिकार वाले सिंहासनों पर बैठेंगे। इसी लिए अपने राज्य का अच्छी तरह शासन करने के नियम और विधान बना कर मैंने उन्हें एक स्थान में सङ्कलित किया है। उनके द्वारा मेरे बाल-बच्चों और सन्तानों में से प्रत्येक व्यक्ति मेरी शक्ति और साम्राज्य को अन्त तक स्थायी बना रक्खे। इस साम्राज्य और शक्ति को मैंने भगवान् की कृपा, मुहम्मद के पवित्र धर्म्म के प्रभाव और उनकी प्रख्यात सन्तानों तथा सत्पात्र अनुयायियों की सहायता एवं अपने परिश्रम, कठिनाई, ख़तरे और सूझ-बूझ के द्वारा प्राप्त किया है।

मेरी सन्तान में से हर व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह इन विधानों के अनुसार, अपनी साम्राज्य-रक्षा के लिए, व्यवहार करे। इससे जो सम्पत्ति और जो अधिकार उसे मुझसे प्राप्त होंगे वे नष्ट होने से बचे रहेंगे।

मेरे भाग्यवान् और विख्यात बेटों, तथा राज्य जीतने वाली मेरी सन्तान, को यह विदित रहे कि मैं अपने बनाये

हिन्दू-विश्वविद्यालय बनारस, के संस्थापक—

(१) लार्ड हार्डिंग।

(२) महाराजा दरभंगा।

(३) महाराजा बनारस।

(४) पण्डित मदनमोहन मालवीय।

(५) श्रीमती एनी बेसेंट।

(६) ठाकुर सुन्दरदास।

(७) सर एस० एच० बटलर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Photo by [illegible] Studio, Benares.

हुआ और उनकी पवित्र प्रार्थनाओं से सफलता प्राप्त की। दीनों और दुखियों को मैंने प्रेमदृष्टि से देखा। न मैंने कभी उन्हें सताया और न कभी उन्हें अपनी दया से वञ्चित रक्खा। मैंने अपने दरबार में दुष्टों और अन्यायियों को कभी प्रविष्ट नहीं होने दिया। मैंने उनकी सलाह के अनुसार कभी काम नहीं किया और न दूसरों के विरुद्ध उनकी दुरभिसन्धियों ही की ओर कान लगाये।

आठवाँ—मैंने सर्वदा ही निश्चयपूर्वक कार्य्य किया। जिस कार्य्य को मैंने करना चाहा, तन मन से उसी में लग गया। साथ ही जब तक उसे समाप्त न कर लिया, तब तक उससे हाथ न खींचा। जो मैंने कहा, वही किया। मैं कठोरता से किसी के साथ पेश नहीं आया और न अपने कार्य्यों की सिद्धि के लिए कभी कोई अन्याय ही किया। यह इसलिए कि सर्वशक्तिमान् परमात्मा मेरे ही प्रति कठोरता का व्यवहार न करने लगे और मेरे ही कार्य्य मुझे दुखदायी न हो जावें।

आदम के समय से लेकर हज़रत मुहम्मद के समय तक के राजाओं के बनाये क़ानूनों और विधानों के सम्बन्ध में मैंने विद्वानों से बहुत कुछ पूछ पाछ की और एक एक करके उनकी सम्मतियों, कार्य्यों और विचारों को भी जाँचा। उनके सद्गुणों और सुविधाओं से मैंने अपने लिए अलग आदर्श बनाया। उनकी शक्ति के नाश के कारणों को मैंने ढूँढ़ निकाला और उन बातों से सर्वदा बचा रहा जिनकी बदौलत राज्याधिकार का विनाश होता है। निर्दयता और अत्याचार से अलग ही रहना मैंने सीखा। क्योंकि, इन्हीं से वंशनाश होता है और अकाल तथा महामारी के यही प्रवर्तक हैं।

नवाँ—मुझे अपनी प्रजा की स्थिति मालूम थी। उनमें जो लोग बड़े आदमी थे उन्हें मैंने अपने भाई के सदृश समझा और जो दीन थे उन्हें अपने बच्चों के सदृश। मैंने स्वयं प्रत्येक नगर और देश के लोगों के स्वभाव और रुचि की जानकारी प्राप्त की। सरदारों, अमीरों और नागरिकों के साथ दृढ़ मैत्री स्थापित की। मैंने उन लोगों पर उसी को शासक नियत किया जो उनके ढंग, स्वभाव और इच्छा का जानकार था। प्रत्येक प्रान्त की दशा मुझ से छिपी न रही। मैंने प्रत्येक राज्य में सत्यनिष्ठ समाचार-लेखक नियुक्त किये। वे मुझे सेनाओं और अधिवासियों के ढंगों, कार्य्यों और आचरणों की और प्रत्येक राज्य में होने वाली घटनाओं की सूचना भेजा किये। यदि समाचार-लेखक की सूचना मुझे असत्य प्रतीत हुई तो मैंने उसे दण्ड दिया। इसी प्रकार अधिवासियों, सेनाओं और सूबेदारों की निर्दयता और अत्याचार की कोई बात यदि मेरे कानों तक पहुँची तो मैंने उन्हें सदा दण्ड दिया।

दसवाँ—किसी भी जाति या फ़िर्क़े के लोग यदि मेरे पास आते तो मैं उसके सरदारों को आदर और सम्मान के साथ बुलाता, बिठलाता और उसके अनुयायियों का आदर उनके दर्जे के अनुसार करता। भले आदमियों के साथ मैंने सदा भलाई की और बुरों को उनकी बुराई से छुड़ाया। जिस किसी ने मेरी भक्ति की मैंने उसके गुण कभी न भुलाये। मैंने उसका प्रतिफल उसे अवश्य प्रदान किया। जो मेरा शत्रु था और शत्रुता के कारण लज्जित होकर मेरे पैरों पर आ गिरा उसकी शत्रुता मैंने भुला दी, और उदारता तथा दया-लुता से उसे अपना लिया।

एक फ़िर्क़े का सरदार, शेर बहराम नाम का, मेरा नौकर था। युद्ध के समय उसने मेरे साथ दग़ा की। वह शत्रु से जा मिला। उसने मेरे विरुद्ध तलवार भी उठाई। परन्तु अन्त में मेरे नमक ने काम किया और वह फिर मेरे चरणों पर आ गिरा। मेरे सामने आकर उसने दीनता प्रकट की। अनुभवी, वीर, उच्चवंश-सम्भूत होने के कारण मैंने उसकी बुराइयों की ओर से अपनी दृष्टि फेर ली। उसे उच्च पद पर प्रतिष्ठित किया और उसकी वीरता के विचार से उसके राज-द्रोहाचरण के लिए मैंने उसे क्षमा-प्रदान की।

ग्यारहवाँ—अपने बाल-बच्चों, रिश्तेदारों, साथियों, पड़ो-सियों और ऐसे ही अन्य लोगों को, जिनसे मेरा कुछ भी सम्बन्ध था, मैंने अपने सौभाग्य और प्रताप के दिनों में प्रतिष्ठा प्रदान की। उनके साथ मैंने वैसा ही बरताव किया जैसा उचित था। अपने कुटुम्ब के साथ भी मैंने सदा दया-लुता का बरताव किया। उन्हें मारने या बेड़ी-हथकड़ी से जकड़ने की आज्ञायें मैंने कभी न दीं।

मैंने प्रत्येक मनुष्य के साथ उसकी योग्यता के अनुसार ही बरताव किया। मैंने सुखोपभोग भी किया और विपत्ति भी झेली। ज्ञान और अनुभव भी बहुत प्राप्त किया। अपने मित्रों और शत्रुओं दोनों के साथ मैंने सदा बुद्धिमानी और चतुराई का बरताव किया।

भारत से विलायत ले गये—गामा, गामू और इमामबख्श। अमेरिका के नामी पहलवान डाक्टर रोलर के साथ गामा की और स्विट्ज़रलेंड के प्रसिद्ध पहलवान लेम (Lemm) के साथ इमामबख्श की कुश्ती ठहरी। दो लाख रुपया जमा करके इक़रारनामे लिखे गये। रोलर और लेम को विलायत वाले अजेय समझते थे। २० मिनट में गामा ने रोलर को और १२ मिनट में इमामबख्श ने लेम को चित कर दिया। यह देख कर, सारे योरप ने दाँत-तले अँगली दबाई। ग़ुलाम का नाम पञ्जाब-केसरी (The Lion of the Punjab) और इमामबख्श का पुरुष-व्याघ्र (The Panther) रक्खा गया। इस विजय के उपलक्ष्य में ग़ुलाम को १५ हज़ार रुपया मदद मिला। दर्शकों को टिकट बेचने से जो रुपया जमा हुआ था उसमें से भी ७० फ़ी सदी उसे मिला। इमामबख्श ने ७½ हज़ार पाया। टिकट की बिक्री से प्राप्त रुपये में से ७० फ़ी सदी उसने भी पाया।

इसके कुछ दिन बाद आस्ट्रिया के जगद्विजयी पहलवान बिस्को के साथ गामा की कुश्ती निश्चित हुई। गामा ने इक़रारनामे में लिखा कि एक घण्टे में मैं बिस्को की पीठ को ज़मीन दिखा दूँगा। पर शरीर में बिस्को गामा से दूना था। इस कारण गामा अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न कर सका। तथापि २½ घण्टे तक गामा ने उसे अपने नीचे रक्खा। कुश्ती न निपटी। इस कारण दूसरे दिन फिर लड़ने की ठहरी। पर बिस्को देवता दूसरे दिन वहाँ से चम्पत हो गये। तदनन्तर ग़ुलाम के छोटे भाई इमामबख्श की कुश्ती आयरलेंड के पहलवान पैट कनोली (Pat Connolly) के साथ हुई। इमाम ने हाथ पकड़ते ही पकड़ते पैट को पटक दिया।

बहुत दिन की बात है। जगद्यशी पहलवान टाम कैनन (Tom Cannon) दिग्विजय करने के इरादे से घूमते घामते कलकत्ते आया। कूच-बिहार के तत्कालीन महाराज नृपेन्द्रनारायण भूप बहादुर ने ग़ुलाम के पिता रहीम को टाम से लड़ाया। कुश्ती में रहीम ही की जीत रही। टाम दूसरे ही दिन कलकत्ते से रफ़ूचक्कर हो गया। रहीम से परास्त होने पर भी यह विख्यात अँगरेज़-पहलवान "अपराजित जगद्विजयी" (Undefeated World's Champion) माना जाता है।

भारत को लौट कर बेंजामिन साहब, १९१२ ईसवी में, यहाँ से प्रोफ़ेसर राममूर्ति को इँगलेंड ले गये। साथ ही अहमदबख्श, रहीम और ग़ुलाम मुहीउद्दीन आदि चुने चुने सोलह पहलवान और भी ले गये। जब से गामा विलायत गया तब से विलायत वाले भारतीय पहलवानों से डर से गये थे। इस कारण वहाँ का कोई भी पहलवान इन लोगों से कुश्ती लड़ने पर राज़ी न हुआ। कुछ दिन बाद फ्रांस और स्विट्ज़रलेंड का प्रसिद्ध पट्ठा मारिस डिरियाज़ (Maurice Deriaz) लन्दन आया। अहमदबख्श से उसकी कुश्ती हुई। अहमदबख्श ने उसे पहली दफ़े ९६ सेकंड में और दूसरी दफ़े १ मिनट में ज़मीन दिखा दी। इस पर योरप भर में आतङ्क सा छा गया। तब डिरियाज़ के मैनेजर ने आर्मंड कारपिलड (Armand Charpillod) नाम के एक बड़े ही बली पहलवान को बुलाया। पर अहमदबख्श ने उसे चार ही मिनट में पटक दिया। दुबारा लड़ने के लिए उसे लोगों ने बहुत उत्साहित किया, पर आर्मंड ने किसी की न मानी।

१९१३ ईसवी में मारिस डिरियाज़ के प्रयत्न से पेरिस में पहलवानों का एक सम्मिलन हुआ। उसमें डिरियाज़ को पदवी मिली—"मध्यवर्ती वज़न का उस्ताद" (Middle Weight Champion) इससे सिद्ध है कि योरप वालों की उस्ताद-संज्ञा एक दुर्लेय वस्तु है।

इँगलेंड में जब कोई पहलवान कुश्ती लड़ने पर राज़ी न हुआ तब निराश हो कर ग़ुलाम मुहीउद्दीन इत्यादि पहलवान फ्रांस गये। वहाँ मारिस-गाम्बिये

हिन्दू-विश्वविद्यालय की नींव की शिला।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Photo by [illegible] Studio, Benares.

से कसरत करते लगे थे। उनकी छाती की नाप ४२ इंच और राममूर्ति की छाती की ४८ इंच है। फैलाने पर राममूर्ति की छाती ५७ और भीमभवानी की ४८ इंच हो जाती है। भीमभवानी बहुत दिनों तक प्रोफ़ेसर राममूर्ति के सरकस में थे।

वीर नर।

(१)

पड़े विपद पर विपद किन्तु पद पीछे नहीं हटाते हैं,
अपना रोना कभी न रोते साहस नहीं घटाते हैं।
बन पड़ता है जहाँ तलक दीनों का दुःख घटाते हैं,
निज-पौरुष से समर-भूमि में अरि को धूल चटाते हैं।
वही वीर नर धरा-धाम में अचल-कीर्ति नित पाते हैं॥

(२)

अत्याचारी की गर्दन को वे मरोड़ कर देते हैं,
अन्यायी का मुख थप्पड़ से सदा मोड़ वे देते हैं।
कोटि विघ्न आ पड़ें कार्य्य निज नहीं छोड़ वे देते हैं,
लाख विफलताओं पर भी हिय नहीं तोड़ वे देते हैं।
वीर धुरन्धर वही वीर-वर विश्व-विदित हो जाते हैं॥

(३)

मनुज-केसरी इस जग-वन में अरि-गज मार भगाते हैं,
पड़ें लोह-पिंजड़े में तो भी त्रास कदापि न लाते हैं।
दम में दम जब तक रहता है अपनी आन निभाते हैं,
श्वान समान दशन दिखला कर वे दुम नहीं हिलाते हैं।
उनकी सूरत देख भीरु जन भूरि भरे थर्राते हैं॥

(४)

चाहे जावे उनसे कोई क्षमा नहीं काल से डरते हैं;
शत्रों को संसार-समर में स्तब्ध कायरी करते हैं।
मार मार कर दुष्ट-दलों को भार भूमि का हरते हैं,
हो जाते हैं अमर जगत में कभी नहीं वे मरते हैं।
कीर्ति-कौमुदी से अपनी वे निर्मल धवल बन जाते हैं॥

(५)

अटल सदा निज प्रण पर रहते करते सत्पथ त्याग नहीं,
अत्याचारी अधम जनों से उनको है अनुराग नहीं।
नहीं चाहते इतना पूरी प्रधान मिले पर साग नहीं,
पर स्वतन्त्रता पर वे अपनी लगने देते दाग़ नहीं।
धृति धारण कर ध्रुव से अचल वीर वही कहलाते हैं॥

"सनेही"

भारतीय शासन-प्रणाली।

(२)

प्रान्तिक सरकार।

भारतवर्ष कई प्रान्तों में विभक्त है। गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया केवल उनका निरीक्षण करती है। गवर्नर जेनरल और उनकी कार्य-कर्तृ-सभा द्वारा समस्त भारत के लिए जो नियम आदि बनाये जाते हैं और जिन सिद्धान्तों पर विलायत के राजनेता लोग शासन करना चाहते हैं उन्हीं के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में शासन होता है। महत्त्व की जितनी बातें प्रत्येक प्रान्त में होती हैं उनकी पूर्ण सूचना गवर्नर जेनरल को बराबर मिलती रहती है। इन प्रान्तों की संख्या अँगरेज़ी राज्य के आदि में बहुत कम थी। परन्तु इस समय इनकी संख्या १५ है। इनके शासन का भार छोटे लाट पर रहता है। प्रान्तिक लाट तीन प्रकार के हैं—गवर्नर, लेफ्टेनेन्ट गवर्नर और चीफ़ कमिश्नर। गवर्नर को एक कार्य्य-कारिणी सभा (Executive Council) दी गई है। उसके सभासदों की संख्या ४ से अधिक नहीं हो सकती। गवर्नर और उनकी कौंसिल के सभासदों को सम्राट् स्वयं ५ वर्ष के लिए नियुक्त करते हैं। गवर्नर सदा विलायत का कोई नाम-प्रतिष्ठा-प्राप्त लार्ड-उपाधिधारी होता है, जो अनेक विषयों पर, बिना गवर्नर जेनरल के पूछे, सेक्रेटरी आफ़ स्टेट से पत्र-व्यवहार कर सकता है।

लेफ्टेनेन्ट गवर्नर सिविल सर्विस का सबसे पुराना अधिकारी, जिसने १० वर्ष तक सरकार की

हैं। इनका जन्म वर्तमान शताब्दी में हुआ है। बङ्गाल में अँगरेज़ी राज्य के आदि में गवर्नर का आधिपत्य था। फिर लेफ्टेनेण्ट गवर्नर का हुआ। इतने बड़े सूबे का शासन एक लेफ्टेनेण्ट गवर्नर के लिए कठिन समझ कर लार्ड कर्ज़न ने इसके दो विभाग किये—(१) पूर्वी बङ्गाल और (२) पश्चिमी बङ्गाल, और दोनों में एक एक लेफ्टेनेण्ट गवर्नर मुक़र्रर किया।*

बङ्गाल के बङ्ग-भङ्ग पर देश में बड़ा आन्दोलन मचा। इस से राजराजेश्वर ने राज्याभिषेक के समय स्वयं भारत में पधार कर बङ्गाल के दोनों भागों को एक करके गवर्नर के अधीन कर दिया और विहार तथा देहली के नये सूबे बना दिये। देहली सबसे छोटा सूबा है।

जब से अँगरेज़ी राज्य स्थापित हुआ तब से कलकत्ता भारत की राजधानी थी। पर बङ्गाल को जब राजराजेश्वर की कृपा से गवर्नरी मिली तब राजधानी कलकत्ते से देहली कर दी गई। यह महत्त्व की घटना १९१२ में हुई। पहले की तरह बड़े लाट अब भी गर्मियों में अपने दफ़्तर सहित शिमला चले जाते हैं।

विहार में लेफ्टेनेण्ट गवर्नरी है। सूबा भी नया है। परन्तु उसे कार्य्यकारिणी कौंसिल मिलने का सौभाग्य प्राप्त हो गया। जहाँ कौंसिल होती है वहाँ केवल सूबे के लाट साहब के ऊपर ही सब भार नहीं पड़ता। वे शासन-कार्य्य में सभासदों से सलाह ले सकते हैं, विशेष कर उस दशा में जब कौंसिल के सभासदों में एक सभासद् भारतवासी होता है। इसलिए संयुक्तप्रान्त के लोग चेष्टा कर रहे हैं कि यहाँ भी कौंसिल स्थापित की जाय। १८३३ में जब चार्टर (Charter) बदला गया था तब सूबा आगरा गवर्नरी क़रार दी गई थी। यहाँ तक कि सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने नवम्बर १८३४ से मार्च १८३५ तक, डब्लू ब्लंट ने मार्च से दिसम्बर १८३५ तक, और ए० रास ने दिसम्बर १८३५ से जून १८३६ तक यहाँ की गवर्नरी के पद को सुशोभित भी किया था। परन्तु पीछे से यहाँ फिर लेफ्टेनेण्ट गवर्नरी कर दी गई। जब पश्चिमी बङ्गाल को लेफ्टेनेन्ट गवर्नरी की अवस्था में कौंसिल मिली थी और विहार को इस समय प्राप्त है तब इस पुराने सूबे को वह क्यों न मिले?—यहाँ के इस समय जो छोटे लाट हैं वे और भारत के इस समय जो बड़े लाट हैं वे भी इस युक्ति के पक्ष में हैं। परन्तु पार्लमेंट के उस विभाग के विरोध करने पर जो हौस आफ़ लार्ड्स कहाता है संयुक्तप्रान्त को कौंसिल नहीं मिली।

प्रत्येक सूबे की एक राजधानी होती है, जिसमें वहाँ के लाट रहते हैं। परन्तु कहीं कहीं दो स्थानों में लाट साहब का निवास-स्थान रहता है। प्रान्तिक लाटों को अपने सूबे में दौरा करना पड़ता है। गर्मियों में वे किसी ठण्डी जगह अपने दफ़्तर सहित चले जाते हैं।

बङ्गाल की राजधानी कलकत्ता है। परन्तु दूसरी राजधानी ढाका भी मानी जाती है, क्योंकि जब पूर्वी बङ्गाल का नया सूबा बना था तब उसकी यही राजधानी था। गर्मियों में गवर्नर साहब दार्जिलिङ्ग जाते हैं।

बम्बई-प्रान्त की राजधानी बम्बई नगर है। परन्तु पूना दूसरी राजधानी समझा जाता है, क्योंकि महाराष्ट्र-राज्य के समय में पूना पेशवाओं की राजधानी था। गर्मियों में यहाँ के लाट साहब महाबलेश्वर जाते हैं।

मदरास-प्रान्त की राजधानी मदरास नगर है, गर्मियों में ऊटकमाण्ड।

पञ्जाब की राजधानी लाहोर है। गर्मियों में

* पश्चिमी बङ्गाल में लेफ्टेनेन्ट गवर्नर की सहायता के लिए आगे चल कर कार्य्यकारिणी कौंसिल भी स्थापित की गई है।

युद्ध और ब्रिटिश जाति की क्षमता।

(१)

(लेखक, श्रीयुत सेंट निहालसिंह)

ब्रिटिश जाति की देशभक्ति सर्वथा अनुकरणयोग्य है। वह और देशों के लिए नमूना है। देखिए, ब्रिटन में जो लोग किसी कारणवश युद्ध के मैदानों में जाकर नहीं लड़ सकते वे इस दुस्समय में अपने देश और अपनी जाति की सेवा और और प्रकार से करने पर तत्पर हैं।

ऐसे लाखों आदमी यहाँ हैं जिनकी अवस्था सैनिकों की नियमित अवस्था से अधिक है। सैनिकों की नियमित अवस्था १९ से ४० वर्ष है। इसी कारण इससे अधिक अवस्था वाले पुरुष सेना में भरती नहीं हो सकते। हाँ, यदि उन्होंने पहले सैनिक बन कर काम किया है और फिर सेना में भरती होने योग्य हैं तो बात दूसरी है। किन्तु, जो पुरुष सेना में नहीं भरती हो सकते वे भी अपने देश की रक्षा के लिए कुछ करना चाहते हैं। इसके लिए उन लोगों ने देश में अनेक "देश-रक्षिणी-समितियाँ" (Defence Leagues) सङ्गठित की हैं। इन समितियों के मेम्बर बन कर वे फ़ौजी क़वायद सीखते हैं। फ़ौजी क़वायद सीखने से उनका मतलब यह है कि यदि आवश्यकता पड़े तो वे भी युद्ध में कुछ न कुछ काम कर सकें।

देश-रक्षिणी-समितियों में हर अवस्था के मनुष्य हैं। कुछ तो उनमें से अधेड़ और कुछ बूढ़े भी हैं। बहुतों के सिर के बाल कुछ कुछ सफ़ेद हो चले हैं। बहुतों के तो बिलकुल ही सफ़ेद हो गये हैं। जो लोग ४० वर्ष से कम उम्र के हैं वे भी इन समितियों के मेम्बर हैं। ऐसे लोग या तो किसी शारीरिक व्याधि या और किसी कारण से फ़ौज में भरती होने के अयोग्य ठहराये गये हैं। पर वे सबके सब अब युद्ध के लिए तैयार हो रहे हैं।

देश-रक्षिणी-समितियों के मेम्बर सभी तरह के लोग हैं। कुछ अमीर हैं, कुछ मध्यम श्रेणी के हैं, और कुछ ग़रीब हैं।

हर पेशे के मनुष्य इन समितियों के मेम्बर हैं। मैं इन समितियों के ऐसे अनेक मेम्बरों को जानता हूँ जो बैरिस्टर, वकील, मुख़्तार, पुस्तकप्रकाशक, ग्रन्थकर्त्ता, प्रोफ़ेसर, अध्यापक, चित्रकार, कारीगर, एञ्जिनियर, व्यापारी, दूकानदार और मुहर्रिर आदि हैं। ये लोग दिन भर अपना अपना पेशा करते हैं। पर, शाम के वक़्त और छुट्टियों में, विश्राम न करके क़वायद करना और बन्दूक़ चलाना सीखते हैं।

लन्दन नगर के जिस भाग में मैं रहता हूँ उसका नाम ईस्ट डलविच (East Dulwich) है। इस महल्ले में भी यहाँ के और आस-पास के रहने वालों की एक देशरक्षिणी समिति है। इस समिति का दफ़्तर एक ख़ाली दूकान में है। वहाँ पहले एक व्यापारी रहता था। इस समिति के मेम्बरों के क़वायद करने का मैदान एक चरागाह है। यह चरागाह एक गृहस्थ की है। युद्ध शुरू होने के पहले इसका एक हिस्सा खेल-तमाशे के काम में लाया जाता था। उसमें बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध था। मैंने प्रायः देखा है कि इस समिति के हर प्रकार के मेम्बर रात को वहाँ बिजली की रोशनी में, एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक परा बाँध कर, क़वायद किया करते हैं। इस समिति के मेम्बरों को क़वायद सिखलाने वाला (ड्रिल-मास्टर) मेरा पड़ोसी है। वह लन्दन के आस-पास के स्कूलों के लड़कों को क़वायद सिखलाता है। इसके लिए उसे सरकार से वेतन मिलता है।

कई बार इस समिति के मेम्बर बहुत दूर तक "मार्च" करते चले गये हैं। शनिवार को दोपहर के बाद सब मेम्बर समिति के मुख्य स्थान पर हाज़िर हुए। फिर, परा बाँध कर वे कई कोस दूर वाले एक स्थान के लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँचने पर उन्हें भोजन और विश्राम के लिए कुछ समय दिया गया। इसके बाद फिर वे लन्दन को तेज़ चाल से लौट पड़े। लन्दन में वे रविवार को सुबह पहुँच पाये।

समितियों के मेम्बरों की निज की वर्दी भी है। पर वह अँगरेज़ी सैनिकों की वर्दी से बहुत कुछ मिलती जुलती है। वर्दी का कपड़ा बिलकुल ख़ाकी नहीं, पर वह क़रीब क़रीब उससे मिलता है। समितियों का हर एक मेम्बर अपने बायें हाथ पर एक लाल पट्टी लगाये रहता है। इस पट्टी पर "G. V. R." अर्थात् महाराज जार्ज पञ्चम के नाम के अक्षर बने रहते हैं। अपनी अपनी वर्दी का दाम सब लोगों को अपनी अपनी गाँठ से देना पड़ता है। समितियों के कोई

आवाज़ निकलती थी। मैंने उससे पूछा कि क्या अब भी तुम कान्स्टेबलगरी की ड्यूटी करोगे? इस पर उसने जवाब दिया—"ज़रूर"। उसका उत्तर जैसा उत्साह-पूर्ण था उसे भी मैंने वैसा ही पाया। यह मनुष्य अब भी अपनी ड्यूटी उसी तरह कर रहा है जिस तरह लड़ाई शुरू होने के थोड़े दिनों बाद पहले ही पहल उसने करना आरम्भ किया था।

बहुत सी स्त्रियाँ भी पुलिस की ड्यूटी करती हैं। ये लोग रेलवे-स्टेशनों, आम रास्तों और ख़ास ख़ास महल्लों में पहरा देती हैं। विशेष कर ये शराब की दूकानों और सिपाहियों की बारकों के आस-पास गश्त लगाया करती हैं। मतलब यह कि इनके कारण जवान लड़कियाँ और सिपाही शराब पीने के लोभ से बचें। ये उन्हें समझा कर शराब पीने से बाज़ रक्खें।

उस रोज़ मैं अपनी एक जान-पहचान की स्त्री से मिला। यह स्वयं-सेवक का काम करती है। मैंने उससे पूछा कि क्या तुम्हें अपना यह काम नापसन्द तो नहीं? उसने दृढ़ता-पूर्वक जवाब दिया—"नहीं"। साथ ही उसने यह भी कहा कि मुझे अपना काम करते समय जो लोग मिले उनका बर्ताव मेरे साथ बहुत ही उत्तम रहा। उसे यह विश्वास है कि वह और उसके साथ काम करनेवाली और भी वैसी ही स्त्रियाँ देश की बहुत बड़ी सेवा कर रही हैं। उसके मन के भावों का हाल जान कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। उसने स्त्री-स्वयं-सेवक दल का काम अपने गम्भीर और उत्तम मानसिक भावों से प्रेरित होकर ग्रहण किया है। वह विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट है। ज्योतिष-शास्त्र में उसने पारदर्शिता प्राप्त की है। कई वर्षों तक उसने ज्योतिष-शास्त्री का काम भी किया है। उसका विवाह भी एक ज्योतिः-शास्त्रवेत्ता के साथ हुआ है। पति और पत्नी दोनों ही अपने अपने काम से अवकाश-ग्रहण कर चुके हैं। इनकी अवस्था इस समय प्रौढ़ है। तथापि दोनों इस समय स्वयं-सेवक दल में शामिल हो कर नगर-रक्षक सिपाही का काम करते हुए देश की सेवा जी-जान से कर रहे हैं।

हज़ारों स्त्री-पुरुष अनेक प्रकार से घायल सिपाहियों और अन्यान्य युद्ध-पीड़ितों की सेवा में लगे हुए हैं। "रेड-क्रास" तथा "सेंट जान्स एम्बुलेन्स" नामक शुश्रूषा-दलों के लोग लाखों रुपये सङ्ग्रह करके विलायत में तथा और कई जगह औषधालय चला रहे हैं। पुरुष तो डाक्टर, सेवक और घायलों की गाड़ियों के गाड़ीवान बन कर काम करते हैं। स्त्रियाँ भी डाक्टरों और धात्रियों का काम कर रही हैं। बहुतेरे स्त्री-पुरुष युद्ध शुरू होने के समय तक धात्रि-विद्या का कुछ भी ज्ञान न रखते थे। किन्तु उन लोगों ने अपना काम छोड़ दिया और धात्रि-विद्या की शिक्षा प्राप्त करके उसमें कुशल हो गये। दृढ़-निश्चय और देश-भक्ति इसे कहते हैं।

बहुतेरे आदमी सिपाहियों को अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे सिखाने में व्यस्त हैं। ये सिपाही युद्ध में घायल होकर पुनः लड़ने के योग्य नहीं रहे। इनको कुछ पेंशन मिलती है। कोई काम सीख जाने से ये कुछ और कमा लेंगे। तब अपनी पेन्शन और मिहनत-मज़दूरी से प्राप्त रुपये से ये अपने कुटुम्ब का अच्छी तरह पालन-पोषण कर सकेंगे। इस विषय में सबसे अच्छा काम उन सिपाहियों को उद्योग-धन्धा करने योग्य बनाने का है जिनकी आँखें लड़ाई में जाती रही हैं। ये और कुछ नहीं तो कुरसी और टोकरी बुनना सीख कर ही कुछ कमा लेंगे।

इस सम्बन्ध में मैं मिस्टर सी० आर्थर पियर्सन के नाम का उल्लेख करूँगा। ये बहुत ही साधारण स्थिति से अख़बारनवीसी के बहुत ऊँचे दर्जे पर पहुँच गये। इस समय ये विलायत के एक बड़े भारी पुस्तक-प्रकाशक कार्यालय के मालिक हैं। पर, इनके ये पिछले दिन दुःखदायी हो गये हैं। इनकी आँखें बेकाम हो गई हैं। किन्तु इस विपत्ति से इनका हृदय नहीं टूटा। इन्होंने "ब्राइल सिस्टम" के अनुसार उठे हुए अक्षरों का पढ़ना सीखा है। ये अक्षर ख़ास तौर पर अन्धों के पढ़ने के लिए बनाये गये हैं। बहुत वर्षों से ये अपना समय, अपनी बुद्धि और अपना धन अन्धों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए ख़र्च कर रहे हैं। अन्धों को शिक्षा मिल जाने से वे अपना भरण-पोषण किसी तरह करने योग्य हो जाते हैं। युद्ध शुरू होने के समय से ही पियर्सन साहब इस काम के लिए धन-सङ्ग्रह करने और अन्धों की बहुत सी असुविधाओं को दूर भगाने के उपाय सोचने में लगे हुए हैं। उनके इस कार्य्य से उन सिपाहियों को बहुत लाभ पहुँचा है जिनकी आँखें लड़ाई में बेकाम हो गई हैं।

मिस्टर पियर्सन का मैंने एक उदाहरण मात्र दिया है। उनके सदृश और भी हज़ारों स्त्री-पुरुष घायल सिपाहियों की
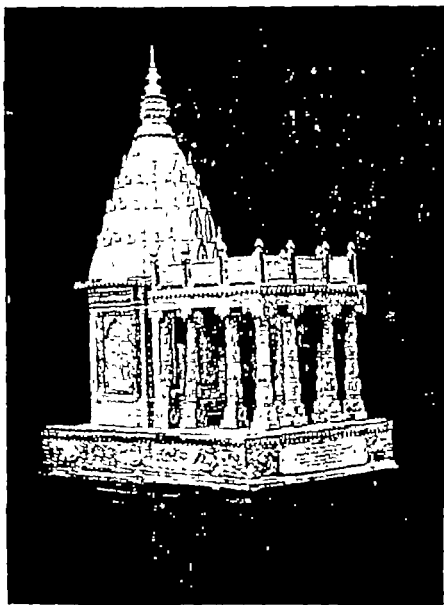
हिन्दू-विश्वविद्यालय के शिलारोपण के समय चाँदी के इसी मन्दिर के भीतर रख कर अभिनन्दन-पत्र लार्ड हार्डिंज को समर्पित किया गया।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Photo by Gurus Studio, Benares.

घूमते घामते नेपाल-राज्य में पैाघरा था निकले। चम्पानाथ को वहाँ उन्होंने अपना शिष्य बनाया।

चम्पानाथ बाल्यकाल से ही बड़े चञ्चल थे। आपकी बुद्धि भी बड़ी तीव्र थी। आप जो कुछ पढ़ते, झट याद हो जाता। आपके मनोहर मुख, सरलायत लोचन तथा सुन्दर चाल पर सभी मुग्ध होते थे। जब आपके गुरुदेव भारतवर्ष आने लगे तब उन्होंने आपको साथ लाने का विचार किया। किन्तु माता-पिता की अधिक ममता के कारण चम्पानाथ गुरुजी के साथ भारत आने से वञ्चित रहे।

काल का चक्र भी बड़ा प्रबल है। बड़े बड़े व्रतधारी धुरन्धरों को भी उसने बलात् वसुन्धरा की कन्दरा में लीन कर दिया है। चम्पानाथ के गुरुदेव नेपाल की सीमा से पाटन तक भी न पहुँचे होंगे कि स्यारीकोट में चम्पानाथ के पिता का स्वर्गवास हो गया। वैधव्य-वेदना से कातर आपकी माता, जयन्ती कन्या का विवाह जैसे तैसे करके, पतिलोक को सिधार गई। माता के स्वर्गवास के अनन्तर लालनाथ और चम्पानाथ किसी तरह अपने दिन काटने लगे। देखते देखते बड़े भाई लालनाथ ने भी सहसा परलोक के लिए कूच कर दिया। चम्पानाथ को जन्मभूमि भयानक मालूम होने लगी। इस कारण उन्होंने अपनी बहन के घर पिऊठान जाने की ठानी।

पैाघरा और स्यारीकोट से पिऊठान ३।४ दिन का रास्ता है। पिऊठान एक छोटी सी छावनी है। आपके बहनोई वहाँ नौकर थे। पिऊठान के चारों तरफ़ बड़े ऊँचे ऊँचे पहाड़ हैं। उसके पूर्ववर्ती गिरिराज-शिखर पर महाराज नेपाल का एक क़िला है। क़िले के भीतर बन्दूक़, कोतरी आदि शस्त्र बनाने का कारख़ाना है। पिऊठान के ठीक मध्य-भाग में भगवती श्रीमद्रकाली का एक मन्दिर है। मन्दिर के अधिपति महन्त भी योगी ही हैं। मन्दिर में सर्वसाधारण को सदावर्त मिलता है। अतएव वैदेशिक साधु-महात्मा सर्वदा इस मन्दिर में आया करते हैं।

चम्पानाथ पूर्वोक्त मन्दिर में ही ठहरे। कई दिन बाद आपकी बहन और बहनोई उन्हें अपने घर ले गये। चम्पानाथ कुछ दिन बहन के घर रहे सही, किन्तु बहनोई के चिरचिरे मिज़ाज के कारण आप वहाँ अधिक दिन न रह सके।

चम्पानाथ ने वहाँ सुना कि समीप के गहन जङ्गल में भैरवनाथ नामक वनखण्डी बाबा रहते और अघोर-क्रिया की साधना करते हैं। इस क्रिया के उपकरण में मद्य, मांस, मछली तो क्या, यदि हाथ लग जाय तो आप मनुष्य-मांस को भी चट कर जाते हैं। अतएव आपके पास पक्षी तक नहीं फटकता। परन्तु यह जनश्रुति सत्य न थी। न तो वनखण्डी बाबा अघोर-क्रिया के उपासक ही थे, न मद्य-मांस के भक्षक ही। आप परम वैष्णव और सिद्ध योगी थे। हठयोग की सम्पूर्ण क्रियायें आपको करामलकवत् थीं। काशी, काश्मीर आदि तीर्थ-स्थानों में आप भ्रमण भी कर चुके थे। आप सर्वदा तपस्वी वेश में मग्न रहते तथा कभी कभी श्मशान-भूमि में भी तप किया करते थे। सम्भव है, आपके इसी कार्य्य और वेश को देख कर लोगों ने आपको अघोरी की उपाधि दे दी हो।

चम्पानाथ ने सोचा कि चलो वनखण्डी बाबा की शरण लें। यदि ये मुझे अघोर-क्रिया की साधना में ला भी आयँगे तो मैं संसार के नाना क्लेशों से मुक्त तो हो जाऊँगा। अतएव चम्पानाथ पिऊठान से पराङ्मुख होकर वनखण्डी बाबा की तलाश में वन वन भ्रमण करने लगे। एक दिन चम्पानाथ को बाबाजी के दर्शन हो गये। यद्यपि वनखण्डी बाबा का रूप बड़ा ही भयानक था, तथापि चम्पानाथ ने उन्हें साक्षात् गुरु गोरखनाथ समझा।

अमानाथ ने घनश्यामदास बाबा की ऐसी सेवा की कि वे उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने अमानाथ को हठयोग की सम्पूर्ण क्रियाओं में दक्ष बना दिया। यहाँ कुछ कुछ आत्म-साक्षात्कार का अनुभव भी होने लगा। परन्तु घनश्यामदास बाबा जब कभी काशी, काश्मीर आदि की कथा सुनाते तब अमानाथ का हृदय बल्लियों उछल उठता। अतएव अमानाथ तीर्थयात्रा-निमित्त जाने के लिए घनश्यामदास बाबा से प्रार्थना करने लगे। इस पर बाबाजी ने अमानाथ को देश-यात्रा के लिए अनुमति दे दी।

आप गुरुजी से बिदा होकर १८ वर्ष तक नेपाल के पहाड़ों में भ्रमण करते रहे। वहाँ खूब योगाभ्यास किया। आपकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। सुना है कि नेपाल के कई उच्च पदाधिकारी तक आपके दर्शनार्थ वर्षों भटकते रहे। ३२ वर्ष की अवस्था में आपने नेपाल की सीमा पार करके पाटन का मेला देखा।

पाटन एक छोटा सा गाँव है। यहाँ श्रीपाटेश्वरी देवी का बड़ा विशाल मन्दिर है। इस मन्दिर की विभूति कम नहीं। मन्दिर के महन्त भी योगी ही हैं। यद्यपि पाटन ब्रिटिश राज्य में है तथापि वह महाराजा बलरामपुर के अधीन है। चैत्र के नवरात्र में यहाँ बड़ा भारी मेला लगता है। इस मेले में महाराजा बलरामपुर भी आते हैं। देश-देशान्तरों के विद्वान्, पण्डित, साधु-महात्मा भी इकट्ठे होते हैं। पाटन में बलिदान की प्रथा है। अतः नेपाल के सदृश पाटन के साधु-संन्यासी भी मांसभोजी हैं। स्वामी अमानाथजी गुरु गोरखनाथ के मतानुयायी विशुद्ध योगी थे। आपने इस कुप्रथा के विरुद्ध में खूब आन्दोलन किया। फल यह हुआ कि कई मांसभक्षी साधुओं ने निर्दयता से अमानाथ की खूब ही पूजा की। अमानाथजी ने इस दारुण वेदना को सहन तो कर लिया, परन्तु मरते दम तक आप इस समुदाय के साधुओं से सदा कुढ़ते ही रहे।

अमानाथजी ने पाटन से बिदा होकर भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थों में भ्रमण किया। एक दिन आप अकस्मात् नर्मदा के किनारे एक योगाश्रम में पहुँच गये। मठाधीश स्वामी आनन्दगिरि [illegible] आत्मा महात्मा थे। आप बड़े विद्वान् तथा राजयोगी थे। सुना है, स्वामी अमानाथ ने आपसे ही वेदान्त-दर्शन पढ़ा, तथा थोड़ी सी संस्कृत-भाषा भी पढ़ी। अमानाथजी हठयोग में तो दक्ष थे ही। अब आप राजयोग में भी पारङ्गत हो गये। कुछ समय बाद आपके हृदय में काश्मीर देश के दर्शन की लालसा उत्पन्न हुई। अतः आप, संवत् १९३१ में, जम्बू होते हुए काश्मीर पहुँचे।

काश्मीर में अमरनाथ महादेव का धाम खूब प्रसिद्ध है। यहाँ जाने के अभिलाषी महात्मा [illegible] जन प्रति वर्ष काश्मीर के श्रीनगर में [illegible] भर जाते हैं। उनके भोजन आदि का प्रबन्ध काश्मीर-दरबार की ओर से ही मास तक किया जाता है। अमरनाथ गढ़वाल का बदरीनाथ तो नहीं, कि आप भीख माँगते चले और जब किसी भी पहाड़ पर आराम करने लगे। यहाँ कोई नहीं। न एक दो यात्री अकेले जा ही सकते हैं। पहले श्रीनगर में कई हजार यात्रियों का इकट्ठा होता है। उनके भोजन, वस्त्र तथा ईंधन तक का प्रबन्ध यहीं से करना पड़ता है। क्योंकि मार्ग में बर्फ के सिवा और कुछ नहीं। श्रावण पूर्णिमा से छः सात दिन तक श्रीनगर से यह दल बड़े धूमधाम से बीजबिहाड़ा, अनन्तनाग, मार्तण्ड, पहलगाँव, चन्दनवाड़ी, शेषनाग, पञ्चतरणी होते हुए श्रीअमरनाथ पहुँचता है।

स्वामी अमानाथजी पूर्वोक्त चन्दनवाड़ी में [illegible] छः महीने तक कई बार भ्रमण करते रहे। इस [illegible] न मालूम आप किस बूटी का सेवन करते थे क्योंकि चन्दनवाड़ी से [illegible] मील तक [illegible]

घर नहीं। यह जगह बड़ी ही भयानक है। यहाँ कुछ भी खाद्य वस्तु प्राप्य नहीं।

कुछ लोगों का कथन है कि चम्पानाथजी पहले बूढ़े थे। आपके केश श्वेत हो गये थे। जब आपने अमरनाथ के अमर-तालाब में—जिसको अब हत्यारा-तालाब कहते हैं, जिसके पास पक्षी तक नहीं फटकता और जिसका जल बर्फ़ से ढका रहता है—स्नान किया तब आपकी काया बदल गई और आप जवान मालूम होने लगे।

कई आदमी ऐसा भी कहते हैं कि चन्दनवाड़ी की उपत्यका के गहन वन में एक अमरकूप है। उसके जलकणों के स्पर्श से मनुष्य का शरीर कुछ का कुछ हो जाता है। स्वामीजी इसी कूप के प्रभाव से नवयवस्क हो गये।

कुछ लोगों का विश्वास है कि योगाभ्यास* से ही स्वामीजी सोलह वर्ष के हो गये। परन्तु हम नहीं कह सकते कि आपने यथार्थ में कौन सी साधना की। मरते दम तक आपकी कान्ति २५ वर्ष के युवा मनुष्य की कान्ति के ही सदृश रही।

स्वामीजी कभी कभी जम्मू के आसपास के पहाड़ों पर भी, विशेषतः परमण्डल-तीर्थ में, योगाभ्यास करते थे। इस कारण आपके तपश्चरण की कीर्ति काश्मीर में प्रायः सर्वत्र फैल गई। अतएव काश्मीर-नरेश स्वर्गवासी महाराज श्रीरणधीरसिंहजी को आपके दर्शन की बड़ी अभिलाषा हुई। बड़े प्रयत्न से आपको, संवत् १९३२ में, जम्मू के श्रीगदाधर-मन्दिर में स्वामीजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। सुनते हैं, महाराज ने अनेक पदार्थ आपकी सेवा में समर्पण किये। किन्तु आपने उन पदार्थों की तरफ़ देखा तक नहीं। क्योंकि योगिजन सिद्धियों और धनैश्वर्य की विभूतियों के वशीभूत नहीं होते। भगवान् पतञ्जलि का उपदेश है कि—

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाऽकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्।

स्वामीजी के हृदय में यह लालसा उत्पन्न हुई कि इन्द्रेश्वर ही में हमारा प्रधान योगाश्रम बने। अतः आपने संवत् १९३४ में इन्द्रेश्वर को ही अपना मुख्य योगाश्रम निश्चित किया। आपकी योगसिद्धियाँ चाहती थीं कि आप प्रवृत्ति-मार्ग में फँसें। वे उधर खींचने की बार बार चेष्टा करती थीं। यह उन्हीं का प्रभाव था कि काश्मीर के वर्तमान महाराज सर श्रीप्रतापसिंह साहब बहादुरजी के हृदय में आपके दर्शन की इच्छा उत्पन्न हुई। अतएव महाराज साहब अपने दोनों छोटे भाइयों को—अर्थात् राजा रामसिंह साहब और राजा अमरसिंह साहब को—साथ लेकर संवत् १९३९ में जम्मू से इन्द्रेश्वर पहुँचे। आपने और और पदार्थों के सिवा इन्द्रेश्वर पर्वत के आसपास की सम्पूर्ण भूमि भी स्वामीजी के नाम कर दी। आश्रम में नाना प्रकार के फलों और फूलों की वाटिका लगाई जाने का आदेश भी दे दिया। फिर क्या था। थोड़े ही दिनों में इन्द्रेश्वर यथार्थ ही इन्द्रेश्वर बन गया।

धीरे धीरे स्वामीजी का वेश बदल गया। जड़ी-बूटी खाना बन्द हो गया। बहुमूल्य चोग़े और दुशाले आदि आपके शरीर की शोभा बढ़ाने लगे। कमख़ाब की पोस्तीनें आप पहनने लगे। सोने के रत्नखचित कटक-कुण्डलादि आप धारण करने लगे। तरह तरह के पकान्न आप भोग लगाने लगे। इन *योग-सिद्धियों को तो देखिए!*

काश्मीर में मांस-भक्षण का बड़ा प्रचार है। बड़े बड़े विद्वान् पण्डित भी मांस-मछली खाते हैं। यहाँ वाले देव-कार्य्य तथा पितृ-कार्य्य के खाद्य पदार्थों में भी मांस को ही प्रधान समझते हैं। यह देख कर परोपकारमूर्त्ति श्रीस्वामी चम्पा-

---

* "वपावसूर्य्यमुत्थाप्य मार्गं कण्ठादधो नयेत्।
योगी जराविमुक्तः सन् षोडशाब्दवयो भवेत्" ॥
(ह० प्र०)

नायजी के हृदय में यह भाव उद्गत हुआ कि इस पवित्र भूमि काश्मीर देश में अहिंसा-कल्पद्रुम के अङ्कुर अवश्यमेव उगाने चाहिए। सम्भव है, इससे हिंसा-दुराचार का तिरोभाव हो जाय। अतएव आपने, संवत् १९५५ में, योगाश्रम हरिद्वार से काश्मीर की यात्रा की। वहाँ श्रीनगर के रामबाग़ में आपने सर्वसाधारण को मांस-भक्षण-निषेध का उपदेश दिया। आपके उदार उपदेश का यह फल हुआ कि काश्मीर के ब्राह्मणों ने मांस-भक्षण न करने की प्रतिज्ञा कर ली। इस विषय में काश्मीर-निवासी श्री पण्डित गणेशभट्ट ने आपकी इस प्रकार स्तुति की—

> सदसोपदेशाग्र्यो धर्माधर्मप्रदायकः।
>
> काश्मीरेविनिवृत्तेश सर्वं मांसस्य भक्षणम् ॥

यों तो आप कई शास्त्रों में निष्णात थे। पर योगशास्त्र में आप बहुत ही अच्छी योग्यता रखते थे। हठयोग में तो आप अतीव कुशल थे। हठयोग की सम्पूर्ण क्रियाओं की एक एक बात जानते थे। आपकी इन क्रियाओं का निरीक्षण करके बड़े बड़े विद्वान् भी चकित हो जाते थे। योग के अतिरिक्त सांख्य तथा मीमांसा में भी आपकी गति थी। छन्दःशास्त्र का भी ज्ञान आपको था। ये बातें आपके अष्टाङ्गयोग, प्राणयोग, योगवार्तिक नामक पुस्तकों से प्रकट होती हैं। आपने अहिंसा-संग्रह नाम की एक और पुस्तक का भी निर्माण किया। उसमें श्रुति-स्मृति-पुराणेतिहासादिकों के प्रबल प्रमाणों से मांस-भक्षण का निषेध किया गया है। ये पुस्तकें अब तक धर्मार्थ बाँटी जाती हैं। स्वामी हंसराज, वकील, चीफ़ कोर्ट, जम्मू को लिखने से ये मिलती हैं।

हिन्दी के भी आप बड़े प्रेमी थे। आपके योगाश्रम में अनेक सामाजिक पुस्तकों के साथ साथ दैनिक, साप्ताहिक, तथा मासिक पत्र भी आते हैं।

स्वामीजी बड़े उदार थे। आपने संवत् १९५० तथा १९५६ में, आश्रम की सम्पूर्ण विभूति एवं मण्डल, उदरपेनो तथा जम्मू के ब्राह्मणों को लुटा दी थी। बड़े बड़े घोड़े, दुशाले, क़ालीन, चाँदी के बर्तन, सोने के आभूषण, गायें, भैंसें आदि—कुछ भी आपने न रक्खा। कई ग़रीब ब्राह्मण आज तक आपको कुबेर के भाण्डार के सदृश मानते हैं।

आप में एक विलक्षणता भी थी। उसे कोई कोई दोष समझते हैं। आप पात्रशुद्धि के बड़े पक्षपाती थे। कैसा ही आचार-पुनीत, शान्त, सन्तोषी, योगजिज्ञासु मनुष्य क्यों न हो, आप उसे भी हठात् नये ढाँचे में ढालना चाहते थे। इसी साथ ही आपके अन्तःकरण में, स्वार्थ, मद के अङ्कुर भी विद्यमान थे। अर्थात् आपकी आन्तरिक भावना यह थी कि जब तक कोई आपकी गुरुद्वार पद्धति के अनुकूल शिष्य न बने तब तक वह योग-शिक्षा का पात्र न समझा जाय। अनेक साधु और गृहस्थ योग-शिक्षा की लालसा से आपके चरणों में रहे, परन्तु पूर्वोक्त कारणों से उन्हें निराश होना पड़ा। क्या ही अच्छा होता यदि स्वामी आनन्द आपजी—उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्—का अनुसरण करके सब जिज्ञासुओं को योगविद्या की शिक्षा देते।

बहुत समय से आपकी इच्छा थी कि कोई उत्तम जाति का बालक मिले तो उसको शास्त्रानुकूल संस्कार कराकर तथा शास्त्रविद्या सिखा कर उसे हरिद्वार-आश्रम की सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया जाय। आपकी यह इच्छा पूर्ण हुई। आपको एक [illegible] ब्राह्मणी ने अपने दोनों पुत्र दे दिये। साथ ही उनके भोजनाच्छादन की प्रतिज्ञा भी स्वामीजी ने कर ली। वह स्वयं भी हरिद्वार में रहने लगी।

हिन्दू-विश्वविद्यालय का शिलारोपण।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

Photo by Gona Studio, Benares.

स्वामीजी ने संवत् १९६२ में दोनों बालकों को शिष्य बना कर उन्हें भोलानाथ और इन्द्रनाथ नाम से विभूषित किया। सुनते हैं, किसी कारण से भोलानाथ आश्रम से चला गया। अतएव अब आपकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी एक मात्र इन्द्रनाथ ही है। यह अब राजधानी जम्बू में सामायिक शिक्षा के अतिरिक्त संस्कृत भी पढ़ता है। बालक होनहार प्रतीत होता है।

स्वामीजी ने कई वर्षों से अपनी भ्रमण-क्रिया को बन्द कर दिया था। आप जम्बू तक भी न आते थे, यद्यपि वह आपके आश्रम से केवल १६ मील है। अतएव कुछ अदूरदर्शी स्वामीजी के विषय में कुचेष्टायें करने लगे थे। पर यह उनकी नादानी थी। योगियों का अवतार मायाजाल के छेदन के लिए होता है। उसमें फँसने के लिए नहीं। ऐसे लोगों की नादानी का प्रमाण भी मिल गया। स्वामीजी ने संवत् १८७१ में राजधानी जम्बू की यात्रा की। स्वामीजी ने वहाँ वेद भगवान् के मन्दिर की स्थापना के साथ ही साथ योगाश्रम, गोशाला, धर्मशाला और एक वृहत् पुस्तकालय स्थापित करना चाहा। फल यह हुआ कि श्रीमन्महाराजाधिराज काश्मीर-जम्बू ने ३० बीघे भूमि वेदमन्दिर की स्थापना के लिए दे दी। गोशाला के लिए भी एक अच्छा जङ्गल बता दिया। इसके अतिरिक्त एक अच्छी रक़म के दान का भी मानसिक सङ्कल्प किया। यह रक़म पूर्वोक्त संस्थाओं को सदैव चलाने के लिए थी। नगर से भी १२ सहस्र रुपया एकत्र हो गया। अभी कई उच्चपदाधिकारियों तथा राजमहिलाओं का दान बाक़ी था कि स्वामीजी ने बड़ी शीघ्रता से वेद-मन्दिर का कार्य्य प्रारम्भ कर दिया। बड़ी धूमधाम से वेदभगवान् के मन्दिर की प्रतिष्ठा हो गई। उसकी रक्षा के निमित्त एक कमिटी भी बन गई। उस कमिटी के सदस्यों में श्रीमन्महाराज सर प्रतापसिंहजी, जी० सी० एस० आई०, श्रीमान् राजा साहब बलदेवसिंहजी पूनस, श्रीमान् राजकुमार टीका हरिसिंहजी कमांडर इन चीफ़, दीवान बहादुर दीवान अमरनाथजी, चीफ़ मैजिस्ट्रेट इत्यादि हुए।

योगाश्रम तथा गोशाला आदि का काम अपूर्ण ही था कि स्वामीजी ने सर्वसाधारण से कहा कि मुझे अब इस देश को छोड़ कर महाराज भयपाल की शरण में जाना है। स्वामीजी के इन वचनों को श्रवण करके लोग हक्के बक्के रह गये। पूर्वोक्त वाक्य के गूढ़ भाव को किसी ने न समझा। संस्कृत में *देश—नाम शरीर का भी है, और भय—नाम राजनीति या मर्य्यादा का है।* जो मर्य्यादा का पालन करता है वही भयपाल है। मनुष्य में सर्वदा स्खलन रहता है। अतः मनुष्य को भयपाल कहना असङ्गत है। भयपाल नाम सच्चिदानन्द परमेश्वर का है, जिसकी मर्य्यादा सर्वदा अचल है। स्वामीजी के कथन का भावार्थ यह था कि इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ कर सच्चिदानन्द परमेश्वर की शरण में जाना है। अर्थात् मेरी मृत्यु समीप है।

स्वामीजी जम्बू से इन्द्रेश्वर को लौट गये। वहाँ आपने तालाब में ख़ूब जलक्रीड़ा की। कई व्यक्तियों ने आपको इतना स्नान करने से रोका भी। परन्तु आप न रुके। आप सर्वदा यही कहते रहे—अब इस देश को छोड़ कर महाराज भयपाल की शरण में जाना है। एक रोज़ स्वामीजी के सिर में कुछ साधारण वेदना हुई। परन्तु आपकी मुखमुद्रा पूर्ववत् प्रफुल्लित ही रही। किसी को यह ज्ञात न हुआ कि आपकी जीवनलीला पूर्ण होने वाली है। स्वामीजी सर्वदा उषाकाल से दिन के १० बजे तक अपनी भैरवगुफा में समाधिस्थ रहते थे। संवत् १९७२, आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी रविवार को, प्रातःकाल ६ बजे ही आपने इन्द्रनाथ को आवाज़ दी। इन्द्रनाथ दौड़ कर गुफा के भीतर देखता है तो

चीज़ की टक्कर झाड़ी, वृक्ष आदि किसी स्थिर वस्तु पर लगती है तब खड़खड़ाहट होने लगती है। इससे यह अनुमान हुआ कि झाड़ी में कोई चीज़ ज़रूर होगी। आपने तीतर देख लिया; अनुमान आपका ठीक निकला। अब आप यह कल्पना कीजिए कि आपने वह तीतर पकड़ लिया। फिर आप यह सोचने लगे कि वह उड़ क्यों नहीं गया। देखने से आपको मालूम हुआ कि तीतर के पैर ख़ून से भरे हैं। इससे आपने अनुमान किया कि किसी शिकारी ने तीतर को ज़ख़्मी किया है। शिकारी के द्वारा ज़ख़्मी किये जाने का अनुमान आपको इस तरह हुआ कि आपने चिड़ियों को बन्दूक़ से मारे जाते देखा है। ध्यानपूर्वक देखने से आपको मालूम हुआ कि तीतर के एक ही छर्रा लगा है; वह भी उसके मर्म स्थान पर नहीं। न तो उसके डैने ही ज़ख़्मी हुए हैं और न वे रगें ही जिनकी सहायता से पर हिलते डुलते हैं। तीतर की चाल-ढाल से आपको यह भी मालूम हो गया कि उसमें अभी बहुत शक्ति है। जब यह सच है तब तीतर उड़ क्यों न गया? पर इसका कारण आप न जान सके। तब आपने शरीर-शास्त्र के ज्ञाता किसी डाक्टर से इसका कारण पूछा। उसने बताया कि छर्रा शरीर के भीतर ऐसे स्थान के पास से निकल गया है जहाँ पर वह रग, जिससे एक तरफ़ के बाज़ू की नसें बनी हैं, रीढ़ से अलग होती है। इस रग में थोड़ी चोट आने से भी बाज़ुओं के काम में रुकावट पैदा हो जाती है और उड़ने की शक्ति जाती रहती है। यह उत्तर सुन कर आपका समाधान हो गया।

यह समाधान वे बातें जानने से हुआ जिन्हें आप पहले ही से जानते थे। इस समय तो आपको उनका केवल कार्य्य-कारण-सम्बन्ध मालूम हो गया। देखिए, पहले तो आपने प्रत्यक्ष घटना देखी। उससे अनुमान द्वारा आप व्यापक नियमों तक पहुँचे। यदि आप चाहें तो इन नियमों से भी आगे बढ़ सकते हैं। एक कार्य्य का दूसरा कारण और दूसरे कारण का तीसरा कारण—इस तरह अनन्त काल तक कार्य्य-कारण-सम्बन्ध आप बताते चले जा सकते हैं। इस चेष्टा में आप अनन्त कारण क्यों न बतावें, पर फिर भी आप आदि-कारण तक न पहुँच सकेंगे। यदि आप आदि-कारण तक न पहुँच सके; उसके इसी तरफ़ आपको रुकना पड़ा तो आप यही कहेंगे कि यह रहस्य इतना गम्भीर है कि इसका पता लगना असम्भव है। छोटे कारणों से बड़े कारण और बड़े कारणों से और भी बड़े कारण—ऐसे कितने ही कारण क्यों न आप निकालते जाइए, अन्तिम कारण तक आप न पहुँचेंगे। लाचार आपको यही कहना पड़ेगा कि जो अन्तिम कारण है उसका ज्ञान होना असम्भव है।

अब विचार-क्रम का उदाहरण लीजिए। इस पर ध्यान देने से भी यही अनुमान होता है कि हमारा ज्ञान अन्यसापेक्ष है। जैसे शिकारी कुत्ता अपनी छाया नहीं छोड़ सकता और जैसे चील्ह उस वायु-मण्डल के बाहर, जिसमें वह उड़ रही है, नहीं जा सकती वैसे ही मन उन सीमाओं के घेरे के बाहर, जिनके भीतर विचार-क्रिया बँधी हुई है, कदापि नहीं जा सकता। ज्ञान-शक्ति की जो सीमा है उसे विचार कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता। ज्ञान-शक्ति ज्ञाता और ज्ञेय, इन दोनों से बँधी हुई है। ज्ञाता और ज्ञेय में परस्पर गाढ़ सम्बन्ध है, और एक दूसरे की सीमा को बाँधे हुए है।

किसी भी वस्तु का ज्ञान तीन तरह से होता है, जैसे—

(१) एक वस्तु की दूसरी वस्तु से भिन्नता मालूम करना, अर्थात् यह ज्ञान होना कि यह चीज़ और है और यह और। इन दोनों चीज़ों में अन्तर है।

(२) एक वस्तु का सम्बन्ध दूसरी वस्तु से मालूम करना।

(३) एक वस्तु की सदृशता दूसरी वस्तु से जानना—अर्थात् जैसी वह वस्तु है वैसी यह भी है।

पहले लक्षण पर ध्यान देने से मालूम होगा कि जब हम एक वस्तु को दूसरी वस्तु से भिन्न बताते हैं तब हम वस्तुओं की सीमा बाँधते हैं। अर्थात् जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं उसकी सीमा नियत हो जाती है, और उस सीमा-निर्धारण से ही उसका ज्ञान होता है। यदि कोई वस्तु अनन्त है तो उसकी सीमा बाँधना असम्भव है। इस कारण उसका ज्ञान होना भी असम्भव है।

ज्ञान का दूसरा लक्षण अन्योन्य-सम्बन्धता है। इस पर भी विचार कर देखिए। यह हम पहले ही कह आये हैं कि ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय दो वस्तुएँ होती हैं। ज्ञेय और ज्ञाता के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान-क्रिया में ज्ञाता और ज्ञेय मिले रहते हैं और परस्पर गाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में यही बात इस तरह कही जा सकती है कि ज्ञाता वह है जो ज्ञेय को जाने और ज्ञेय वह है जो ज्ञाता से जाना जाय। इन दोनों में निरन्तर गाढ़ सम्बन्ध रहता है। यदि दोनों में से एक भी न हो तो ज्ञान भी न हो। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसे पूर्वोक्त तर्क से अनन्त वस्तु का ज्ञान असम्भव था, वैसे ही इस तर्क से सम्पूर्ण (Absolute) का ज्ञान करना भी असम्भव है। जब ज्ञान प्राप्त किया जाता है तब जिस चीज़ का ज्ञान प्राप्त किया जाता है उसका सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करने वाले से होता है, अर्थात् ज्ञेय का ज्ञाता से निरन्तर सम्बन्ध रहता है। हमने सम्पूर्ण का ज्ञान करना चाहा तो सम्पूर्ण ज्ञेय हुआ और हम ज्ञाता हुए परन्तु वह ज्ञेय ऐसा है जिसका ज्ञाता से कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसी दशा में उसका ज्ञान होना असम्भव है। अर्थात् सम्पूर्ण का ज्ञान हो ही नहीं सकता। यदि ऐसा ज्ञान सम्भव भी हो तो हम यह न मालूम होगा कि सम्पूर्ण क्या है, क्योंकि जब तक यह न मालूम हो कि ज्ञेय क्या है तब तक उसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। सम्पूर्ण (Absolute) कदापि ज्ञेय नहीं। इस लिए उसका ज्ञान भी कदापि नहीं हो सकता। जो चीज़ें ज्ञान के बाहर हैं उनका ज्ञान करना असम्भव है। सम्पूर्ण ज्ञान के बाहर है, क्योंकि सम्पूर्ण वही है जिसका दूसरे से सम्बन्ध न हो, और ज्ञान केवल उन्हें वस्तुओं का होता है जिनका एक दूसरे से सम्बन्ध हो। इस लिए सम्पूर्ण का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है।

ऊपर ज्ञान-क्रम की दो बातों का विचार हुआ—अर्थात् भिन्नता और अन्योन्य-सम्बन्ध का। अब तीसरी बात सदृशता को लीजिए।

ज्ञान-क्रम में केवल यही नहीं मालूम होता कि यह वस्तु दूसरी वस्तु से गुण और रूप में भिन्न है, किन्तु यह भी मालूम होता है कि यह वस्तु दूसरी वस्तु से गुण और रूप में एक सी है या नहीं। जो वस्तुएँ एक दूसरी से भिन्न हैं उन्हें एक तरफ़ रखिए। जो दूसरी वस्तुओं से सादृश्य रखती हैं उन्हें दूसरी तरफ़ रखिए। ऐसा विचार तभी हो सकता है जब इन वस्तुओं का पहले से कुछ ज्ञान हो। यदि आप यह कहें कि पहले से ज्ञान नहीं तो किसी वस्तु का ज्ञान भी नहीं हो सकता—उत्तर यह है कि ज्ञान-विकास धीरे धीरे होता है। बच्चों को देखा जाय तो मालूम होगा कि उनमें ज्ञान का विकास धीरे धीरे होता है। पहले पहले उन्हें बाहर की वस्तुओं के स्पर्श से ज्ञान होता है।

यदि कोई ऐसी नई चीज़ देखने में आवे जिसका सम्बन्ध किसी ऐसी चीज़ से नहीं जो हमने पहले देखी है तो उसका ज्ञान होना असम्भव है। मान लीजिए कि हमने एक ऐसी वस्तु देखी जिसे पहले कभी नहीं देखा था। उसकी जाति को हम नहीं जानते हैं। तो उसका सम्बन्ध पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े, अथवा मछली आदि में से किसी न किसी

लार्ड चेम्सफर्ड—भारत के नये गवर्नर जनरल।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

(३) एक वस्तु की सदृशता दूसरी वस्तु से जानना—अर्थात् जैसी वह वस्तु है वैसी यह भी है।

पहले लक्षण पर ध्यान देने से मालूम होगा कि जब हम एक वस्तु को दूसरी वस्तु से भिन्न बनाते हैं तब हम वस्तुओं की सीमा बाँधते हैं। अर्थात् जिस वस्तु को हम जानना चाहते हैं उसकी सीमा नियत हो जाती है, और उस सीमा-निर्धारण से ही उसका ज्ञान होता है। यदि कोई वस्तु अनन्त है तो उसकी सीमा बाँधना असम्भव है। इस कारण उसका ज्ञान होना भी असम्भव है।

ज्ञान का दूसरा लक्षण अन्योन्य-सम्बन्धता है। इस पर भी विचार कर देखिए। यह हम पहले ही कह आये हैं कि ज्ञान में ज्ञाता और ज्ञेय दो वस्तुयें होती हैं। ज्ञेय और ज्ञाता के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। ज्ञान-क्रिया में ज्ञाता और ज्ञेय मिले रहते हैं और परस्पर गाढ़ सम्बन्ध रखते हैं। दूसरे शब्दों में यही बात इस तरह कही जा सकती है कि ज्ञाता —

जब तक यह न मालूम हो कि ज्ञेय क्या है तब तक उसका ज्ञान भी नहीं हो सकता। सम्पूर्ण (Absolute) कदापि ज्ञेय नहीं। इस लिए उसका ज्ञान भी कदापि नहीं हो सकता। जो चीज़ें ज्ञान के बाहर हैं उनका ज्ञान करना असम्भव है। सम्पूर्ण ज्ञान के बाहर है, क्योंकि सम्पूर्ण वही है जिसका दूसरे से सम्बन्ध न हो, और ज्ञान केवल उन्हीं वस्तुओं का होता है जिनका एक दूसरे से सम्बन्ध हो। इस लिए सम्पूर्ण का ज्ञान होना सर्वथा असम्भव है।

ऊपर ज्ञान-धर्म की दो बातों का विचार हो चुका—अर्थात् भिन्नता और अन्योन्य-सम्बन्ध का। अब तीसरी बात सदृशता को लीजिए।

ज्ञान-धर्म से केवल यही नहीं मालूम होता कि यह वस्तु दूसरी वस्तु से गुण और रूप में भिन्न है, किन्तु यह भी मालूम होता है कि यह वस्तु

यदि यह माना जाय कि रूप का ज्ञान हो सकता है तो यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसी कोई वस्तु अवश्य है जिसके रूप का ज्ञान होता है, क्योंकि वस्तु के बिना रूप की सम्भावना ही नहीं हो सकती। इसी तरह जब हम यह कहते हैं कि सम्पूर्ण का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता तब हम साथ ही मानों यह भी कह देते हैं कि उसका अस्पष्ट ज्ञान अवश्य होता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि स्पष्ट ज्ञान के अतिरिक्त एक ज्ञान ऐसा भी है जो स्पष्ट तो नहीं है, परन्तु धुँधला अवश्य है, दो चीज़ों का निर्णय करना होगा—अर्थात् एक तो अन्योन्य-सम्बन्धी वस्तु का और दूसरा उसका जिसे सम्पूर्ण कहते हैं। सभी जानते हैं कि किसी चीज़ का टुकड़ा, उस पूरी चीज़ के बराबर नहीं होता। परन्तु पूरी चीज़ के ज्ञान के बिना टुकड़े का ज्ञान होना असम्भव है। बराबर वाली चीज़ों के बिना बराबर का ज्ञान नहीं होता। इसी तरह सम्पूर्ण के बिना अन्योन्य-सम्बन्धी चीज़ों का ज्ञान नहीं हो सकता। यह कहना ठीक नहीं कि इनमें से एक वस्तु सत्य है, दूसरी असत्य; दोनों वस्तुओं का सत्य होना आवश्यक नहीं। जब हम बराबर और ना-बराबर कहते हैं तब ना-बराबर का ज्ञान बराबर के अभाव के सिवा कुछ और भी है। कल्पना कीजिए कि एक चीज़ अल्प है और एक अनल्प। अल्प वस्तु का ज्ञान पहले तो किसी वस्तु का ज्ञान है, दूसरे उन सम्बन्धों का ज्ञान जिनसे वह वस्तु बँधी हुई है। अनल्प के ज्ञान का भी यही हाल है। इसमें पहली बात, अर्थात् वस्तु के होने का ज्ञान, तो अवश्य होता है, परन्तु जिन बन्धनों से वह वस्तु बँधी हुई है उसका ज्ञान नहीं हो सकता। इस ज्ञान में एक अंश सत्य का अवश्य है। वह अंश उस वस्तु का होना है। जब यह अंश विद्यमान है तब तो अर्थ किसी वस्तु का अभाव कहने से ज्ञात होता है उससे यह अर्थ अधिक हुआ। इस बात को हम मानते हैं कि सम्पूर्ण में सीमा या बन्धन न होने के कारण उसका पूरा ज्ञान होना असम्भव है, परन्तु यह कहना कि असम्पूर्ण का अभाव ही सम्पूर्ण है, वह कोई स्वयं सत्ता वाली वस्तु नहीं, ठीक नहीं है। यदि ठीक हो तो 'अनन्त' शब्द का विलोम शब्द 'अन्त' नहीं, किन्तु मेय भी हो सकता है, और अमेय का विलोम-शब्द 'मेय' नहीं, किन्तु अल्प भी हो सकता है। परन्तु यह तो हो ही नहीं सकता। इस कारण सिद्ध हुआ, कि अभाव मानने से अस्तित्व का अत्यन्ताभाव नहीं माना जा सकता। तर्क-शास्त्र वाले ज्ञान को केवल सीमाओं और दशाओं से सम्बद्ध मानते हैं। उनका यह तर्क सदोष है। क्योंकि वे इसका कुछ भी ध्यान नहीं रखते कि इन सीमाओं और दशाओं का कोई आधार भी है। इस आधार का स्पष्ट ज्ञान तो नहीं हो सकता, परन्तु उसके सत्य होने में कोई सन्देह नहीं। तर्क-शास्त्रवेत्ता सम्पूर्ण का होना तो मानते हैं, परन्तु यह कहते हैं कि उसका होना बुद्धि से सिद्ध नहीं, अनुभव से सिद्ध है। सारांश यह कि सत्याधार वस्तुओं का स्पष्ट ज्ञान तो नहीं हो सकता, परन्तु उनके होने का विश्वास मन में अवश्य रहता है। वह किसी प्रकार दूर नहीं हो सकता। जैसे हारमोनियम बाजे का एक अंश देखने से उसका ज्ञान नहीं होता है, उसके अनेक अंशों का ख़याल करने से हो सकता है, वैसे ही सम्पूर्ण का ज्ञान भी बुद्धि के किसी एक विचार से नहीं हो सकता, किन्तु बहुत से विचारों के मेल से हो सकता है।

काल, आकाश और कारण—इनकी सिद्धि करने में यह तर्क किया गया था कि जब इन्हें अन्त वाले मानते हैं, तब उस अन्त की सीमा का जो अभाव है उसका विचार मन में उत्पन्न होता है। इस लिए उन्हें अन्त वाले नहीं मान सकते। यदि ऐसा विचार न उत्पन्न हो तो उन्हें अन्त वाले

अवश्य मानना चाहिए। यही तर्क सम्पूर्ण के ज्ञान होने में किया जाता है। जब अन्योन्याश्रय-सम्बन्धी वस्तुओं का ज्ञान होता है तब ऐसा विचार मन में उत्पन्न होता है कि कोई ऐसी वस्तु भी है जो अन्योन्याश्रय-सम्बन्धी नहीं है। अर्थात् कोई वस्तु सम्पूर्ण भी है। इस लिए सम्पूर्ण अभावरूप नहीं, किन्तु भावात्मक वस्तु है। पर, हाँ, उसका स्पष्ट ज्ञान होना असम्भव है।

५—धर्म और विज्ञान का मेल।

(The reconciliation between Religion & Science)

सर्वसाधारण ज्ञान से मालूम होता है कि कोई मूलाधार वस्तु अवश्य है। पदार्थ-विद्या से यह सिद्ध है कि जिन चीज़ों को हम सत्य मानते हैं वे सत्य नहीं हैं। अध्यात्म-विद्या से यह मालूम होता है कि कोई सत्य वस्तु तो अवश्य है, परन्तु वह क्या है, यह नहीं कहा जा सकता। इस सत्य वस्तु के विषय में धर्मशास्त्र भी कहता है कि इसका पता नहीं लगता कि वह क्या है। जिस शक्ति को विज्ञान अज्ञेय बताता है उसी शक्ति को धर्म सर्वव्यापक कहता है, क्योंकि उसकी कोई सीमा नहीं। धर्म का मुख्य तत्त्व अटल है। वह यह है कि जगत् का आदि-कारण हमारी बुद्धि से परे है। परन्तु जब धर्म इस आदि-कारण के विशेषण बताता है तब परस्पर-विरोध उत्पन्न हो जाता है और वे विशेषण विज्ञान-शास्त्र में कट जाते हैं। इस कारण धर्म का बल न्यून हो जाता है। धर्म की भित्ति अटल है। यदि वह उस पर दृढ़ रहे तो उस पर कोई आघात नहीं हो सकता। मिथ्या आडम्बर कितना ही क्यों न हो, धर्म में मूलोक्त सन्देश रहता ही है। इस तत्त्व को धर्म अनादि काल से मानता चला आया है। भूल इतनी ही है, कि उसने इस तत्त्व के गौरव का पूर्ण परिचय नहीं प्राप्त किया। धर्म का आधार तो ठीक है, परन्तु जो इतिहास और कथायें उससे सम्बद्ध हो गई हैं वे धर्म का अंश नहीं।

धर्म की इस भूल का संशोधन विज्ञान कर रहा है। धर्म की जो सेवा विज्ञान ने की है उसके लिए धर्म को विज्ञान का कृतज्ञ होना चाहिए। पर ऐसी कृतज्ञता का ख़याल धर्म को नहीं। भौतिक वस्तुओं की स्थिति और उत्पत्ति के क्रम के ज्ञान का नाम विज्ञान है। जब से उत्पत्ति-क्रम का हाल मालूम हुआ है तब से बहुत सी भूलें और ढकोसले दूर होते जा रहे हैं। जब किसी वस्तु का यथार्थ कारण मालूम हो जाता है तब वह केवल भूत-प्रेत या देवता नहीं रहता। विज्ञान के द्वारा हज़ारों चीज़ों के कारण मालूम हो गये हैं और हज़ारों मिथ्या विश्वास संसार से उठ गये हैं। तथापि विज्ञान ने भी अपना काम पूरा नहीं किया। पहले वह अधूरे कारणों पर ठहर गया और उन्हें वह सत्य मानने लगा। परिपक्व न होने के कारण धर्म और विज्ञान ऐसी भूलें करते रहे। धीरे धीरे दोनों की उन्नति होती जाती है। जब दोनों पूर्ण परिपक्व अवस्था को पहुँच जायँगे, तब दोनों में पूरा मेल हो जायगा। धर्म और विज्ञान, ये दो ऐसी शक्तियाँ हैं कि एक के बढ़ने से दूसरे की बढ़ती होती है।

यदि ऐसा ईश्वर माना जाय जिसका संसार से कोई सम्बन्ध न हो, तो मनुष्यों का धार्मिक विश्वास जाता रहेगा। इस विश्वास को स्थिर रखने के लिए बड़ी बड़ी चेष्टायें करनी पड़ेंगी। धर्म को स्थिर रखने की चेष्टायें नाशकारक हैं। सदाचार से उससे बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि, ईश्वर का ज्ञान सर्वसाधारण मनुष्यों की शक्ति के बाहर की बात है। यदि धर्म को स्थिर रखने की चेष्टा न की जाय तो सदाचार को धक्का पहुँचे। इन्

की योग्यता के अनुरूप ही राज्य-प्रबन्ध होता है। जैसे मनुष्य वैसा ही राज्य-प्रबन्ध। धर्म्म का भी यही हाल है। सनातन राज्य-प्रबन्ध-सम्बन्धी विचार जैसे उपयोगी होते हैं वैसे ही सनातन-धर्म्म-सम्बन्धी विश्वास भी उपयोगी होते हैं।

इस विषय में मनुष्यों को तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) सभी धर्म्म-मर्य्यादायें सत्य के आधार पर हैं, फिर वे चाहे कितनी ही मलिन क्यों न हो गई हों।

(२) सत्याधार वाले धर्म्म यदि किसी आदर्श प्रमाण से ठीक नहीं तो सर्वसाधारण प्रमाण से अवश्य ही ठीक हैं।

(३) अनेक धार्म्मिक विश्वास सांसारिक स्थिति के अंश हैं—अर्थात् जैसे संसार की और वस्तुयें हैं वैसे ही ये विश्वास भी हैं। संसार की स्थिति के साथ ही इन विश्वासों की भी स्थिति है। जैसे संसार की अन्य वस्तुयें किसी न किसी रूप में अवश्य रहेंगी—चाहे कितना ही परिवर्तन क्यों न हो, वे सर्वथा नाश को न प्राप्त होंगी—वैसे ही ये विश्वास भी किसी न किसी रूप में अवश्य बने रहेंगे।

यदि इन बातों पर ध्यान दिया जाय तो धर्म्म-विषयक असहनशीलता न उत्पन्न होगी, और अपने सिद्धान्त के मण्डन में विपक्षी की बातें सुन कर लोगों को क्षोभ न होगा। इससे यह न समझना चाहिए कि किसी नये विचार को मन में स्थान ही न देना चाहिए। संसार में सदा ही वस्तुओं का परिवर्तन होता रहता है। साथ ही साथ विचार-शक्ति भी बढ़ती जाती है। सर्वसाधारण की दृष्टि से सनातन विचार ठीक हैं। परन्तु नये विचारों का तिरस्कार करना भी मूर्खता है। नये विचार प्रकट करने वालों को यह न ख़याल करना चाहिए कि हमारा विचार संसार के प्रचलित विचारों से आगे है। इस लिए उसे न कोई समझेगा और न कोई उसका आदर ही करेगा। जो बात सत्य मालूम हो उसे निडर होकर कह देना चाहिए। नये विचार वाला मनुष्य भी तो संसार का ही एक अंश है। यदि प्रचलित विश्वासों को दृढ़ रखना अथवा उन्हीं से अपने को बाँध रखना संसार का नियम होता तो उस मनुष्य को नया विचार सूझता क्यों? इससे सिद्ध है कि संसार में विचारों की उन्नति शनैः शनैः होती है और यह इसी तरह होती है। जहाँ किसी ने नया विचार निकाला तहाँ उसने उसे संसार में प्रकट किया। उस विचार को और लोग भी धीरे धीरे ग्रहण करने लगते हैं। इस तरह उसका प्रचार बढ़ता है। मानसिक उन्नति का यही मार्ग है।

सब का सारांश।

संसार में कोई भी वस्तु या बात ऐसी नहीं जिसमें सत्य का अंश न हो। जितने मत हैं सभी में सत्य का अंश है। जो यह कहते हैं कि मत-मतान्तर झूठे हैं और पण्डितों अथवा पुजारियों की मानसिक कल्पना के फल हैं वे भूल करते हैं। जो यह कहते हैं कि विज्ञान-शास्त्र झूठा है और धर्म का विरोधी है वे भी भूल करते हैं। सत्य का अंश दोनों ही में है। इनके व्यापक नियमों पर ध्यान देने से मालूम होगा कि दोनों ही एक हैं। इनमें परस्पर विरोध नहीं। इन दोनों में एकता सिद्ध करने के लिए इस बात की खोज की आवश्यकता है कि इनके मूलाधार क्या हैं—अर्थात् धर्म्म और विज्ञान के अन्तिम विचार क्या हैं। जब यह मालूम हो जायगा तब इन दोनों का मेल भी सिद्ध हो जायगा। धर्म का आधार जिन विचारों पर है वे ये हैं—

(१) संसार की उत्पत्ति कैसे हुई?

(२) संसार है क्या?

(३) उसका कोई आदि-कारण है या नहीं? यदि है तो उसके क्या लक्षण हैं?

संसार की उत्पत्ति के विषय में तीन मत हैं।

(१) संसार स्वयं सदा चला आता है।

(२) संसार अपने आप उत्पन्न हुआ है।

(३) संसार को किसी दूसरी शक्ति ने रचा है।

तर्क से इन तीनों में से एक भी मत सिद्ध नहीं होता। विचार करने से यही कहना पड़ता है कि संसार की उत्पत्ति का भेद अज्ञेय है।

संसार क्या वस्तु है—इसका उत्तर भी तर्क यही देता है कि यह अज्ञेय है। क्योंकि विचार करते करते संसार के आदि-कारण का विचार करना पड़ता है। परन्तु आदि-कारण सिद्ध करना असम्भव हो जाता है। आदि-कारण के लक्षण अनन्त, सम्पूर्ण और स्वाधीन मानने पड़ते हैं। पर तर्क से इन लक्षणों में परस्पर विरोध पाया जाता है। इस कारण यही कहना पड़ता है कि इस विषय में भी हमें कुछ भी स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। तर्क से न तो संसार की उत्पत्ति का पता लगता है और न उसके आदि-कारण ही का ज्ञान होता है। परन्तु यह मानना ही पड़ता है कि संसार में कोई अदृष्ट शक्ति अवश्य है। इस शक्ति को धार्मिक लोगों ने अनेक प्रकार से माना है। कोई उसे देवी-देवता के रूप में मानता है और कोई उसे ईश्वर कहता है। परन्तु वह है क्या, यह कोई नहीं बता सकता। समस्त धर्मों का अन्तिम मत यही है कि इस शक्ति का ज्ञान हमारी बुद्धि से परे है।

अब विज्ञान के मूलाधार को देखिए। विज्ञान-शास्त्र के अन्तिम तत्त्व ये हैं—आकाश, काल, प्रकृति, गति, शक्ति और चैतन्य। इनमें से प्रत्येक पर विचार करने से मालूम होता है कि मनुष्य को एक का भी स्पष्ट ज्ञान होना असम्भव है। लाचार होकर यहाँ भी यही कहना पड़ता है कि ये वस्तुएँ अज्ञेय हैं।

ज्ञान के स्वरूप पर विचार किया जाता है तो मालूम होता है कि यह अन्योन्य-सम्बन्धी है—अर्थात् यह परस्पर सम्बन्ध रखने वाला है। मनुष्य को बुद्धि-विचार से जो अनुमान होते हैं उन्हीं का नाम ज्ञान है। प्रत्येक वस्तु का ज्ञान तीन प्रकार से होता है—

(१) एक वस्तु की भिन्नता दूसरी वस्तु से मालूम करने से।

(२) एक वस्तु का सम्बन्ध दूसरी वस्तु से जान लेने से।

(३) एक वस्तु की सदृशता दूसरी वस्तु में पाने से।

यदि आदि-कारण का ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की जायगी तो इन्हीं तीन नियमों से की जा सकेगी। परन्तु इन नियमों से न आदि-कारण ही का ज्ञान हो सकता है और न उसके विशेष लक्षण [illegible] सम्पूर्ण ही का। इसके सिवा ज्ञाता और ज्ञेय सम्बन्धों से ज्ञान-क्रिया जकड़ी हुई है। यदि ज्ञाता और ज्ञेय नहीं, तो ज्ञान भी नहीं। इस नियम के अनुसार यदि अपने होने का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहें तो नहीं कर सकते, क्योंकि यदि अपने को ज्ञाता मानते हैं तो ज्ञान किसका होगा, और यदि ज्ञेय मानते हैं तो ज्ञान प्राप्त करने वाला कौन है। इस दशा में हम किसी से अपना का ज्ञान भी नहीं हो सकता, परन्तु अपने होने का हमको पूर्ण विश्वास है। अतएव यह मानना पड़ता है कि हम [illegible] में ज्ञाता और ज्ञेय दोनों छिपे हुए हैं, वे अलग नहीं हैं, जैसा कि लोग मानते हैं। अन्त में सत्ता और बुद्धि की शक्ति को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि ईश्वर, आत्मा और प्रकृति का हमें कभी स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। फिर अन्त में [illegible] का ज्ञान भी [illegible] सकता। यदि इन वस्तुओं का कोई अस्तित्व न माना जाय तो यह भी नहीं हो सकता। ये अस्तित्व अवश्य हैं। जिस तर्क से ये अज्ञेय सिद्ध होते हैं उसी तर्क से ये अस्तित्व भी सिद्ध होते

हैं। इस लिए इतना तो अवश्य मालूम होता है कि कोई मानसिक अदृश्य-शक्ति अवश्य है, परन्तु वह क्या है और कैसी है, यह नहीं ज्ञात हो सकता।

जब यह सिद्ध हो गया कि धर्म्म के आधार अज्ञेय हैं, और यह भी सिद्ध हो गया कि विज्ञान के आधार भी अज्ञेय हैं, तब धर्म्म और विज्ञान का मेल होने में बाधा ही क्या रही? दोनों के आधार अज्ञेय हैं। इसी लिए अन्तिम विचार से दोनों एक हैं और एक ही सा गौरव रखते हैं। इससे यह सिद्धान्त निकला कि दोनों पक्ष वालों को प्रीतिपूर्वक रहना चाहिए। आपस में झगड़ा न करना चाहिए।

कन्नोमल, एम० ए०

अन्नपूर्णा के मन्दिर में।

कमला अन्नपूर्णा के मन्दिर में परिचारिका होकर रहती थी। जन्म भर कुमारी रह कर देवी की सेवा करना ही उसका व्रत था। १३ वर्ष की अवस्था में कमला ने संसार से अपना बन्धन तोड़ कर जगज्जननी की गोद में आश्रय लिया था। ६ वर्ष तक उसने संसार की वासनाओं को पददलित करके अपना व्रत पालन किया। क्षण भर भी उसका मन विचलित नहीं हुआ। किन्तु आज न जाने उसका हृदय क्यों चञ्चल हो रहा था।

सन्ध्या हो गई थी। कमला मन्दिर के उद्यान में देवी की पूजा के लिए फूल तोड़ रही थी। पर उसकी दृष्टि फूलों की ओर न थी। उसके हृदय-पटल पर किसी का चित्र अङ्कित हो गया था, जिसे हज़ार चेष्टा करने पर भी वह हटा नहीं सकी थी। उसकी दृष्टि सदा उस चित्र की ओर रहती थी। इस समय भी वह उस मूर्त्ति की उपासना कर रही थी। कमला को अपनी इस दुर्बलता पर लज्जा होती थी। वह देवी से इसे दूर करने के लिए प्रार्थना करती थी। उसे विश्वास था कि वह अपनी दुर्बलता कुछ दिनों में अवश्य दूर कर सकेगी।

जब कमला फूल तोड़ चुकी तब उसे ऐसा जान पड़ा कि कोई उसके पीछे खड़ा है। उसने तुरन्त ही लौट कर देखा। वह कोई और न था; उसका हृदयाङ्कित चित्र ही था। कमला को अपनी ओर नेत्र किये देख वह कहने लगा—

"कमला, मुझे क्षमा करो। मैं लौट आया हूँ। मुझ से रहा नहीं गया। मैं सच कहता हूँ, अब मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता। तुम्हीं मेरे जीवन की आशा हो। कमला, मुझे निराश मत करो; सदा के लिए अन्धकार में मत फेंको। तुम संसार में रह कर भी भगवती की उपासना कर सकती हो। सच पूछो तो सच्ची उपासना संसार में रहने से ही होती है।"

वह इतना कह कर चुप हो गया और कमला की ओर विषादपूर्ण नेत्रों से देखने लगा।

कमला ने कम्पित स्वर से उत्तर दिया—

"कुमार, मुझे अभागिनी मत बनाओ। माता की गोद से मुझे मत हटाओ। मुझे भूल जाओ। मैं जानती हूँ, मैं स्वयं तुम्हें नहीं भूल सकी हूँ। पर तुम मुझे भूल जाने की चेष्टा करो।"

कुमारसिंह ने अत्यन्त निराश होकर कहा—

"कमला, मैं तुम्हें कभी नहीं भूल सकता। पर तुम्हारा अनुरोध है, इसलिए मैं तुम्हें भूल जाने की चेष्टा करूँगा। प्राण रहते तुम्हें भूलना मेरे लिए असम्भव है। देखूँ, प्राण चले जाने पर मैं तुम्हें भूलता हूँ कि नहीं। मैं जाता हूँ; सदा के लिए जाता हूँ। जगदीश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

इतना कह कर कुमारसिंह जाने लगे। तब कमला ने क्षीण स्वर से पुकार कर कहा—

"कुमार, ऐसा मत करो। मेरे लिए—मुझ पापिनी के लिए—अपना प्राण-नाश मत करो।"

कुमारसिंह ने फिर लौट कर उत्तर नहीं दिया। तब कमला ने हताश होकर कहा, "कुमार, ठहर जाओ। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।"

(२)

भगवती अन्नपूर्णा की पूजा हो गई थी। सब परिचारिकायें विश्राम करने के लिए अपने कमरों में चली गई थीं। केवल कमला मन्दिर में रह गई थी।

वह थोड़ी देर तक सजल नेत्रों से देवी की ओर देखती रही। फिर एक निश्वास लेकर उसने कहा—"भगवति, मैं जाती हूँ। मुझे जाना ही पड़ता है। उसने कहा है कि यदि मैं न जाऊँगी तो वह आत्महत्या कर लेगा। मैं उसे जानती हूँ और, देवि, तुम भी तो उसे जानती हो। वह ज़रूर आत्महत्या कर लेगा। तब क्या उसके साथ मुझे जाना चाहिए? पर मुझे तुम्हारी सेवा छोड़ कर रहना पड़ेगा। अपना प्रण भङ्ग करने से क्या मैं पापिनी न हूँगी? वह कहता था, इसमें कुछ पाप नहीं। पर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि मैं पाप कर रही हूँ। जननि, मुझे विश्वास है, तुम अपनी दासी को पतित न होने दोगी। यदि मैं पाप कर रही हूँ तो कह दो—सिर्फ़ इतना कह दो कि यह पाप है—मैं उसके साथ कभी न जाऊँगी। मुझ पर दया करो। अब वह आता होगा। मैंने तुम्हारे ऊपर सब छोड़ दिया है। कह दो—इतना कह दो—तू पापिनी है, पाप कर रही है। बस।"

इतने में बाहर से किसी का पद-शब्द सुनाई दिया। कमला तुरन्त ही देवी अन्नपूर्णा के पैरों पर गिर पड़ी। वह रोकर कहने लगी—"देवि, वह आ गया है। मुझ पर दया करो। इतना कह दो कि यह पाप है। मैं फिर कभी न जाऊँगी, तुम्हारी सेवा से कभी न अलग हूँगी।"

वह कुछ और कहना चाहती थी कि कुमारसिंह ने मन्दिर में प्रवेश कर कहा—"कमला, मैं आ गया हूँ।"

कमला ने उठ कर कहा—"कुमार, देवी की ओर देखो। वह मेरी ओर कितनी घृणा की दृष्टि से देख रही है। वह कहती है—तू पापिनी है।"

कुमारसिंह ने हँस कर कहा—"कमला, तू भूली है। देवी दयामयी है। उसकी दृष्टि में घृणा का थोड़ा भी चिह्न नहीं। वह करुणापूर्ण नेत्रों से तेरी ओर देखती है।" कमला ने फिर देखा। दीपक के आलोक में देवी का वदन-मण्डल शान्तिपूर्ण जान पड़ता था। तब कमला ने निश्चिन्त होकर कहा—"तो, माँ, मैं अब जाती हूँ। प्रातःकाल मैं दरिद्रों को अन्न, फूल और वस्त्र देती थी। अब मेरा काम और कोई दूसरी दासी करेगी। पर मैं अपना कार्य-भार तुम्हें सौंप जाती हूँ।"

कमला सजल नेत्रों से देवी को प्रणाम कर कुमारसिंह के साथ चली गई। मन्दिर थोड़ी देर के लिए निस्तब्ध हो गया।

× × × ×

प्रातःकाल की लालिमा आकाश में फैल रही थी। दरिद्रों का दल मन्दिर की ओर आ रहा था। उस समय भगवती अन्नपूर्णा ने अपना आसन छोड़ दिया। नीचे आकर उन्होंने केवल इतना कहा—

अश्रुपूर्ण नेत्रों से जिसने किया प्रणाम था [illegible]।
उसकी भक्ति और श्रद्धा का करती हूँ [illegible]॥
सेवा और दया का जिसने लिया यहाँ [illegible]।
उसका [illegible] देख कर [illegible] हूँ मैं [illegible]॥

(३)

दरिद्रों का दल मन्दिर में आ पहुँचा। [illegible] कमला का दयापूर्ण मुख-मण्डल [illegible] भगवती अन्नपूर्णा की आराधना करने लगे। [illegible] जिस वस्तु की इच्छा करता था [illegible]। अन्न, वस्त्र, मिष्टान्न, धन, आभूषण, किसी वस्तु का कुछ अभाव न था। सब दरिद्रों की [illegible]

आचार्य श्रीयुत जगदीशचन्द्र वसु, एम॰ ए॰, डी॰ एस-सी॰।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

आश पूरी हो गईं। उन लोगों के आनन्द की सीमा न रही। जाते समय सब लोगों ने एक स्वर से कहा—"भगवती अन्नपूर्णा की जय, माता कुमारी की जय।"

दरिद्रों के चले जाने पर देवी ने कहा—"कमला, यदि मुझसे कोई भूल हो जाय तो तुम क्षमा करना।" इतने में किसी परिचारिका ने आकर कहा—"कमला, देवी की मूर्ति कहाँ गई? तू तो कल रात को मन्दिर में थी।" देवी कुछ उत्तर देना चाहती थी कि वह दासी चिल्ला उठी—"कमला, तूने यह क्या किया? देवी के आभूषण क्यों पहन लिये?" इतना कह कर वह दूसरी ओर चली गई। थोड़ी देर में सब परिचारिकाओं को साथ लिये हुए मन्दिर की स्वामिनी आ गई। कमला के गले में देवी का हार देखते ही वह क्रुद्ध होकर बोली—"दुष्टे, तूने ऐसा क्यों किया? देख, तुझे मैं कैसा दण्ड देती हूँ।" फिर परिचारिकाओं की ओर देख कर कहा—"यह पिशाचिनी है। इसके पापों के कारण देवी अदृश्य हो गई है। इसे पकड़ कर स्वामीजी के पास ले चलो।" आज्ञा पाते ही सबने उसे पकड़ लिया और स्वामीजी के पास ले गईं। स्वामी जहाँ रहते थे वहाँ अन्धकार था। पर उन लोगों के भीतर आते ही वहाँ प्रकाश फैल गया। सब लोग विस्मय-विमुग्ध होकर कमला की ओर देखने लगे। उस समय उसके वदन-मण्डल से एक दिव्य ज्योति निकल रही थी। यह अलौकिक चमत्कार देख कर सब लोग आश्चर्य और भय से स्तम्भित हो गये। तब स्वामी ने चिल्ला कर कहा—"कमला को छोड़ दो। उसके पवित्र शरीर में देवी निवास कर रही है।" सब लोग अलग हो गये और उस कान्तिमयी मूर्ति की वन्दना करने लगे।

(४)

इस तरह छः वर्ष बीत गये।

अमावस्या की रात्रि थी। चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। खूब निस्तब्धता थी। कमला ने धीरे धीरे अन्नपूर्णा के मन्दिर में प्रवेश किया। उसका शरीर काँप रहा था। आज मन्दिर को छोड़े उसे ६ वर्ष हो गये। इन ६ वर्षों में उसने न जाने कितने पाप किये। कलङ्कित देह लेकर उसे मन्दिर में आने का साहस न होता था। पर देवी को एक बार फिर देखने की उसे इच्छा थी। इसलिए अन्धकार में वह आई थी।

मन्दिर ज्यों का त्यों था। देवी की मूर्ति भी जहाँ की तहाँ थी। प्रदीप के मलिन प्रकाश में भी मूर्ति को कमला स्पष्ट देख सकती थी। उसे ऐसा जान पड़ा कि इस समय भी देवी उसकी ओर दया-पूर्ण नेत्रों से देख रही है। कमला गद्गद स्वर से कहने लगी—"देवि, मैं कलङ्किनी हूँ, पापिनी हूँ। तुम्हारे आश्रय से अलग होकर मैंने अनेक पाप किये हैं। सारा संसार मुझ से घृणा कर रहा है। मैं कुलटा हूँ। इसलिए तुम्हारे मन्दिर में भी मुझे आश्रय न मिलेगा। तुम्हें देख कर अब मुझे दूसरी जगह जाने की इच्छा भी नहीं। माँ, अब तुम मुझे अपनी गोद में ले लो। मैं आती हूँ। मुझे अलग मत करो।"

कमला ने देवी के पैरों पर अपना प्राण त्याग दिया। मरते समय उसने सुना—

अन्नपूर्णा नेत्रों से जिसने किया प्राण का दान।
उसकी भक्ति और श्रद्धा का करती हूँ मैं मान॥
सेवा और दया का जिसने किया सदा विस्तार।
निश्छल प्रेम देख कर उसका लेती हूँ मैं भार॥

×　　×　　×　　×

दूसरे दिन लोगों ने देखा कि देवी की मूर्ति के पास कमला का मृतदेह पड़ा है और देवी उसकी ओर करुणा दृष्टि से देख रही है*।

पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी।

---

* प्रसिद्ध बेलजियम-कवि मेटर लिंक के एक नाटक के आधार पर।

इस कमी की पूर्ति के लिए और एक ऐसी आमदनी का मार्ग खोलने के लिए जो अनिश्चित हो, ये लोग बात बात पर नज़राना वसूल करने की प्रथा को चलाते हैं। ऐसे वसूल का पता चलना कठिन होता है, और, फिर, क़ानून के विरुद्ध होने से मालिक भी स्वभावतः उसे छिपाने की चेष्टा करता है। ऐसी आमदनी का जो थोड़ा बहुत अंश मालिक को मिल जाता है वह उसी को ग़नीमत समझता है और अपने कर्मचारियों को उसके लिए धन्यवाद देता है। छोटे लोग इस तरह के अनेक नियम-विरुद्ध काम करने का परामर्श मालिक को दिया करते हैं। जो मालिक उनकी बातों को लोभवश स्वीकार कर लेता है उसी के यहाँ ऐसे लोग सुख से रहते हैं। पर उनके सुख से कहीं अधिक दुःख प्रजा को पहुँचता है। लूट, खसोट, बेगार (जिसका नाम इन लोगों ने "अधिकार" रख छोड़ा है) आदि से पीड़ित प्रजा भागने लगती है। वह अपने अपने जोत से इस्तीफ़ा दे देती है, इससे भूमि पड़ जाती है, उसकी हैसियत बिगड़ जाती है, पैदावार कम हो जाती है। इन कारणों से प्रजा के लिए सदा दुर्भिक्ष ही सा बना रहता है। इन कारवाइयों से रियासत को भारी हानि पहुँचती है—ऐसी हानि जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती।

पाठकों के विनोदार्थ हम एक ऐसे कर का उल्लेख करते हैं जिसको पहले पहल एक रियासत में देख कर लेखक को बड़ा कौतूहल हुआ था। परन्तु पीछे से जान पड़ा कि उसी रियासत में नहीं, किन्तु और भी अनेक रियासतों में यह जारी है। यह कर उस रियासत में "नचना" के नाम से मशहूर है। कुछ वेश्याओं पर रियासत के मालिक की कृपा है। उनको तथा और भी दो चार को बुला कर वे होली पर नचाते हैं। जलसे में मैावल-वासिनी देवी भी पधारती हैं। यह सारा ख़र्च प्रजा से ही कर के रूप में वसूल किया जाता है। उसी का नाम "नचना" है। तिस पर तुर्रा यह कि नाच तख़लिये में होता है, बेचारी प्रजा उसे देखने भी नहीं पाती।

ऐसे अनेक करों का उल्लेख हम कर सकते हैं, परन्तु विस्तारभय से केवल एक और का ज़िक्र करेंगे। एक रियासत में हमने देखा कि रुपया उधार देने का अजीब रिवाज है। कृषक को आवश्यकता हो या न हो, उसकी हैसियत के अनुसार उसे रुपया क़र्ज़ दिया ही जाता है। वह लेने से इनकार ही क्यों न करे, उसके घर ख़र्च के लिए रुपया रक्खा ही क्यों न रहे—चाहे वह स्वयं महाजनी क्यों न करता हो—परन्तु रईस का रुपया उसे उधार लेना ही पड़ेगा। यदि कोई पूछे कि ऐसा क्यों किया जाता है, तो उत्तर यही है कि रईस साहब दो आना फ़ी रुपया मासिक सूद के लोभ से ऐसा करते हैं। एक बात और भी है। रईस अगर चाहे तो क़र्ज़ के रुपये के बदले बाज़ार-भाव से ५) अधिक अनाज ले सकता है। ज़मींदार और कृषक का सम्बन्ध दिन पर दिन शोचनीय होता जाता है। ज़मींदार की ज़रूरतें बढ़ती जाती हैं। खेती में उन्नति नहीं होती। ज़मींदार के लिए आमदनी का और कोई ज़रिया नहीं। फल यह होता है कि बेचारे कृषक पीसे जाते हैं। जहाँ तक हमें मालूम है, ऐसे कार्य्यों में ज़मींदार के सहायता देने वाले, बल्कि उसे उकसाने वाले, छोटे मनुष्य ही होते हैं, जो सदैव रईस के चारों ओर घिरे रहते हैं और जिनसे उसे कभी छुटकारा नहीं मिलता। यदि ये लोग ज़मींदार को सन्मार्ग पर चलाना चाहें—यदि ये उसे नियम-विरुद्ध कार्य्य न करने की सलाह देते रहें—तो यह कदापि सम्भव नहीं कि कृषि की यह मूलोच्छेदक प्रथा जीती रहे। परन्तु उसके मूलोच्छेद से इन छोटे लोगों की हानि है। फिर भला वे ऐसा क्यों करने लगे। ऐसे स्वार्थी लोग रियासतों में गरोह बाँध कर रहते हैं।

इस कारण उनके दुराचरणों का पता चलाना कठिन हो जाता है। यदि किसी तरह पता चल भी जाता है तो गरोहबन्दी के कारण ज़मींदार किसी कर्मचारी को दण्ड देने में असमर्थ हो जाता है। यदि कदाचित् कोई दुराचारी कर्मचारी निकाल भी दिया गया तो जिस ख़ुशामद की बदौलत वह भरती हुआ था वह उसे फिर भी उसी या अन्य किसी रियासत में जगह दिला देती है। परिणाम यह होता है कि ऐसे दण्ड का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता।

इन सब बातों से हमारा यह मतलब कदापि नहीं कि किसी प्राइवेट रियासत में कोई अच्छा कर्मचारी है ही नहीं, अथवा यह कि कोर्ट के सब नौकर एक से बुद्धिमान् और ईमानदार हैं। नहीं। परन्तु यदि दो ऐसी समकक्ष रियासतों का परस्पर मुकाबला किया जाय जिनमें से एक कोर्ट के इन्तज़ाम में हो और दूसरी उसके बाहर, तो अन्तर साफ़ दिखाई पड़ेगा। हमारा प्रयोजन किसी कर्मचारी की निन्दा से भी नहीं। हम केवल कोर्ट और प्राइवेट रियासतों के प्रबन्ध-सम्बन्धी ख़र्च की समालोचना के द्वारा यह दिखाना चाहते हैं कि छोटी और बड़ी तनख़ाह वाले कर्मचारी रखने का असर रियासत पर क्या पड़ता है। प्राइवेट रियासतें यदि अच्छे कर्मचारी रखना चाहेंगी तो कदाचित् उन्हें कोर्ट से भी अधिक ख़र्च करना होगा।

का वार्षिक मूल्य लाभ के पल्ले को कहीं भारी बना देता।

कोर्ट के प्रबन्ध में हमने दूसरा दोष मुक़द्दमात, बाग़ात और मकानात का सुप्रबन्ध न होना बताया है। परन्तु इससे बहुत ही कम हानि होती है। कोर्ट के प्रबन्ध में लगान वसूल करने वाले लोग विशेष करके पटवारी होते हैं। ये ज़मींदारों और कृषकों के झगड़ाने में अधिक फलीभूत नहीं होते। सरकारी प्रबन्ध होने के कारण पटवारी कुछ डरते भी रहते हैं। इधर कोर्ट आफ़ वार्ड्स अपने मैनेजरों पर मुक़द्दमेबाज़ी न बढ़ने देने के लिए कड़ी निगाह रखती है। उधर अनुचित हक़ न माँगने और दूसरों का हक़ देने में तत्परता न करने से भी मुक़द्दमेबाज़ी घट जाती है। परिणाम यह होता है कि कोर्ट के समय में मुक़द्दमों की संख्या बहुत कम हो जाती है। इससे यह हानि कुछ भारी नहीं होती।

बाग़ किसी रियासत में होते ही कितने हैं। और, मालिक को शौक़ न होने पर प्राइवेट रियासतों में भी उनकी दशा कुछ अच्छी नहीं रहती। बाग़, जैसा कि हम कह आये हैं, शौक़ की चीज़ है। उसके सुप्रबन्ध का सम्बन्ध मालिक के शौक़ पर अवलम्बित रहता है। हाँ, मकानात की दुर्दशा से वारिसों को अवश्य कष्ट होता है और रियासत को हानि भी पहुँचती है। कभी कभी तो मकानात की दशा इतनी बुरी हो जाती है कि ये प्रायः गिरने तक

परलोकवासी बाबू उपेन्द्रकिशोर राय-चौधरी, बी० ए०।
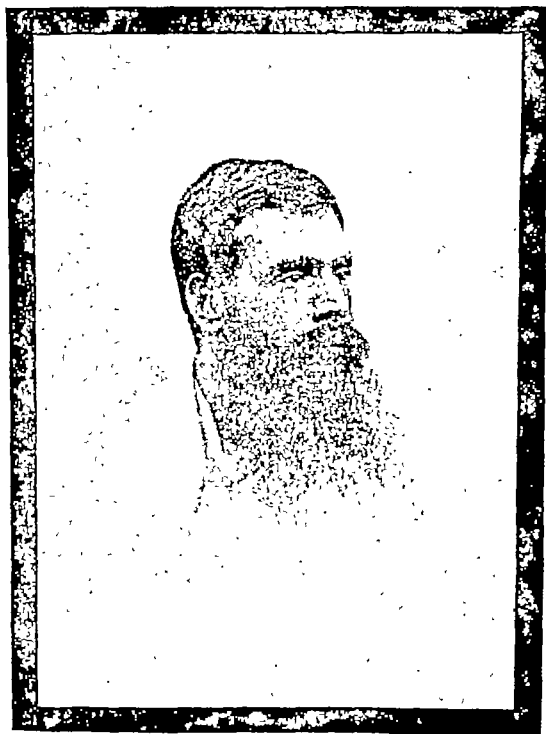
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कोर्ट में रियासत देने से जो लाभ होता है उसे हम यथास्थान दिखा चुके हैं। यहाँ पर हम संक्षेप में उसकी पुनरावृत्ति करते हैं।

(अ) प्रजा का विश्वस्त रहना। समस्त लाभों में हम इसी को प्रथम स्थान देते हैं।

(इ) प्रजा की तन्दुरुस्ती और शिक्षा-प्रचार के प्रबन्ध का उपाय होना।

(उ) निकासी बढ़ जाना।

(क) पड़ती ज़मीन का अधिकता से जुत जाना।

(ख) कुवें, सड़कें, बाँध, तालाब आदि का बहुतायत से बनाना।

(ग) नये ढँग की कृषि का अधिक प्रचार होना।

(घ) मुक़द्दमों का घट जाना।

(च) नज़राने की बुरी प्रथा का बन्द होना।

(छ) बेगार घट जाना। अपने हक़ जान जाने से प्रजा स्वयं बेगार नहीं करती।

(ज) ऋणी रियासतों में ब्याज की दर घट जाना।

यदि इन सब बातों का फिर से सविस्तर वर्णन किया जाय और प्रत्येक के उदाहरण दिये जायँ तो लेख बहुत बढ़ जाने का भय है। अतएव हम केवल यही कह कर मौन-धारण करते हैं कि (उ) और (ज) ही के आर्थिक मूल्य से बटी की तुलना की जाय तो लाभ ही कहीं अधिक निकलेगा। प्राइवेट रियासतों में ब्याज की दर ९) से लेकर १८) सैकड़े तक, मामूली दशा में, और २४) से ४८) सैकड़े मासिक चक्र-वृद्धि तक, बिगड़ी दशा में, देखी जाती है। यदि मामूली दशा के ब्याज का औसत लिया जाय तो १३॥) सैकड़ा होता है। परन्तु हम केवल १२) सैकड़ा माने लेते हैं। कोर्ट का ऋण कहीं कहीं ४॥) सैकड़ा—अधिक से अधिक ५) सैकड़ा—और एक आध जगह ६) सैकड़े पर है। इस तरह ब्याज ही की कमी ६) सैकड़े हुई। निकासी की वृद्धि भी २) सैकड़े से कम नहीं हो सकती।

इन सब बातों पर विचार करके हमको यह कहते कुछ भी सङ्कोच नहीं कि कोर्ट में रियासत देने से हानि की अपेक्षा लाभ ही अधिक होता है। ऋणी रियासतों को तो बहुत ही लाभ है। इस स्थल पर यदि हम एक उदाहरण देकर अपने कथन को स्पष्ट करें तो कदाचित् अनुचित न होगा। अतएव इस थोड़े से विस्तार को पाठक क्षमा करेंगे।

मान लीजिए कि एक ऐसी रियासत कोर्ट में आई जिसकी आमदनी एक लाख रुपया साल है। उसे ४५,००० रुपया मालगुज़ारी देनी पड़ती है, और ५५,००० रुपये की बचत रहती है। उस पर तीन लाख रुपया ऋण है। अधिकतर इससे भी बुरी दशा को पहुँची हुई रियासतें कोर्ट में आती हैं। अच्छा देखिए—

बजट।

आमदनी		खर्च
एक लाख रुपया	मालगुज़ारी	४५,००० रुपया
	प्रबन्ध का खर्च	८,५०० ,,
	गुज़ारा	९,००० ,,
	मकानात, कुवे, तालाब आदि का खर्च	४,००० ,,
	चन्दे	१,५०० ,,
	मुक़द्दमात का खर्च	१,५०० ,,
	फुटकर खर्च	५०० ,,
	टोटल	७०,०००

इस तरह आमदनी में से ३०,००० रुपया साल ऋण चुका कर रियासत १४ वर्ष में उऋण हो जायगी; और, उस समय वह कोर्ट से छोड़ दी जायगी।

इस हिसाब में ३॥) सैकड़ा कोर्ट के प्रबन्ध में अधिक खर्च हुआ। अतएव हानि ३,५०० रुपया साल, अर्थात् कुल ५२,५०० रुपये की हुई। मका-

मात और बाग़ात की हानि का आर्थिक मूल्य हमने ॥) सैकड़ा रक्खा है। वह ५०० रुपया साल अर्थात् कुल ७,५०० रुपया हुआ।

(क) इस प्रकार सारी हानि का टोटल ६० हज़ार रुपया हुआ। पर यदि और सब लाभ छोड़ दिये जायँ, एकमात्र ब्याज का हिसाब देखा जाय, तो उसकी कमी ही, ६) सैकड़े के हिसाब से, १५ वर्ष में, हुई—	१,५०,००० रुपया
(ख) बाँध आदि के बन जाने से रियासत की हैसियत में वृद्धि यदि ३,००० रुपया साल रक्खी जाय (और ऐसे कामों में इससे अधिक ख़र्च नहीं होता) तब भी हुआ— यद्यपि ख़र्च से आमदनी कहीं अधिक होती है—कम से कम १५ गुना तो अधिक अवश्य होनी चाहिए।	४५,००० ,,
(ग) निकासी की वृद्धि भी हम केवल— मान लेते हैं, यद्यपि यह वृद्धि इससे कहीं अधिक होती है।	१५,००० रुपया

इस प्रकार—कुल लाभ हुआ २,१०,००० रुपया

इस ब्यौरे में हमने उन सामाजिक, मानसिक और व्यावहारिक लाभों का कुछ भी आर्थिक मूल्य नहीं रक्खा जिनका वर्णन हम ऊपर कर आये हैं और जिनको हम सबसे अधिक मूल्यवान् समझते हैं।

अतएव हमारी सम्मति है कि देश की वर्तमान दशा में कोर्ट में रियासत देने से हानि की अपेक्षा लाभ ही विशेष होता है और अन्य रियासतों के मुक़ाबले में अपनी रियासतों के लाभ की मात्रा तो और भी अधिक होती है।

"अमित"

ओले की कहानी।

(बालकों के लिए)

१—एक सफ़ेद बड़ा सा ओला
था मानों हीरे का गोला।
हरी घास पर पड़ा हुआ था,
वहीं पास मैं खड़ा हुआ था।

२—मैंने पूछा क्या है भाई,
तब उसने यों कथा सुनाई—
जो मैं अपना हाल बताऊँ,
कहने में भी लज्जा पाऊँ।

३—पर मैं तुम्हें सुनाऊँगा सब,
कुछ भी नहीं छिपाऊँगा अब।
जो मेरा इतिहास सुनेंगे,
वे इससे कुछ सार चुनेंगे।

४—यद्यपि न मैं अब रहा कहीं का,
वासी हूँ मैं किन्तु यहीं का।
सूरत मेरी बदल गई है,
दीन दशा यह तुम्हें नई है।

५—मुझ में आई-भाव था इतना,
अब मैं हो सकता हूँ जितना।
मैं मोती जैसा निर्मल था,
तरल, किन्तु अत्यन्त सरल था।

६—एक रोज़ जब गरमी थी,
मेरे पास धूप आती थी।
रवि ने अपना हाथ बढ़ाया,
और गगन में मुझे चढ़ाया।

७—अवलम्ब देकर मैं रवि को,
लगा देखने नभ की छवि को।
सुर-गण मुझे देखने आये,
दिव्य मनाई गये बजाये।

८—मैं चुप था, किससे क्या कहता ?
किन्तु उच्च पद में मद रहता ।
भूतल से मैं उठा गगन में,
गर्व हुआ यों मेरे मन में ।

९—मिटा मार्ग-श्रम इससे मेरा,
मुझे मूर्खता ने था घेरा ।
सब देवों ने कहा वहाँ पर—
धूरों का क्या काम यहाँ पर ?

१०—दे कर मुझे पैर का झटका,
पवन-देव ने नीचे पटका ।
पड़ा पड़ा अब पछताता हूँ,
अपने आप घुला जाता हूँ ।

मैथिलीशरण गुप्त ।

हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा और हिन्दी ।
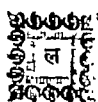
लगभग पन्द्रह वर्ष से हम लोग यह सुन रहे हैं कि हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय कार्यों के लिए एक राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता है और यह साधन बनने के योग्य केवल हिन्दी ही है। सभाओं और समाजों में इस विषय के मन्तव्य पास होते हैं, व्याख्यानों में इस पर प्रमाण दिये जाते हैं, और समाचार-पत्रों में इसकी समालोचनायें होती हैं ; तो भी इन सब बातों का अभिप्राय क्या है, सो ठीक ठीक समझ में नहीं आता ।

यदि इस आन्दोलन का यह उद्देश है कि चारों धाम के लोग देश की एक प्राचीन भाषा को पढ़ कर उसकी उन्नति करें तो यह बात असम्भव है, क्योंकि जो लोग हिन्दी के सहारे अपना पेट पालते हैं वही जब अपनी मातृ-भाषा के सामने इसे पढ़ने की परवा नहीं करते, तब फिर जिन लोगों का इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं वे ऐसी अनुदारता का काम क्यों न करेंगे ? यह बात उनकी समझ में ही नहीं आ सकती कि हम अपनी मातृ-भाषा की उन्नति छोड़ कर दूसरी भाषा की उन्नति क्यों करें ? और यदि इस आन्दोलन का यह उद्देश है कि हिन्दुस्तान के जो लोग अँगरेज़ी नहीं जानते वे हिन्दी पढ़ कर एक दूसरे से बात चीत करने का सुभीता प्राप्त करलें, तो इसके लिए किसी आन्दोलन की आवश्यकता नहीं है ; क्योंकि लोग परिस्थिति के अनुसार इस भाषा का थोड़ा बहुत ज्ञान आपही कर लेते हैं ।

इस लेख में हम इस विषय पर विचार नहीं करते कि भारतवर्ष की राष्ट्र-भाषा होने के योग्य हिन्दी है अथवा इसकी प्रतियोगिनी उर्दू, क्योंकि इस बात का विचार कई स्थानों में, कई दृष्टियों से, और कई युक्तियों के द्वारा, हो चुका है, और सब बातों का सार यही निकला है कि हिन्दी ही राष्ट्र-भाषा होने की योग्यता रखती है। हमें केवल यह विचार करना है कि राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता क्यों है और हिन्दी किन किन उपायों से राष्ट्र-भाषा हो सकती है ?

राष्ट्र-भाषा का मुख्य उद्देश, हमारी समझ में, यह हो सकता है कि हिन्दुस्तान के भिन्न भिन्न प्रदेशों के लोग इसके द्वारा उन बातों को जानें जिनका जानना उन्हें आवश्यक है और जिन्हें वे अँगरेज़ी न जानने के कारण नहीं समझ सकते । हम अँगरेज़ी का नाम इस लिए लेते हैं कि हिन्दुस्तान में आज कल यही राष्ट्र-भाषा हो रही है ; पर इस भाषा से केवल थोड़े ही लोगों का काम निकलता है। किसानों और दूकानदारों की बात जाने दीजिए, इस देश में ऐसे भी कई लोग हैं जो अँगरेज़ी न जान कर भी राष्ट्रीय गहन विषयों पर अपनी सम्मति दे सकते हैं और जिनके मत का प्रभाव सर्व-साधारण पर पड़ता है। ऐसे लोग अपनी अँगरेज़ी-हीनता के कारण राष्ट्रीय सभाओं में आते ही नहीं और यदि दैवयोग से पहुँच जाते हैं तो मूर्तिवत् मौन-धारण किये बैठे रहते

हैं। ये लोग इस प्रकार के हैं कि इनसे सुधारकों का कभी न कभी काम पड़ता ही है और जब ये एक दूसरे की भाषा ही नहीं समझते तब उनमें परस्पर सहानुभूति और सहायता कैसे हो सकती है और बिना इन गुणों के कार्य में सफलता होना कैसे सम्भव है?

राष्ट्र-भाषा का दूसरा उद्देश यह हो सकता है कि यदि किसी सम्प्रदाय के लोग अपने विचारों का विस्तार दूसरे सम्प्रदाय के लोगों में करना चाहें तो वे अपनी प्रान्तीय भाषा के बदले राष्ट्र-भाषा का उपयोग करके अपने इष्ट की सिद्धि करें।

राष्ट्र-भाषा के ये दो उद्देश विचारणीय हैं, और यदि इनमें किसी को कोई विरोध नहीं है तो राष्ट्र-भाषा की आवश्यकता सिद्ध है। और, उसके साथ यह भी गृहीत है कि राष्ट्र-भाषा और भी कई उपयोगी कार्यों का साधन कर सकती है।

राष्ट्र-भाषा में जिन गुणों का प्रयोजन है वे हिन्दी में पाये जाते हैं और इसकी उपयोगिता तथा व्यापकता के विषय में कुछ लोगों को छोड़ कर और किसी को भ्रम नहीं है, इस लिए अब हमें केवल इस बात का विचार करना चाहिए कि वे कौन कौन से उपाय हैं जिनके द्वारा हमारा यह पन्द्रह बरस का पुराना मनोरथ सहज ही और शीघ्र ही सिद्ध हो सकता है।

अभी तक गणित या मनोविज्ञान का ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं निकला है जिससे यह जान पड़े कि किसी कार्य के विचार में और उसके सम्पादन में समय का कितना अन्तर पड़ता है। कभी कभी तो विचार और कार्य एकही साथ हो जाते हैं, और कभी कभी उन दोनों में सैकड़ों बरसों का अन्तर पड़ जाता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि पूरा विचार ही नहीं किया जाता और कार्य का आरम्भ अथवा सम्पादन हो जाता है, और कभी कभी यह भी होता है कि सदा विचार ही होता रहता है, कार्य कभी होता ही नहीं। संसार में विचार और कार्य के इन सम्बन्धों के असंख्य उदाहरण पाये जाते हैं, इस लिए यह कहना कठिन है कि जिन उपायों का वर्णन यहाँ किया जाता है वे कार्य-सिद्धि में कहाँ तक सहायक होंगे।

कई एक क्रियावान् पुरुषों ने विचारों को कार्य में परिणत करने के लिए स्वयं हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया है, कई एकों ने प्रान्तीय राष्ट्रीय सभाओं में अपने व्याख्यान हिन्दी में दिये हैं, और महाराज बड़ोदा ने आवश्यक काग़ज़-पत्रों के लिए गुजराती के बदले नागरी-लिपि के प्रयोग की आज्ञा जारी की है। पर इन उपायों के सिवा और कहीं कोई उद्योग न तो दिखाई देती है और न सुनाई देती है। इस लिए अब यदि इस विषय में सफलता अभीष्ट है तो उसके लिए आज ही से शाब्दिक प्रयत्न के बदले व्यावहारिक प्रयत्न करना उचित है।

इस काम के लिए प्रथम उपाय यह है कि हमारे अगुआ लोग अपने अँगरेज़ी विचारों को राष्ट्र-भाषा में सोच कर हिन्दी में प्रकट करें। इससे उनके विचार दुहराये जाने पर और भी पक्के हो जायँगे और अँगरेज़ी शब्द-जाल से निकल कर स्वच्छता का रूप धारण करेंगे। जो लोग यह समझते हैं कि "हरक्यूलियन टास्क*" की कल्पना देशी भाषा जानने वालों को नहीं है वे उनके "भगीरथ-प्रयत्न" का विचार करें और फिर उन्हें यह बात उन्हीं की भाषा में समझायें। ऐसा ही काम गत दिसम्बर में माननीय मालवीयजी ने श्रोताओं के अनुरोध से बम्बई में किया है। इस उपाय से हमारे अगुए लोगों के व्याख्यानों पर दस हज़ार के बदले दस लाख तालियाँ बजेंगी।

दूसरा उपाय यह है कि सुधारक लोग हिन्दी के समाचार-पत्रों के विषय में अपना यह हठ-धर्म छोड़ दें कि उनमें पढ़ने योग्य कोई बात नहीं रहती।

* Herculean Task.

मीपक्षासुर की ठठरी।
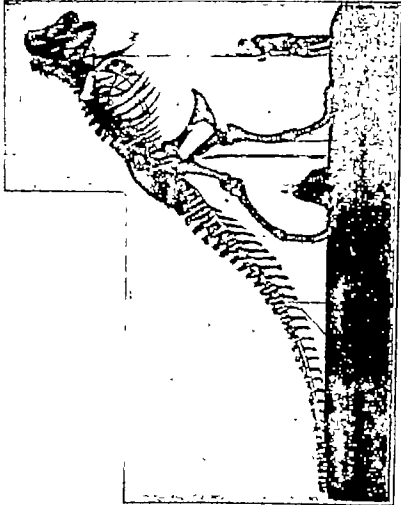
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

जानने पर भी हिन्दी में पत्र लिखने और सम्भाषण करने में अपमान मानते हैं।

इस विषय में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के दो मुख्य कर्तव्य हैं। एक तो उसे भिन्न भिन्न देशी भाषाओं के साहित्य-सम्मेलनों में अपने एक दो प्रतिनिधि भेजने का प्रबन्ध करना चाहिए, जो वहाँ जा कर हिन्दी में साहित्य-विषयों पर व्याख्यान दें। दूसरे, उसे अपनी परीक्षाओं में ऐसे परीक्षार्थियों को भी लेने का विशेष उद्योग करना चाहिए जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। इसके सिवा साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन उन स्थानों में भी करने की आवश्यकता है जहाँ हिन्दी नहीं बोली जाती।

इन सब उपायों से हम वही काम करेंगे जिसकी आशा हमें हिन्दी-नायक भारतेन्दुजी, अपने दूरदर्शी वचनों में, तीस वर्ष पहले, दे गये हैं—

प्रचलित करहु जहान में, निज भाषा करि यत्न।
राज-काज, दरबार में, फैलावहु यह रत्न॥

कामताप्रसाद गुरु।

अद्भुत आक्षेप।

१—चित्त में क्यों समुत्साह लाते नहीं ?
मोह को छोड़ क्यों दूर जाते नहीं ?
शिल्प-वाणिज्य में जी लगाते नहीं—
हो इसीसे कभी ऐक्य पाते नहीं।
वीर्य चारित्र के भार ढोते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

२—बालकों को न शिक्षा दिलाओ कभी,
भूखे हो, भूख की मार खाओ कभी।
धर्म के मर्म सारे बताओ कभी,
एक को दूसरे से लड़ाओ कभी।
लोक में फूट के बीज बोते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

३—नाम लेते नहीं हो कभी राम का,
दाम दे, मोल लो भोगते काम का।
जीते से हो गये, भग्न हो रोग से,
छोड़ते हो नहीं दैव के योग से।
शोक से व्यग्र हो नित्य रोते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

४—आज भी होश में आप आते नहीं,
बोलिए, कौन सन्ताप पाते नहीं ?
मूढ़ ! मानो, भयों से बचाते नहीं,
कीर्ति के काम हो किन्तु ! भाते नहीं।
दुर्गुणों के सदा पाप ढोते रहो;
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

५—दूर क्यों भागते हो भले कर्म से ?
क्यों घृणा हो गई है तुम्हें धर्म से ?
शून्य हो हो गये नीति के मर्म से,
शीश तो भी झुका है नहीं शर्म से।
ताप-सन्ताप से नित्य रोते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

६—ज्ञान से, मान से, शक्ति से, हीन हो,
दान से, ध्यान से, भक्ति से, हीन हो।
आलसी भी सदा मूढ़ ! प्राचीन हो,
सोच देखो, सभी से तुम्हीं हीन हो।
मुँह को आँसुओं से भिगोते रहो,
क्यों जगोगे कभी देश ! सोते रहो॥

७—क्या बचा है ? सभी ऐक्य जाते रहे,
क्या मिला ? दुःख ही दुःख पाते रहे।
सीखने क्या लगे ? क्या सिखाते रहे,
मूढ़ ! सूझा नहीं जो सुझाते रहे।
हो अभागे, स्वयं मान खोते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

८—जो न माने उसे है मनाना वृथा,
जो न जागे उसे है जगाना वृथा।
मन्त्र अच्छा तुम्हें है बताना वृथा,
काल को है तुम्हें जो गंवाना वृथा।
नित्य ही हाय ! हैरान होते रहो,
क्यों जगोगे, कभी देश ! सोते रहो॥

रामचरित उपाध्याय।

भाषा की परिवर्त्तनशीलता।

हर जीवित या प्रचलित भाषा में सदा परिवर्तन होता रहता है। जो भाषा एक हज़ार वर्ष पहले बोली या लिखी जाती थी वह पाँच सौ वर्ष पहले की भाषा से भिन्न है, जो पाँच सौ वर्ष पहले की भाषा है वह सौ वर्ष पहले की भाषा से भिन्न है। ग्रैार कहाँ तक कहा जाय, दस वर्ष पहले की भाषा ग्रैार आज कल की भाषा में भी अन्तर दिखलाई पड़ता है। हिन्दी भाषा ही के सम्बन्ध में पाठक इस बात का अनुभव कर सकते हैं। चन्द की भाषा से जायसी की भाषा, जायसी की भाषा से सूर-तुलसी आदि की भाषा, सूर-तुलसी आदि की भाषा से लल्लूलालजी की भाषा, लल्लूलाल जी की भाषा से बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा, हरिश्चन्द्र की भाषा से आज कल की भाषा में कितना अन्तर है। यदि चन्द की भाषा से हम आज कल की भाषा का मुक़ाबला करें तो चन्द की भाषा हमारे लिए वैसी ही मालूम पड़ेगी जैसी ग्रीक या लैटिन। भाषा की इस परिवर्तनशीलता का दूसरा नाम भाषा का जीवन है। कोई भाषा तभी तक ज़िन्दा रहती है जब तक उसमें परिवर्तन होता रहता है। जहाँ परिवर्तन होना बन्द हुआ कि भाषा "डेड" (Dead) या मुर्दा हो गई। संस्कृत मुर्दा भाषा क्यों कही जाती है? इसी लिए कि उसमें परिवर्तन होना बन्द हो गया है। वह पाणिनि के सूत्रों से जकड़ दी गई है। किसी भाषा में कभी कभी तो बहुत जल्द ग्रैार बहुत अधिक परिवर्तन होता रहता है ग्रैार कभी कभी बहुत धीरे धीरे ग्रैार बहुत ही कम परिवर्तन होता है। भाषा में परिवर्तन क्यों होता है ग्रैार किन नियमों पर होता है, इस लेख में इसी पर विचार किया जायगा।

मान लीजिए, कोई मनुष्य "गाँव के अन्दर"—इस भाव को संस्कृत में प्रकट करना चाहता है। संस्कृत में वह "गाँव" के लिए "ग्राम" शब्द पाता है ग्रैार "अन्दर" के लिए "मध्य" शब्द। इन दोनों शब्दों को जोड़ने से "ग्राममध्य"—ऐसा शब्द बनता है। वे मनुष्य जिन्हें शब्दों के ठीक उच्चारण करने की शिक्षा नहीं मिली या जो शब्दों का उच्चारण करने में बड़े लापरवाह हैं, "ग्राम" शब्द को "गाम" उच्चारण करेंगे। फिर यही "गाम" शब्द बिगड़ते बिगड़ते "गाँव" हो जायगा। इसी तरह "मध्य" शब्द भी ऐसे लोगों के हाथ में पड़ कर "मद्ध" हो गया। "मद्ध" से "माध," "माध" से "मह" ग्रैार अन्ततो-गत्वा "में" बन गया। यही "में" हिन्दी में सप्तमी विभक्ति का चिन्ह है। इस अवस्था में "में" विभक्ति की उत्पत्ति कैसे हुई, इस बात को जानने के लिए साधारणतया उस भाषा के बोलने वालों को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके लिए "में" सिर्फ़ एक विभक्ति का चिन्ह है, जिससे "अन्दर" का अर्थ प्रकट होता है। दूसरा शब्द लीजिए। यदि कोई मनुष्य "घड़ा बनाने वाला" इस भाव को शब्द द्वारा प्रकट करना चाहे ग्रैार यदि उसे इस भाव को प्रकट करने के लिए एक शब्द न मिले तो वह लाचार होकर इस भाव को "कुम्भ" घड़ा ग्रैार "कार" बनानेवाला—इन दो शब्दों को एकत्र करके "कुम्भकार"—इस समस्त-शब्द द्वारा प्रकट करेगा। कुछ समय बाद अशुद्ध उच्चारण से, "कार" के "क्" का लोप हो जाता है। तब "कुंभार" ग्रैार "कुंभार" से "कुम्हार" शब्द बनता है। पहले शब्द की तरह इसमें भी, वे लोग जो "कुम्हार" शब्द का प्रयोग करते हैं, इस बात को बिलकुल भूल जाते हैं कि वास्तव में वे समस्त-रूप में दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, जिनमें से एक "कुम्भ" ग्रैार दूसरा "कार" है। उनके लिए "आर" केवल एक प्रत्यय मात्र है, जिसका अर्थ वे "करने वाला" समझते हैं।

अब हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि हिन्दी के ये दोनों प्रत्यय "में" और "आर" आदि में स्वतन्त्र शब्द थे। समय के प्रवाह में पड़ कर बिगड़ते बिगड़ते उनका ऐसा रूप हो गया है। आप किसी भाषा के भी सुबन्त और तिङन्त प्रत्ययों को ध्यान-पूर्वक देखें तो आपको पता लगेगा कि ये सभी इसी तरह उत्पन्न हुए हैं। वैदिक काल के आर्यों ने "मैं अब (अर्थात् वर्तमान काल में) करता" हूँ—इस भाव को प्रकट करने के लिए "कृ" करना, "नु" अब, "मि" मैं, इन तीन शब्दों का एक साथ प्रयोग किया था। यही "कृनुमि" (मैं करता हूँ) बाद को "कृणोमि" के रूप में बदल गया। इसी तरह कृ+ओ+ति (वह) अर्थात् "वह करता है" और कृ+ओ+षि (तुम) अर्थात् "तुम करते हो" बना। इस प्रकार से हम बहुत से प्रत्ययों और शब्दों के आदि रूप का पता लगा सकते हैं। किन्तु अब उनका इतना अपभ्रंश हो गया है कि सभी के विषय में खोज करना असम्भव सा हो गया है। यद्यपि हम तिरस्कारपूर्वक ऐसे शब्दों को "अपभ्रष्ट" या बिगड़े हुए शब्द कहते हैं, तथापि वास्तव में देखा जाय तो किसी भाषा की स्वाधीनता और विकाश अथवा वृद्धि ऐसे ही अपभ्रष्ट शब्दों से होती है।

अब हमें यहाँ पर उन कारणों पर विचार करना है जिनसे भाषा में परिवर्तन होता रहता है। भाषा के परिवर्तन का मूल कारण मानुषी प्रकृति है। भाषा मनुष्य के जीवन का स्वयं उद्देश नहीं है। वह केवल दूसरों के सामने विचारों को प्रकट करने का ज़रिया मात्र है। मनुष्य हमेशा उस भाषा की अपेक्षा, जिसमें विचार प्रकट किये जाते हैं, विचार के विषय को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। शब्दों का उच्चारण करने में मनुष्य को कुछ शक्ति खर्च करनी पड़ती है। मुख के भीतर श्वास-नालिका के द्वारा हमें श्वास-प्रेरण करना पड़ता है, भिन्न भिन्न स्थानों पर कभी श्वास को रोकना पड़ता है, कभी बन्द करना पड़ता है, तब उसे बाहर निकालना पड़ता है। मुख के भीतर जिह्वामूल, जिह्वा, कण्ठ, तालु आदि भिन्न भिन्न स्थान हैं, जिनके द्वारा हम अनेक प्रकार की ध्वनियाँ कर सकते हैं। मुख के भीतर इन अवयवों के द्वारा हमें श्वास को रोकना पड़ता है। इसमें हमें प्रयत्न करने की आवश्यकता है। जब हम श्वास को गोलाकार ओष्ठ के द्वारा बाहर निकालते हैं तब "उ" का उच्चारण होता है और जब हम नीचे के ओष्ठ को थोड़ा हटाकर श्वास बाहर फेंकते हैं तब "ओ" का उच्चारण होता है। जब हम दोनों ओठों को बिलकुल बन्द करके फिर श्वास को निकालते हैं तब "प" का उच्चारण होता है। जब ओठ बन्द करने के बाद ज़रा ज़ोर से श्वास फेंकते हैं तब "फ" का उच्चारण होता है और जब कुछ श्वास नाक के द्वारा और कुछ मुख के द्वारा फेंकते हैं तब "म" का उच्चारण होता है—इत्यादि। इन्हीं उदाहरणों से पता लग जाता है कि उच्चारण करने में भी सूक्ष्म-दर्शिता और परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है। संयुक्त अक्षरों का उच्चारण करने में तो इससे और भी आवश्यकता है। किन्तु केवल परिश्रम के लिए व्यर्थ परिश्रम करना मनुष्य की प्रकृति के विरुद्ध है। मनुष्य हमेशा परिश्रम से भागता है। वह केवल उतना ही परिश्रम करना चाहता है जिससे उसका काम निकल जाय। अक्षरों के उच्चारण करने में भी यही नियम हम पाते हैं। यह मनुष्य की प्रकृति है कि वह उच्चारण करने में उतना ही प्रयत्न करे जिससे उसके विचार या भाव दूसरे समझ सकें। इसी कारण "मुख" का "मुँह" हो गया अर्थात् "ख" का उच्चारण करने में जितनी श्वास फेंकने की आवश्यकता थी उतनी तो "ह" के उच्चारण में फेंक दी गई। किन्तु "ख" का उच्चारण करने में जिह्वा को जो तालु से मिलाना पड़ता था और उसमें जो यत्न करना पड़ता था वह "ह" के उच्चारण में बच गया। इसी तरह "स्वर्ण" का "स्वर्ण

हो गया। इस उदाहरण में हम देखते हैं कि दो भिन्न भिन्न व्यञ्जनों का उच्चारण करने में जो परिश्रम करना पड़ता था वह एक ही प्रकार के दो व्यञ्जनों का साथ साथ उच्चारण करने से कम हो गया। बाद को "सप्प" से "साँप" होगया, जिससे दो व्यञ्जनों का उच्चारण करने में जो ज़ोर लगाना पड़ता था वह कम हो गया। शब्दों को बिगाड़ कर उच्चारण करने की यह मानुषिक प्रवृत्ति यदि रोकी न जाय तो कुछ ही पीढ़ी बाद भाषा इतनी बदल जाय कि पहली पीढ़ी के मनुष्यों के सामने वह भाषा रक्खी जाय तो वे उसे बिलकुल न समझ सकें। बालक प्रारम्भ में शब्दों का बहुधा अशुद्ध उच्चारण करते हैं, और यदि उन्हें शुद्ध उच्चारण करना न सिखाया जाय और उच्चारण करने में उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे दी जाय तो वे देश की भाषा को कुछ ही दिनों में बहुत अधिक बदल दें। किन्तु घर में और स्कूल में उन्हें शुद्ध उच्चारण करने की ऐसी शिक्षा दी जाती है जिससे उक्त बात का डर नहीं रहता। अतएव शिक्षा एक ऐसी शक्ति है जो शब्द को अधिक बिगड़ने से रोकती है।

दूसरी बात जो भाषा को अपभ्रष्ट होने से रोकती है वह मनुष्यों की आवश्यकता है। मनुष्य को इस बात की परम आवश्यकता है कि वह अपने विचारों और भावों को दूसरों को समझा सके। अतएव उसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि वह वैसी ही भाषा बोले जैसी कि दूसरे बोलते हैं। नहीं तो उसे दूसरा न समझ सकेगा। समाज भी अपभ्रष्ट भाषा के सर्वदा विरुद्ध रहती है। वह भाषा जो परिमार्जित और शिष्ट लोगों में प्रचलित नहीं है, समाज में असभ्य और गवाँरू भाषा समझी जाती है। जब किसी भाषा में साहित्य हो जाता है तब उस भाषा के अपभ्रष्ट होने का उतना डर नहीं रहता। किन्तु साहित्य रहने पर भी कभी कभी ऐसी घटनायें हो जाती हैं जिससे उस भाषा के शब्दों और मुहाविरों में बहुत कुछ रद्दोबदल हो जाता है। यदि एक जाति का सम्बन्ध दूसरी जाति के साथ हो जाता है और यदि उनमें से एक दूसरे की भाषा का व्यवहार करने लगती है तो वह भाषा बहुत अधिक अपभ्रष्ट हो जाती है। यदि हमारे लिए अँगरेज़ी सीखने के लिए स्कूल और कालेज न हों तो हम लोग अपने शासकों की भाषा को इतना अपभ्रष्ट कर डालें कि वह एक विचित्र भाषा बन जाय। हिन्दुस्तानी सन्तरी की यह बोली "हुकुम् डर्" (Who comes there) इस तरह की भाषा का अच्छा उदाहरण है।

एक और अद्भुत बात, जो हम भाषा के अपभ्रंश-सम्बन्ध में पाते हैं, "मिथ्या सादृश्य" है। संस्कृत में "श्रु" धातु को सिर्फ़ वर्तमान, आज्ञा, अनद्यतनभूत और विधिलिङ् इन चार लकारों में "नु" का आगम होता है, और इस धातु का रूप क्रम से इन चार लकारों में शृणोति, शृणोतु, अशृणोत् और शृणुयात् होता है। कुछ समय के अनन्तर लोग इस बात को बिलकुल भूल गये कि "नु" का आगम "श्रु" धातु में केवल इन चार ही लकारों में होता है। वे "नु" का आगम दूसरे लकारों और अन्य प्रत्ययों के साथ भी करने लगे। इस तरह पाली और प्राकृत में "श्रु" के स्थान पर "सुण = शृणु" स्वयं एक धातु बन गया। हिन्दी में "सुनना" धातु इसी पाली "सुण" का अपभ्रंश है। इसी प्रकार "कृ" का "किण", "ज्ञा" का "जाण" और "बुध्" का "बुज्झ" हो गया। बँगला का "कीनना" हिन्दी का "जानना" और "बूझना" क्रमशः इन्हीं पाली रूपों का अपभ्रंश है। पाली और प्राकृत इस तरह के मिथ्या सादृश्यों से भरी हुई हैं। इस मिथ्या सादृश्य का उद्देश शब्द के भिन्न भिन्न रूपों में और भाषा के भिन्न भिन्न शब्दों में से भिन्नता को दूर करके तथा भिन्न भिन्न रूपों और शब्दों में किसी प्रकार का सादृश्य पैदा करके, भाषा को

सरल बनाना है। इस मिथ्या सादृश्य का कारण भी मनुष्य मात्र को व्यर्थ परिश्रम से बचने का यही स्वाभाविक झुकाव है।

अब तक हमने केवल भाषा के व्याकरण-सम्बन्धी अपभ्रंश पर विचार किया। अब हम भाषा में वस्तुओं के नाम किस नियम पर रक्खे जाते हैं और उनके अपभ्रंश हो जाने पर अपभ्रष्ट रूप क्या अर्थ प्रकट करते हैं—इस पर विचार करेंगे। वस्तुओं के नाम बिना किसी नियम के नहीं रख लिये जाते। उनके नाम चुनने में मनुष्य स्वेच्छाचार से काम नहीं लेता। वह अवश्य किसी न किसी नियम का पालन करता है। बहुधा वस्तुओं के नाम उस गुण के बतलाने वाले होते हैं जो उनमें ख़ास तौर पर पाया जाता है। उदाहरण के लिए "पृथ्वी" उसे कहते हैं जो विस्तीर्ण हो, "भानु" वह है जो प्रकाशमान हो, "उदन्वान्" वह है जिसमें जल हो, और "पितृ" वह है जो रक्षा करे। किन्तु आप देख सकते हैं कि ये नाम वस्तुओं के निर्दोष और न्याय-सम्मत लक्षण नहीं हैं, क्योंकि इन सब नामों में अतिव्याप्ति का दोष वर्तमान है। केवल "पृथ्वी" ही विस्तीर्ण नहीं है, केवल "सूर्य" ही प्रकाशमान नहीं है और केवल "पितृ" ही रक्षा करनेवाला नहीं है। किन्तु, तब भी, इन वस्तुओं में ये गुण प्रधानतया विद्यमान हैं। इसी कारण ये नाम केवल इन वस्तुओं के वाचक समझे जाते हैं। इस तरह जो शब्द वास्तव में सामान्यवाचक है वह विशेषवाचक बन गया। यह क्रम केवल नये नामों का आविष्कार करने में ही नहीं, किन्तु प्रचलित नामों के अर्थ को सङ्कुचित करने में भी सदा काम करता है। यहाँ पर हम कुछ उदाहरण ऐसे देते हैं जिनसे पाठकों को पता लगेगा कि प्रचलित नामों के अर्थ सङ्कुचित होकर किस तरह अन्य वस्तुओं के वाचक हो गये। संस्कृत में "गर्भिणी" शब्द का अर्थ है—"वह स्त्री जो गर्भवती हो"। किन्तु, हिन्दी में उसका अपभ्रष्ट रूप "गाभिन" केवल गौ आदि पशुओं के लिए व्यवहार किया जाता है। संस्कृत में "हृदय" का अर्थ दिल है, किन्तु उसके अपभ्रष्ट रूप "हियाव" का अर्थ केवल हिम्मत है, जो हृदय का एक गुण मात्र है। संस्कृत में "चेटक" का अर्थ सेवक है, किन्तु उसके अपभ्रंश हिन्दी-शब्द "चेला" का अर्थ केवल शिष्य है। इसके विपरीत एक प्रणाली ऐसी भी है जिससे विशेषवाचक शब्द सामान्यवाचक बना लिये जाते हैं। इस तरह का शब्द "गवेष्" धातु है, जिसका अर्थ पहले में "गौ को ढूँढ़ना" था। किन्तु बाद को इसका अर्थ केवल "ढूँढ़ना" हो गया। कभी कभी एक शब्द के दो अपभ्रष्ट रूप बन जाते हैं और दोनों के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। इस तरह संस्कृत-शब्द "वृद्ध" के दो अपभ्रष्ट रूप बनते हैं—एक "बुड्ढा" और दूसरा "बड़ा"। इन दोनों के अर्थ भिन्न भिन्न हैं।

एक और विचित्र बात हम भाषा के अपभ्रंश और परिवर्तन के सम्बन्ध में देखते हैं। वह बहुत से शब्दों का क्रम क्रम से लोप होना है। ज्यों ज्यों मनुष्यों की ज्ञान-शक्ति और सभ्यता बढ़ती जाती है, नये नये विचार और नये नये भाव मनुष्यों के हृदयों में उदय होते जाते हैं और पुराने विचार हृदय से दूर होते जाते हैं। जब शब्द के द्वारा ये नये विचार प्रकट किये जाते हैं तब उन नये विचारों को प्रकट करने के लिए नये नये शब्द प्रयुक्त होते हैं और पुराने दूर हो जाते हैं। चन्द के समय से अब तक हिन्दी-भाषा में जो परिवर्तन हुए हैं उनसे इस बात की पूरी पुष्टि होती है। भाषा के बहुत से शब्दों के क्रम क्रम से लोप होने के और भी कारण हैं। कभी कभी जब राजनैतिक या धार्मिक कारणों से किसी भाषा को अधिक महत्त्व प्राप्त होता है तब बहुत से शब्द उस भाषा के ले लिये जाते हैं और लाचार होकर नये शब्दों को स्थान देने के लिए पुराने शब्दों को निकालना पड़ता है। इसका उदाहरण उर्दू है।

संस्कृत-भाषा है। राजनैतिक महत्त्व के कारण उर्दू के बहुत से शब्द और धार्मिक महत्त्व के कारण संस्कृत के बहुत से शब्द ठेठ हिन्दी शब्दों को निकाल कर उनकी जगह पर आ गये हैं। विदेशियों के संसर्ग से भी यही बात पैदा होती है। मुसल्मानों और अँगरेज़ों की भाषा से हमने कितने शब्द ग्रहण कर लिये हैं, यह इस बात का प्रमाण है। अतएव हमारी भाषा के जो बहुत से शब्द अब अप्रचलित और लुप्त हो गये हैं, उसका कारण ढूँढ़ा जाय तो ऊपर लिखे गये कारणों में से एक न एक अवश्य होगा।

भाषा की परिवर्तन-शीलता के सम्बन्ध में और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता है। किन्तु लेख बढ़ जाने के डर से इसे हम यहीं समाप्त करते हैं।

जनार्दन भट्ट

विज्ञान की महत्ता।

गत ४ फ़रवरी को काशी में हिन्दू-विश्व-विद्यालय की नींव डालने का उत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। उस अवसर पर कुछ देशी और विदेशी विद्वानों के व्याख्यान हुए। विज्ञानाचार्य्य जगदीश-चन्द्र बसु महोदय ने भी एक व्याख्यान देने की कृपा की। आपके नाम से शिक्षित भारतवासी अनजान नहीं। आपकी कीर्ति-ध्वजा भारत ही में नहीं, विदेशों में भी फहरा रही है। आपके व्याख्यान का विषय बहुत गहन था। तथापि आपने उसका विवेचन सबके समझने योग्य सरल भाषा में किया। आपके कथन का मतलब नीचे दिया जाता है—

जीवन का विकास-क्रम चमत्कारों से भरा हुआ है। उन चमत्कारों की विशेषताओं पर ध्यान देने से बड़े महत्त्व की बातें ज्ञात होती हैं। पहली बात तो यह है कि संसार में जो अनेक शक्तियाँ विद्यमान हैं उनके साथ जीवात्मा का सम्पर्क बिना रोक-टोक होना चाहिए। इसके बिना जीवन की रक्षा और वृद्धि नहीं हो सकती। दूसरी बात यह है कि जीवात्मा को बाहर से अकेला ग्रहण करना चाहिए। उसे अपना कुछ अंश बाहर वालों को देना भी चाहिए—अर्थात् जीवात्मा को कुछ बातें तो बाहर से लेनी चाहिए और कुछ अपने पास से बाहर वालों को देनी चाहिए। इसी लेन-देन के क्रम पर उसका अस्तित्व अवलम्बित रहता है। यह क्रम बिगड़ा कि फिर और नहीं। फिर तो जीवन का अन्त ही समझिए।

ठीक यही दशा किसी देश के निवासियों की बुद्धि की भी है। जो देश अपने पड़ोसी देशों से सम्बन्ध नहीं रखता, जो उनसे लेन-देन का व्यवहार नहीं करता, अतएव जो कूप-मण्डूक की तरह अपना हृदय और अपनी मनोवृत्ति सङ्कीर्ण कर लेता है उसकी बुद्धि का ह्रास हुए बिना नहीं रहता। इसी तरह वह देश ज़रूर गिर जाता है जो बाहरी बातें ग्रहण तो करता है, पर बाहर वालों को अपनी निज की बातें नहीं देता।

भारतवर्ष भी एक देश है। अतएव यही नियम उस पर भी घटित होता है। अर्थात् भारत को भी कुछ बातें बाहर वालों को—अन्य देशों को—देनी चाहिए। अब, सोचिए कि भारत यह काम किस प्रकार कर सकता है और यह नवीन विश्वविद्यालय इस सम्बन्ध में उसकी कितनी मदद दे सकता है? यह देश यह बात तभी कर सकता है जब यह दुनिया के प्रतिष्ठित देशों में गिना जाय; यह उनके मुक़ाबले का हो जाय; यह उन्हें ज्ञान-दान देने योग्य हो जाय। यह इस योग्य तभी हो सकता है जब भारतीय छात्र इतना अधिक ज्ञान-सम्पादन कर लें कि वे बाहर वालों को सिखा सकें—उनके ज्ञान को बढ़ा सकें। इस विश्व-विद्यालय के द्वारा निश्चय ही ऐसे छात्र तैयार हो सकते हैं। यह विश्वविद्यालय चाहे तो भारत को अपना गत गौरव प्राप्त करा सकता है। क्योंकि ज्ञान किसी जाति-विशेष की बपौती नहीं; किसी देश-विशेष के ही लोगों के हिस्से में वह नहीं पड़ा। सारे देश परस्पर एक दूसरे पर अवलम्बित हैं। अर्थात् प्रत्येक देश अन्य देशों से कुछ न कुछ अवश्य पाता है—किसी न किसी अंश में वह दूसरे का अवश्य ऋणी है। विज्ञान ही को लीजिए। वह न पश्चिम वालों ही की सम्पत्ति है, न पूर्व वालों ही की। हाँ, पश्चिम

बातों में उसके कुछ अंश की विशेष उन्नति करके उसे मूर्त-स्वरूप अवश्य दिया है।

ज्ञान का महत्त्व निस्सीम है। बिना ज्ञान-सम्पादन किये हम बाहर वालों को—विदेशियों को—कुछ नहीं दे सकते। अतएव अब यह देखना चाहिए कि ज्ञान प्राप्त किया कैसे जाता है? ज्ञान-सम्पादन करने के लिए मुख्य दो बातों की ज़रूरत है। (१) कल्पना शक्ति की और (२) कल्पनाओं को नियमबद्ध करने की। जो काम किसी उद्देश-विशेष से नियमपूर्वक नहीं किया जाता वह निष्फल जाता है, उसके लिए किया गया परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार, यदि कल्पना बेलगाम छोड़ दी जाय—वह बेरोक-टोक दौड़ाई जाय—तो उसमें अनेक बखेड़े खड़े हो जायँ और इष्ट-सिद्धि में बड़ी भारी रुकावट पैदा हो जाय। अतएव जो सत्य की खोज करना चाहते हैं उन्हें अत्यन्त सावधानी रखने की आवश्यकता है। उन्हें सोचते रहना चाहिए कि कहीं धोखा तो नहीं हो रहा है। उन्हें अपने प्रत्येक विचार की तुलना बाहरी घटनाओं से करते रहना चाहिए। उन्हें इस बात पर ध्यान देते रहना चाहिए कि अमुक घटना हमारे विचार—हमारे सिद्धान्त—के प्रतिकूल है या अनुकूल और वह प्रतिकूलता या अनुकूलता है कितनी। वह अधिक है या कम। जिन बातों में समानता न हो—जो परस्पर विरुद्ध हों—उन्हें छोड़ देना चाहिए। सत्यशोधक को गम्भीर-विचार-पूर्वक काम करना चाहिए। उसे अपनी कल्पना-शक्ति पर अधिकार रखना चाहिए, उसे दबाये रखना चाहिए। तब कहीं वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकेगा।

अब यह देखना चाहिए कि हमें ज्ञान-प्राप्ति में सफलता क्यों नहीं होती और यदि होती भी है तो वह जैसी चाहिए वैसी क्यों नहीं होती। पहली बात तो यह है कि हम ज्ञान-प्राप्ति की राह नहीं जानते—हमें प्रयोग करने की ठीक ठीक रीति मालूम नहीं। हमारी इस कमज़ोरी का एक कारण यह भी है कि जो लोग नूतन तत्त्वों की खोज के पीछे पड़ रहे हैं उनके मन शान्त नहीं। हमारे देश की बहुतेरी बातें अनिश्चित और अव्यवस्थित हैं। आविष्कर्ताओं के मन और मस्तिष्क पर इस बात का बहुत बुरा असर पड़ता है। यह अव्यवस्थता भारतीय शोधकों के मन को बहुधा अस्थिर कर देती है। इसी कारण वे अपने प्रयोगों में प्रायः सफलता नहीं प्राप्त कर सकते। दूसरी बात यह है कि यहाँ के विज्ञान-प्रेमियों के सुभीते के लिए कोई अच्छी प्रयोगशाला नहीं। यह होनी चाहिए। सब आवश्यक सामग्री उसमें मौजूद रहनी चाहिए।

वैज्ञानिक जीवन बड़े कष्ट का है। मौत तो इसके सिर पर सदा ही सवार रहती है। ज़रा पूछे कि इसने [illegible] दबाया। देखिए, बेचारा लैंगली (हवाई जहाज़ का आविष्कर्ता) ज्ञान-प्राप्ति की चेष्टा में अपनी जान ही गँवा बैठा।

अच्छा तो हमारी त्रुटियाँ दूर कैसे की जायँ। पहली बात तो यह है कि हमें अपने मन को एकाग्र रखना चाहिए। जिस काम को हाथ में लिया हो उसी में सम्पूर्ण मन मन लगा देना चाहिए। बात पहले मन में आती है, फिर हाथ से की जाती है। अतएव कोई काम करने के लिए मन की शान्ति और स्थिरता की बड़ी ज़रूरत है। जिसका मन स्वस्थ और स्थिर नहीं रहता—इधर उधर भटकता फिरता है—जो मन सत्य की खोज करने के बदले निज के ही स्वार्थ-साधन में निमग्न रहता है वह बड़े कामों में कभी सफलता नहीं प्राप्त कर सकता।

भारतवर्ष योग-विद्या—अध्यात्म-दर्शन—का घर है। इसके लिए ध्यान, धारणा और समाधि आदि हाथ का खेल होना चाहिए। मानसिक शक्तियों में बड़ा बल है। सम्राट् अशोक को देखिए। कलिङ्ग-देश पर उसने चढ़ाई की। हज़ारों आदमियों का संहार होने लगा। समर-भूमि लाशों से ढक गई। यह बीभत्स दृश्य देख कर अशोक का हृदय दहल गया। "युद्ध-वृद्धि" का निषेध करने वाला अशोक अहिंसा-धर्मी बन गया! कहाँ तो विजय-प्राप्ति की वह अभिलाषा, कहाँ यह विरक्ति! यह किस शक्ति का प्रभाव था? यह उसी अध्यात्म-शक्ति का प्रभाव था जिसे भूल जाने से हम वैज्ञानिक जगत् में कृतकार्य नहीं हो रहे। भारत-भूमि में ऐसे अनेक महात्मा हो गये हैं जिन्होंने ज्ञान ही की प्राप्ति के लिए अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया। पर ऐहिक ज्ञान की चमक से हमें चकाचौंध आ गई है। हम वास्तविक सत्य को भूल गये हैं। एक के स्थान पर हम अनेक बातों को मानने लगे हैं। विज्ञान में सर्व-व्यापक सिद्धान्तों का निश्चय करना ही सबसे अधिक महत्त्व की बात है। सिद्धान्त

ऐसे होने चाहिए जो अनेक प्रकार की भिन्नताओं के भीतर से समता—एकता—को ढूँढ़ निकालें। अर्थात् भिन्न भिन्न स्वभावों और रूपों की वस्तुओं में किसी ऐसे तत्त्व का पता लगावें जिसकी सत्ता सब में एकसी वर्तमान हो। यह काम तब तक नहीं हो सकता जब तक मन शुद्ध न हो, विकार-रहित न हो, स्वच्छ और शान्त न हो। सच पूछिए तो भारत-वासियों के लिए यह कोई नई बात नहीं। वे इस शक्ति को थोड़े ही परिश्रम से प्राप्त कर सकते हैं।

मन की स्थिरता का एक उदाहरण लीजिए। मैंने मनोयोग का थोड़ा बहुत अभ्यास किया है। उतने ही से मैं कुछ नया काम कर सका हूँ। मैंने यह जानना चाहा कि, पदार्थ (Matter) पर शक्ति (Force) का क्या असर होता है। मैंने प्रयोग शुरू किया। मुझे ऐसे नियम ज्ञात हुए जो जड़ और चेतन दोनों पर एक से घटित होते हैं, जो दोनों में सदृश पाये जाते हैं। फिर मैंने अव्यक्त प्रकाश (Invisible Light) की परीक्षा आरम्भ की। तब मुझे मालूम हुआ कि देदीप्यमान प्रकाश-समुद्र के पास रहने पर भी हम लोग अन्धे ही बने हुए हैं। वह तेज—वह प्रकाश—हमारे चारों ओर फैला हुआ है। खेद है कि मनुष्य में अभी तक उन शक्तियों का पूरा विकास नहीं हुआ जिनकी सहायता से वह उस अज्ञात और अव्यक्त का अनुभव कर सके। मेरे कुछ प्रयोगों ने जीवन और मरण के कठिन प्रश्न को भी बहुत कुछ हल होने योग्य बना दिया है।

अब दूसरी त्रुटि को लीजिए। वह है यन्त्र-सामग्री का अभाव। इस त्रुटि के कारण हम अनेक विषयों में निरुपाय रह जाते हैं। उद्भिज्ज जीवन और मनुष्य जीवन में अत्यन्त निकट सम्बन्ध है। पर यन्त्र-सामग्री न होने के कारण हम इसे सिद्ध न कर सकते थे। सामग्री मिलते ही यह सम्बन्ध सिद्ध करके दिखा दिया गया। प्रसन्नता की बात है, अब भारत में भी सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्र बनने लग गये हैं। संसार की बड़ी बड़ी प्रयोग-शालाओं में उनकी परीक्षा भी हो चुकी है। वहाँ के परीक्षागारों में वे काम में भी लाये जाते हैं। यही नहीं, यूरप और अमेरिका में उनकी माँग भी बहुत है और दिन पर दिन बढ़ती जाती है। कारण यह है कि वे यन्त्र जीवन-सम्बन्धी प्रयोगों में बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। ऐसे अनेक यन्त्र मेरी प्रयोगशाला से विदेश भेजे गये हैं। इस काम को साधारण न समझिएगा। मुझ अकेले को १२ वर्षों तक वैज्ञानिक संसार से जूझना पड़ा है। तब कहीं यह सफलता मुझे मिली है।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वैज्ञानिक तथ्यों की खोज में बहुत बड़ी सावधानी की ज़रूरत है। बहुत जगह बाहरी रूप और बाहरी चेष्टा से हम ठगे जाते हैं—हमारी आँखों में धूल झोंक दी जाती है। देखिए, लाजवन्ती के पौधे को प्रायः सभी जानते हैं। लोग समझते हैं कि यह अत्यन्त सुकुमार है, उसका स्पर्श-ज्ञान बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है—इतना कि छूते ही वह सिकुड़ जाती है। ऐसे भी अनेक पौधे हैं जिन पर छूने का कुछ भी असर नहीं होता। इस कारण लोग समझते हैं कि उन्हें स्पर्श-ज्ञान नहीं। पर खोज करने से बात ठीक उलटी निकली। लाजवन्ती की लज्जा ने हमें सचमुच ही फँसा दिया—हमें उसने बेतरह धोखा दिया। जो पौधे स्पर्श-ज्ञान-रहित समझे जाते हैं उनमें जितना यह ज्ञान पाया गया उतना यथार्थ में लाजवन्ती में भी नहीं। इसी तरह कितने ही पेड़ों के पत्ते रात को सिकुड़ जाते हैं। इससे हम यह समझते हैं कि वे सोते हैं। परन्तु मेरी खोज से यह सिद्ध हुआ है कि पेड़-पौधे साधारणतः रात को नहीं सोते। वे सारी रात जागरण करते हैं और सबेरा होते होते कोई दस बजे वे सोते हैं। इसी लिए मैं कहता हूँ कि हमें अत्यन्त सावधान रहना चाहिए। ज़रा भी भूल हुई कि काम बिगड़ा।

जीवात्मा एक है। वह पेड़-पौधों से लेकर अन्य जीव-धारियों—मनुष्यों—तक में व्याप्त है। मेरे प्रयोगों से यह बात सिद्ध हो चुकी है। इस आविष्कार ने वैज्ञानिक विद्वानों के दल में हलचल मचा दी है। कुछ शास्त्रों पर तो इसका चमत्कारिक प्रभाव पड़ा है। उनके सिद्धान्तों में थोड़ी बहुत उलट-पुलट भी हो रही है। इसके अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

मैं आपसे एक प्रार्थना करता हूँ। आप भारत के प्राचीन गौरव को याद कीजिए। ध्यान रखिए कि आपको इसे उसी पूर्ववर्ती ऊँचे पद पर पहुँचाना है। आपको अपना देश, ज्ञान के विकास से, अन्य देशों के बराबर कर बनाना है। पूर्वजों के गुण गाने ही में आप अपने कर्त्तव्य की इतिश्री न समझिए। उन्हीं के सदृश अद्भुत आविष्कार करके आपको उनके अनु-

वायसराय का आसन उत्तर मुँह बैठने के लिए बनाया गया था। आसन के पश्चिमी ओर तीन खण्ड (Blocks) थे। इनमें १०० मनुष्यों के बैठने का स्थान था। बाईं ओर के चार खण्डों में ४०० आदमियों के बैठने का स्थान था। श्रीमान् वायसराय के आसन के ठीक सामने, मण्डप के बीचोबीच, एक ऊँची वेदी पर नींव रखने का पत्थर एक एक ज़ंजीर से लटक रहा था। इस संगमरमरी पत्थर पर यह लेख खुदा था—

> यत्रे बुधो मतिमति सिन्धि सुधाकरे विलग्ने
> चार्वे वारके इन्दुमतिकरी-कम्बिनी विजयाख्ये।
> प्रथम वर्ष परिवर्तन्नि विश्वविद्यालयस्य—
> कर्मों न्यासपूर्वकविधिविहितो यत्र हार्डिञ्ज सुधीभि:॥

इसके आगे, उत्तर ओर, तीन खण्डों में बैठने के ७२४ स्थान थे। उनके ऊपर पाँच और खण्ड थे। उनमें बैठने के ४१०६ स्थान थे। प्रथम के ग्यारह खण्डों तक तो कुर्सियों का प्रबन्ध था और शेष पाँच खण्डों में चापाकार बेंच बनाये गये थे। मण्डप के बाहर, चारों ओर, स्थान स्थान पर, विशाल तम्बू खड़े थे। उनमें, भिन्न भिन्न खण्डों में बैठने वाले महानुभावों के सुभीते और आराम की ओर ध्यान रख कर, सब प्रकार के ज़रूरी सामान रक्खे हुए थे। पानी पिलाने का भी उत्तम प्रबन्ध था। पास ही एक अस्पताल भी था। महोत्सव-मण्डप के पूर्व, गङ्गाजी की ओर, महारुद्र-यज्ञ के लिए एक विशाल यज्ञ-शाला बनाई गई थी। उसके पास ही एक सुन्दर मण्डप था। उसमें सिक्ख भाइयों के ग्रन्थ साहब के पढ़ने का विधान था। दूसरे मण्डप में जैन भाइयों की ओर से पूजा की व्यवस्था की गई थी। पूजा के सभी स्थान, महोत्सव-मण्डप की भाँति, भले प्रकार सजाये गये थे। एक जगह से दूसरी जगह जाने के लिए सुन्दर मार्ग बनाये गये थे। घोड़ा-गाड़ियों और मोटरों के लिए अलग अलग स्थान नियत थे।

टिकट ।

महोत्सव-मण्डप में आने के लिए ५ प्रकार के टिकट थे—सफ़ेद, नीले, पीले, लाल और हरे। किस टिकट वाले कहाँ बैठें, यह निश्चित कर दिया गया था। परदानशीन महिलाओं के लिए लाल टिकटों की योजना थी।

मार्ग ।

महोत्सव-मण्डप में आने के लिए श्रीदुर्गाजी के मन्दिर की दक्षिण-पूर्व वाली पक्की सड़क* में से तीन नये सुन्दर मार्ग बनाये गये थे। किस मार्ग से कौन प्रवेश करे, इसका प्रबन्ध कर दिया गया था।

मार्ग सूचक पट्टियाँ, स्थान स्थान पर बड़े बड़े खम्भों में लगी हुई थीं। तो भी पुलिस का प्रबन्ध था ही। मार्ग सूझने वालों को लाल पगड़ी वाले, टिकट देख कर, मार्ग बतला देते थे। पुलिस का पहरा केवल राज-मार्गों ही पर न था, प्रत्येक गली और सड़क तथा उनके पास के घरों की छतों और वृक्षों पर भी था।

महोत्सव-मण्डप में पहुँचने का समय ।

महिलाओं को १०½ बजे तक, हरे टिकट वाले निमन्त्रित सज्जनों और छात्रों को ११ बजे तक, और अन्य महानुभावों को ११½ बजे तक मण्डप में अपनी अपनी जगह पर बैठ जाने की सूचना दी गई थी। सोनपुर, भदैनी तथा अस्सी के राज-मार्गों से, बिना टिकट, कोई मनुष्य, रामनगर अथवा गङ्गा की तरफ़, ८ बजे बाद नहीं आने पाया। टिकट वालों के लिए भी कोई कोई मार्ग ९½ और १० बजे बन्द कर दिये गये थे।

साढ़े ग्यारह बजे के पश्चात् पाँचवीं ड्रैगून्स और सातवीं राजपूत-पलटन के सिपाही क्रमशः आकर मध्यवेदी के दाहिने-बायें खड़े हो गये। उनके यथा-स्थान खड़े हो जाने पर हिन्दू-कालेज की केडिट कोर, मध्यवेदी को ३ ओर से घेर कर, खड़ी हो गई। यदि इस समय महोत्सव-मण्डप को एक विचित्र रङ्ग-बिरङ्गा पौधा कहें तो हिन्दू-कालेज की केडिट कोर को उस पौधे का मनोमोहक फूल कहे बिना नहीं रह सकते। उनके सामने, सचमुच, हीरे-जवाहिरों, मोतियों तथा बहुमूल्य सुन्दर सुन्दर वस्त्रों की चमक-दमक और जग-मगाहट छिप गई। वे तेजस्वी बालक सूर्य्य भगवान् की तरफ़ मुँह करके जो खड़े हो गये तो अन्त तक अपनी जगह से नहीं हिले। सूर्य्य भगवान् भी मण्डप के ऊपर रथ रोक कर मानों विचित्र शोभा देखने के लिए आ जमे थे।

---

* यह सड़क श्रीसङ्कटमोचन महावीर के पास से सीधी रामनगर-घाट को गई है।

कार्य्य-क्रम।

श्रीमान् वायसराय ठीक १२ बजे सभा-मण्डप में पधारे। गार्ड आफ़ आनर ने सलामी उतारी। बैंड बाजों ने समयोचित बाजा बजाया। सर्व-साधारण ने खड़े होकर करताल-ध्वनि से श्रीमान् का स्वागत किया। श्रीमान् के आसन पर विराजते ही दाहिनी ओर रक्षित देशों के नरेश और बाईं ओर मद्रास, बिहार, युक्त-प्रान्त, पञ्जाब के लाट, बलरामपुर, डुमराँव इत्यादि के महाराज तथा मिस्टर मायर, महाराजा दरभङ्गा, श्रीमान् मालवीयजी, डाक्टर सुन्दरलाल, डाक्टर सर्वाधिकारी, सर गुरुदास बैनर्जी, सर बख़्शी, सरदार दलजीतसिंह इत्यादि सज्जन अपने अपने आसन पर बैठ गये।

सबसे पहले संस्कृत हिन्दू-कालेज की कन्या-पाठशाला की बालिकाओं ने सरस्वती की प्रार्थना करके मङ्गल-गान किया। इसके पश्चात् हिन्दू-विश्वविद्यालय-समिति के सभापति, दरभङ्गा-महाराज, ने समिति की ओर से श्रीमान् लार्ड हार्डिंज महोदय को अभिनन्दन-पत्र पढ़ सुनाया। तब सर गुरुदास बैनर्जी ने एक सुन्दर चाँदी की थाल में बने हुए चाँदी के शिवालय के भीतर, अभिनन्दन-पत्र रख कर श्रीमान् को सादर समर्पण किया। श्रीमान् ने सहर्ष उठ कर उसे सादर ग्रहण किया। फिर हार्डिंज महोदय ने अपना व्याख्यान पढ़ा। उसे सुन कर उपस्थित मण्डली प्रफुल्लित हो गई। उसके बाद श्रीमान् आसन से नीचे उतरे और मध्य वेदी पर नींव रखने के लिए पधारे। वहाँ नींव रखने की विधि मुसकराते हुए आपने सम्पादन की। उस समय वेदी पर श्रीमान् के साथ दरभङ्गा-नरेश, माननीय मालवीयजी, डाक्टर सुन्दरलाल, बाबू भगवानदास और एग्ज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर राय धोरेलाल साहब थे। नींव का पत्थर रखते ही बैण्ड ने जातीय गीत बजाना आरम्भ किया। श्रीमान् के पुनः आसन पर विराजते ही काशी की पण्डित-मण्डली ने वेद-मन्त्रों का पाठ किया। इसके उपरान्त महाराजा बीकानेर ने श्रीमान् वायसराय को हिन्दू-समाज की ओर से सुन्दर शब्दों में धन्यवाद दिया। तदुपरान्त महाराज जोधपुर ने श्रीमान् वायसराय को एक मनोहर हार पहनाया। तदनन्तर श्रीमान् आसन से उठे और जन-समुदाय ने, माननीय मालवीयजी के कण्ठ से कण्ठ मिला कर, हिप हिप हुर्रे की ध्वनि से मण्डप को गुँजा दिया।

मण्डप से विदा हो कर श्रीमान् वायसराय तथा अन्य महाराजे और निमन्त्रित सज्जन, विशिष्ट मार्गों से, श्रीमान् काशी-नरेश के रामनगर के राज-प्रासाद में पधारे और राज-भोज में सम्मिलित हुए।

५ फ़रवरी से ८ फ़रवरी तक का ब्योरा।

सन् १९१६ ईसवी की फ़रवरी का पहला सप्ताह, सबके मनोरञ्जन के लिए, सदैव स्मरण रक्खा जायगा। यह ऐसा ही अवसर था जब सर्व-साधारण हिन्दू-समाज में देशी रजवाड़ों के चार चार, पाँच पाँच नरेश, एक साथ मञ्चों में स्थित आकर, सुवर्णमय सिंहासनों पर विराजे थे। उनकी मनोहर मधुर मुसकान और मिलनसारी देख कर श्रोता तथा दर्शक मुग्ध हो जाते थे। यह भी एक नई और अलौकिक दृश्य था। धन्य हैं मालवीयजी जिनकी सच्ची देश-भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने सब काम निर्विघ्न समाप्त किया।

इस महोत्सव के सम्बन्ध में ५ से ८ फ़रवरी तक जो सभायें सेंट्रल हिन्दू-कालेज, काशी, में हुईं उनका ब्योरा इस प्रकार है—

५ फ़रवरी।

प्रातःकाल।

श्रीमान् महाराज बीकानेर— सभापति।

वक्ता।	विषय।
(१) राय [illegible] त्रिपाठी।	देवनागरी की [illegible] राष्ट्रलिपि [illegible] होने और इसके अनुवाद की आवश्यकता।
(२) मिस्टर सी॰ एच॰ बोरा, प्रिन्सिपल, कला-भवन, बड़ोदा।	हिन्दू-विश्वविद्यालय में शिल्प-महाविद्यालय की आवश्यकता।

सन्ध्या-समय।

(३) मिस्टर [illegible] भाई [illegible]।	व्यापार और [illegible] सम्पत्ति।
(४) राय गङ्गाराम बहादुर	कृषि-व्यवसाय।

जैन अर्हत नंद्यावर्त की प्रतिमा का एक अंश।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

वक्ता। — विषय।

(२) प्रोफ़ेसर हिगिनबाटम, प्रयाग। } भारतीय कृषि का विकास।
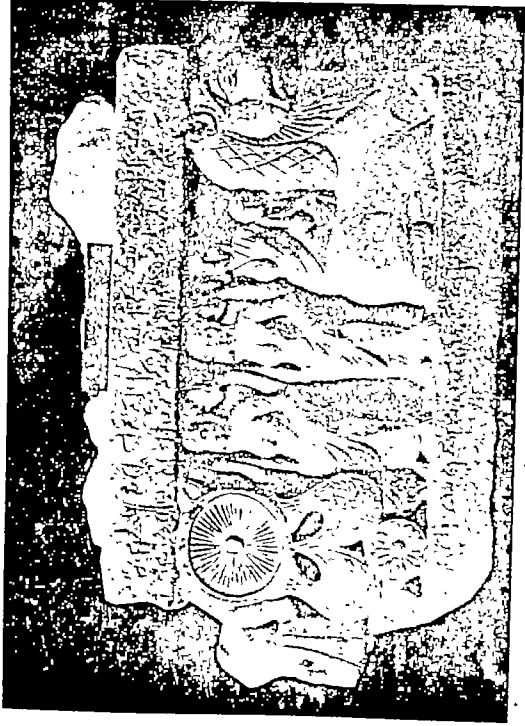
६ फ़रवरी।

प्रातःकाल।

श्रीमान् राजा-राणा झालावाड़— सभापति।

(१) प्रोफ़ेसर जे० सी० बसु।
(२) डाक्टर पी० सी० राय। } विज्ञान का विकास।

सन्ध्या-समय।

श्रीमान् महाराजा दरभङ्गा— सभापति।

(१) मिस्टर जे० एम० पेयर। { हिन्दू-विश्वविद्यालय में व्यापारिक विद्यालय।

(२) श्रीमती एनी बेसन्ट। विश्वविद्यालय द्वारा चरित्र-गठन।

(३) श्रीमान् गांधी — बालकों को उपदेश।

७ फ़रवरी।

प्रातःकाल।

श्रीमान् महाराजा क़ासिमबाज़ार— सभापति।

(१) प्रोफ़ेसर रमण, कलकत्ता — गणित-शास्त्र।

श्रीमान् महाराज डूँगरपुर— सभापति।

(१) लेफ़्टिनेन्ट कर्नल कौलिन्स } चिकित्सा-शास्त्र का चमत्कार।

सन्ध्या-समय।

श्रीमान् राजा-राणा झालावाड़— सभापति।

(१) श्रीमान् कविराज गणनाथ सेन, आयुर्वेद का महत्त्व।

श्रीमान् महाराजा अलवर— सभापति।

(१) श्रीमान् पण्डित हरप्रसाद शास्त्री — संस्कृत साहित्य।

(२) ,, पण्डित श्रीकृष्ण जोशी — भारतीय सभ्यता।

८ फ़रवरी।

प्रातःकाल।

श्रीमान् महाराजा नाभा— सभापति।

(१) प्रोफ़ेसर पैट्रिक गेडीज़ { आधुनिक विश्वविद्यालय का आदर्श।

(२) मिस्टर एस० एम० मेहता — संस्कृत-शिक्षा।

(३) मिस्टर बी० ए० मरलन्डे — भारतीय सङ्गीत।

दोपहर को महोत्सव-मण्डप में महायज्ञ-यज्ञ की पूर्णाहुति, वसन्तोत्सव तथा पाठशाला के पण्डितों की बिदाई हुई। तीसरे पहर, कालेज में, भाई अर्जुनसिंह और सन्त अमरसिंह की अध्यक्षता में ग्रन्थ-साहब का पाठ तथा माननीय मालवीयजी का व्याख्यान हुआ।

सन्ध्या-समय।

श्रीमान् मिस्टर हापकिन्स, कमिश्नर, बनारस— सभापति।

(१) माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय — छात्रों को सदुपदेश।

श्रीमान् महाराजा नाभा— सभापति।

(१) श्रीमती कुमारी कृष्णा-बाई ठाकुर, एम० ए० } हिन्दू-विश्वविद्यालय में स्त्री-शिक्षा।

(२) प्रोफ़ेसर रमण। — सङ्गीत की ध्वनि।

इसके पश्चात् काशी-निवासी पण्डित रामचन्द्र जोशी का हरि-कीर्तन हुआ। अन्त में प्रोफ़ेसर विष्णु दिगम्बर तथा उनके शिष्यों का मधुर गान हुआ। इस प्रकार महोत्सव सानन्द समाप्त हुआ।

सभा में सभापति, वक्ता और विषय की प्रधानता के अनुसार जन-समुदाय की भीड़ हुआ करती थी। सबसे अधिक भीड़ श्रीमान् गांधी के व्याख्यान के दिन हुई थी, और सबसे अधिक प्रसन्नता श्रीमान् अलवर-नरेश का व्याख्यान लोगों ने सुन कर प्रकट की थी। श्रीमान् अलवर-नरेश की वाक्-पटुता, मधुर भाषण तथा हिन्दी-प्रेम को देख कर हिन्दी के सेवक तथा देश-भक्त मुग्ध हो गये थे।

इधर व्याख्यानों और उत्सवों की धूम थी ही, उधर हिन्दू-कालेज के वृहत् मैदान में श्रीमान् महाराजा काश्मीर के क्रिकेट के दल के साथ श्रीमान् महाराजा अलवर के दल तथा युक्त-प्रान्त के कालेजों के चुने हुए लड़कों का क्रिकेट मैच १० बजे से ४ बजे तक होता था। इससे मनोरञ्जन के साथ ही प्रेम-सम्मेलन भी खूब होता था।

इस महोत्सव की शोभा श्रीमान् काशीनरेश के आतिथ्य-सत्कार से और बढ़ गई थी। सब रक्षित-नरेश दल-बल-सहित श्रीमान् काशीनरेश की पहुनाई से बहुत प्रसन्न रहे। पाठकों को यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू-कालेज-भवन हमारे विद्यानुरागी श्रीमान् काशीनरेश ही का भवन है और जहाँ हिन्दू-विश्वविद्यालय-सम्बन्धी भवन बनेंगे वह कुल (दो मील

जाती जा सकती । इतनेही समय में अन्यान्य प्रान्तों में छात्रों की संख्या में बहुत अधिक वृद्धि हुई है । इस प्रकार की शिक्षा के लिए इन प्रान्तों में ख़र्च भी औरों की अपेक्षा कम ही हुआ है । शिक्षा में यह प्रान्त बहुत पिछड़ा हुआ है । इस लिहाज़ से यहाँ अधिक ख़र्च की ज़रूरत है । तभी यहाँ की निरक्षरता कम हो सकेगी ।

प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार की तो यहाँ सबसे अधिक आवश्यकता है । परन्तु प्रारम्भिक मदरसों में पढ़नेवाले छात्रों की संख्या में भी विशेष वृद्धि नहीं हुई । १९१३–१४ में उनकी संख्या ५, २४, २३० थी । १९१४–१५ यह बढ़कर ५, ६४, १०० हो गई । अपर प्रायमरी मदरसे १९१३–१४ में ३,७८० थे । १९१४–१५ में उनकी संख्या ३, ६६२ हो गई । प्रारम्भिक शिक्षा पानेवाले लड़कों में से केवल फ़ी सदी १२ लोअर प्राइमरी दरजे पास करके अपर प्रायमरी में पहुँचे । इससे सिद्ध है कि अधिक संख्या नीचे दरजों में पढ़नेवाले लड़कों ही की है । इन दरजों में पढ़नेवाले लड़के यदि आगे न बढ़ें तो उनका पढ़ना न पढ़ना बराबर ही समझिए । क्योंकि दरजे १ और २ के लड़के मामूली चिट्ठी भी नहीं लिख सकते । दुःख की बात है, गवर्नमेंट इम्दादी मदरसों के प्रबन्ध और शिक्षा-क्रम से प्रसन्न नहीं । इसीसे २१ ज़िलों में इस प्रकार के मदरसों की संख्या में कमी हो गई । इम्दादी मदरसों में ख़र्च कम पड़ता है और रुपये की कमी की शिकायत गवर्नमेंट सदा ही किया करती है । इस दशा में मूर्खता का गढ़ थोड़ा बहुत ढहाने के लिए इस प्रकार के इम्दादी मदरसे बहुत काम कर सकते हैं । क्योंकि थोड़े ही ख़र्च से इनका काम चल जाता है । तथापि उनकी वृद्धि करने की अपेक्षा गवर्नमेंट अपने, अर्थात् डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के ही, मदरसों की संख्या बढ़ाना चाहती है । उसका ख़याल है कि उसकी नई शिक्षानीति की बदौलत बोर्ड के स्कूलों से ही शिक्षा-प्रचार का काम अधिक होगा ।

प्रारम्भिक मदरसों में शिक्षा पानेवाली लड़कियों की संख्या बढ़ कर ५१,१०० से ६०,७७४ हो गई । यह वृद्धि विशेष करके पहले और दूसरे दरजे में पढ़नेवाली लड़कियों की संख्या में ही हुई । बहुत सम्भव है, ये लड़कियाँ आगे शिक्षा न प्राप्त करें । यदि ऐसा ही हो तो इस वृद्धि से प्रायः कुछ भी लाभ न होगा । क्योंकि मदरसा छोड़ने से छोटी छोटी लड़कियाँ अपनी साल दो साल की पढ़ाई बहुत कुछ भूल जायँगी । और, सम्भव है कि वे अपना नाम भी ठीक ठीक न लिख सकें । गवर्नमेंट का ख़याल है कि माँ-बाप अपनी लड़कियों को बहुत कम पढ़ने भेजते हैं । इसीसे उनकी संख्या में यथेष्ट वृद्धि नहीं होती । इस कारण वह अब ऐसे ही स्थानों में लड़कियों के लिए अधिक मदरसे खोलने का विचार रखती है जहाँ काफ़ी लड़कियां मिल सकें और कई साल तक पढ़ना न छोड़ें । यह विचार यदि कार्य्य में परिणत हुआ तो डर है कि लड़कियों की संख्या बढ़ने की अपेक्षा और भी घट जायगी । यदि लड़कियों की शिक्षा के लिए अधिक सुभीते किये जाते और वज़ीफ़े इत्यादि देकर वे शिक्षा की ओर कुछ अधिक प्रवृत्त की जातीं तो विशेष लाभ की सम्भावना थी ।

१९१३–१४ में इस प्रान्त में १०,६२१ शिक्षालय थे । १९१४–१५ में वे बढ़ कर १०,८०१ हो गये । अर्थात् १८० नये स्कूल स्थापित हुए । १९१३–१४ में केवल ७१ नये शिक्षालय खुले थे, अर्थात् उस वर्ष की अपेक्षा गत वर्ष ६६ शिक्षालय अधिक खुले । पर, जब हम छात्रों की संख्या का हिसाब लगाते हैं तब हमें विशेष सन्तोष प्रकट करने के लिए जगह नहीं रहती । देखिए, १९१३–१४ में छात्रों की संख्या—(लड़के और लड़कियाँ मिला कर) ८,१६,७०२ थी । वह १९१४–१५ में बढ़ कर ८,३१,७२४ हो गई । अर्थात् गत वर्ष विद्यार्थियों की संख्या में १२,६८२ की बढ़ती हुई । पर १९१३-१४ में उसके पिछले वर्ष की अपेक्षा ३३,१०४ छात्र बढ़े थे । अर्थात् १९१३–१४ की अपेक्षा १९१४-१५ में ११,११२ छात्र कम बढ़े । यही हमारे असन्तोष का कारण है । अन्य देशों के मुक़ाबले में एक तो इस देश की शिक्षा की दशा पहले ही निकृष्ट है । तिस पर भी बङ्गाल, बम्बई, मदरास आदि प्रान्तों के शिक्षाप्रचार को देखते यह प्रान्त और भी पिछड़ा हुआ है । अतएव चाहिए तो यह था कि १९१४–१५ में १९१३-१४ की अपेक्षा छात्रों की संख्या बहुत अधिक बढ़े, पर बात हुई इसके विपरीत । एक ओर शिक्षालयों की संख्या बढ़ती है तो दूसरी ओर छात्रों की संख्या की यथेष्ट वृद्धि नहीं होती । अतएव नहीं कहा जा सकता कि शिक्षा-प्रचार जिस गति से होना चाहिए उस गति से हो रहा है ।

बदाऊँ और बहराइच ज़िलों के प्रारम्भिक मदरसों में क्रमशः १,१९९ और ९२९ विद्यार्थी घट गये। और भी कई ज़िलों में छात्रों की संख्या घटी है, पर इतनी नहीं। इस कमी का कारण रिपोर्ट में अन्न की महँगी अथवा कमी बताई गई है, जो विद्यार्थियों के माँ-बाप की दरिद्रता के सिवा और कुछ नहीं।

भारत-वर्ष जैसे कृषि-प्रधान देश में केवल अन्न के दामों के प्रभाव से छात्रों की संख्या का घट जाना बड़े ही परिताप की बात है।

९—इतिहास-ज्ञान की उपयोगिता।

इलाहाबाद में एक ऐतिहासिक समिति की स्थापना हुई है। इस बात को अभी कुछ ही समय हुआ। उस की प्रतिष्ठा के समय संयुक्त-प्रान्त के छोटे लाट, सर जेम्स मेस्टन, का भाषण हुआ था। आरम्भ में, यूनान के तत्ववेत्ता प्लेटो की रची हुई एक कथा के कुछ अंश का साम्य महाभारतीय खाण्डवप्रस्थ के अरण्य में बसी हुई पाण्डवों की मायापुरी से दिखा कर आपने अनुमान किया कि हो न हो यह कथा महाभारत ही से ली गई है। प्लेटो ने अपने समाज के वर्णन के सिलसिले में कारीगर, (Artisans) कृषक (Husbandmen) और क्षत्रिय (Warriors) इन तीन जातियों का उल्लेख किया है। आप ने इनमें तथा आर्यों—हिन्दुओं—की ब्राह्मणेतर तीन जातियों में समानता की सम्भवनीयता बताई। आप ने प्लेटो ही के शब्दों में कहा कि प्राचीन—इतिहास—विषयक प्रेम ही हमारी वर्तमान उन्नति का कारण है। अपनी सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में ही प्राचीन समय के लोगों का बहुत सा समय चला जाता था। उस समय लिखने की कला का भी उदय न हुआ था। यही कारण है जो उनकी प्रवृत्ति अपना इतिहास लिखने की ओर नहीं हुई। वे अपने नायकों तथा विशेष व्यक्तियों के नाम मात्र याद कर लेते थे। उन्हें वे फ़ुरसत के वक्त लड़के-बालों को सुना दिया करते थे। आगे चल कर, इन्हीं नामों के आधार पर असत्य कथायें प्रचलित हुईं। यही कारण है जो हमें प्राचीन लोगों के नाम तो मालूम हैं, पर उनके कार्यों से हम प्रायः अनभिज्ञ ही हैं।

भारत के आर्यों के प्राचीन इतिहास की अनुपलब्धता का उल्लेख करके लाट साहब ने कहा कि भारत के इतिहास के सम्बन्ध में, पहले, लोगों को जो एक प्रकार की अरुचि सी थी वह, अब, धीरे धीरे, कम हो रही है। छात्र और अध्यापक अब प्राचीन इतिहास के अध्ययन में दत्तचित्त होने लगे हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में भारत के अर्वाचीन इतिहास के व्याख्याता की नवीन नियुक्ति इस बात का प्रमाण है। सर्व-साधारण की प्रवृत्ति भी इस ओर हो रही है। ऐतिहासिक समितियाँ, प्राचीन-वस्तु-शोधक सभायें और उनकी शाखायें भारत में बढ़ रही हैं।

लाट साहब ने इतिहास की उपयोगिता के विषय में भी महत्व की बातें कहीं। आपके कथन का सार यह है—

इतिहास केवल प्राचीन काल की बातें जानने के लिए ही उपयोगी नहीं। उससे वर्तमान तथा भविष्यत् की बातों पर भी विचार तथा मनन करने में सहायता मिलती है। हम जितनी ही अधिक खोज करेंगे, भूत काल के विषय में हमारी जिज्ञासा उतनी ही अधिक बढ़ेगी। भारतवासी अब इतना ही जान कर सन्तुष्ट नहीं रह सकते कि उनकी प्राचीन संस्थाओं, स्मृति-चिह्नों और समाज-सङ्गठन आदि के उत्पादक कोई ईश्वरांश-सम्भूत पुरुष या देवता रहे होंगे। भारत की प्राचीनता के विषय में ज्यों ज्यों अभिमान होता जायगा, उसकी प्राचीन स्थिति को जानने की इच्छा त्यों त्यों बढ़ती जायगी।

इतिहास से अमूल्य शिक्षा मिलती है। इस विषय में कुछ भी मत-भेद नहीं। भारत धर्म-प्रधान देश है। पर धर्म के विषय में यह सदा उदार रहा है। उसके भूतकालीन इतिहास में धार्मिक सहनशीलता के उदाहरण भरे पड़े हैं। उनका ज्ञान सम्पादन करने के लिए हमें अन्य सुधारक जातियों के उदय और पतन के ज्ञान की आवश्यकता है। हमें उन जातियों के आक्रमण और उन आक्रमणों के परिणाम जानने की भी आवश्यकता है, जिनका सम्बन्ध भारत से पूर्व काल में हो चुका है। देश-शासन को लीजिए। इस सम्बन्ध में यहाँ सफलता हो सकती है या नहीं? यदि नहीं, तो उसका कारण क्या है? यह जानने के लिए भी हमें इतिहास ही का सहारा लेना पड़ेगा। हमें मौर्य-नरेशों और मुग़ल-बादशाहों के अनुभवों से भी शिक्षा लेनी होगी। और कहाँ तक कहें, पञ्चायतों और प्रति दिन के व्यवहार की छोटी मोटी बातों से भी बहुत कुछ सीखने योग्य

शिला और पाटलिपुत्र में खुदाई का काम शुरू किया गया तब उनके यथार्थ वैभव का पता लगा। इसी प्रकार पता लगाने पर हर्ष-वर्द्धन के गौरव की भी वृद्धि हो सकती है। कन्नौज के खँडहर और टीले अभी तक अधूरे ही पड़े हैं। सम्भल के टीलों की ओर किसी ने देखा तक नहीं। बदायूँ ज़िले में, एक नदी के किनारे, बहुतेरे ध्वंसावशेष विद्यमान हैं। उनके विषय में न तो कोई दन्त-कथा ही सुनी गई है, न कोई लेख ही पढ़ने को मिला है। सम्भव है, वे किसी गड़े हुए शहर के चिह्न हों। सम्भव है, उनको खोदने से किसी विराट-युग इतिहास की सामग्री प्राप्त हो।

बहुतेरी लौकिक कहावतें ऐसी हैं जिन पर ध्यान देना इतिहास की दृष्टि से बहुत ही आवश्यक है। बदायूँ ज़िले के गाँवों में एक कहावत मशहूर है—"जिस पर चढ़े अब्बाराम, तिस पर करो कृपा राम"। "अब्बाराम" का नाम लेते ही वहाँ के शरीर लड़के भी सन्नाटे में आ जाते हैं; वे डर से काँप उठते हैं। क्या कोई बता सकता है कि यह अब्बाराम कौन था? इसी तरह बुँदेलखण्ड के गीतों में आल्हा-ऊदल की वीरता गाई जाती है। इँगलैंड के राजा आर्थर की तरह आल्हा ने भी मृत्यु का मुख नहीं देखा; वह मरा नहीं। अब भी वह घोड़े के अङ्ग में घूमता है। अँधेरी रात में मैहर के पहाड़ पर वह आता जाता है। दीपक जलाता है। देवी के दर्शन करता है। यह दीपक तेल-बत्ती सहित उसके लिए तैयार रहता है। क्या इन सब बातों पर इतिहास-प्रेमियों ने विचार किया है? इनके तथ्यांश का पता आज तक किसी ने नहीं लगाया। ये सब बातें ध्यान देने योग्य हैं।

इतिहास-रूपी वृक्ष की अनेक शाखायें हैं। पर मैं केवल एक ही का नाम लेता हूँ। वह इतिहास सब विद्यार्थियों के लिए विशेष चित्ताकर्षक होगा। वह है सामाजिक और साम्पत्तिक विकास का अध्ययन। इसकी काफ़ी सामग्री यहाँ मौजूद है। राजनीति और समाज-शास्त्र की बातों का पता ऋग्वेद तक में चलता है। सम्पत्ति-शास्त्र का धुँधला प्रकाश प्राचीन ग्रन्थों में भी देखने को मिलता है। उनके अध्ययन से कभी कभी विलक्षण बातें मालूम होती हैं। एक उदाहरण लीजिए—

शाहजहाँ के समय मनूची नाम का एक इटालियन यहाँ था। उसने तत्कालीन घटनाओं पर एक पुस्तक लिखी। उसका अनुवाद अँगरेज़ी में हो गया है। उसमें मैंने भारत में तीर्थ-यात्रा-सम्बन्धी कर लिये जाने का हाल पढ़ा। मनूची लिख गया है कि प्रयाग में उस समय प्रत्येक हिन्दू को त्रिवेणी-सङ्गम पर स्नान करने के लिए १।) कर देना पड़ता था। यह रुपया शाही ख़ज़ाने में जमा होता था। इसी प्रकार कौंसिल की एक कमिटी में विचार करते समय मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि ईसा के ३०० वर्ष पहले इस देश में म्यूनिसिपैलिटी क़ायम थी। उस समय चन्द्रगुप्त भारत का सम्राट् था। पाटलिपुत्र उसकी राजधानी थी। उसका प्रबन्ध करने के लिए एक म्यूनिसिपैलिटी थी। वह छः अंशों में विभक्त थी। प्रत्येक का कार्य्य अलग अलग था। यही अलग अलग छः पञ्च या "बोर्ड" नगर का शासन करते थे। प्रत्येक बोर्ड के पाँच सभासद थे।

इसी तरह और भी ऐसी सैकड़ों बातें हैं जिनका जानना हम लोगों के लिए बहुत आवश्यक है। इसी से मैं कहता हूँ कि इतिहास-प्रेमियों के लिए अनन्त सामग्री अकेले इसी प्रान्त में मौजूद है।

आशा है, जज साहब के इन उत्साहपूर्ण वचनों से इस प्रान्त के विद्वान् अवश्य लाभ उठावेंगे और नये नये ऐतिहासिक तत्त्व ढूँढ़ निकालने की चेष्टा करेंगे।

५—राजा राममोहन राय का अरब-पर्य्यटन।

बहुत कम लोगों को शायद यह बात मालूम होगी कि महात्मा राममोहन राय ने तिब्बत की तरह अरब की भी सैर की थी। वे अरबी के भी अच्छे विद्वान् थे। बँगला के "दर्शन" नामक पत्र से मालूम हुआ कि उन्होंने अरब में वहाँ के मौलवियों से अरबी में शास्त्रार्थ करके उन्हें परास्त किया था। १८१७ ईसवी में देहली के बादशाह शाहे-आलम ने राजा राममोहन राय को अरब भेजा—इसलिए कि वे वहाँ मुसल्मानी धर्म्म के सिद्धान्तों का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर आवें और उनका प्रचार यहाँ इस देश में करें। अरब जा कर राजा राममोहन राय ने वहाँ के विशेष विशेष धर्म्म-मन्दिरों और धर्म्म-ग्रन्थों को देखना चाहा। इस पर वहां के मुल्लाओं और मौलवियों ने हाहाकार मचा दिया। यह दशा देख कर राममोहन राय ने अरबी में एक पद्य की रचना की। उस पद्य का गम्भीर अर्थ जान कर इसलाम-धर्म्म के बड़े बड़े आचार्य्यों तक ने राजा साहब की योग्यता स्वीकार कर ली। उन्होंने एक सभा की। उसमें शास्त्रार्थ हुआ। अन्त

और अमेरिका की राजकीय सभा के मेम्बरों का वेतन तो और भी कम है । जापान का प्रधान मन्त्री जितना वेतन पाता है, हमारे वाइसराय की कौंसिल के मेम्बर उससे चौगुना पचगुना वेतन पाते हैं । यही हाल और अफ़सरों के वेतन का है । अमेरिका की बड़ी से बड़ी रियासत के गवर्नर को १६,००० वार्षिक से अधिक वेतन नहीं मिलता । जापान के गवर्नरों का वेतन तो केवल सात-आठ हज़ार रुपया वार्षिक है । पर बङ्गाल, मदरास और बम्बई के गवर्नरों में से प्रत्येक का वार्षिक वेतन १,२०,००० है ।

कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, चीफ़-जस्टिस, हाईकोर्ट के जज आदि यहाँ जितना वेतन पाते हैं अमेरिका और जापान में कहीं उसका आधा, कहीं तिहाई, कहीं चौथाई पाते हैं । अमेरिका और जापान के बड़े अफ़सरों के वेतन जिस हिसाब से रक्खे गये हैं उसी हिसाब से छोटे अफ़सरों और कर्म्मचारियों के भी रक्खे गये हैं । अमेरिका की पुलिस के सबसे बड़े अफ़सर को १०,२००० रुपया वार्षिक वेतन मिलता है और कान्स्टेबल को ४,२०० रुपया । जापान के इन्स्पेक्टर-जनरल, पुलिस, का वेतन ७,२०० रुपया है और कान्स्टेबल का २१४ रुपया (भत्ते वग़ैरह अलग) । पर हमारे इन्स्पेक्टर जनरल साहब ३६,००० रुपया तक वार्षिक वेतन पाते हैं । परन्तु कान्स्टेबलों को १४४ वार्षिक से कहीं भी अधिक नहीं मिलता । कहीं कहीं तो उन्हें केवल १२० रुपया वार्षिक, अर्थात् १० रुपया मासिक, मिलता है । बात यह है कि यहाँ बड़े बड़े कर्म्मचारी तो दुनिया के धन-सम्पन्न देशों से भी अधिक वेतन पाते हैं । पर बेचारे छोटे कर्म्मचारी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत ही कम वेतन पाते हैं । दुर्भिक्ष पड़ा ही करता है । अनाज दिन पर दिन महँगा होता ही जाता है । अतएव यदि और किसी लिहाज़ से नहीं तो महँगी के लिहाज़ से ही छोटे कर्म्मचारियों को अधिक वेतन मिलना चाहिए । देश की निर्धनता को देखते यहाँ के उच्च अधिकारियों को इतना अधिक वेतन देना न्यायसङ्गत नहीं । और, यदि, न्यायसङ्गत ही माना जाय तो छोटे कर्म्मचारियों के वेतन में भी वृद्धि होनी चाहिए ।

८—भारत में काग़ज़ का ख़र्च ।

दुःख की बात है, इस देश को अपनी अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रायः दूसरों का मुँह ताकना पड़ता है । काग़ज़ ही को लीजिए । कोई ७२,००० टन काग़ज़ यहाँ साल भर में ख़र्च होता है । याद रहे, एक टन कुछ अधिक २७) मन का होता है । इसमें से सिर्फ़ २६,००० टन काग़ज़ यहाँ बनता है, शेष बाहर से आता है । सन् १९१३ में यहाँ काग़ज़ की सिर्फ़ ११ मिलें थीं । इनमें भी दो बन्द थीं । जर्मनी, अमेरिका के संयुक्त राज्य, फ़्रांस आदि की बात तो अलग रही । क्योंकि वहाँ तो उस साल क्रम से ७८८, ९१९ और ३२१ मिलें काग़ज़ की जारी थीं । हालैंड और बेलजियम तक में अड़तालीस अड़तालीस मिलें थीं । ये दोनों देश मिल कर, शायद, हमारे युक्त-प्रान्त से भी छोटे होंगे । भारत में काग़ज़ बनाने की कच्ची सामग्री बहुत पैदा होती है । तिस पर भी वह अपने लिए भी काफ़ी काग़ज़ तैयार नहीं कर सकता । कारण यह है कि काग़ज़ तैयार करने के काम में जो रासायनिक सामग्री दरकार होती है उसके लिए उसे दूसरों का मुँह देखना पड़ता है । ऐसे धान्य-सम्पन्न विशाल देश की यह हीनता बहुत ही सन्तापकारिणी है ।

पहले यहाँ प्रति वर्ष कोई दो करोड़ रुपये का काग़ज़, पेस्टबोर्ड (जिनके ताश, दफ़्ती आदि चीज़ें बनती हैं) और लिखने-पढ़ने का सामान बाहर से आता था । पर सन् १९१४-१५ में यह माल बहुत कम आया । कम आये हुए माल में सिर्फ़ काग़ज़ और पेस्टबोर्ड ही सबसे कम आया । अतएव यह समय भारत में काग़ज़ के कारख़ानों की उन्नति के लिए ख़ूब अनुकूल था । पर, वर्तमान महायुद्ध के कारण बाहर से आनेवाला माल बहुत महँगा हो गया । इस कारण हमें चुपचाप मुँह ताकते हुए रह जाना पड़ा । यदि बाहर से आने वाली सामग्री हमें यहीं मिल सकती तो इस अनुकूल अवसर का सदुपयोग करके हम अपने अभाव की बहुत कुछ पूर्ति कर सकते । क्या ही अच्छा हो जो हमारे देश के व्यवसायी अपनी आवश्यकताओं और अभावों का ज्ञान प्राप्त करके उनकी पूर्ति का दृढ़ता-पूर्वक प्रयत्न करें । सच तो यह है कि यह बात बिना औद्योगिक और वैज्ञानिक शिक्षा के नहीं हो सकती । और इस शिक्षा की प्राप्ति के बहुत ही कम साधन इस देश में हैं । और न करें तो न सही, यहाँ के धनी व्यवसायियों को इस ओर अवश्य ही दत्त चित्त होना चाहिए ।

९—एक महा भयङ्कर मांस-भक्षी प्राणी, मीगलासुर ।

मार्च १९१६ की सरस्वती में एक विराटकाय जलचारी

पाये हैं। विलायत के कितने ही समाचार-पत्रों की राय है कि जो पद आपको दिया गया है उसके आप सर्वथा योग्य हैं। तथास्तु।

११—अध्यापक जगदीशचन्द्र की गवर्नमेंट-द्वारा सुप्रतिष्ठा।

कलकत्ते के अध्यापक डाक्टर जगदीशचन्द्र वसु महाशय के अद्भुत आविष्कारों का समाचार सरस्वती में कई बार प्रकाशित हो चुका है। अध्यापक महाशय सरस्वती जैसी तुच्छ पत्रिका के ग्राहक हैं, यह हम लोगों के लिए गर्व की बात है। कुछ समय हुआ, गवर्नमेंट ने आपको योरप और अमेरिका भेजा था। वहाँ आपने कई देशों की सैर भी की और उद्भिज्ज-जीवन-सम्बन्धी नूतन नूतन तथ्यों का संवाद सुना कर और प्रयोग द्वारा उनकी सत्यता सिद्ध करके बड़े बड़े विज्ञान-विशारदों को चकित भी कर दिया। अब आप भारत को लौट आये हैं। आपकी योग्यता, विद्वत्ता और अलौकिक गवेषणाशालिनी प्रतिभा पर गवर्नमेंट भी मुग्ध हुई है। उसने आपका कार्य्यकाल ५ वर्ष के लिए बढ़ा दिया है। इस अवधि के उपरान्त आप कलकत्ते के प्रेसिडेंसी कालेज के अध्यापक-पद से अलग होंगे। इस कार्य्य-काल की वृद्धि के साथ ही साथ नवीन तथ्यों की खोज करने के निमित्त गवर्नमेन्ट ने अध्यापक महाशय के लिए कई सुभीते भी कर दिये हैं। अब गवर्नमेंट आपको ५० हजार रुपया साल वेतन देगी। इस रकम में आपके सहायक कर्म्मचारियों का वेतन भी शामिल है। इस के सिवा गवर्नमेंट ने २५ हजार रुपया और इकमुश्त दिया है। इस रुपये से डाक्टर जगदीशचन्द्र एक परीक्षागार और उसी के सम्बन्ध में एक कारख़ाना खोलेंगे। परीक्षागार में नूतन नूतन तथ्यों की खोज और जाँच होगी, और कारख़ाने में यन्त्र इत्यादि सामग्री तैयार होगी। गवर्नमेंट ने एक बात और भी की है। उसने उद्भिज्ज-जीवन की कार्य्य-प्रणाली के सम्बन्ध में और भी गहरी जाँच करने के लिए कलकत्ता और दार्जिलिङ्ग के पास दो बाग़ीचे भी उन्हें दिये हैं। आशा है, इस सारी सामग्री और सहायता को पाकर डाक्टर महाशय भारतवर्ष के प्राचीन ऋषियों के इस सिद्धान्त को और भी दृढ़ता-पूर्वक सिद्ध कर देंगे कि इस जड़-चेतन जगत् की सञ्चालना करनेवाली और उसमें समान रूप से व्याप्त कोई एक ही अनिर्वचनीय शक्ति है। उसे आप चाहे ईश्वर कहिए, चाहे आत्मा, चाहे परमात्मा, चाहे परब्रह्म। वह सब में सदा जागरूक है। अतएव—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

१२—यू० राय का परलोकवास।

हिन्दी, बँगला और अँगरेज़ी के सामयिक साहित्य के प्रेमी यू० रे या यू० राय से अवश्य ही परिचित होंगे। ऐसा कौन सचित्र पत्र होगा जिसने इनके बनाये हुए ब्लाकों के द्वारा अपने कलेवर को चित्रों से अलङ्कृत न किया हो। इनके ब्लाक पहले सरस्वती में भी बहुत निकलते थे। अब भी कभी कभी चित्रों के नीचे पाठकों ने "U. Ray" छपा हुआ देखा होगा। ये राय महाशय परलोकगामी हो गये, यह दुःख की बात है। गत २० दिसम्बर को इनकी मृत्यु हुई। मरने के समय इनकी उम्र कोई ५२ वर्ष की थी। इनका पूरा नाम था—उपेन्द्र-किशोर राय, बी० ए०। ये मैमनसिंह ज़िले के रहने वाले थे। लड़कपनही से इन्हें चित्र विद्या और सङ्गीत का शौक़ था। बँगला लिखने का अभ्यास इन्होंने थोड़ी ही उम्र से किया था। वह धीरे धीरे बढ़ता ही गया। बच्चों के पढ़ने योग्य छोटे और पुस्तकें लिखने में ये सिद्ध-हस्त थे। छेलेदेर कथा और टुनटुनीर बई इनकी बड़ी अच्छी पुस्तकें हैं। पहली पुस्तक में उन जीवधारियों का वर्णन है जो नष्ट हो गये हैं और जो मनुष्य-सृष्टि के पहले पृथ्वी पर विद्यमान थे। दूसरी पुस्तक में बड़ी ही मनोरञ्जक कहानियाँ हैं—ऐसी मनोरञ्जक जैसी कि "शेख़-चिल्ली" की कहानियाँ हैं। रामायण और महाभारत के कितने ही आख्यानों को इन्होंने कहानी के रूप में बच्चों के लिए लिखा। उनका भी बड़ा आदर है। सन्देश—नाम का एक सचित्र मासिक पत्र भी इन्होंने बच्चों के लिए बँगला में निकाला। उसका ख़ूब प्रचार हुआ। अपनी सचित्र पुस्तकों के चित्र ये स्वयं बनाते थे। पुस्तकों और पत्रों में अच्छे चित्र न निकलते देख इनका ध्यान हाफ़्टोन चित्र बनाने की ओर गया। १८९५ ईसवी में इन्होंने आवश्यक यन्त्र मँगा कर कलकत्ते में इस प्रक्रिया द्वारा चित्रों के ब्लाक बनाना आरम्भ किया। इस काम में इन्होंने इतनी उन्नति की कि योरप और अमेरिका तक में इनका नाम हो गया। बड़े बड़े नामी विद्वानों और चित्र-विद्या-विशारदों ने इनकी प्रशंसा की। फ़ोटोग्राफ़ी से सम्बन्ध रखने वाले विलायती सामयिक पत्रों ने अनेक बार इनका

शेष की प्राचीन मूर्ति।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पुस्तक-परिचय।

१—आरोग्यता प्राप्त करने की नवीन विद्या। डाक्टर लुई कूने की सुप्रसिद्ध पुस्तक "Now Science of Healing" का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं, मुरादाबाद के ज्योतिष कृष्णस्वरूप, बी० ए०, एम-एस० सी०। प्रकाशक हैं, पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा, किसरौल, मुरादाबाद। मूल्य २॥) बिना जिल्द की कापी का और ३॥) जिल्ददार का। पृष्ठ-संख्या १५१। साँची बड़ी। डाक्टर लुई कूने की जल-चिकित्सा ख़ूब प्रसिद्ध है। यद्यपि जल-चिकित्सा का उल्लेख हमारे यहाँ के ग्रन्थों में भी मिलता है और योरप के विद्वान् भी बहुत प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में जल-चिकित्सा को मानते आये हैं। पर इस चिकित्सा को विज्ञान का रूप देनेवाले जर्मनी के निवासी डाक्टर लुई कूने ही हैं। इस चिकित्सा का संक्षिप्त हाल बहुत पहले सरस्वती में—"जल-चिकित्सा" के नाम से निकल चुका है। वह संक्षिप्त विवरण पुस्तकाकार भी निकल चुका है और इंडियन प्रेस (प्रयाग) से मिलता है। ज्योतिष कृष्णस्वरूपजी ने डाक्टर लुई कूने के समग्र ग्रन्थ का उर्दू-अनुवाद, कई वर्ष हुए, प्रकाशित किया था। उर्दू-पुस्तक को लोगों ने ख़ूब पढ़ा। उसके दो संस्करण निकल चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी उर्दू अनुवाद का हिन्दी-अनुवाद है। पुस्तक में मूल पुस्तक का कोई विषय नहीं छूटने पाया। रोगों की उत्पत्ति और उनकी चिकित्सा आदि का सविस्तर वर्णन है। विषय को समझाने के लिए चित्र भी दिये हुए हैं। डाक्टर लुई कूने का मत एलोपैथी डाक्टरी से नहीं मिलता। वे सब रोगों का एक ही कारण मानते हैं। उस कारण का नाम उन्होंने अपनी परिभाषा में "विजातीय द्रव्य" रक्खा है। भिन्न भिन्न रोग इसी "विजातीय द्रव्य" के कारण उत्पन्न होते हैं। रोग का कारण एक है, तब चिकित्सा भी एक ही होनी चाहिए। डाक्टर कूने ने जल को ही सारे रोगों का नाशक माना है। इस विषय का इस पुस्तक में अच्छी तरह निरूपण किया गया है। अनुवाद में उर्दू का ढँग बना है। दूसरे संस्करण में यह ढँग बदल जाना चाहिए और भाषा में संशोधन कर देना चाहिए।

भाषा में अभी कहीं कहीं जो दोष हैं वे पुस्तक की उपादेयता को कम नहीं करते। ज्योतिषजी ने यह बड़े पुण्य का कार्य्य किया है। इसके लिए उनको अनेक साधुवाद। पुस्तक प्रकाशक और ग्रन्थकर्त्ता दोनों से मिलती है।

ज्वालादत्त शर्म्मा।

☼

२—जेल-प्रेस, जयपुर, की दो पुस्तकें। सेठ बंशीधरजी जेनाम ने जयपुर के जेल-प्रेस में छपी हुई दो पुस्तकें भेजने की कृपा की है। एक है—श्रीमद्भगवद्गीता। मुन्शी हरीराम भार्गव ने गीता का अनुवाद जो उर्दू में किया है उसी का यह हिन्दी-रूपान्तर है। इसके रूपान्तरकार पण्डित छोटेलाल हैं। गीता के अठारहों अध्यायों का मतलब इसमें, कथा के ढँग पर, लिखा गया है। भाषा सीधी-सादी सबके समझने योग्य है। संस्कृत-शब्दों के रूप कहीं कहीं बिगड़ गये हैं, पर इससे भावार्थ समझने में बाधा नहीं आती। स्त्रियाँ तक इसे पढ़ कर लाभ उठा सकती हैं। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ६८, मूल्य ६ आने है। दूसरी पुस्तक है ब्रह्मदर्पण है। महात्मा नीलकण्ठ ब्राह्मण ने योग का जो तत्त्व श्रीयुत हरीरामजी भार्गव को समझाया था उसी को भार्गवजी ने गुरु शिष्य के संवाद रूप में इसमें लिखा है। महात्माओं के उपदेश यों ही अनमोल होते हैं, फिर अनुभव से जाने गये योग-सिद्धान्तों का कहना ही क्या है। इसका भी आकार बड़ा, पृष्ठ संख्या ४८, मूल्य २½ आना है। दोनों पुस्तकें—सुपरिंटेंडेंट, जेल, जयपुर, से मिल सकती हैं।

☼

३—मिथिलादर्पण। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २१०+१६+६+२, मूल्य १ रुपया है। लेखक—श्रीयुत रासबिहारीलाल दास, मधी। लेखक ही से प्राप्य। यह इस पुस्तक का पहला खण्ड है और ५ परिच्छेदों में विभक्त है। पहले परिच्छेद में मिथिला का साधारण प्राचीन इतिहास है; दूसरे में यहाँ के लोगों का संक्षिप्त वृत्तान्त है; तीसरे में वर्तमान मिथिला का वर्णन है; चौथे में पञ्जी प्रबन्ध का उपाख्यान और पाँचवें में महाराजाओं की लघु सूची है। मिथिला से सम्बन्ध रखनेवाली प्रायः सभी नई-पुरानी बातों का समावेश इसमें है। इस विषय की यह बड़ी अच्छी पुस्तक है और बड़े परिश्रम से लिखी गई है। भाषा बिहारीपन लिये हुए है। आरम्भ में १६ पृष्ठों का एक शुद्धिपत्र लगाना पड़ा है।

पर इसमें गिरिजाबाई ने मार्मिक विचार किया है। आपकी राय है—"स्त्रियों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जिससे उन्हें मनोरञ्जन के साथ व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान सहज में हो जाय और उसका उनके शरीर और म..पर बुरा परिणाम न हो"। यह राय बहुत ठीक है।

☼

१०—सनातन-ज्ञान। आकार छोटा, जिल्द बँधी हुई, पृष्ठ-संख्या ३६६, मूल्य अज्ञात। श्रीमती एनी बेसंट ने अँगरेज़ी में एक पुस्तक लिखी है। उसका नाम है—एन्शन्ट विज़डम (Ancient Wisdom) प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं—रायबहादुर पण्डा बैजनाथ बी॰ए॰। बालाघाट (मध्यप्रदेश) के पते पर आपही को लिखने से शायद यह पुस्तक मिलती है। थियासफ़ी की दृष्टि से अध्यात्म विद्या का निरूपण इसमें किया गया है। और और बातों का वर्णन भी इसमें है। इसके विषय हैं—भूलोक, भुवर्लोक, प्रेतलोक, मनोलोक, निर्वाणलोक, पुन-र्जन्म, कर्म, यज्ञ, नियम, ऊर्ध्वगमन और विश्वोत्पत्ति। स्वर्ग का वर्णन भी इसमें है। थियासफ़ी में उसका नाम है देवचन। सृष्टि-रचना, इहलोक, परलोक, मोक्ष, पुनर्जन्म आदि के सम्बन्ध में थियासफ़िस्ट लोगों की साधारण रूप में और श्रीमती बेसंट की विशेष रूप में क्या सम्मति है, यह जिसे जानने की इच्छा हो वह इस पुस्तक को अवश्य पढ़े। जो लोग अँगरेज़ी नहीं जानते, पर थियासफ़ी के अनु-यायियों के अनुसार जन्म-मरण और जगदुत्पत्ति आदि का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उनके लिए यह अनुवाद बड़े काम का है। भाषा साधारण है।

☼

११—श्रीभक्तामर-कल्याणमन्दिर-स्तोत्र। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य २ आने, मिलने का पता—आत्मारामजैन-पुस्तक-प्रचारक मण्डल, रोशन मुहल्ला, आगरा। जैन-धर्म सम्बन्धी साहित्य में ये दो स्तोत्र बहुत प्रसिद्ध हैं। भक्तामर-स्तोत्र के कर्ता मानतुङ्गाचार्य हैं और कल्याणमन्दिर के कर्ता कुमुदचन्द्र सूरि। दोनों में चवा-लीस चवालीस श्लोक हैं। दोनों का वृत्त वसन्ततिलक है। बड़े ही सरस और भक्ति-रस-परिप्लुत स्तोत्र हैं। बार बार पढ़ने पर भी फिर फिर पढ़ने को जी चाहता है। इन स्तोत्रों के प्रत्येक श्लोक के नीचे किसी ने मूल का भावार्थ भी हिन्दी में लिख दिया है। यह सोने में सुहागा हो गया है। छपने में कहीं कहीं श्लोकों में अशुद्धियाँ रह गई हैं। अगले संस्करण में यह त्रुटि दूर हो जानी चाहिए।

☼

१२—राजा राममोहन राय। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ११२, जिल्द बँधी हुई, मूल्य ६ आने, अनुवादक अमृतजी तुलसीराम ठाकुर, भड़गादी, बम्बई, प्रकाशक—सस्तु साहित्यवर्धक कार्यालय, बम्बई, से प्राप्य। श्री युत वी॰ बी॰ केलकर की लिखी हुई मराठी में एक पुस्तक है। उसी के आधार पर राजा राममोहन राय का यह चरित गुजराती में तैयार किया गया है। संक्षिप्त होने पर भी इसमें राजा साहब के चरित की सभी प्रधान प्रधान घटनाओं का वर्णन आ गया है। राजा साहब की योग्यता, विद्वत्ता, अध्यवसाय, देशा-भिमान, स्वातन्त्र्य-प्रेम, धर्म्मभाव आदि का वर्णन इस पुस्तक में पढ़ कर उनके विषय में पढ़ने वाले के मन में बहुत बड़ी पूज्य बुद्धि उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। ऐसे महात्मा का चरित एक नहीं, अनेक बार पाठ करना चाहिए।

☼

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी मिल गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) शिशु-रक्षा—लेखक, नैनीताल-निवासी पं॰ दुर्गा-दत्त पन्त।

(२) चैतन्य-हिन्दी-सभा (गुलज़ारबाग़ पटना) का तृतीय वार्षिक विवरण—प्रेषक, मन्त्री, चैतन्य-हिन्दी-सभा, पटना।

(३) श्रावक-व्रत-पत्रिका—प्रकाशक, केसरी मलुकचन्द पदा-बन्द, पालनपुर।

(४) गुरु-भणित-रीति—लेखक, राममाई कालिदास परेख, सूरत।

(५) फिजी मेंट्रोतीस मार्च २१ वर्ष—प्रेषक, पण्डित तोताराम सनाढ्य।

(६) श्रीजानकीउत्पत्ति—लेखक, मनोहरदास वैष्णव, ग्राम, बिलासपुर।

(७) कामिकासंसवसिद्धान्त—लेखक, पण्डित रामसेवक मिश्र, कमलापुर। (सीतापुर)

डोंगरे का
बालामृत.

असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी नं० १ इनाम

मुफ़्त लुटाते हैं

मुफ़्त लुटाते हैं

ख़ुशबूदार रमेशसाबुन एक वैज्ञानिक रीति से बनाया जाता है जो सिर्फ़ ३-४ मिनट में बग़ैर जलन या तकलीफ़ के बालों को उड़ा कर जिल्द को मुलायम और ऐसा चमकदार कर देता है मानो बाल वहाँ कभी थे ही नहीं। रमेशसाबुन दाद, खाज, और ज़हरीले जानवरों के विष को भी बात की बात में खो देता है इसी सबब रमेशसाबुन के हज़ारों बक्स बिक रहे हैं। रमेशसाबुन बड़े बड़े राजे महाराजे, सेठ साहूकारों के मकान तक आदर पा चुका है। तीन टिकिया मय ख़ूबसूरत बक्स ।।।) बारह आना वी० पी० ख़रचा ।-) लेकिन जो साहब चार बक्स क़ीमती ३) तीन रुपया एक साथ ख़रीदेंगे उनको एक असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी मुफ़्त नज़र करेंगे। अगर आपका दिल चाहे तो घड़ी को बेच कर साबुन या साबुन को बेच कर घड़ी मुफ़्त बना सकते हैं। वी० पी० ख़रचा ।≈)

पता—एल० आर० गुप्ता

(बी ब्रांच) स्वामीघाट, मथुरा।

विज्ञापन

भजन, साखी, उपदेश चौबीस महात्माओं के देश देशान्तर से दुर्लभ लिपियों की नक़ल करा कर अलग अलग जीवन-चरित्र और टिप्पणी सहित छापे गये हैं—कबीर साहिब, तुलसी साहिब (हाथरसवाले) दादू दयाल, पलटू साहिब, जगजीवन साहिब, चरनदासजी, गरीबदासजी, रैदासजी, दरिया साहिब, मीरा बाई, सहजो बाई, इत्यादि।

एक संग्रह साखियों का और दूसरा शब्दों का छापा गया है। जिस में ऊपर लिखे हुए महात्माओं के थोड़े थोड़े भजन और साखियों के सिवाय सूरदासजी, गुसाईं तुलसीदासजी, काष्ठजिह्वा स्वामी आदि आठ महात्माओं की चुनी हुई बानी संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित छपी है।

जो रसिक जन चाहें पूरी फ़िहरिस्त बेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद के मैनेजर को लिख कर मँगा लें॥

लेख-सूची ।

चित्र-सूची ।

नई बात !

अनेक व्यापार-कुशल लेखकों की लेखनी से लिखे गये व्यापारोपयोगी लेखों से विभूषित

व्यापारी

का

विशेष अङ्क शीघ्र ही प्रकाशित होगा

यह वही व्यापारी है जिसकी सत्समालोचना सरस्वती-सम्पादक पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी इस पत्रिका में कर चुके हैं, जो कमर्शल-प्रेस, जुही-कानपुर से हर महीने निकलता है, और जिसका वार्षिक मूल्य सिर्फ़ १।) है।

विशेष अङ्क का मूल्य ६ आने।

मिलने का पता—मैनेजर "व्यापारी"

कमर्शल-प्रेस, जुही-कानपुर।

विज्ञापन

भारत के सुधार की नीव किस ने डाली ?

सिद्ध योगि स्वामी दादूदयाल ने। उनकी वाणी की पुस्तक मँगा कर देखो, जिसे राय साहेब पंडित चंद्रिकाप्रसाद त्रिपाठी ने शोध कर टीका सहित संपादित किया है।

६६० पृष्ठ रायल, बम्बई का टाइप, चिकना काग़ज़, सुनहली जिल्द, मूल्य ५॥) रुपये।

जोन्सगंज अजमेर में

[illegible]

खुली चिट्ठी

लीजिये ! जो चीज़ हिन्दी भाषा में कमी थी ही नहीं यह भी अब छप कर तैयार है। कोई भी हिन्दी पढ़ा ऐसा न होगा जो इनसे पूरा पूरा लाभ न उठा सके। ज़मींदार, नम्बरदार, तहसीलदार, सेठ, साहूकार, पटवारी, ठेकेदार, ओवरसियर, मिस्त्री व मालिक मकानों के लिये तो यह दो रत्न समझिये। आप ज़रूर देखिये—

१ "सिविल इंजीनियरिंग" इसमें नये मकान बनाने, पुरानों की मरम्मत कराने के कुल सामान, ईंट पत्थर चूना कंक्रीट लकड़ी आदि का खुलासा बयान है। सब तरह के कच्चे पक्के कुए और तालाब बनवाने, मरम्मत कराने और उनसे खेतों में पानी लेने के नये नये तरीक़े चित्र दे दे कर समझाये हैं। इसमें सड़कों के बनाने, मरम्मत कराने का भी पूरा बयान है। इन सब के अलावा और भी अनेक उपयोगी बातों का बयान है। सचित्र पक्की जिल्द का १।)

२ "सर्वेइंग और लेवलिंग" मू० ॥|)
इसमें अनेक चित्र व नक़शे दे दे कर जरीब, परकार, सरसा (प्लेनटेबिल) और लेविल आदि सब तरह की पैमायशों के बड़े ही आसान तरीक़े बताये गये हैं। पुस्तक अनूठी है।

पं० निहालचन्द्र गौड़, १५० माधव कालेज
Ujjain उज्जैन (C.I.

नक़ली से सावधान असली ख़रीदिये। अमली वही हैं जिनको कई प्रदर्शिनियों ने कदर बतलाया है।

हाथरस के असली पक्के चाकू।

विलायती चाकुओं से कहीं बढ़ कर अच्छे सस्ते फ़ैशनेबिल और मज़बूत हैं। की० लकड़ी मूठ ॥) ।=) ।) =) -) चंदन मूठ ॥-) ।-) ।) ॥) =)॥ =) -)॥ दो फना ।=) ॥।) शिकारी १।) मरोता ।=) ॥) उस्तरा ।) ॥) १) पवित्र घड़िया दोंग ८) १०) सेर बाल उड़ाने का साबुन तीन टिकी ॥=) डा० म० ।) पता—भारतहितकारी कार्यालय नं० ७०

असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी नं० १ इनाम

मुफ़्त लुटाते हैं

मुफ़्त लुटाते हैं

ख़ुशबूदार रमेशसाबुन एक वैज्ञानिक रीति से बनाया जाता है जो सिर्फ़ ५-७ मिनट में बग़ैर जलन या तकलीफ़ के बालों को उड़ा कर जिल्द को मुलायम और ऐसा चमकदार कर देता है मानो बाल यहाँ कभी थे ही नहीं। रमेशसाबुन दाद, खाज, और ज़हरीले जानवरों के विष को भी बात की बात में दो देता है इसी सबब रमेशसाबुन के हज़ारों बक्स बिक रहे हैं। रमेशसाबुन बड़े बड़े राजे महाराजे, सेठ साहुकारों के मकान तक अंदर पा चुका है। तीन टिकिया मय ख़ूबसूरत बक्स ।॥) बारह आना वी० पी० खरचा ।-) लेकिन जो साहब चार बक्स क़ीमती ३) तीन रुपया एक साथ ख़रीदेंगे उनको एक असली रासकोप सिस्टम जेबी घड़ी मुफ़्त नज़र करेंगे। अगर आपका दिल चाहे तो घड़ी को बेच कर साबुन या साबुन को बेच कर घड़ी मुफ़्त बचा सकते हैं। वी० पी० ख़रचा ॥=)

पता—एल० आर० गुप्ता

(बी ब्रांच) स्वामीघाट, मथुरा।

कार्ड साईज़ ४।+३। दाम सिर्फ़ ४

तसवीर उतारने का

छुपा कॅमेरा।

अभी विलायत से नया कमेरा आया है जिससे छोटा बच्चा भी फोटो उतार सकता है। भागता बैल, उड़ती चिड़िया, दौड़ती रेलगाड़ी किसी प्रकार की तस्वीर फ़ौरन उतारी जा सकती है। फोटू उतारने का काम हर एक को अपने अपने घर बैठे हम सिखाते हैं। कमेरे के साथ म्युफाईंग्लास, ग्राउन्ड ग्लास, डबल डार्क स्लाईड, प्लेट, दवाई साथ दाम सिर्फ़ ४) डाक-महसूल ।=)

छोटेलाल छगनलाल महाजन,

बिना तकलीफ़ बाल उड़ाने का

बादशाही साबुन

यह साबुन जिस जगह पर लगाया जाता है, उस जगह के बाल बड़ी सफ़ाई से दूर हो जाते हैं, जिल्द को नर्म बनाता है, चूना हरताल का मेल नहीं है। दाम तीन टिकियों के बक्स का १) डाक महसूल ।) हर एक गाँव में एजेंटों की दरकार है।

हर जगह पर मिलता है, धोकेबाज़ों से बचना, हर एक टिकियों पर रजिस्टर नं० ५२९ देख कर लेना। सोल एजेंट

सी० सी० महाजन एन्ड कंपनी,

डॉंगरे का
बालामृत.

से बादशाही फ़ौज को हरा कर क्रमशः ८ क़िले छीन लिये। इन क़िलों को अपने अधिकार में करते समय दुर्गादास को अनेक विपत्तियाँ उठानी पड़ीं। उनके सहोदर भाई, प्यारे पुत्र और परम मित्र, इन युद्धों में काम आते रहे। इतने पर भी उस वीर ने हिम्मत न हारी। अन्त में उसने जोधपुर का क़िला भी ले लिया।

दुर्गादास ने औरङ्गज़ेब के शाहज़ादे अकबर को अपनी ओर मिला लिया था। यह अपने पिता की आज्ञा से फ़ौज लेकर दुर्गादास पर चढ़ाई करने आया था। दुर्गादास ने उसकी फ़ौज को तितर बितर कर दिया। अन्त में असहाय होकर शाहज़ादे ने दुर्गादास के हाथ आत्म-समर्पण किया। दुर्गादास ने उसे यह आश्वासन दिलाया कि जीत कर दिल्ली का राज्य तुमको दिलाऊँगा। अकबर ही नहीं, औरङ्गज़ेब के दो एक सेनापति भी दुर्गादास से मिल गये थे।

यह दशा देख कर औरङ्गज़ेब दुर्गादास पर स्वयं ही चढ़ आया। दुर्गादास ने अरावली पहाड़ के दो घाटों के बीच बादशाही सेना के नाश का विचार किया। पहाड़ी के ये घाट ऐसे थे कि नीचे पड़ी हुई बादशाही सेना उनके ऊपर न चढ़ सकती थी। बादशाही फ़ौज रात को पड़ी हुई थी। इसी से राजपूतों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। घमासान की लड़ाई हुई। अन्त में बादशाही फ़ौज हार कर भागी। कहते हैं, औरङ्गज़ेब वहाँ से अकेला ही भाग निकला और दो दिन में भूखा प्यासा अजमेर पहुँचा।

इस प्रकार दुर्गादास ने मारवाड़ का सारा राज्य पुनः प्राप्त किया और राजकुमार अजीतसिंह को गद्दी पर बिठा दिया। बादशाह ने कई बार दुर्गादास को पकड़ने और मारवाड़ के छीनने की चेष्टा की, पर वह हमेशा असफल ही होता रहा। अन्त में कई सरदारों ने बीच में पड़ कर महाराज अजीतसिंह के साथ उसकी सन्धि करा दी।

स्वामिभक्त दुर्गादास जोधपुर ही में महाराज अजीतसिंह के पास रहे। अजीतसिंह भी उनका खूब आदर-सम्मान करते थे। लोग राज्य का कर्ता-धर्ता दुर्गादास ही को समझते थे। पर दुर्गादास महाराज अजीतसिंह को राज्य का स्वत्वाधिकारी बना चुके थे। राज्य के काम-काज में वे अनुचित हस्तक्षेप न करते थे। तथापि उनके कारण राज्य-प्रबन्ध में अजीतसिंह स्वतन्त्रतापूर्वक काम न कर सकते थे। इसीसे उनको यह बात खटकती थी। अतएव दुर्गादास को जोधपुर से कहीं अन्यत्र रखने का वे विचार करने लगे। यह बात दुर्गादास को मालूम होते ही वे अन्यत्र जाने के लिए तैयार हो गये। उन्होंने महाराज अजीतसिंह को सलाम किया और कहा—मैं, अपना राजपाट। जाता हूँ। अजीतसिंह पहले तो यही चाहते थे पर जब उन्होंने दुर्गादास की स्वामिभक्ति का स्मरण किया तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बहुत अनुनय करने लगे, पर दुर्गादास न रुके।

दुर्गादास जोधपुर से उदयपुर पहुँचे। वहाँ महाराणा राजसिंह के लड़के जयसिंह ने उनका बड़ा सम्मान किया। बड़े सुख और आराम से वे वहाँ रहने लगे। अन्त समय तक दुर्गादास महाराणा जयसिंह के ही पास रहे।

दुर्गादास के वंशजों को जोधपुर-राज्य में कई जागीरें मिली हुई हैं। जोधपुर-राज्य में उनका वंश बड़ा प्रतिष्ठित समझा जाता है।

मारवाड़ में दुर्गादास की कीर्ति का खूब ही गान होता है। ऐसे वीर और स्वामिभक्त सरदार का कीर्तिगान क्यों न हो?

राठोड़ दुर्गादास आसकरणोत ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

अङ्कुर-वट मन्दिर।

(प्रथम भाग का मध्यवर्ती दृश्य)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कृषि से बोला मेघ—"देता हूँ मैं तुझ को,
अपना जीवन मूल मानती रहना मुझको।"
कृषि बोली—"फिर मुझे मारते हो पत्थर क्यों ?
प्रिय हो, पर तुम कभी कभी हो निष्ठुरतर क्यों" ?

बोला घन गम्भीर-गिरा-पूर्वक भूधर से—
"करता हूँ मैं आर्द्र तुझे कैसा निज जल से ?"
भूधर ने तब कहा कि—"इसमें क्या संशय है,
मिला कहाँ से भला तुम्हें यह पावन पय है ?"

घन-माला ने कहा सूर्य के सम्मुख आकर—
"तेरा सारा तेज ढँकती हूँ मैं आकर।"
बोला रवि मुँह फेर कि—"यह उसका ही फल है,
स्वकरों से जो तुझे पिलाया मैंने जल है।"

बोली राका कि—"हे अमावस्या तू काली,
देख रही है किन्तु देख मेरी उजियाली"।
कहा अमा ने—"सत्य किन्तु मेरा क्या कम है ?
दिया गया अधिकार यहाँ दोनों को सम है" ॥

फल से तरु ने कहा कि—"मैं गौरव हूँ तेरा,
रखता है अभिमान देख सब कोई मेरा"।
"ऐसा गौरव नहीं चाहिए"—बोला तरुवर—
"इसी लिए हैं लोग मारते मुझको पत्थर" ॥

कहा बाण ने—"काम दूर तक मैं ही दूँगा",
बोला चाप—"परन्तु सहायक मैं जब हूँगा"।
मत्स्याक्षी ने कहा—"अहो सब स्वयमी परमी",
कर बोला—"है मुझे मान मात्रा ही अपनी" ॥

बोला विवश पतङ्ग दीप में जलता जलता,—
"क्या ऐसा ही स्नेह-विटप पर है यह फलता" ?
कहा दीप ने—"महा कठिन है इसका धारण,
पहले ही जल रहा यहाँ मैं जिसके कारण" ॥

बोला तुम्बक—"नीति-रीति कैसी है मेरी"
कहा तार ने—"प्रीति खींच लाती है तेरी" ॥
"मैं हूँ कैसी भ्रान्तिहारिणी!" बोली छाया।
आतप बोला—"तभी मुझे है तेरी माया ?"
कहा कूप ने—"रूप और अपहारी हूँ मैं"—
बोली वल्ली—"तभी सदैव तुम्हारी हूँ मैं" ॥

कहा मलय ने—"अहा! तेज मेरा है कितना"।
अग्नि ने उत्तर दिया कि—"मैं शीतल हूँ जितना!"
कहा व्योम ने—"भूमि! पड़ी नीचे तू रहती"—
"किन्तु शून्य तो नहीं"—व्योम से बोली धरती ॥

कहा मुरज ने—"ताल ग्राम-स्वर का गहना है।"
थपकी देकर बोल उठा कर—"क्या कहना है!"
कहा वृषभ ने—"स्कन्ध सबल सुन्दर है किसका ?"
कहा जुए ने कि—"मैं बनूँ आरोही जिसका!"
असि बोली—"है कौन सहायक और समर में ?"
"हाँ, जो रक्षा करे"—ढाल बोली उत्तर में ॥
कर्णिकार ने कहा—"रङ्ग कैसा है मेरा ?"
कहा बकुल ने—"और गन्ध कैसा है तेरा ?"

(यदा कदा)

मैथिलीशरण गुप्त।

कोर्ट आव् वार्ड्स।

(४)

स लेख में हमें, अक्टोबर १९१५ की सरस्वती में प्रकाशित, सम्पादक महाशय की सूचनाओं पर विचार करना है। आपकी सूचनाओं का संक्षेप यह है—

(१) वार्डों और मैनेजरों की एक सभा की स्थापना करना।

(२) अपनी इलाक़ों का बजट कोर्ट के मैनेजर से बनवाना।

(३) चन्दे से एक पत्र निकालना।

(४) कोर्ट की मुलाज़िमत का "प्राविडेंड" कर देना।

(५) पचीस से अधिक वेतन पर एंट्रेंस से कम लियाक़त का आदमी न रखना।

प्रश्न कुछ बाधक भी हो; परन्तु पत्र चलाने में तो लेखक कोई भी बाधा नहीं देखता। कोर्ट में न्यूनाधिक २०० रियासतें होंगी। यदि २०० प्रतियाँ उनमें विक जाना निश्चित हो जाय तो हिन्दी के एक पत्र का चलाना कठिन नहीं। सुना जाता है कि ज़िले प्रतापगढ़ (अवध) में राजा रामपालसिंह का स्थापित किया हुआ एक प्रेस अद्यावधि कोर्ट के पास मौजूद है। उससे दैनिक हिन्दुस्तान और सम्राट् नामक पत्र निकल भी चुके हैं। यदि यह सच है तो प्रेस की सभी सामग्री अब तक मौजूद होगी। इस दशा में पत्र का चलाना और भी सुगम होगा। कोर्ट का प्रेस है ही। पत्र के २०० ग्राहक मिल ही जायँगे। रही सम्पादक की बात, सो जब तक वेतनभोगी सम्पादक न रक्खा जा सके तब तक कोई मैनेजर ही इस काम को कर सकता है। ऐसा करना कदाचित् नियमविरुद्ध भी न हो। क्योंकि जहाँ डिस्ट्रिक् बोर्ड के पत्र जारी किये गये हैं वहाँ कोई डिप्टी कलेक्टर या तहसीलदार ही सम्पादक कर दिया गया है। उदाहरण के लिए हम यहराइच-गैज़ट का नाम लेते हैं। यदि सरकारी अफ़सरों के सम्पादकत्व में पत्र निकाले जाते हैं तो कोर्ट के मैनेजर के सम्पादक होने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती।

सूचना (२)—पूर्वोक्त सभा या कमिटी का वार्डों पर, विशेष करके उन वार्डों पर जो प्रबन्ध का काम सीख रहे हैं, क्या असर पड़ेगा, यह पहली सूचना में ही दिखला दिया गया है। प्रकृति का नियम है कि जैसी सङ्गति में मनुष्य बैठता है वैसा ही हो भी जाता है। यदि वार्डों को अपने से योग्यतर वार्डों को देखने और उनसे मिलने का अवसर प्राप्त होगा तो, आशा है, उनका ध्यान कुछ न कुछ अपनी उन्नति की ओर अवश्य आकृष्ट होगा। ऋणी ज़मींदारों को, तथा उनको जिनका प्रबन्ध अन्य विषयों में त्रुटिपूर्ण सिद्ध हुआ है, ऐसी सभा में सम्मिलित होने से बहुत लाभ पहुँच सकता है। पहले किसी लेख में लिखा गया है कि जब रियासत एक नियत सीमा तक ऋणी हो जाती है तब सरकार को अधिकार है कि रियासत को, मालिक की इच्छा न रहते भी, कोर्ट के प्रबन्ध में दे दे। परन्तु ऐसा करने के पहले सरकार बाध्य है कि वह ज़मींदार को एक नोटिस दे कि क्यों न उसकी रियासत कोर्ट कर ली जाय? उसी स्थल पर यह भी लिखा गया है कि यदि ज़मींदार ऋणग्रस्त हो जाने का कोई उचित कारण दिखा देता है और भविष्यत् में ऋण चुका देने का वचन देता है तो सरकार उसे अपने वचन के प्रतिपालन का प्रायः अवसर देती है। ऐसे ज़मींदार यदि मैनेजरों के निरीक्षण में कार्य्य करने के लिए बाध्य किये जायँ तो उन पर कुछ दबाव पहुँचे और कदाचित् उनकी दशा भी कुछ सँभल जाय। परन्तु मैनेजरों को बजट बना देने और परामर्श देने ही का अधिकार मिलना चाहिए। अथवा उनके बजट और परामर्श को न मानने पर, इस बात की सूचना सरकार को कर देने का अधिकार देना चाहिए। इससे अधिक अधिकार न देने से रियासत को, जिसकी भलाई के लिए यह सब किया जाता है, अपनी उन्नति करने का अवसर ही न मिलेगा। दूसरे, यह भी सम्भावना है कि मैनेजर की नेकनियती के दूषित और उलटे अर्थ लगाये जायँ या मैनेजर ही बिना कारण रियासतों पर, अपने लाभ के लिए, बेजा दबाव डालने लगें। इसी से मैनेजरों को सिर्फ़ इतना ही अधिकार मिलना चाहिए।

सूचना ४ और ५—कोर्ट की नौकरी तीन बड़े भागों में विभक्त है। (१) मैनेजर और असिस्टेंट मैनेजर (२) अमला वसूल (३) सदर दफ़्तर। तीनों प्रकार के मुलाज़िमों के नियत होने के नियम भिन्न भिन्न हैं। मैनेजर और असिस्टेंट मैनेजर अब केवल

अङ्कुर-वट मन्दिर का गोपुरम् ।

अङ्कुर-वट मन्दिर का एक कोना ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

सभी वह इन पर क़ाबू रख सकता है और अच्छा काम दिखला सकता है।
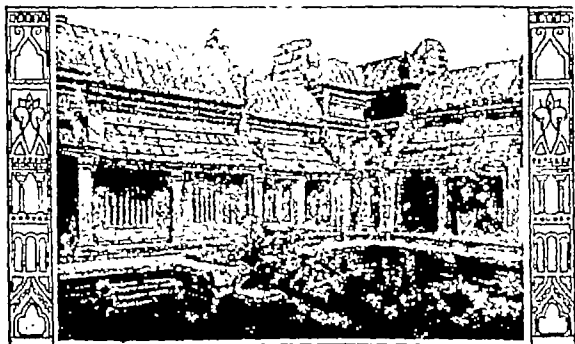
इसी तरह अहलमदों के वेतन और उनकी लियाक़त में भी उन्नति होनी चाहिए। यदि कलेक्टर के दफ़्तर के अहलमद २५) से कम पर नहीं हो सकते और कम वेतन पर गुज़र नहीं कर सकते तो कोर्ट के अहलमद कैसे कर सकते हैं। २५) वेतन देकर एंट्रेन्स पास आदमी रखने चाहिए। हेडक्लर्क अब कोर्ट आफ़ वार्ड्स स्वयं नियत करता है। अतएव इस पद को भी "प्राविन्शियल" ही सा समझना चाहिए।

सूचना ६ और ७—इन दोनों से हम सहमत हैं। इनसे हम सभी का काम देखते हैं। मैनेजर और असिस्टेंट मैनेजर को कृषि-सम्बन्धिनी हज़ारों बातों से काम पड़ता है। बहुतों के सिपुर्द फ़ार्म भी हैं। इस कारण इन बातों को अच्छी तरह समझना उनके लिए बहुत आवश्यक है। यदि नये डिप्टी कलेक्टरों को सर्वे (पैमायश) जानने की आवश्यकता है तो मैनेजरों को तो और भी है। हम कह चुके हैं कि सीर का प्रबन्ध वार्डों के हाथ से अच्छा नहीं होता। नौकरों का ख़र्च भी उससे निकलना कठिन हो जाता है। यदि वही सीर फ़ार्म के ढँग की कर दी जाय तो कोर्ट को अलग फ़ार्म न खोलना पड़े। वार्ड की ज़िम्मेदारी घट जाय और सीर की पैदावार भी बढ़े।

(८) इस विषय में बहुत मत-भेद है। कुछ मैनेजरों को ऐसे अधिकार दिये भी गये हैं। लेखक की राय में बेदख़ली माल के सब मुक़द्दमे तथा अपील, ज़िलेदारों और अपने दफ़्तर के लोगों को नियुक्त करने तथा दण्ड देने के सम्पूर्ण अधिकार, मैनेजर को मिलने चाहिए। क्योंकि वही उनका ज़िम्मेदार है। चिट्ठी-पत्री लिखने के भी सम्पूर्ण अधिकार मैनेजर को मिलने चाहिए। कलेक्टर को केवल उससे सम्मत होने अथवा असम्मति प्रकट करने का अधिकार होना चाहिए। इससे कलेक्टर का काम कम हो जायगा और उसे निगरानी के लिए समय अधिक मिलेगा। मैनेजर की ज़िम्मेदारी बढ़ने से उसे सँभाल सँभाल कर पाँव रखना पड़ेगा। यदि कलेक्टर के कुल अधिकार न भी दिये जायँ तो भी मैनेजर के अधिकारों में वृद्धि ज़रूर होनी चाहिए। १५) तक के अब नौकर कम हैं, पर मैनेजर उनके भी काम का ज़िम्मेदार है जिन पर उसका कुछ भी दबाव नहीं।

कोर्ट के मुलाज़िमों को सम्पादक महाशय का कृतज्ञ होना चाहिए। यथार्थ में यह उनका सौभाग्य है जो सम्पादक महाशय का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है।

"अभिज्ञ"

संस्कृत-साहित्य का महत्त्व।

भारत में अँगरेज़ी राज्य स्थापित होने के बाद भारतवासियों को अँगरेज़ी शिक्षा दी जाने लगी। उसके द्वारा भारतवासी अँगरेज़ी-साहित्य और विज्ञान आदि के मधुर और नवीन रसों का आस्वाद लेने लगे। पहले पहल तो अँगरेज़ी की चमक-दमक में वे इतने भूल गये और उसके द्वारा मिलनेवाले उन रसों में वे इतने लीन हो गये कि अपने घर की सभी बातें उनको निस्सार और त्याज्य जान पड़ने लगीं। विशेष कर अपने संस्कृत के साहित्य के विषय में तो उनके विचार इतने कलुषित हो गये, जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं। वे उसको अवज्ञा हेय दृष्टि से देखने लग गये। नव-विवाहिता बहू के लावण्य और हाव-भाव में भूल कर साधारण बुद्धि वाला युवक अपनी बूढ़ी माँ का अनादर करने लगता है। वह उसे अपने सुख में काँटा समझने लग जाता है। प्रायः ऐसी ही दशा उस समय के नव-शिक्षित समाज की हो चली थी। यहाँ तक कि एक नामी भारतीय विद्वान् ने, कोई पचास साठ वर्ष पहले, बड़े ज़ोर के साथ यह दावा

वे यह जानते कि संस्कृत-साहित्य का सिलसिला उससे कई गुने अधिक समय से बराबर चला आ रहा है तो न मालूम उनके आश्चर्य का पारा कितनी डिग्री चढ़ जाता। सुनिए, हमारा संस्कृत-साहित्य ईसा के कोई १२०० वर्ष पहले से, आज तक, अटूट-रूप चला आ रहा है। अर्थात् संस्कृत-साहित्य, अँगरेज़ी-साहित्य की अपेक्षा सात गुने समय से अक्षुण्ण-रूप है। हाँ, अध्यापक मैक्समूलर अलबत्ता कहते हैं कि कोई सात सौ वर्षों तक संस्कृत-साहित्य सूना दिखाई देता है, उसकी अक्षुण्णता टूटी हुई दृष्टि पड़ती है। ईसा के पहले तीसरी सदी से ईसा की तीसरी सदी तक—बौद्ध-धर्म्म के उदयकाल से गुप्त राजाओं के उदयकाल तक—वे उसे खण्डित कहते हैं। इन सात शतकों में लिखे गये जितने शिलालेख पाये गये हैं वे ऐसी भाषा में मिलते हैं जिसे प्राकृत के रूप में संस्कृत कह सकते हैं। वे चौथी सदी के बाद से संस्कृत का पुनरुज्जीवन मानते हैं।

परन्तु भाषा-सम्बन्धी परिवर्तन के कारण ही अध्यापक मैक्समूलर को यह भ्रम हुआ है। उनकी इस सम्मति का आदर विद्वानों ने नहीं किया। क्योंकि पूर्वोक्त अवधि में लिखे गये कितने ही ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं। ईसा के पहले दूसरी सदी में—पुष्यमित्र के राज्यकाल में—पतञ्जलि ने अपना महाभाष्य लिखा। चन्द्रगुप्त मौर्य्य सिकन्दर का समकालीन था। उसी चन्द्रगुप्त के मन्त्री, कौटिल्य, (चाणक्य) ने अर्थ-शास्त्र की रचना की। प्रसिद्ध नाटककार भास की ख्याति कालिदास से कम नहीं। इसी भास के नाटकों के अवतरण कौटिल्य के ग्रन्थ में पाये जाते हैं। इससे सिद्ध है कि कौटिल्य के पहले भास ने अपने ग्रन्थों की रचना की थी। कोहल, शाण्डिल्य, धूर्तिल और वात्स्य ने नाट्य-शास्त्र पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे। ये सब ईसा के पहले दूसरी सदी ही में रचे गये। महाराज कनिष्क के गुरु अश्वघोष, बौद्ध-धर्मीय महायान-सम्प्रदाय के संस्थापक नागार्जुन, नागार्जुन के शिष्य आर्य्यदेव और मैत्रेयनाथ आदि ने ईसा की पहली से लेकर तीसरी सदी तक अपने ग्रन्थों की रचना की।

देखिए, संस्कृत ग्रन्थों की रचना बराबर होती चली आई है। इन सदियों में भारत की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, साम्पत्तिक तथा शिक्षा-विषयक स्थितियों में बहुत कुछ उलट-पुलट हुआ। तिस पर भी संस्कृत-साहित्य की अटूटता न टूटी। इस दृष्टि से संस्कृत-साहित्य का यह अटूट क्रम और भी आश्चर्य्यकारक है। वह कभी टूटा ही नहीं। कभी एक प्रान्त में तो कभी दूसरे प्रान्त में, कहीं न कहीं, कोई न कोई ग्रन्थ लिखा ही गया। उत्तरी भारत में अफ़ग़ानियों ने जो उत्पात तेरहवीं सदी में मचाया था वह दुनिया में अपना सानी नहीं रखता। पर उस समय भी गुजरात और मालवे में जैनियों ने साहित्य की वृद्धि की। भारत के पश्चिमी प्रान्तों में माधवाचार्य्य ने तथा दक्षिणी प्रान्तों और मिथिला में रामानुज के शिष्यों ने भी संस्कृत-साहित्य के कलेवर को बढ़ाया। चौदहवीं सदी में सारा भारत मुग़लों और पठानों के आक्रमणों से उच्छिन्न हो रहा था। तिस पर भी कर्णाटक देश में मध्वाचार्य, द्रविड़ में वेदान्त-देशिक, मिथिला में गङ्गेश्वर और उत्कल (उड़ीसा) में तो कितने ही लेखकों ने ग्रन्थ लिख लिख कर साहित्य को पुष्ट किया।

इतना बड़ा और इतना अखण्डित ग्रन्थ-समूह क्या हमारे लिए उपयोगी नहीं? ज़रूर है। उससे हमारी कल्पना-शक्ति पुष्ट होती है, विचार करने के लिए हमें वह साधन-सामग्री देती है। उसे देख कर हमें अपने प्राचीन गौरव का अभिमान होने लगता है। उससे हम जान सकते हैं कि हमारा अस्तित्व कितना प्राचीन है। संस्कृत की वर्णमाला-रचना बड़ी विचित्र है। उसके व्याकरण की शैली अपूर्व है। उसका भाषा-सौन्दर्य्य भी बहुत अधिक है। संस्कृत-साहित्य के अवलोकन से हम यह जान सकते हैं कि बोल-चाल की भाषायें किस प्रकार बदलती रहती हैं और साहित्य की भाषा किस प्रकार अचल रहती है—उसका रूप जैसे का तैसा बना रहता है। संस्कृत-साहित्य के अध्ययन से हमको प्राचीन इतिहास का ज्ञान होता है। वह हमें बताता है कि किस प्रकार प्राचीन आर्य्य धीरे धीरे अपनी मानसिक उन्नति करते गये; किस प्रकार वे क्रम क्रम से एक से एक उन्नत तत्त्वों की खोज करते गये; किस प्रकार ज्योतिषों की पूजा करने वाले प्राचीन आर्य्य, सृष्टि की उत्पत्ति पर भी विचार करके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का ज्ञान भी प्राप्त कर सके।

संस्कृत-साहित्य का विस्तार बहुत है। वह गुरु भी बहुत है। अर्थात् उसमें ग्रन्थों की संख्या भी बहुत है और वे ग्रन्थ भी महत्त्वपूर्ण और उपयोगी विषयों पर लिखे गये

विषय पर विचार करके विपरीत-मतवादियों का भ्रम दूर करने की चेष्टा करता हूँ ।

अर्थशास्त्र ।

सबसे पहले मैं अर्थ-शास्त्र ही को लेता हूँ । क्योंकि कितने ही लोग कहते हैं कि यह शास्त्र आधुनिक है । यूरप के निवासी इसके जन्मदाता कहे जाते हैं । कोई दो ही सदियों में उन्होंने इसमें आश्चर्य-जनक उन्नति कर दिखाई है ।

भारत में शास्त्रों के मुख्य चार विभाग किये गये हैं । (१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम और (४) मोक्ष । इनमें पहले तीन का सम्बन्ध सांसारिक बातों से है और अन्तिम का धार्मिक बातों से । पहले तीनों में से सम्पत्ति-शास्त्र का सम्बन्ध सांसारिक बातों से बहुत अधिक है । संस्कृत-साहित्य में इस विषय पर बहुत बड़ा ग्रन्थ विद्यमान है । वह है कौटिल्य का अर्थ-शास्त्र । ईसा के पहले चौथी सदी में कौटिल्य ने उसकी रचना की । उसमें उसने अपने पूर्ववर्ती सम्पत्ति-शास्त्र के १० शाखा-भेदों का उल्लेख किया है । इसी एक बात से यह ज्ञात हो सकता है कि इतने प्राचीन समय में भी भारतनिवासी अच्छे राजनीतिज्ञ और सम्पत्ति-शास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे । कौटिल्य ने अपने सम्पत्ति-शास्त्र में (१) राजनैतिक सम्पत्ति-शास्त्र (२) राजनैतिक तत्त्वज्ञान (३) साधारण राजनीति (४) युद्ध-कला (५) सेना-सङ्गठन (६) शासन-कला (७) न्याय-शासन (८) कोष (९) वाणिज्य-व्यवसाय (१०) कल-कार-खानों तथा खानों आदि के प्रबन्ध का विवेचन किया है । इसे थोड़े में यों कह सकते हैं कि राज्य-प्रबन्ध के लिए सभी आवश्यक विषयों का उसमें समावेश है । गृह-प्रबन्ध-विषयक सम्पत्ति-शास्त्र पर भी वात्स्यायन ने अपने काम-सूत्र के चौथे भाग में बहुत कुछ लिखा है । उस भाग का नाम है—भार्याधिकरण । उसे देखने ही ज्ञात हो जाता है कि प्राचीन समय में हमारे यहाँ गृह-प्रबन्ध कैसे होता था । उसमें गृह-पत्नी की व्याख्या की गई है । चीज़ों की सँभाल किस तरह करनी चाहिए, नौकर-चाकरों के वेतन आदि का प्रबन्ध कैसे करना चाहिए, रसोई की व्यवस्था किस ढँग से होनी चाहिए, घर के आसपास बाग़-बग़ीचे किस तरह लगाने चाहिए, चीज़ों की रक्षा किस तरह करनी चाहिए, परिवार के लोगों से गृहपत्नी को कैसा व्यवहार करना चाहिए—इन्हीं सब बातों का वर्णन उसमें है । कृषि और वृक्ष-रोपण का वर्णन भी वराहमिहिर ने अपनी बृहत्संहिता में किया है । हमारे स्मृति-ग्रन्थों में तो कितने ही ऐसे प्रमाण हैं जिनसे ज्ञात होता है कि इन विषयों पर और भी बड़े बड़े ग्रन्थ विद्यमान थे । पालकाप्य का हस्त्यायुर्वेद और शालिहोत्र का अश्व-शास्त्र इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन भारतनिवासी पशु-पालन और पशु-चिकित्सा में भी प्रवीण थे । इन ग्रन्थों से जाना जाता है कि प्राचीन ऋषियों ने कितनी चिन्ता और कितने परिश्रम से पशुओं के स्वभाव आदि का ज्ञान-सम्पादन किया था; उनके लालन और पालन के नियम बनाये थे; उनके रोगों तथा उनकी चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया था । पाक-शास्त्र पर तो कितनी ही पुस्तकें हैं । पेड़ों और वनस्पतियों के फलों, जड़ों, छालों, पत्तों, डंठलों, फूलों और बीजों तक के गुण-धर्म्म का विवेचन उनमें मिलता है । भिन्न भिन्न जन्तुओं के मांस के गुण-दोषों का भी उनमें वर्णन है ।

शास्त्रीय विषय ।

शास्त्र का ज्ञान दो ही उपायों से प्राप्त किया जा सकता है । (१) निरीक्षण या (२) प्रयोग द्वारा । कुछ लोगों का कहना है कि भारतनिवासियों ने शास्त्रीय विषयों पर कुछ विचार किया है सही, पर प्रयोग करना वे न जानते थे । यह निरा भ्रम है । देखिए, गणित-शास्त्र में निरीक्षण ही प्रधान है । निरीक्षण ही के बल पर उसकी सृष्टि हुई है । भारतवासियों को प्राचीन समय की सब जातियों से अधिक गणित-शास्त्र का ज्ञान था । अङ्क-गणित में दशमलव की रीति का आविष्कार उन्हीं ने किया । बीज-गणित में वर्ग-समीकरण को हल करने की रीति का अनुकरण पश्चिमवालों ने भारतीयों ही से सीखा । हाँ, उसमें कुछ फेरफार उन्होंने ज़रूर कर लिया है । त्रिकोणमिति में आर्य्यों ने अच्छी उन्नति की थी । उनको अनेक प्रकार के कोणों का ज्ञान था । भारत में इस शास्त्र की उत्पत्ति यज्ञों के कारण हुई । भारत-निवासियों को यज्ञ से बड़ा प्रेम था । इसी निमित्त उन्हें यज्ञ-वेदी बनानी पड़ती थी । वेदियाँ प्रायः पक्की ईंटों से बनाई जाती थीं । इसलिए उन्हें ईंटों और वेदी की भूमि को नापने की ज़रूरत पड़ती थी । इसीसे उनको रेखा-गणित-सम्बन्धिनी भिन्न भिन्न आकृतियों का ज्ञान हुआ । यज्ञों के लिए उन्हें नक्षत्र-ज्ञान की भी ज़रूरत पड़ती थी । इससे ज्योतिष शास्त्र का उदय हुआ । ग्रीक तथा अन्य विदेशी जातियों के सम्पर्क में उन्हें इस शास्त्र के अध्ययन में

उत्तम मिलती है—कहीं गुफाओं के भीतर मन्दिरों में, कहीं दीवारों पर, कहीं ताड़ के पत्तों पर लिखे हुई पुस्तकों पर। यहाँ की संगतराशी के काम की तो सारी दुनिया तारीफ़ करती है। इसके तो बौद्ध-कालीन नमूने तक मिलते हैं। इनके सिवा प्राचीन भारतनिवासियों को और भी छोटी मोटी अनेक कलायें ज्ञात थीं।

इतिहास ।

कितने ही पुराणों में बड़े बड़े राज-वंशों का विवरण है। प्राचीन लिपियों के संग्रह से भारत के प्राचीन इतिहास-ज्ञान की प्राप्ति में ख़ूब सहायता मिल रही है। सातवीं सदी से हमारे यहाँ लिखे हुए इतिहास मिलते हैं। इनमें सबसे पहला हर्षवर्द्धन का इतिहास है। तब से भिन्न भिन्न रूपों में इतिहास का लिखना बराबर जारी रहा। नव साहसाङ्क-चरित, विक्रमाङ्क-चरित, द्व्याश्रय, रामचरित, पृथ्वीराज-चरित और राजतरङ्गिणी आदि देखने से यह बात समझ में आ सकती है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न ढंग पर इतिहास लिखे गये हैं। खोज करने से इस विषय में और भी अधिक बातें मालूम हो सकती हैं। कोई तीन सौ वर्ष पहले, पण्डित जगन्मोहन नाम के एक लेखक ने एक इतिहास-संग्रह किया। उसमें लेखक ने कई पूर्व-वर्ती संग्रह-कर्त्ताओं के नाम दिये हैं। एक ऐसा ग्रन्थ मिला भी है। वह है भविष्यपुराणान्तर्गत ब्रह्म-खण्ड। उसे देखने से इतिहास और भूगोल-सम्बन्धिनी अनेक बातें ज्ञात होती हैं। अतएव, कहना पड़ता है, संस्कृत-साहित्य में इतिहास का अभाव है, यह आक्षेप निराधार है।

तत्त्व-ज्ञान ।

भारतीय तत्त्व-ज्ञान छः भागों में बँटा हुआ है। पर इस विषय में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। वे एक दूसरे से नहीं मिलते। ख़ैर। वे दर्शन कहाते हैं। सभी दर्शनों में अध्यात्म-विद्या ही का वर्णन नहीं। वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ-विज्ञान के सिद्धान्त भरे पड़े हैं। न्याय में तर्क शास्त्र का विवेचन किया गया है। मीमांसा में धर्म-कर्म-सम्बन्धिनी प्राचीन पद्धतियों की व्याख्या है। योग-दर्शन में अन्तर्निहित शक्तियों के सदुपयोग का वर्णन है। हाँ, शङ्कर और बौद्ध-धर्मीय महायान-सम्प्रदाय के लेखकों ने अध्यात्म-विद्या अर्थात् वेदान्त का ख़ूब विवेचन किया है। महायान-सम्प्रदाय के अनुयायियों ने नीति-शास्त्र—नैतिक तत्त्व ज्ञान—के भी तत्त्वों का गहरा विचार किया है।

काव्य और नाटक ।

प्रत्येक मनुष्य-जाति में काव्य, थोड़ा बहुत, अवश्य पाया जाता है। क्योंकि जीवन-कलह से त्रस्त मनुष्य के मन को शान्ति देने में उससे बड़ी सहायता मिलती है। एक देश या जाति-विशेष का काव्य साहित्य दूसरे देश या जाति-विशेष के काव्य-साहित्य से नहीं मिलता। किसी भी जाति में साहित्य का यह अङ्ग कभी उन्नति को नहीं पहुँच पाया जितनी उन्नति को वह भारतवर्ष में पहुँचा है। किसी में एक बात की कमी है, तो किसी में दूसरी बात की। किसी में सङ्गीत का अभाव है, किसी में नाटक का, किसी में पद्य का। पर प्राचीन भारत के काव्य-साहित्य में किसी बात का अभाव नहीं। गद्य-काव्य, पद्य-काव्य, चित्र-काव्य, इसी तरह दृश्य-काव्य और श्रव्य-काव्य, कहाँ तक गिनावें प्रत्येक प्रकार का काव्य मौजूद है और प्रत्येक बात काव्य से भरी हुई है। रामायण, महाभारत और रघुवंश पौराणिक काव्य के उत्तम नमूने हैं।

नाटक, अलङ्कार, चम्पू तथा अन्य छोटे मोटे काव्य ग्रन्थों की तो बात ही जाने दीजिए। जगत्प्रसिद्ध कालिदास का रघुवंश तो दुनिया में अपना सानी नहीं रखता। पुराणों में प्रायः एक, दो अथवा इससे भी अधिक मुख्य पात्रों का वर्णन रहता है। पुराण के आरम्भ से अन्त तक उनका कार्य-कलाप दिखलाया जाता है। रघुवंश में एक विशेषता है। वह यह कि उसके मुख्य पात्र बीच ही में लुप्त होते जाते हैं। फिर भी उनका वंश, उनका कार्य, और उनकी कीर्ति की एकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। उसकी शृङ्खला खण्डित नहीं होती। यह विशेषता, यह चमत्कार, रघुवंश के सिवा और कहीं न पाइएगा।

अन्यान्य विषय ।

जो साहित्य किसी मनुष्य-जाति के सम्पूर्ण कार्यों और जीवन को प्रतिबिम्बित करता है वही पूर्ण और प्रभावशाली कहा जाता है। अर्थात् जिस साहित्य के अवलोकन से यह जाना जा सके कि अमुक जाति के कार्यों की दिशा और

और भी सहायता मिली। धीरे धीरे उन्होंने इस शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली कितनी ही नई नई बातें खोज निकालीं। उन्होंने पृथ्वी की दैनिक गति का पता लगाया। ज्योतिष-सम्बन्धी बड़े उपयोगी यन्त्रों का आविष्कार भी उन्होंने किया।

यह तो निरीक्षण-प्रधान शास्त्रों की बात हुई। अब प्रयोग-प्रधान को लीजिए। आर्यों के आयुर्वेद को देखिए, सब बात स्पष्ट समझ में आ जायगी। इस शास्त्र का ज्ञान केवल निरीक्षण से साध्य नहीं। इसके लिए बड़ी दूरदर्शिता के साथ प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। आर्यों ने असंख्य जड़ी बूटियों के गुण-दोषों का ज्ञान प्राप्त किया। इसके लिए उन्हें हिमालय जैसे अगम्य पर्वतों पर भी घूमना पड़ा। उन्होंने इस बात की गहरी खोज की कि किसी वनस्पति का कोई दोष किस अन्य वनस्पति के योग से दूर किया जा सकता है। इस निमित्त उन्होंने सैकड़ों वनस्पतियों के गुण-दोषों की परीक्षा करके उनके योग से गोलियाँ, चूर्ण, घृत और तैल आदि तैयार करने की विधि निकाली। क्या यह सब बिना ही प्रयोग किये हो गया? ईसा के कोई एक हज़ार वर्ष पहले भी भारतवासियों को मनुष्य के शरीर की हड्डियों का ज्ञान था। वे जानते थे कि शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं, कौन हड्डी किस जगह है और उसका आकार कैसा है। जानवरों की नस नस का ज्ञान भी उन्हें था। अर्थात् वे शरीर-शास्त्र के भी ज्ञाता थे। वे जर्राही में भी बड़े चतुर थे। अस्थियाँ काटने में जिन यन्त्रों का वे उपयोग करते थे उनको देखने से ही यह बात सिद्ध है। चिकित्सा-शास्त्र की सभी शाखाओं का उनको बहुत कुछ ज्ञान था। वे धातुओं और अन्य खनिज वस्तुओं का उपयोग भी जानते थे। उनसे वे अनेक प्रकार की औषधियाँ तैयार करते थे। अर्थात् रसायन-शास्त्र में भी उनका काफ़ी प्रवेश था। इस शास्त्र के प्रयोगों में प्राचीन भारतवासियों ने कितनी उन्नति कर ली थी, इसका वर्णन डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय ने अपने ग्रन्थ में बहुत अच्छा किया है। उनके बताये हुए पारे के भिन्न भिन्न उपयोग तो बहुत ही प्रशंसनीय हैं। प्राचीन भारतवासी भौतिक-शास्त्र (Physics) में भी पीछे न थे। वैशेषिक-दर्शन और कणिकावलि अथवा ज्ञानार्णवस्फोट पढ़ते ही यह बात ध्यान में आ जाती है। उनमें अध्यात्म-विद्या का उतना विचार नहीं किया गया जितना पदार्थ-विज्ञान का। वैशेषिक-दर्शन का परमाणुवाद इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने पदार्थ-विज्ञान की उन कितनी ही शाखाओं पर विचार किया था, जिनमें इतने समय बाद यूरोप ने अब बड़ी उन्नति की है।

चन्द्रकीर्ति नाम के एक लेखक ने आर्यदेव के बनाये हुए चतुःशतिका नामक ग्रन्थ पर एक टीका लिखी। आर्यदेव तीसरी सदी में और चन्द्रकीर्ति छठी सदी में थे। उसमें दो कथायें हैं। उनको पढ़ने से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में आर्यों ने यन्त्र-निर्माण में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली थी।

कला-कौशल।

हमारे यहाँ ६४ कलायें मानी जाती हैं। चौंसठ कलाओं की कई नामावलियाँ मेरे देखने में आई हैं। वात्स्यायन की एक नामावलि है। एक और का नाम है शुक्रनीति। वस्तु-कला, द्यूत-कला, शयन-कला आदि, इसके विशेष भाग हैं। एक नामावली और भी है। उसका नाम है ललित-कला। उसका टीकाकार कहता है कि ये कलायें ५१८ हैं। खेद है, उनके नाम उसने नहीं लिखे। मैं समझता हूँ, सभी औपयिकी कलाओं पर पुस्तकें लिखी गई होंगी। कितनी ही औपयिकी कलाओं पर पुस्तकें मिलती भी हैं। उन्हें सब लोग जानते हैं। सङ्गीत ही का उदाहरण लीजिए। इस पर कितनी ही पुस्तकें हैं। राम-निवासी भुवनानन्द कविकण्ठाभरण ने हिन्दुओं के शास्त्रों पर टीकायें लिखी हैं। वे शेरशाह के समकालीन थे। उन्होंने सङ्गीत-विद्या पर भी एक पुस्तक लिखी है। उन्होंने सङ्गीत शास्त्र पर पुस्तक-रचना करने वाले जिन प्राचीन लेखकों के नाम दिये हैं... कोहल ने अपने नाट्य-शास्त्र में अकेले नृत्य पर कितने ही अध्याय लिखे हैं। उनमें करण, अङ्गहार, अर्थ आदि का विवेचन किया गया है। दशरूपक नामक ग्रन्थ में भी अर्थ और नृत्य का भेद दिखाया गया है। कोहल ने, मेरे ख़याल में, नाट्य-शास्त्र की रचना दूसरी शताब्दी में की। उसने नाट्य-शास्त्र के अङ्गों और उपाङ्गों का संक्षिप्त विवेचन किया है।

हाँ, चित्रकला पर अभी तक कोई पुस्तक नहीं मिली। पर ईसा के पूर्व दूसरी सदी की चित्रकारी के नमूने ज़रूर मिले हैं। अभी से दसवीं सदी की चित्रकारी तो बहुत है।

उत्तम मिलती है—कहीं गुफाओं के भीतर मन्दिरों में, कहीं ठीकरों पर, कहीं ताड़ के पत्तों पर लिखी हुई पुस्तकों पर। यहाँ की स्थापत्य-कला की तो सारी दुनिया तारीफ़ करती है। इसके तो बौद्ध-कालीन नमूने तक मिलते हैं। इनके सिवा प्राचीन भारतनिवासियों को और भी छोटी मोटी अनेक कलायें ज्ञात थीं।

इतिहास।

कितने ही पुराणों में बड़े बड़े राज-वंशों का विवरण है। प्राचीन लिपियों के संग्रह से भारत के प्राचीन इतिहास-ज्ञान की प्राप्ति में खूब सहायता मिल रही है। सातवीं सदी से हमारे यहाँ लिखे हुए इतिहास मिलते हैं। इनमें सबसे पहला हर्षवर्द्धन का इतिहास है। तब से भिन्न भिन्न रूपों में इतिहास का लिखना बराबर जारी रहा। नव साहसाङ्क-चरित, विक्रमाङ्क-चरित, द्व्याश्रय, रामचरित, पृथ्वीराज-चरित और राजतरङ्गिणी आदि देखने से यह बात समझ में आ सकती है कि किस प्रकार भिन्न भिन्न ढँग पर इतिहास लिखे गये हैं। खोज करने से इस विषय में और भी अधिक बातें मालूम हो सकती हैं। कोई तीन सौ वर्ष पहले, पण्डित जगन्मोहन नाम के एक लेखक ने एक इतिहास-संग्रह किया। उसमें लेखक ने कई पूर्ववर्ती संग्रह-कर्त्ताओं के नाम दिये हैं। एक ऐसा ग्रन्थ मिला भी है। वह है भविष्यपुराणान्तर्गत ब्राह्म-खण्ड। इसे देखने से इतिहास और भूगोल-सम्बन्धिनी अनेक बातें ज्ञात होती हैं। अतएव, कहना पड़ता है, संस्कृत-साहित्य में इतिहास का अभाव है, यह आक्षेप निराधार है।

तत्त्व-ज्ञान।

भारतीय तत्त्व-ज्ञान छः भागों में बँटा हुआ है। पर इस विषय में भिन्न भिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। वे एक दूसरे से नहीं मिलते। और। वे दर्शन कहाते हैं। सभी दर्शनों में अध्यात्म-विद्या ही का वर्णन नहीं। वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ-विज्ञान के सिद्धान्त भरे पड़े हैं। न्याय में तर्क शास्त्र का विवेचन किया गया है। मीमांसा में धर्म-कर्म-सम्बन्धिनी प्राचीन पद्धतियों की व्याख्या है। योग-दर्शन में अन्तर्निहित शक्तियों के उद्बोधन का वर्णन है। हाँ, शङ्कर और बौद्ध-धर्मीय महायान-सम्प्रदाय के लेखकों ने अध्यात्म-विद्या अर्थात् वेदान्त का खूब विवेचन किया है। महायान-सम्प्रदाय के अनुयायियों ने भौतिक-शास्त्र—भौतिक तत्त्व ज्ञान—के भी तत्त्वों का गहरा विचार किया है।

काव्य और नाटक।

प्रत्येक मनुष्य-जाति में काव्य, थोड़ा बहुत, अवश्य पाया जाता है। क्योंकि जीवन-कलह से श्रान्त मनुष्य के मन को शान्ति देने में उससे बड़ी सहायता मिलती है। एक देश या जाति-विशेष का काव्य-साहित्य दूसरे देश या जाति-विशेष के काव्य-साहित्य से नहीं मिलता। किसी भी जाति में साहित्य का यह अङ्ग इतनी उन्नति को नहीं पहुँच पाया जितनी उन्नति को यह भारतवर्ष में पहुँचा है। किसी में एक बात की कमी है, तो किसी में दूसरी बात की। किसी में सङ्गीत का अभाव है, किसी में नाटक का, किसी में पद्य का। पर प्राचीन भारत के काव्य-साहित्य में किसी बात का अभाव नहीं। गद्य-काव्य, पद्य-काव्य, चित्र-काव्य, इसी तरह दृश्य-काव्य और श्रव्य काव्य, कहाँ तक गिनायें प्रत्येक प्रकार का काव्य मौजूद है और प्रत्येक बात काव्य से भरी हुई है। रामायण, महाभारत और रघुवंश पौराणिक काव्य के उत्तम नमूने हैं।

नाटक, अलङ्कार, चम्पू तथा अन्य छोटे मोटे काव्य ग्रन्थों की तो बात ही जाने दीजिए। जगत्प्रसिद्ध कालिदास का रघुवंश तो दुनिया में अपना सानी नहीं रखता। पुराणों में प्रायः एक, दो अथवा इससे भी अधिक मुख्य पात्रों का वर्णन रहता है। पुराण के आरम्भ से अन्त तक उनका कार्य-कलाप दिखलाया जाता है। रघुवंश में एक विशेषता है। वह यह कि इसके मुख्य पात्र थोड़े ही में लुप्त होते जाते हैं। फिर भी इसका उद्देश, इसका कार्य, और इसकी गति की एकता ज्यों की त्यों बनी रहती है। इसकी मधुरता खण्डित नहीं होती। यह विशेषता, यह चमत्कार, रघुवंश के सिवा और कहीं न पाइएगा।

अन्यान्य विषय।

जो साहित्य किसी मनुष्य-जाति के सम्पूर्ण कार्यों और जीवन को प्रतिबिम्बित करता है वही पूर्ण और प्रभावशाली कहा जाता है। अर्थात् जिस साहित्य के अवलोकन से यह जाना जा सके कि अमुक जाति के कार्यों की दिशा और

उसकी सभ्यता अमुक प्रकार की है और उसके जीवन में अमुक विशेषतायें हैं, वही साहित्य श्रेष्ठ है। यदि यह सिद्धान्त सच हो तो संस्कृत-साहित्य ही ऐसा साहित्य है जिस पर यह लक्षण घटित होता है। अपने प्राचीन समय को याद कीजिए। उस समय न काग़ज़ ही मिलते थे, न छापने की कला का ही उदय हुआ था। पर हमारा संस्कृत-साहित्य तब भी पूर्णावस्था को पहुँच गया था। और शास्त्रों की बात का तो कहना ही क्या है, संस्कृत-साहित्य में चौरशास्त्र तक विद्यमान है। भास और शूद्रक ने अपने ग्रन्थों में उसका उल्लेख किया है। चौरशास्त्र पर एक स्वतन्त्र ग्रन्थ भी मिला है। उसका लेखक भी चोर ही था। उसमें उसने चौर-कर्म का अच्छा वर्णन किया है। यह ग्रन्थ ताड़-पत्र पर लिखा हुआ है। इसी तरह बाज़ पक्षी आदि पालने पर भी एक पुस्तक मिली है। इन पक्षियों की भिन्न भिन्न जातियों, उनके पालन-पोषण के नियमों, तथा उनके उपयोगों का उसमें वर्णन है।

इस विवेचना से सिद्ध है कि संस्कृत-साहित्य कितने ही आश्चर्यों से भरा हुआ है। उसके विस्तार, उसकी प्राचीनता, उसकी पुष्टि बहुत ही कुतूहल-जनक है। ऐसे साहित्य का अध्ययन करनेवालों के मन पर क्या कुछ भी असर नहीं पड़ सकता? ज़रूर पड़ सकता है। वह अध्ययन-कर्त्ता के शील-स्वभाव को एकदम बदल सकता है। बुद्धि-सम्बन्धिनी शिक्षा प्राप्त करने में इस साहित्य के अध्ययन से बढ़ कर अन्य साधन नहीं। खेद है, ऐसे उपयोगी, ऐसे परिपूर्ण, ऐसे प्रभावशाली साहित्य का बहुत ही कम सम्मान आज तक लोगों ने किया है। पर, अब, हम इसकी महत्ता समझने लगे हैं। इससे बहुत कुछ सन्तोष होता है।

हिन्दी का काम कौन सँभालेगा ?

(१)

मिस्टर कैलाशकिशोर ने तीन दफ़े बी० ए० के परीक्षकों को चकमा दिया, और खिझाया, बल्कि खिझाया भी। तब कहीं जाके [illegible] आकर आपका नाम, तीसरी श्रेणी (Division) में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों की सूची की शोभा बढ़ा सका। कालेज में आपका यह हाल था कि आप अपने को हर एक बात में सबसे बढ़ कर समझते थे और सभी सहपाठियों से दिल में सदा जलते थे। क्योंकि, क़रीब क़रीब सभी के नम्बर हर एक विषय में इनसे अधिक आते रहते थे। कोट, पैन्ट, नेकटाई, और कभी कभी हैट से भी सुसज्जित होकर जब इनकी सवारी अकेली और जल्दी जल्दी घूमने जाती थी तब ऐसा मालूम होता था मानो साक्षात् एक लम्ब-रेखा बेचारी पृथ्वी के धरातल पर अपनी धड़ाधड़ सम-कोण बनाती हुई चली जाती है। जिस समय आप गर्वभरी चितवन से क्लास में इधर उधर मुलाहिज़ा फ़रमाते थे उस समय ऐसा मालूम होता था मानो आप के डर से क्लास के दिमाग़ में बेतरह खलबली मची हुई है। कालेज के सभी खेलों में शरीक होकर आप उनका गौरव बढ़ाते थे। सबसे बढ़िया अल्पक की निकर और ख़ास फुटबाल की सूरत का फुल-बूट, तथा रेशमी शर्ट डाटे हुए आप जब सामने से आते, और फुटबाल में "किक" मारने को बड़े ज़ोरोशोर से पैर उठाते थे तब मालूम होता था कि आज ही बस फुट-बाल बाबू साहब की रोबदार ठोकर की मार से मर मिटेगी। पर अफ़सोस, उस बदनसीब फुटबाल की हालत पर जो, इनके हज़ार प्रयत्न करने और पैरों के साथ ही हाथ तथा मुँह चलाने पर भी, कभी कभी बिना इन्हें छुए इनके पास से खिः खिः खिः करती हुई निकल जाती थी। मानो वह इनके फ़ैशन की हँसी उड़ाती थी। फुट-बाल की आवारागर्दी का यह तमाशा देख कर बहुत से दर्शक हँस पड़ते थे। परन्तु, [illegible] की बात है, हमारे बाबू साहब ने उनकी समालोचनाओं पर न कभी ध्यान ही दिया और न कभी प्रतिवाद की ही कुछ आवश्यकता समझी। हाँ, जब कभी गश खाकर आप गिर पड़ते थे तब तो जब तक [illegible] लोग फिर इस प्रमाद से बचाने को [illegible] इनके मुखड़े

बायोन-मन्दिर के कुछ मनुष्य-मुखी शिखर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पर फ़ुट-बॉल के खेल में टाँग अड़ाने का दम भरने वालों को 'फ़ाउल ! फ़ाउल !' चिल्लाते ही बनता था।

मिस्टर महाशय के फ़ैशन के विषय में भी कालेज में कुछ कम चर्चा न हुआ करती थी, क्योंकि हैट तो इनके सूखे चेहरे के साथ ख़ास तौर से "साधारणो भूपणभूष्यभावः" रखती थी—इस तरह जैसे मिट्टी का दीया अपनी दीवट के साथ रखता है। विलायत के बने हुए अट्ठारह आने वाले मफ़लर जिस दिन बाज़ार में आये उसी दिन हमारे बाबू साहब उनमें से एक ख़रीद लाये और रात को इसी सोच में बेचैन रहे कि सवेरे इस रोबदार मफ़लर का लोगों पर क्या असर पड़ेगा। कहने की ज़रूरत नहीं, दूसरे रोज़ उसे लगा कर आपने सारे मदरसे में अपने फ़ैशन की धाक और भी जमा दी। सम्पत्ति-शास्त्र की क्लास में अभी प्रोफ़ेसर साहब नहीं आये थे कि ठाली बैठे हुए लड़कों में से एक देहाती उजड्ड लड़के ने इनके मफ़लर को लक्ष्य करके कहा—यारो ! कहते हैं कि—

मफ़लर गले लगाया बताओ तो क्या अच्छा !
एक साँड़ क्यों न बाँध ली, खोती है जो जाड़ा !

यह सुन कर आपने उसे अँगरेज़ी में (क्योंकि आप अक्सर अँगरेज़ी ही में बातचीत किया करते थे) ख़ूब फटकार बताई। आपने कहा—"आज मैं प्रिन्सिपल से तुम्हारी रिपोर्ट करके इस गुस्ताख़ी का मज़ा चखाऊँगा, तुम लोग भले आदमियों में बैठने लायक नहीं। अधिक क्या कहूँ—तुम लोग भले आदमी नहीं—"

बात पूरी न होने पाई थी कि काग़ज़ों को मोड़-माड़ कर बनाये हुए गोले न जाने कहाँ कहाँ से इनके नङ्गे सिर पर तड़ातड़ पड़ने लगे। मेह एक आध ही मिनट बरसने पाया था कि प्रोफ़ेसर साहब के आ जाने से एकदम शान्ति हो गई। ग़ुस्से के मारे हमारे वीर बाबू साहब का बुरा हाल था। उनका फूला हुआ लाल लाल चेहरा उनके दिल की जलन का परिचय दे रहा था। पर उनकी यह हिम्मत न पड़ी कि प्रोफ़ेसर से कहें कि हुज़ूर ! इन काग़ज़ों के गोलों ने आज मेरे सारे कढ़े कढ़ाये बालों की मिट्टी पलीद कर दी है। मतलब यह कि विद्यार्थि-जीवन में ऐसा ही दुख उठाते उठाते आप बी॰ ए॰ पास हो गये और ला-स्कूल में पढ़ कर क़ानून पढ़ने लगे।

(२)

माँ-बाप का ख़ून चूस कर "फ़ैशनेबिल" बनने वाले बाबू कौशलकिशोर जब पहली ही बार क़ानून की प्रथम परीक्षा में लुढ़के तब उनके पिता ने साफ़ साफ़ कह दिया कि मेरे पास अब अधिक धन नहीं। तू पढ़-लिख कर होशियार हो गया। अपने कमा और खा। तेरी राज़ी आवे सो कर। मैं अब तुझे पचास साठ रुपये महीना नहीं दे सकता। जैसे और लड़के बी॰ ए॰ पास करके क़ानून पढ़ते हुए भी नौकरी करके अपनी गुज़र करते हैं वैसे तू भी अपने फ़ैशन के ख़र्च के लिए कुछ ढँग क्यों नहीं निकालता ? क्या मैंने तुझे इस लिए पढ़ाया है कि जनम भर घर पर बैठा बैठा पापड़ बेला करे !

अब बाबू साहब सोचने लगे कि क्या करूँ ? मैं और नौकरी ! मुझसे किसी की नौकरी न होगी। अगर मैं चाहूँ तो आज मुझे डिप्टी कलेक्टरी, तह-सीलदारी, आबकारी की इन्सपेक्टरी, पुलिस की डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्टी मिल सकती है। मगर मैं और नौकरी ! ये दोनों समानान्तर रेखायें हैं, जो कभी आपस में नहीं मिल सकतीं। मैं तो विकालत ही करूँगा। इलाहाबाद में ही विकालत करने में शान रहेगी। मेरे यहाँ आ पहुँचने से एक ही बात ऐसी होगी जो मुझे कुछ खटकती है। वह यह कि मेरी वजह से कई नामी नामी वकीलों की आमदनी बहुत घट जायगी। पर इसके लिए अधिक से अधिक यह हो सकता है कि मैं उनके सम्मुख शोक

प्रकाशित कर लूँ । क्योंकि उस समय तो मैं उनसे बराबरी के साथ मिलूँगा । पहले ही महीने में एक हज़ार रुपये की आमदनी बहुत बुरी न रहेगी ।

बस ऐसी ही ऐसी ऊलजलूल बातें सोचते सोचते हमारे बाबू साहब पूरे मनमोदक बन गये । क्यों न हो ? इनकी चाल-ढाल ही ऐसी थी । हिन्दी से तो इन्हें इतनी नफ़रत थी जिसकी कुछ हद ही नहीं । अँगरेज़ी के भी अख़बार आप कभी न पढ़ते थे । इसी से न तो इनमें विवेचन-शक्ति का विकास हो सका था और न विचार-शक्ति की उन्नति । पत्र-पत्रिकाओं से इनका बस इतना ही सम्बन्ध रहा था कि कालेज के पुस्तकालय में जाकर उनमें से उत्तम उत्तम चित्रों को चुपचाप फाड़ कर लाते थे और अपने कमरे की शोभा बढ़ाते थे । इनके सभी काम एक से थे । काले होते हुए भी ये इसी धुन में रहते थे कि लोग मुझे ख़ूब गोरा—यदि हो सके तो पूरा अँगरेज़—समझें । इसी मतलब के लिए—जो वस्तु ईश्वर ने इनके पूर्व-जन्म के कर्मों के अनुसार इन्हें नहीं दी थी उसकी प्राप्ति के लिए—इनके शरीर की त्वचा न जाने कितने पियर्स सोप हज़म कर गई थी और करती जा रही थी । भारतीय भाषायें, भारतीय भेष, अधिक क्या, हर एक स्वदेशी वस्तु को ये घोर घृणा की दृष्टि से देखते थे । अगर इनका बस चलता तो ये हन्टर मार मार कर सब को कोट-पतलून पहनने पर बाध्य करते । यहाँ तक कि गंगा का पानी भरने वाला कहार भी एक बिगड़ा हुआ ईसाई मालूम होता । और, विवाह कराने वाले बूढ़े पुरोहितजी भी रोमन कैथलिक पादरियों के कान काटते । घर में तथा बाहर, सभी कहीं, और सभी बातों में, पश्चिमीयता का अटल साम्राज्य देख पड़ता । भारतवर्ष सदा से अनभ्य रहा है, यह भी इनकी राय थी । हाँ, सिवा अपने निजी फ़ैशन-प्रेम के और इस बात का कोई भी सुबूत इनके पास न था ।

ख़ैर, एफ़० ए० इन्होंने एक साल और भी घर पर बैठे ही बैठे गुज़ार दिया और दूसरे साल फिर एल—एल० बी० के परीक्षार्थी बने । इधर पिता की बीमारी में इनके यहाँ का संचित धन ख़र्च हुआ जा रहा था, तो उधर आमदनी का रास्ता बिलकुल बन्द था । जोड़ तोड़ लगा कर इनके पिता (जो कचहरी में मुंसरिम थे) जो कुछ लाते थे उसकी भी अब आशा न थी, क्योंकि हज़ार प्रयत्न करने पर भी बदक़्मी ने उनका पीछा न छोड़ा । वे बिलकुल अशक्त होकर खाट पर पड़ गये । पेन्शन लेनी पड़ी और आँखों के भी लाले पड़ गये । इधर बाबू साहब एल-एल० बी० की प्रथम कक्षा में ऐसे अड़ गये जैसे एक अड़ियल टट्टू सड़क पर अड़ जाता है और आगे न बढ़ने के लिए अड़ा रहता है । थोड़े ही दिनों में डाक्टर के बिल चुकाते चुकाते घर की और भी बहुत कुछ पूँजी ख़र्च हो गई । अब बाबू साहब को भी चिन्ता हुई । क्योंकि अब इन्हें फ़ैशन में बेतरह ख़लल पड़ने लगा था । यहाँ तक कि ये सोचने लगे कि किसी मदरसे में मास्टरी मिल जाय तो बहुत अच्छा हो । लेकिन मिले कैसे ? अपने आप किसी से माँगने या अर्ज़ी भेजने से तो शान जाती रहने का डर है । दूसरा कोई ज़रिया नहीं जिसमें डौल लग सके । हिन्दुस्तानी लोग योग्यता की क़दर करना जानते नहीं । यहाँ भला हमारी योग्यता की क़दर करने वाला कौन है ! दुनिया यहाँ बेवकूफ़ है । यहाँ समझदारों की बड़ी ही कमी है । अफ़सोस !

इसी तरह विचार-सागर में गोते लगाते हुए बाबू साहब अब अक्सर उदास रहने लगे । कुछ भी थोड़े दिनों तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे । लेकिन यह देख कर कि उधर फाक़ा कर दिनोंं नहीं चल सकता, कुछ न कुछ प्रबन्ध अब करना ही चाहिए,

आप दुनिया को बुरा भला कहते हुए किसी मदरसे में मास्टरी मिल जाय, इसके लिए प्रयत्न करने लगे।

(३)

आसमान की ओर कुलसियाँ झाड़ने वाले बाबू साहब अब सब मदरसों में मास्टरी के लिए जाते हैं। पर—हमको क़ानून पढ़ने वाला ग्रेज्युएट न चाहिए—यही टका-सा जवाब पाते हैं। उदास होकर लौट आते हैं और ईश्वर को, बुरा भला कहने के बहाने, याद फ़रमाते हैं। जिन विद्यार्थियों से वे घृणा किया करते थे उनमें से कई एक एल० टी० होकर मदरसों में काम कर रहे थे। ये उनमें से कई एक के पास गये और कहा—"भाई, तुम्हारे स्कूल में अगर कोई जगह ख़ाली हो तो हमारे लिए हेड मास्टर से कह सुन दो। मेहरबानी होगी"।

कहने सुनने पर ऊपर से तो उन्होंने बहुत कुछ भरोसा दिलाया, पर कहा सुना कुछ नहीं। भला इन्होंने कब किसके साथ अच्छा सलूक किया था जो इनके साथ कोई करता? ऐसे ही एक रोज़ निराशा-भाव धारण किये, गरदन लटकाये, हैरानी और परेशानी को अपने सङ्ग लगाये ये अपने घर लौट रहे थे कि सड़क के भीतर से आती हुई रेल की घड़घड़ाहट सुन कर खड़े हो गये और बिना किसी ख़ास इरादे के यों ही ट्रिल चहलाने को उसकी ओर देखने लगे। इतने में किसी ने पीछे से इनके कन्धे पर हाथ रक्खा। देखा तो वही—"मफ़लर गले लगाया"—वाला पुराना सहपाठी दीनदयाल है, जिससे आपने, जब आप बी० ए० में थे, तभी से बोलना छोड़ दिया था। ये इसी विचार में थे कि इससे बोलूँ या नहीं, कि उसने कहा—"आप मुझसे बेफ़ायदे ख़फ़ा रहते हैं। उस समय जो कुछ मुझसे ग़लती हो गई उसे माफ़ कीजिए। क्योंकि अब मेरी वह हालत नहीं है। केवल संस्कृत ही की बदौलत मैं दो साल बी० ए० में फ़ेल हुआ। यह तो आप जानते ही हैं। क्या कहूँ, विश्वविद्यालय के........ने संस्कृत का कोर्स ऐसा मुश्किल कर दिया है कि उसका ठिकाना नहीं। भाई! मेरी हालत मैं ही जानता हूँ कि कैसे गुज़र होती है। कोई मुझे नौकरी नहीं देता। तीस तीस चालीस चालीस रुपये पर बी० ए० मारे मारे फिरते हैं। फिर भला मुझे कौन जगह देगा? आप यहाँ के पुराने रईस हैं। इस वक़्त मुझे और कुछ नहीं तो एक ग़रीब अजनबी ही समझ कर मेरी मदद कीजिए और मुझे कोई नौकरी दिला दीजिए। क्योंकि ऐसा होने से मैं प्राइवेट और पर बी० ए० का इम्तिहान दे सकूँगा"।

किसी को किसी के घर की दशा का क्या पता? इसी से दीनदयाल ने कौशलकिशोर से यह प्रार्थना की। लम्बी साँस लेकर कौशलकिशोर ने एक बार आकाश की ओर देखा—"ऐसा ही तो यह चुपचाप इनके सङ्ग लगा फिरता है और पीछा नहीं छोड़ता। मानो मुसीबत में इनकी हँसी उड़ाता है। उन्होंने कहा—"मुझे अफ़सोस है कि मैं आपकी मदद—क्योंकि मैंने भी कुछ इसी क़िस्म का शग़ल बैठे बिठाये—क्योंकि ख़ाली बैठे रहने से कुछ न कुछ करना ही अच्छा"।

इनकी बातों के ढंग से, और सबसे अधिक इनके मफ़लर पर तेल का दाग़ लगा हुआ देख कर, दीनदयाल समझ गया कि कौशलकिशोर अब वह कौशलकिशोर नहीं। उसने कहा—"यहाँ के मिशन स्कूल में सुना है कि एक जगह ख़ाली है"। यह कह कर उसने ग़ौर से कौशलकिशोर की ओर देखा। उसे ऐसा करते देख, इस डर से कि कहीं उसे मेरी यथार्थ दशा का भान न हो जाय, कौशलकिशोर सकपका गये और जल्दी जल्दी बोले—"मुझे दिली अफ़सोस है, पुरानी बातों को भूल जाइए। मुझे उनका अब कुछ ख़याल नहीं। पादरी साहब से मेरी ज़रा भी जान पहचान नहीं"। यह कह कर कौशलकिशोर ने नीची निगाह कर ली। मानो इनके

नीची निगाह कर लेने से ही दीनदयाल इनके हृदय का हाल न ताड़ सकेगा। पर आँखों ने हृदय का परदा अपनी रोशनी से प्रकाशित कर दिया। मुसीबत क्या नहीं करवा लेती?

दीनदयाल ने कहा—"ख़ैर, मेरा भाग्य, पर अगर आप मेरी सिफ़ारिश पादरी साहब तक पहुँचा सकते तो—"

बात काट कर कौशलकिशोर ने कहा—"कुछ परवा नहीं। मैं पादरी साहब से मिलूँगा और जहाँ तक हो सका तुम्हारे लिए कहूँ सुनूँगा। अगर कुछ उम्मेद हुई तो तुम्हें ख़बर दे दूँगा। परसों मिलना"।

यह कह कर बाबू साहब दीनदयाल से बिदा हुए। रास्ते में मिशन स्कूल की नौकरी और अल्प-वेतन, तथा उसके कारण होने वाली हँसी की मीमांसा करते करते बाबू साहब ने, आगा पीछा सोच कर, यही निश्चय किया कि—अच्छा देखा जायगा।

(४)

अपने बँगले के एक कमरे में पादरी साहब आराम-कुर्सी पर विराजमान हैं और, बिना किसी तरह की चिन्ता के, बहुत फ़ुरसत के साथ, अँगूठे की कुछ मदद से दो उँगलियों के बीच में दबे हुए सिगार का धुआँ उड़ा रहे हैं। इस कमरे में उतनी सफ़ाई नहीं मालूम होती जितनी कि और अँगरेज़ों के यहाँ रहती है। तीन चार छोटी बड़ी आलमारियों में बाबा आदम के समय की पुस्तकें चुनी हुई हैं। कमरे में तरह तरह की तीन चार कुर्सियों के अलावा एक गोल मेज़ है, जिस पर क़लमदान, पुस्तकें, काग़ज़, पत्र आदि ऐसे पड़े हैं मानो अभी आपस में लड़ कर बेहोश हुए हैं। पास के ताक़ में रक्खी हुई सोडावाटर की ख़ाली बोतल को देखते देखते पादरी साहब ने सिगार की एक बड़ी लम्बी चुसकी लेकर धुएँ की सहायता से मच्छड़ दल को दूर हटाया। इतने ही में एक नौकर ने आकर अदब के साथ उनके हाथ पर एक नाम-कार्ड दिया। कार्ड पढ़ कर साहब ने—"सलाम बोलो" कहा। एक मिनट के अन्दर बाबू कौशलकिशोर कमरे में दाख़िल हुए और साहब से हाथ मिला कर उनके अनुरोध से एक कुरसी पर बैठ गये। दोनों में जो बातचीत हुई उसका भाव हिन्दी में यह है—

साहब—"मैं आपसे मिल कर बड़ा प्रसन्न हुआ, पर आश्चर्य-चकित भी हुआ, क्योंकि हिन्दुस्तानी लोग हमसे मिलने में न जाने क्यों हिचकिचाते हैं। हो सकता है कि कुछ अँगरेज़ उनसे—"

बाबू—(बीच ही में) "जी हाँ, मैंने सुना है कि आप अपने मदरसे को मिडिल तक कर देना चाहते हैं"।

साहब—(मुसकरा कर) "हमारा मदरसा मिडिल तक तो बहुत दिनों से है। अब हमारा इरादा है कि शीघ्र ही उसको उन्नत करके हाई स्कूल कर दें"।

बाबू—"हाई स्कूलों की इस शहर में कमी है"।

साहब—"शिक्षा-विस्तार के लिए हाई स्कूलों की यहाँ क्या सभी जगह—आवश्यकता है। शोक है कि हिन्दुस्तानी लोग तीर्थ-यात्रा, मिथ्या दान और धर्म में जितना ख़र्च करते हैं, शिक्षा के लिए उसका चौथाई भी ख़र्च नहीं करते। हमारा मिशन ग़रीब है—हमारे पास इतना रुपया नहीं। पर, फिर भी, हम लोगों ने तीन हाई स्कूल और दो कालेज—इस शहर के अलावा—खोल रक्खे हैं। एक कालेज एफ़० ए० तक है। उसमें बी० ए० क्लास जल्द खुल जायँगे"।

बाबू—"आपका कहना बिलकुल सच है। आप ईसाई लोग हम लोगों की शिक्षा का बहुत

प्राह-खान का मन्दिर।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कुछ भार अपने ऊपर न लेते तो भारत में पढ़े-लिखों की संख्या बहुत ही कम—उँगलियों पर गिनने लायक़—होती। मुझे आपके काम से पूरी सहानुभूति है"।

साहब—"इसके लिए आपको धन्यवाद देता हुआ मैं यह कहना चाहता हूँ कि इतने पर भी हिन्दुस्तानी लोग हमसे बड़ी घृणा करते हैं। यह बात हमसे छिपी नहीं है"।

बाबू—"अधिकतर हिन्दुस्तानी बेवक़ूफ़ हैं, उनको सभ्य बनाना आप जैसे महानुभावों ही का काम है। जब वे पढ़-लिख जायँगे तब—तब—तब—"

साहब—"आपके विचार बड़े उच्च तथा उदार हैं। आपकी इस राय के लिए मैं धन्यवाद देता हूँ। आपके जैसे भारतवासी, अगर चाहें तो, उस मनमुटाव को बहुत कुछ दूर कर सकते हैं जो आपके देशवालों के हृदयों में हमारी ओर से विद्यमान है"।

बाबू—"हाँ मैंने सुना था कि आप अपने स्कूल में एक ग्रेज्युएट रखना चाहते हैं। मैं चाहता हूँ कि इस विषय में आपकी कुछ सहायता करने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ"—

साहब—"पर, हम अभी उतना वेतन नहीं दे सकते जितना कि ग्रेज्युएट माँगते हैं। हमारे यहाँ तो पचीस रुपये महीने की एक जगह ख़ाली है। अगर आपका कोई एफ़० ए० पास मित्र हो तो बताइए। क्योंकि इस वेतन में बी० ए० नहीं मिल सकता। अगर पढ़ाने का कुछ अनुभव रखता हो तो एफ़० ए० फ़ेल भी हम रख सकते हैं"।

बाबू—"मेरा इरादा है कि मैं किसी स्कूल में शिक्षक का काम करूँ"।

साहब—"आपका इरादा बहुत अच्छा है। आज कल जिसे देखो वही विकालत के समान हीन पेशे को ही पसन्द करता है। मेरी राय में ये वकील ही भारत को ग़ारत कर रहे और मुक़दमेबाज़ी फैला रहे हैं। मुझे आशा है कि आप मेरी राय से सहमत होंगे। जब हम अपने स्कूल को बढ़ायेंगे तब अवश्य ही सबसे पहले आपसे सहायता पाने की आशा रक्खेंगे"।

बाबू—(कुछ घबरा कर)—"क्या अब आप ग्रेजुएट को न रखना चाहेंगे ?"

साहब—(तीव्र तथा भौपक दृष्टि से बाबू की ओर देखते हुए) "भला पचीस रुपये में ग्रेजुएट ?"

बाबू—(सोचते हुए) "आपका कहना ठीक है। हम लोगों में स्वार्थत्याग का ज़रा भी माद्दा नहीं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस शुभ काम में आपका साथ दूँ। अतएव अगर आप तीस रुपये भी दें तो—"

साहब—"हम आपको छब्बीस रुपये दे देंगे। एक रुपया मुझे अपनी पाकट से देना पड़ेगा, क्योंकि मिशन से केवल २५) की ही मंज़ूरी है। हम ग़रीब हैं—"

बाबू—"यह वेतन तो बहुत ही थोड़ा है। अट्ठाईस रुपये से कम नहीं—"

साहब—"अच्छा, ख़ैर, हम आपको सत्ताईस रुपये दे देंगे। इससे अधिक की गुंजायश नहीं। हमें आपसे बहुत कुछ सहायता की आशा है। इस स्कूल को अपना ही समझिए।"

यह कहते कहते पादरी साहब कुरसी के तकिये पर से पीठ उठा कर अपने बल बैठ गये, और धुएँ का सिलसिला जारी रखते हुए उन्होंने अपनी तीव्र-दृष्टिरूपी कुञ्जी से बाबू की हृदय-कोठरी खोल ली, और उसमें क्या क्या सामान है, यह देख कर मन ही मन मुसकराये।

कौशलकिशोर ने अपने चेहरे पर विचार-शून्यता

की चमकदार रेखायें डालते हुए कहा—"सत्ताईस रुपये बहुत ही कम हैं।"

साहब—"शोक है, हम इससे अधिक इस समय नहीं दे सकते। लेकिन स्कूल की जैसे जैसे उन्नति होती जायगी वैसे ही वैसे आपकी वेतन-वृद्धि भी होती जायगी। इसकी हम प्रतिज्ञा करते हैं। बस, आशा है कि शिक्षा-प्रचार जैसे पवित्र काम में—जिसको कि आपके पूर्वज बिना कुछ लिये दिये ही करते थे—आप हमारी सहायता करेंगे।"

और भी थोड़ी सी ऊपरी टालमटोल करने के बाद बाबू साहब राज़ी हो गये। जिस हृदय-कोठरी का ज़िक्र ऊपर हो चुका है उसमें इस समय आशा के चूहे उछल कूद मचा रहे थे। मानो उनका हृदय-पहुआपन कम करने ही के लिए बाबू ने कहा—"मेरी इसमें हँसी होगी।"

साहब—"अच्छे काम की अगर कोई बेवकूफ़ हँसी उड़ाये तो उसका कभी ख़याल न करना चाहिए। परमेश्वर उसे कभी माफ़ न करेगा। आप ख़ातिर जमा रखिए। हम हर तरह से आपके साथ हैं। आप किसी से कुछ न कहिए। चुपचाप अपने काम में मग्न रहिए।"

बाबू—"बहुत अच्छा।"

साहब—"मैं आपको आज से अपना मित्र ही नहीं, बल्कि सहकारी भी समझता हूँ। (घुमनेवाली कुरसी का सहारा लेकर) क्या कहें, हमारी सरकार भी कभी कभी बेढब ग़लती कर जाती है। देखिए न, आज ही पायोनियर में पढ़ा है—सरकार चाहती है कि मिडिल तक, सिवा अँगरेज़ी के, सब विषय देशी भाषाओं में ही पढ़ाये जायँ! भला इससे विद्यार्थियों की कितनी हानि होगी! वे अँगरेज़ी में कितने कमज़ोर रह जायँगे! यह कमी स्कूल-कालेज के दो बरसों में कैसे पूरी हो सकेगी? खेद है कि इतनी मोटी बात भी सरकार के सलाहकारों की समझ में नहीं आती!"

बाबू—"क्या ऐसा कोई सर्कुलर होने वाला है! अगर यह बात है तो सरकार ने सचमुच बड़ी ग़लती का काम किया है।"

साहब—"पर, फिर भी, हिन्दुस्तानियों द्वारा सम्पादित कितने ही पत्र सरकार के इस कदम का अनुमोदन और उसकी प्रशंसा करते हैं। भला इस अदूरदर्शिता की भी कोई हद है! ओह, अज्ञान ही सबसे बड़ा पाप है!"

बाबू—"हिन्दुस्तानियों के पत्र अपनी मूर्खता प्रकट करने में सबसे आगे रहते हैं। इसीलिए मैं सदा से ही उनका बायकाट कर रखा है। जिन भाषाओं में केवल रद्दी पुस्तकों के ही ढेर लगे हैं उनकी ओर आँख उठा कर भी परवा न करनी चाहिए। मेरी राय में तो सब स्कूल वालों को मिल कर इस आज्ञापत्र का घोर विरोध करना चाहिए और देशी भाषायें तो स्कूल से बिलकुल ही निकाल देनी चाहिए। उनमें है ही क्या!"

साहब—"आपकी राय बहुत ठीक है। इस विषय में मेरा आपसे मतभेद है। देशी भाषायें, मेरी राय में, इतनी हीन भी नहीं जितनी कि आप समझते हैं। मेरा कहना तो यह है कि अँगरेज़ी की कमज़ोरी कैसे दूर की जा सकेगी? निस्सन्देह, सरकार से इस विषय में मैं सहमत नहीं, पर फिर भी मुझे उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ेगा। क्योंकि हमारा स्कूल ऐड पाता है। मैं ... मैं भी हठ नहीं कर सकता।

सब विषयों की पढ़ाई देशी भाषाओं में कराने का प्रबन्ध करने में कठिनता अवश्य पड़ेगी; पर सातवें और आठवें दरजे के इतिहास, गणित, भूगोल तथा अनुवाद—ये विषय आपके सुपुर्द कर देने से ही, मैं समझता हूँ, काम बखूबी चल जायगा। मैं सोचता हूँ कि हिन्दुस्तानी में इन विषयों को आपसे अच्छा हमारे यहाँ कोई भी न पढ़ा सकेगा। हमारे हेड-मास्टर भी, जो तजरुबेकार आदमी हैं, इस विषय में आपकी मदद करेंगे।"

बाबू—(घबराहट के साथ) "मैंने केवल एन्ट्रेंस तक ही उर्दू पढ़ी थी। अब तो सब भूलभाल गया हूँ। मेरी राय में आप अँगरेज़ी ही में अपने यहाँ पढ़ाई जारी रखिए।"

साहब—"सरकारी भाषा के विरुद्ध भला हम कैसे काम कर सकते हैं? मैं ख़याल करता हूँ कि, उर्दू नहीं, तो हिन्दी आप अवश्य बहुत अच्छी जानते होंगे। हमारे मदरसे में उर्दू पढ़ाने का प्रबन्ध इस साल कुछ गड़बड़ है। पुराने मौलवी साहब का इन्तक़ाल हो गया। इस कारण अधिकतर लड़कों ने हिन्दी ही ले ली है। क्योंकि अभी तक हमें कोई अच्छा मौलवी नहीं मिला; न हाल में मिलने की उम्मेद ही है। हाईस्कूल हो जाने पर तो अवश्य सब प्रकार का उत्तम प्रबन्ध करना होगा। पर अभी वैसी कुछ आवश्यकता भी नहीं।"

बाबू—(उदास होकर)—"शोक है, मुझे हिन्दी नहीं आती। मैं अँगरेज़ी का सब काम सँभाल लूँगा।"

साहब—(आश्चर्य से, कुरसी का सहारा छोड़ते हुए)—"क्या आपको हिन्दी नहीं आती? (नाम-पाटी की ओर देखता हुआ) आप हिन्दू तो हैं न? (मुसकरा कर) क्या कहा? आपको अपनी मातृभाषा नहीं आती? इस पर कौन विश्वास करेगा?"

बाबू—"शुरू से ही मेरे यहाँ उर्दू का अधिक प्रचार रहा है।"

साहब—"अपनी भाषा को आप बिलकुल ही छोड़ बैठे? अगर ऐसा होता तो आज इँगलिस्तान में अँगरेज़ी की जगह लेटिन और ग्रीक ही दिखाई देती। क्यों जी, भारतवासियों को क्या अपनी मातृभाषा सीखने के लिए भी फ़ुरसत नहीं? जिधर देखिए उधर ही आप लोगों की बातों में कुछ न कुछ विचित्रता—विचित्रता क्या अन्धेरखाता—दिखाई देता है। फिर भी भारतवासी वकील 'स्वराज' माँगने से बाज़ नहीं आते!"

बाबू—(कुछ घबराहट के साथ)—"मैं अँगरेज़ी का तो सब काम बख़ूबी सँभाल सकता था—"

साहब—"हो सकता है, लेकिन हिन्दी का काम फिर कौन सँभालेगा? (बाबू को चुप देख कर) क्या आप कृपा करके कोई ऐसा ग्रेजुएट बतलावेंगे जो हिन्दी का काम सँभाल सके? बी० ए० पास से भी हमारा काम चल जायगा। पर हिन्दुस्तानी भाषा का अच्छा ज्ञान रखता हो। मुझे शोक है कि आप—"

बाबू—(शरम से नीची गरदन करके) "माफ़ी माँगूँगा। मैं तो इसी उम्मेद पर आया था कि—अँगरेज़ी का तो सब काम बख़ूबी सँभाल सकता हूँ। आज कल मेरी आर्थिक दशा भी उतनी सन्तोषजनक नहीं।"

साहब—"मिस्टर किशोर! मुझे आपके साथ पूरी सहानुभूति है, पर क्या करूँ? सरकारी भाषा के प्रतिकूल चलना मेरी स्थिति वाले

रायपुर ज़िले में प्राप्त विष्णु की प्राचीन मूर्ति।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पीछे न कहीं पछताओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(५)

मैं धीरज का बड़ा कड़ा हूँ, मत कहना हट गया हूँ।
स्वागत के लिए खड़ा हूँ, निज हठ पर आज अड़ा हूँ॥
मुख घूँघट में न छिपाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(६)

क्या तुम से दुःख सहूँगा, मन मारे मौन रहूँगा।
मैं कभी अधीर न हूँगा, हा ! हन्त ! न कभी कहूँगा॥
चाहे जितना तड़पाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(७)

तुमसे कुछ अहित न होगा, शिव होगा अमित न होगा।
मन-शक्ति क्या वर्धित न होगा ? फिर क्यों मन मुदित न होगा !
हाँ हाँ हौसला बढ़ाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(८)

जिन जिन के पास गई हो, उनकी मति गई नई हो।
चिरजीवी हुए अभी हो, तुम उनको सुधा हुई हो॥
वर्षों न मुझे तरसाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(९)

तुम हो न दया की भिक्षा, है मुझे न इसकी इच्छा।
बस दे दो ऐसी शिक्षा, कर लूँ मैं आत्म परीक्षा॥
कुछ ऐसा गुर बतलाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१०)

हाँ ऐसा सबक पढ़ाना, दिल दूना तेज़ बढ़ाना।
भ्रम में न मुझे भटकाना, सद्ज्ञान सदैव जताना॥
जीवन की जाँच कराओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(११)

तुम अगर न जग में होतीं, सब यहाँ आलसी सोतीं।
[illegible] समय व्यर्थ सा खोतीं, जगती सब दुखड़ा रोती॥
जीवन-स्वार्थ जताओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१२)

उन चरणों की बलिहारी, पद आज सम्पदा प्यारी।
जिसका है सिरा भारी, हो इसकी सिरजनहारी॥
मुझको भी सुपथ दिखाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१३)

यदि पड़ता विषम न पाला, गरमी का कठिन कसाला।
जब मुसलधार से पाला, ये अन्न न उगने पाता॥
आओ जितना पकाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१४)

यदि भूख न हमें सताती, क्यों करते खेती पाती।
मेधा विकास क्या पाती, यह समझ कहाँ से आती॥
मिल गई भूख अपनाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१५)

यदि राम न वन को जाते, क्या इतनी कीर्ति कमाते ?
क्यों ईसा सूली पाते, यदि तुम्हें न वे अपनाते॥
जगती में सुयश दिलाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१६)

निर्भय हूँ या कि डरा हूँ, सूखा हूँ या कि हरा हूँ।
जीवित हूँ या कि मरा हूँ, खोटा हूँ या कि खरा हूँ॥
कस लो, सुजान लो, ताओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१७)

तुम हो माधुरी हमारी, होगी न मुझे क्यों प्यारी !
प्रिय मित्र, धर्म, धृति, नारी—इनकी परखानेहारी॥
मानव, दुर्जन विलगाओ।
आती हो, आओ ! आओ !

(१८)

थोड़े दिन को हो चाहे, दुख से हो सुगद सराहें !
हो सुमति मात ही चाहे, हो इसी लिए मन भाई॥
पद-पद्म-रागें धराओ।
आती हो, आओ ! आओ

भारतीय शासन-प्रणाली।

(४)

ज़िले का शासन।

गणित में जिस प्रकार १ का अङ्क संख्याओं की इकाई है इसी प्रकार शासन-पद्धति में ज़िला है। प्रत्येक प्रान्त (सूबा) ज़िलों में विभक्त है। अकबर की राज्य-प्रणाली में इस प्रकार का विभाग "सरकार" कहाता था। उसका सब से बड़ा हाकिम "आमिल" कहाता था। वही आज कल कलेक्टर या डेप्यूटी कमिश्नर कहाता है। ज़िले का औसत विस्तार ४००० वर्गमील होता है और उसकी औसत आबादी ७ लाख। मदरास प्रान्त में अन्य प्रान्तों की अपेक्षा ज़िलों का विस्तार अधिक है।

अँगरेज़ी राज्य में ज़िलाधीश का पद बड़े महत्व का है। एक अँगरेज़ लेखक लिखता है कि सेक्रेटरी आव् स्टेट अथवा गवर्नर जेनरल के बिना शासन चल सकता है, परन्तु कलेक्टर के बिना नहीं चल सकता। एक और उच्चपदाधिकारी साहब ने एक लेख में लिखा था कि यदि मुझसे पूछा जाय तो मैं भारत का गवर्नर जेनरल अथवा ज़िले का कलेक्टर होना पसन्द करूँ।

कलेक्टर के अधिकार बहुत बड़े हैं। कोई सरकारी विभाग ऐसा नहीं जिस पर उसका थोड़ा बहुत अधिकार न हो। ज़िले में वह सम्राट् का प्रतिनिधि है। राज्याभिषेक अथवा लाटों की पधरावनी अर्थात् आगमन (जुबिली) इत्यादि अवसरों पर ज़िलों में जो दरबार इत्यादि होते हैं उनमें राजासन पर कलेक्टर ही आरूढ़ होता है। वही राजा का मान पाता है।

कलेक्टर के कामों को गिनाना कठिन है। वर्तमान शासन-प्रणाली जितनी विस्तृत है कलेक्टर के कर्तव्य भी उतने ही विस्तृत हैं। साधारणतः कलेक्टर के सिपुर्द नीचे लिखे काम हैं—

(१) मालगुज़ारी जमा करना—

यह काम बड़े महत्व का है। सरकारी आमद का बहुत बड़ा भाग मालगुज़ारी से आता है। इ[स] काम की हैसियत में ज़िलाधीश कलेक्टर (जमा क[रने]) वाले) कहाते हैं। ज़िले में ये मालगुज़ारी ज[मा] करने वाले मुख्य अफ़सर हैं। इस काम के लि[ए] उनके अधीन असिस्टेन्ट और डेप्यूटी कलेक्टर [होते] हैं। इसी काम के लिए ज़िलों के विभाग तहसी[लों] में किये गये हैं। तहसीलों के अफ़सर तहसील[दार] (जमा करने वाले) कहे जाते हैं। तहसीलदारों [के] अधीन नायब तहसीलदार, क़ानूनगो और पटव[ारी] हैं। पटवारी इस महकमे का सब से छोटा [कर्मचारी] होता है।

(२) अपराधियों को दण्ड देना—

इस हैसियत में ज़िलाधीश डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट कहाते हैं। मजिस्ट्रेट तीन श्रेणी के होते हैं। [जो] नये नियुक्त होते हैं उन्हें तीसरी श्रेणी के मजिस्ट्रे[ट] के अधिकार रहते हैं। अनुभव पा कर वे लोग क्र[मशः] करके दूसरी और तीसरी श्रेणी के मजिस्ट्रेट [के] अधिकार पाते हैं। डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के अ[धीन] ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट (जन्टसाहब) और डेप्यूटी मजिस्ट्रे[ट] होते हैं। तहसीलदार को भी मजिस्ट्रेटी [के] अधिकार दिये जाते हैं।

ये सब अधिकारी वेतन पाते हैं। इनके अतिरि[क्त] अवैतनिक आनरेरी मजिस्ट्रेट भी होते हैं। इन [के] के लिए प्रतिष्ठित घरानों के लोग चुने जाते हैं। [ये] लोग देश के शासन में सरकार के एक प्रकार [के] सहायक समझे जाते हैं। इस कारण इनकी प्र[तिष्ठा] मर्यादा भी बहुत होती है।

मजिस्ट्रेट लोगों को फ़ौजदारी की अ[दालत] कचहरी करनी है। चोरी, मारपीट, दङ्गा[-फ़साद] इत्यादि के अपराधियों को इसी कचहरी में जुर्मा[ना] या जेल का दण्ड दिया जाता है।

(३) पुलिस का प्रबन्ध करना—

कलेक्टर का कर्तव्य है कि ज़िले में अशान्ति न फैलने दे। इस काम के लिए पुलीस का महकमा है। जुआ, चोरी, राज-विद्रोह, वदमाशी इत्यादि से देश की शान्ति में विघ्न पड़ता है। इनको रोकना पुलीस का कर्तव्य है। ज़िले में पुलीस का सबसे बड़ा अफ़सर सुपरिन्टेन्डेन्ट कहाता है, जो प्रायः अँगरेज़ होता है। उसके अधीन असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट, डेप्यूटी सुपरिन्टेन्डेन्ट, इन्सपेक्टर और सब-इन्सपेक्टर होते हैं। डेप्यूटी सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर हिन्दुस्तानी नियुक्त होते हैं। जो इन्सपेक्टर शहर का प्रबन्ध करता है उसको कोतवाल कहते हैं। सब-इन्सपेक्टर थानेदार कहाता है। ज़िला अनेक थानों में विभक्त होता है, जहाँ से प्रति दिन की रिपोर्ट सदर में आती है।

पुलीस के ये सब हाकिम ज़िले के कलेक्टर के अधीन रहते और उन्हीं के आज्ञानुसार चलते हैं।

विचारशील पुरुषों में मतभेद है कि कलेक्टर के दूसरे और तीसरे अधिकार एक ही हाकिम को होने चाहिए या नहीं। पुलीस के अफ़सर की हैसियत में वह मुक़द्दमे तैयार करता है और मैजिस्ट्रेट की हैसियत में वह उन पर फ़ैसला सुनाता है—यह उचित है या अनुचित। परन्तु यह विषय विवादास्पद है। अतएव इसका उल्लेख मात्र कर देना बस होगा।

(४) नगर का प्रबन्ध करना—

प्रत्येक नगर के प्रबन्ध के लिए एक समिति होती है, जिसको म्यूनिसिपैलिटी कहते हैं। कलेक्टर प्रायः इस समिति के सभापति होते हैं। कहीं कहीं जनता के प्रतिनिधियों को भी सभापति चुनने का अधिकार प्राप्त है और भविष्यत् में अधिक अधिकार दिये जाने की आशा है।* कहीं कहीं वेतन-भोगी सभापति भी रहते हैं, जिनको सरकार नियुक्त करती है। इस समिति के सभासद दो प्रकार के होते हैं। एक वे जिनको सरकार अपनी ओर से नियुक्त करती है। और, दूसरे वे जिनको नगर-निवासी अपनी ओर से चुनते हैं। म्यूनिसिपैलिटी द्वारा नगर के स्वास्थ्य, शिक्षा, रोशनी, सड़कों इत्यादि का प्रबन्ध होता है। इन सब के लिए कर्मचारी रखने पड़ते हैं। स्वास्थ्य-रक्षा के लिए हेल्थ आफ़िसर रहते हैं। ये शीतला के टीके, मकानों और सड़कों का कूड़ा इत्यादि उठवाने, प्रतिदिन की मौत और पैदाइश का रजिस्टर रखने इत्यादि के लिए ज़िम्मेदार रहते हैं। शिक्षा प्रचार के लिए प्रारम्भिक स्कूल खोले जाते हैं। सड़कों के लिए इञ्जिनियर या छोटे दर्जे का हाकिम रहता है। शहर के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए म्यूनिसिपैलटी नलों द्वारा साफ़ पानी मँगाने का प्रबन्ध करती है। जहाँ पैसा है वहाँ वाटर-वार्क्स (Water Works) का भी महकमा रहता है। ये सब म्यूनिसिपल बोर्ड के मातहत काम करते हैं। चेयरमैन प्रायः कलेक्टर होते हैं।

म्यूनिसिपलिटी को अपना ख़र्च चलाने के लिए असबाब पर चुङ्गी, मकानों, गाड़ियों, आमदनी, घाटों, सड़कों, इत्यादि पर कर, और पानी, रोशनी और सफ़ाई के लिए टैक्स लगाने का अधिकार है। इसीलिए कर देने वालों को नगर का प्रबन्ध करने के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया है। यह भी एक प्रकार का प्रारम्भिक स्वराज्य है, जिसके प्रदान करने का यश गवर्नर जेनरल लार्ड रिपन को है।

(५) ज़िले का प्रबन्ध करना—

म्यूनिसिपैलिटी द्वारा नगर में स्वराज्य जिस प्रकार होता है उसी प्रकार ज़िले में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा होता है। इस समिति के भी सभापति कलेक्टर होते हैं। इसमें भी सरकार के नियुक्त किये हुए और जनता द्वारा चुने हुए, दोनों प्रकार के सभासद होते हैं।

---

* संयुक्त प्रान्त में म्यूनिसिपैलिटियों के सुधार से सम्बन्ध रखनेवाला क़ानून कौंसिल में पेश है। *, यदि पास हो गया तो सभापति का पद सभासदों को मिलेगा और कलेक्टरों का यह काम हलका हो जायगा। २८ मार्च १९१६

छः प्रकार के हैं—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजःकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। जो पृथ्वी दिखाई देती है और जिसे दूसरे मत वाले जड़ पदार्थ मानते हैं वह जैनों की दृष्टि में असंख्य जीवों के शरीरों का एक पिण्ड है। ये जीव समय समय पर उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। अतः पृथिवी प्रवाह-रूप से अनादि और अनन्त है। ऐसा कभी नहीं हो सकता कि समग्र पृथिवी किसी समय नष्ट हो जाय, क्योंकि असंख्य जीव, जिनके शरीर से वह बनी है, अनादि काल से उत्पन्न होते और मरते रहे हैं और अनन्त काल तक इसी तरह बने जायँगे। पृथिवीकाय के जीव केवल एक स्पर्श-इन्द्रिय रखते हैं। उनके दूसरी इन्द्रियाँ नहीं होतीं।

जिस प्रकार पृथिवीकाय असंख्य एकेन्द्रिय जीवों के शरीरों का एक पिण्ड है उसी प्रकार जल, अग्नि, वायु और वनस्पति-काय भी ऐसे ही जीवों के शरीरों के पिण्ड हैं। ये भी जड़ वस्तु नहीं।

दूसरे मत वालों ने पृथिवी, जल, तेज और वायु को पाँच तत्त्वों में गिना है। वनस्पति को उन्होंने पृथिवीतत्त्व में शामिल कर लिया है। परन्तु जैन मत का यह सिद्धान्त नहीं है। वह इन पाँचों को जीवमय मानता है और तदनुसार उनके धर्म का विधान भी उसने किया है।

यदि यह शङ्का की जाय कि जब पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये सभी जीव-समूह के पिण्ड हैं, तब संसार में कोई भी पदार्थ जड़ नहीं, तो इसका समाधान आगे के अजीव का विवेचन पढ़ने से होगा। परन्तु यहाँ पर भी इतना कहना आवश्यक है कि जो जीव पृथिवीकाय के हैं वे दूसरे कायों के जीवों के आघात से नष्ट हो सकते हैं और पृथिवी के जिस भाग में ये जीव नष्ट हो गये होंगे वह भाग जीवरहित कहलावेगा, अर्थात् पृथिवी-जीवों की दृष्टि से वह भाग जड़ माना जायगा। इसका उदाहरण यह है—पृथिवी के एक भाग में अग्नि लग गई तो उस भाग के पृथिवी-जीव मर गये। अतएव वह भाग अचित्त पृथिवी रह गया। इस दशा में उस भाग को जड़ कह सकते हैं। नदी की बालू भी अचित्त-काय का उदाहरण है। इसी प्रकार जल, तेज, वायु, वनस्पति आदि कायों के विषय को भी समझिए।

अब जीव के छठे रूप त्रसकाय पर विचार कीजिए। त्रस-जीवों में चलने-फिरने की शक्ति होती है। पहले पाँच प्रकार के जीव, जिनका ऊपर उल्लेख हो चुका है, केवल एकेन्द्रिय हैं। परन्तु त्रसकाय के जीव दो इन्द्रिय से लेकर पाँच इन्द्रिय तक के होते हैं। अर्थात् कोई जीव दो इन्द्रिय, शरीर और मुख ही, रखते हैं, जैसे पानी के कीड़े, आटे के कीड़े—घुन—इत्यादि। कोई जीव शरीर, मुख और नाक—ये तीन इन्द्रिय रखते हैं, जैसे चींटी, कीड़ा, जूँ इत्यादि। कोई जीव शरीर, मुख, नाक और नेत्र—ये चार इन्द्रिय रखते हैं, जैसे भौंरा, टिड्डी, मक्खी इत्यादि। कोई जीव शरीर, मुख, नाक, कान और नेत्र ये पाँचों इन्द्रिय रखते हैं, जैसे देवता, मनुष्य, पशु आदि।

पञ्चेन्द्रिय जीव सब जीवों में उच्च श्रेणी का है। उसमें पाँचों इन्द्रियों के धर्म—स्पर्श करना, स्वाद लेना, सूँघना, सुनना और देखना—होते हैं।

पञ्चेन्द्रिय जीवों की चार जातियाँ हैं देवता, मनुष्य, तिर्यक् और नारक।

देवयोनि भी चार प्रकार की है—भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक। भवनपति और व्यन्तर-जाति के देवताओं का वासस्थान पृथ्वी ही है। ज्योतिषी देवता—जैसे सूर्य, चन्द्र, नक्षत्रादि—आकाश-मण्डल में रहते हैं। वैमानिक देवताओं का वास-स्थान आकाश-मण्डल से भी असंख्य कोटि योजन ऊपर है। वैमानिक देवों का सबसे अन्तिम और सबसे ऊँचे दर्जे के विमान का नाम सर्वार्थसिद्ध है। उससे भी बारह योजन ऊपर सिद्धस्थान (मुक्तशिला) है, जहाँ मुक्त जीव, अर्थात् सिद्धपद प्राप्त आत्मायें, विशुद्ध ज्योतिर्मय रूप में रहती हैं। उसके ऊपर अनन्त अलोक है। वह आकाश मात्र है। उसमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल-द्रव्य, जिनका वर्णन आगे होगा, नहीं हैं। अलोक में गति-सहायक धर्म के न होने से जड़ और चेतन दोनों में से किसी की भी गति न हुई है, न है और न होगी।

मनुष्य-जाति में स्त्री, पुरुष, बालक सभी समाविष्ट हैं।

तिर्यग्-जाति तीन भेदों में विभक्त है—(१) जलचर अर्थात् पानी में रहने वाले मत्स्यादि प्राणी, (२) स्थलचर अर्थात् ज़मीन पर चलने फिरने वाले गाय, भैंस, घोड़ा आदि पशु, और (३) नभचर, अर्थात् आकाश में उड़ने वाले पक्षी।

नारक जाति वह है जिसमें मनुष्यादि योनियों में किये गये पापाचरणों का घोर दुःखदायक विपाक-फल मिलता

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बेगम समरू का मक़बरा, सरधना, मेरठ।

देवकी ने शीघ्र रण-कङ्कण दिया,
बाँध उसको हाथ में पति ने लिया।

६—फिर दोनों साथ से उत्साह में
जा रहे जयसिंह हैं रण-राह में।
सुध प्रिया की मार्ग में आती रही,
किन्तु रण-संग्राम में जाती रही।

७—युद्ध में तो वीर ही कुल प्राण है,
पूर्ण हिय में देश का अभिमान है।
प्राण हैं क्या देश के हित के लिये!
देश खोकर जो जिये तो क्या जिये!

८—मग्न हैं जयसिंह रण के ध्यान में,
जा रहे हैं शत्रु को निज दान में।
घाटियाँ, मैदान, पर्वत, खाइयाँ,
सब कहीं हैं सूरमा औ खाइयाँ।

९—रात दिन है अग्नि-वर्षा हो रही,
रात-दिन है पूर्ण तोपों से मही।
व्योम, जल, थल, सब कहीं है रण मचा,
युद्ध के फल से नहीं कोई बचा।

१०—एक दिन जयसिंह धावा मार कर,
दल-सहित जब आ रहे थे केन्द्र पर,
एक दाई घायलों के बीच में,
दिख पड़ी सोती रुधिर की कीच में।

११—ध्यान से जयसिंह ने उसको लखा,
और फिर उसके हृदय पर कर रखा।
हो विकल उसको जगाने वे लगे,
मर चुकी थी वह भला अब क्या जगे!

१२—घायलों की धीर सेवा में लगी,
और फिर प्रिय ध्यान में पति के पगी,
गोलियों से शत्रु की भागी न थी,
वीर घातक पाप वह भागी न थी।

१३—शोक में जयसिंह कुछ सोचे नहीं,
थे जहाँ बैठे रहे बैठे वहीं।
हृदय में अब घोर चिन्ता छा गई—
प्रियतमा कैसे यहाँ अब आ गई!

१४—आ गये तब काल सेनापति वहाँ;
वीर नारी की लखी शुभ गति वहाँ।
धीर होकर भी हुई उनको व्यथा;
आदि से कहने लगे उसकी कथा—

१५—दाइयाँ कुछ आपके दल के लिये
कुछ समय पहले मुझे थीं चाहिये।
की गई इसकी प्रकाशित सूचना,
देवकी ने शीघ्र भेजी प्रार्थना।

१६—घायलों में इस तरह फिरती हुई,
अन्त को यह काम निज करती हुई,
शत्रु के अन्याय से मारी गई।
पा गया फल दुष्टता का निर्दयी।

१७—हाल सुन जयसिंह का दुख बढ़ गया,
शत्रु पर अब क्रोध उनको चढ़ गया।
सौंप कर प्रिय देह सेनापति-निकट
प्रण किया सबसे उन्होंने यह विकट—

१८—भस्म जब मैं कर चुकूँगा रिपु-नगर
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर।
और जो मैं ही मरूँ रिपु-हाथ में,
फूँकना मुझको प्रिया के साथ में।

१९—दूसरे दिन व्योम से जलता हुआ,
पर-कटे खगराज सा चलता हुआ,
केन्द्र से कुछ दूर तब जलके पड़ा,
युद्ध का नभ-यान आकर गिर पड़ा।

२०—नष्ट पुर को यान ने था कर दिया;
मार्ग रक्षित केन्द्र का था कर लिया।
किन्तु रिपु का क्रुद्ध गोला जब उड़ा,
और उसकी आग से यह जल उड़ा।

२१—सैनिकों ने खोज इसमें से लिया
उस पुरुष को, देश का जो था दिया।
पर दिया वह बुझ चुका था आग से;
था बुझे उस दीप के अनुराग से।

२२—आप ही प्रेमी युगल बुझ कर जले,
और दोनों साथ ही जल कर चले।
एक कङ्कण से बँधे थे वे यहाँ,
दूसरे से जा बँधे दोनों वहाँ।

२३—प्रेम-बन्धन जन्म-भर का सार है,
प्रेम-बन्धन देश का उद्धार है।

है दे कि मैं अमुक काम करूँगा तो इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि वह उसको अवश्य करेगा। इसी तरह यदि लोक-सेवकों का अफ़सर किसी सेवक को वचनबद्ध करके कोई काम करने की आज्ञा दे तो उस सेवक का धर्म है कि वह उस आज्ञा का पालन करे, चाहे ऐसा करने में उसको दुःख या कष्ट भले ही हो। प्रतिज्ञा-भङ्ग करने पर दोषी लोक-सेवक से उसकी चपरास (Badge) छीन ली जा सकती है और उसका नाम भी लोक-सेवकों के रजिस्टर से काट दिया जा सकता है।

(२) हर लोक-सेवक का परम धर्म है कि वह राज-भक्त हो। अपने अफ़सर, अपने माता-पिता, अपने स्वामी, अपने देश और अपने सङ्गी-साथियों पर उसकी पूर्ण भक्ति हो; सुख-दुख में वह इनका साथ दे और शत्रुओं तथा अहितचिन्तकों से इनकी रक्षा करे।

(३) दूसरे लोगों के काम आना और उनकी सहायता करना लोक-सेवकों का मुख्य कर्तव्य है। चोट-चपेट खाये हुए मनुष्यों की सेवा करने तथा दूसरों के प्राण बचाने के लिए सेवकों को सदा तैयार रहना चाहिए। ऐसे समय में लोक-सेवक को अपनी तकलीफ़, आराम तथा आत्म-रक्षा की ज़रा भी परवा न करनी चाहिए, किन्तु अपने आप को भूल कर उसे वही कार्य करना उचित है जो दूसरों के लिए हितकर हो। प्रति दिन कम से कम एक बार दूसरों के साथ भलाई करना लोक-सेवक का काम है। यदि किसी दिन ऐसा करने के लिए उसे मौक़ा न मिले तो दूसरे दिन वही काम उसे दो बार करना चाहिए। इसके स्मरणार्थ लोक-सेवकों को वस्त्र में गाँठ दे लेनी चाहिए।

(४) लोक-सेवकों के लिए मनुष्य मात्र मित्र के समान है। एक सेवक का दूसरे के साथ पारस्परिक व्यवहार भ्रातृवत् होना चाहिए। ग़रीब-अमीर, नीच ऊँच में भेदभाव करना सर्वदा मना है।

(५) लोक-सेवकों को सब के साथ नम्रता-पूर्ण बर्ताव करना चाहिए—विशेष कर स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों, लँगड़े-लूलों और रोगियों के साथ। सेवा करने पर पुरस्कार आदि का लेना सर्वदा वर्जित है।

(६) पशु-पक्षियों के प्रति भी सेवकों को सदा दयालु होना उचित है। तुच्छ से तुच्छ कीड़े-मकोड़ों की भी हत्या करना मना है। हाँ, प्राणघातक जीव-जन्तुओं का नष्ट करना उनके लिए क्षम्य है।

(७) लोक-सेवक को अपने माता-पिता तथा अफ़सरों की आज्ञा मानना अनिवार्य है, चाहे उनकी आज्ञा सेवक की इच्छा के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल। इच्छा के प्रतिकूल आज्ञा मिलने पर भी लोक-सेवक का धर्म है कि वह उसका तत्काल पालन ठीक उसी तरह करे जिस तरह फ़ौज में सिपाही इत्यादि करते हैं। इसके उपरान्त यदि वह चाहे तो अपनी प्रतिकूल राय उस विषय में प्रकट कर सकता है।

(८) कठिनाइयों तथा आपत्तियों के समय लोक-सेवकों को प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। किसी कार्य में असफल होने पर उदास होना मना है। लोक-सेवकों को चाहिए कि ऐसे समय को हँस-हँसा कर टाल दें। उन्हें क़सम खाना मना है। क़सम खानेवालों तथा अपशब्द प्रयोग करने वालों की सज़ा यह है कि उनकी आस्तीन के भीतर, हर दोष के लिए, एक एक घड़ा ठण्डे पानी का छोड़ा जाय। आज्ञा-पालन के समय लोक-सेवकों को शिथिलता न करनी चाहिए, किन्तु प्रसन्नता-पूर्वक तुरन्त ही उसे पूरा करना चाहिए।

(९) सेवकों को उचित है कि वे सदा मितव्ययी हों और बचाये हुए धन को किसी बैंक में जमा करें, जिसमें आवश्यकता पड़ने पर अपने तथा दूसरों के लिए वे सञ्चित धन का उपयोग कर सकें।

सर चिनूभाई माधवलाल, सी॰ आई॰ ई॰ ।
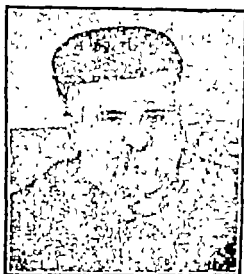
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

का उदय हो, इत्यादि। सेवकों के खेल का एक नमूना लीजिए—

लोक-सेवकों का एक दल सैर के लिए बाहर जाता है। उनमें से एक सेवक को उसके साथी पुलिस वाले बन कर दोषी ठहराते हैं और गिरफ़ार करते हैं। उस पर मुक़द्मा चलता है। लोक-सेवकों का अफ़सर न्यायाधीश बनता है। दोनों तरफ़ से गवाह गुज़रते हैं। अन्त में फ़ैसिला सुनाया जाता है। आदि से अन्त तक सारी कार्रवाई ठीक उसी तरह होती है जिस तरह कि अदालतों में होती है। विचार के समय हँसने की मनाही है। कारण यह कि हँसने से लड़कों को मालूम होता है कि यह सब खेल है। अतएव वे उस काम में यथोचित ध्यान नहीं देते।

लोक-सेवकों के धार्मिक विचारों पर कुछ भी हस्तक्षेप नहीं किया जाता। जिस धर्म के वे अनुयायी हैं उसके नियम पालन की उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।

इस संस्था के कार्य-सञ्चालन के लिए लोक-सेवकों को अपने बाहु-बल से उद्यम करके धनोपार्जन करना पड़ता है। इस निमित्त उन्हें उद्योग-धन्धे सिखाये जाते हैं। चन्दा माँगना सर्वदा मना है।

पाठक अब स्वयं विचार सकते हैं कि ऐसी उपयोगिनी संस्था पर किसकी श्रद्धा न होगी? इस संस्था पर बच्चों का प्रेम होना तो स्वाभाविक ही है। क्योंकि उनको अपने सङ्गी-साथियों से मिलने-जुलने, खेल-कूद, सैर-सपाटे इत्यादि के लिए मनमाना अवकाश मिलता है। और ये सब बातें उन्हें सहज ही रुचिकर होती हैं। बच्चों के माता-पिता की भी पूर्ण भक्ति इस संस्था पर होती है। कारण यह है कि इस संस्था की बदौलत उनके बच्चे आदर्श बालक बन जाते हैं, देश-प्रेम, साहस, बुद्धि, बल, पराक्रम, पुरुषार्थ आदि गुणों का सञ्चय करके वे चरित्रवान् बन जाते हैं, उदरपूर्ति के उपाय सीख कर वे जीवन-निर्वाह करने में समर्थ होते हैं।

लोक-सेवक सच्चे नागरिक बन कर गवर्नमेंट की अमूल्य सेवा करते हैं। इस संस्था की उपयोगिता का इससे बढ़ कर प्रमाण और क्या हो सकता है कि स्वयं ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इसके चलाने की आज्ञा देकर इसे अपना लिया है।

युद्ध के समय को छोड़ कर लोक-सेवकों को सैनिक शिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं रहता।

पाठकों को हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि इस संस्था की स्थापना की आवश्यकता क्यों पड़ी। देखिए इस विषय में इसके संस्थापक सर राबर्ट बेडन पावेल (Lieutenant-General Sir Robert Baden-Powell, K. C. B.) क्या लिखते हैं। उन्हीं की पुस्तक के आधार पर मैंने यह लेख लिखा है। उनका कथन है—

"History shows us that, with scarcely an exception, every great nation, after climbing laboriously to the zenith of its power, has then apparently become exhausted by the effort, and has settled down in a state of repose, relapsing into idleness, and into indifference to the fact that other nations were pushing up to destroy it, whether by force of arms, or by the more peaceful but equally fatal method of 'commercial strangulation. In every case, the want of some of that energetic patriotism, which made the country, has caused its ruin. In every case the verdict of History has been "DEATH THROUGH BAD CITIZENSHIP."

अर्थात् इतिहास देखने से पता चलता है कि प्रत्येक धनशालिनी जाति उन्नति के शिखर पर पहुँच कर अन्त में शिथिल पड़ गई है। यहाँ तक कि उसको अकर्मण्यता ने घेर लिया है। फल यह हुआ है कि दूसरी उन्नतिशील जातियों ने सामरिक बल से, अथवा वाणिज्य-रूपी शस्त्र-प्रहार से, उसको

युद्ध और ब्रिटिश-जाति की क्षमता।

[लेखक, श्रीयुत सेंट निहालसिंह, लन्दन]

(४)

घायलों और रोगियों की शुश्रूषा कैसे करनी चाहिए, इस पर विचार करते ही एक बात तुरन्त याद आ जाती है। वह यह कि इस युद्ध के समय यहाँ के स्त्री-पुरुष कितना अच्छा काम कर रहे हैं। इससे यह न समझ लीजिएगा कि इन लोगों ने ही रोगियों और घायलों की चिकित्सा का सारा प्रबन्ध किया है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि यही लोग स्वयं चिकित्सा का काम कर रहे हैं अथवा चिकित्सकों को मदद दे रहे हैं। बात इससे बिलकुल दूसरी है। चिकित्सा का अधिकांश काम तो फ़ौजी डाक्टर ही कर रहे हैं।

ब्रिटिश सेना में चिकित्सा-सम्बन्धी सारा काम प्रायः शाही फ़ौज की मेडिकल कोर ही (Royal Army Medical Corps) करती है। युद्ध के आरम्भ में इस महकमे में अधिक डाक्टर आदि न थे। क्योंकि उस समय फ़ौज की संख्या कम थी। अतएव कुछ ही घायलों और बीमारों की ख़बरें रखा करनी पड़ती थीं। पर अब तो ब्रिटिश सेना की संख्या बहुत बढ़ गई है। वह २,२०,००० अफ़सरों और सैनिकों के बदले तीस चालीस लाख हो गई है। इस कारण शाही आर्मी मेडिकल कोर का काम भी, उसी हिसाब से, बढ़ गया है। डाक्टरों, सर्जनों, शुश्रूषकों और नौकर-चाकरों की संख्या में हज़ारों की वृद्धि हो गई है। औषधों, मरहम-पट्टियों, चीर-फाड़ के औज़ारों और इसी तरह की और ज़रूरी चीज़ों के ढेर के ढेर एकत्र करने पड़े हैं। जहाँ जो चीज़ दरकार होती है फ़ौरन पहुँचा दी जाती है।

जो डाक्टर मेरा इलाज करता था वह भी फ़ौज में भरती हो गया है। वह लड़ाई के मैदान ही में कहीं घायल सैनिकों की देख-भाल कर रहा है। जिस दुकान से मैं दवा मोल लेता था उसके मालिक से मुझे मालूम हुआ कि वह भी सैनिकों के लिए न मालूम कितनी दवायें दे चुका है। एक कारख़ाने में कपड़े बनाने का काम होता है। उसके मालिक से मेरी जान-पहचान है। उससे मालूम हुआ कि उसके कारख़ाने में मामूली धन्धे के अलावा देर तक काम होता है। वहाँ अब चीर-फाड़ के औज़ार बनाये जाते हैं।

यह तो हुई फ़ौज के डाक्टरी महकमे की बात। इसे जाने दीजिए। इसका तो यह काम ही है। सर्वसाधारण की बात सुनिए। परोपकारी स्त्री-पुरुष भी इस विषय में बहुत कुछ कर रहे हैं। जब युद्ध शुरू भी न हुआ था तभी ऐसे लोगों की दो समितियाँ थीं। (१) रेड क्रास सोसायटी और (२) आर्डर आव् सेन्ट जान आव् जेरूसलम। डाक्टर और शुश्रूषक तैयार करना ही इनका काम था। ये लोग इस लिए तैयार किये जाते थे कि यदि कभी लड़ाई छिड़े तो ये घायलों की सेवा-शुश्रूषा आदि का काम कर सकें। ये दोनों समितियाँ यह काम अपने मन से करती थीं, किसी के कहने या दबाव से नहीं। इनका ख़र्च परोपकारी लोगों के चन्दे से चलता था और अब भी चलता है। जो लोग इस काम को अच्छा समझते हैं वे ख़ुशी से चन्दा देते हैं। तथापि ये दोनों समितियाँ सरकार के फ़ौजी महकमे द्वारा मनोनीत थीं। युद्ध छिड़ते ही इन्होंने अपने डाक्टर और शुश्रूषक भेज कर फ़ौजों और युद्ध के जहाज़ों पर काम करना शुरू कर दिया। जितनी सहायता ये दे सकती थीं उतनी देने के लिए तत्काल तैयार हो गईं। साथ ही इनके कितने ही मेम्बर चन्दा एकत्र करने लगे। दाइयों, डाक्टर, डोली उठाने वाले, घायलों की गाड़ियाँ हाँकने वाले आदि तैयार करने और अस्पताल तथा शुश्रूषालय खोलने के लिए धड़ाधड़ चन्दा जमा होने लगा। रेड क्रास सोसायटी और सेन्ट जान्स एम्बुलेन्स असोसियेशन—ये दोनों समितियाँ मिल कर एक हो गईं। अलग अलग काम करने में इन्होंने सुभीता न देखा। अलग रहने से बहुत कुछ समय, शक्ति और धन नष्ट जाता। क्योंकि सहयोग में बड़ी शक्ति होती है।

दुनिया में जितने समाचार-पत्र हैं, लन्दन का टाइम्स उन सबसे अधिक महत्त्वशाली है। उसके मालिक हैं लार्ड नार्थक्लिफ़ (Lord Northcliffe) नाम नामी सम्पादक और आप ही चतुर सद्गृहस्थ भी हैं। आपने इन दोनों समितियों के ख़र्च के लिए चन्दा इकट्ठा करने में सहायता

युद्ध और ब्रिटिश-जाति की क्षमता।

[लेखक, श्रीयुत सेंट निहालसिंह, लन्दन]

(४)

घायलों और रोगियों की शुश्रूषा कैसे करनी चाहिए, इस पर विचार करते ही एक बात तुरन्त याद आ जाती है। वह यह कि इस युद्ध के समय यहाँ के स्त्री-पुरुष कितना अच्छा काम कर रहे हैं। इससे यह न समझ लीजिएगा कि इन लोगों ने ही रोगियों और घायलों की चिकित्सा का सारा प्रबन्ध किया है। इसका यह भी अर्थ नहीं कि यही लोग स्वयं चिकित्सा का काम कर रहे हैं अथवा चिकित्सकों को मदद दे रहे हैं। बात इससे बिलकुल उलटी है। चिकित्सा का अधिकांश काम तो फ़ौजी डाक्टर ही कर रहे हैं।

ब्रिटिश सेना में चिकित्सा-सम्बन्धी सारा काम शाही फ़ौज की मेडिकल कोर ही (Royal Army Medical Corps) करती है। युद्ध के आरम्भ में इस महकमे में अधिक डाक्टर आदि न थे। क्योंकि उस समय फ़ौज की संख्या कम थी। अतएव कुछ ही घायलों और बीमारों की ज़रूरतें रफ़ा करनी पड़ती थीं। पर अब तो ब्रिटिश सेना की संख्या बहुत बढ़ गई है। वह २,५०,००० अफ़सरों और सैनिकों के बदले तीस चालीस लाख हो गई है। इस कारण रायल आर्मी मेडिकल कोर का काम भी, उसी हिसाब से, बढ़ गया है। डॉक्टरों, सर्जनों, शुश्रूषकों और मोटर-चालकों की संख्या में हज़ारों की वृद्धि हो गई है। औषधों, मरहम-पट्टियों, चीर-फाड़ के औज़ारों और इसी तरह की और ज़रूरी चीज़ों के ढेर के ढेर एकत्र करने पड़े हैं। जहाँ जो चीज़ दरकार होती है फ़ौरन् पहुँचा दी जाती है।

जो डाक्टर मेरा इलाज करता था वह भी फ़ौज में भरती हो गया है। वह लड़ाई के मैदान ही में कहीं घायल सैनिकों की देख-भाल कर रहा है। जिस दुकान से मैं दवा मोल लेता था उसके मालिक से मुझे मालूम हुआ कि वह भी सैनिकों के लिए न मालूम कितनी दवायें दे चुका है। एक कारख़ाने में रुई बढ़ाने का काम होता है। उसके मालिक से मेरी जान-पहचान है। उससे मालूम हुआ कि उसके कारख़ाने में मामूली वक़्त के अलावा देर तक काम होता है। वहाँ अब चीर-फाड़ के औज़ार बनाये जाते हैं।

यह तो हुई फ़ौज के डाक्टरी महकमे की बात। इसे जाने दीजिए। इसका तो यह काम ही है। सर्वसाधारण की बात सुनिए। परोपकारी स्त्री-पुरुष भी इस विषय में बहुत कुछ कर रहे हैं। जब युद्ध शुरू भी न हुआ था तभी ऐसे लोगों की दो समितियाँ थीं। (१) रेड क्रास सोसायटी और (२) आर्डर आव् सेन्ट जान आव् जेरूसलम। डाक्टर और शुश्रूषक तैयार करना ही इनका काम था। ये लोग इस लिए तैयार किये जाते थे कि यदि कभी लड़ाई छिड़े तो वे घायलों की सेवा-शुश्रूषा आदि का काम कर सकें। ये दोनों समितियाँ यह काम अपने मन से करती थीं, किसी के कहने या दबाव से नहीं। इनका खर्च परोपकाररत लोगों के चन्दे से चलता था और अब भी चलता है। जो लोग इस काम को अच्छा समझते हैं वे ख़ुशी से चन्दा देते हैं। तथापि ये दोनों समितियाँ सरकार के फ़ौजी महकमे द्वारा मनोनीत थीं। युद्ध छिड़ते ही इन्होंने अपने डाक्टर और शुश्रूषक भेज कर फ़ौजों और युद्ध के जहाज़ों पर काम करना शुरू कर दिया। जितनी सहायता ये दे सकती थीं उतनी देने के लिए तत्काल तैयार हो गईं। साथ ही इनके कितने ही मेम्बर चन्दा एकत्र करने लगे। दाइयाँ, डाक्टर, डोली उठाने वाले, घायलों की गाड़ियाँ हाँकने वाले आदि तैयार करने और अस्पताल तथा शुश्रूषालय खोलने के लिए धड़ाधड़ चन्दा जमा होने लगा। रेड क्रास सोसायटी और सेन्ट जान्स एम्बुलन्स असोसियेशन—ये दोनों समितियाँ मिल कर एक हो गईं। अलग अलग काम करने में इन्होंने सुभीता न देखा। अलग रहने से बहुत कुछ समय, शक्ति और धन नष्ट जाता। क्योंकि समुदाय में बड़ी शक्ति होती है।

दुनिया में जितने समाचार-पत्र हैं, लन्दन का टाइम्स उन सबसे अधिक महत्त्वशाली है। उसके मालिक हैं लार्ड नार्थक्लिफ़ (Lord Northcliffe) नाम नामी सम्पादक और साथ ही चतुर प्रकाशक भी हैं। आपने इन दोनों समितियों के ख़र्च के लिए चन्दा इकट्ठा करने में सहायता

परेड के समय हिन्दुस्तानी फ़ौज के अफ़सरों से जनरल साहब बात-चीत कर रहे हैं।
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

कुछ लोग अपाहज सिपाहियों को मोटर चलाना सिखा रहे हैं। इससे वे मोटर चलाने की नौकरी करके अपना पेट आप ही पालने लायक़ हो जायँगे। देश उनके भोजन-वस्त्र के ख़र्च से बच जायगा। एक रोज़ मैंने बड़े घरों की कुछ स्त्रियों के चित्र देखे। वे अपाहजों को मोटर चलाने की तरकीबें सिखा रही थीं। वे लोग लँगड़े थे, पर इनके हाथ भले-चङ्गे थे।

और भी सुनिए। कितने ही सज्जन तो उन सैनिकों को अपने ही घर चाय-पानी पिलाते और भोजन कराते हैं जो कुछ कुछ आराम हो रहे हैं, पर जिनके घाव अब तक ठीक भरे नहीं। हाँ, यह सही है कि ऐसे लोग एक ही बार एक या दो आदमियों से अधिक को खाना न खिला सकते हों। तथापि अपने सामर्थ्य के अनुसार वे उनकी सेवा-शुश्रूषा करने से पीछे नहीं हटते। उन वीर सैनिकों के प्रति, जो अपने राजा और अपने देश के लिए अपने प्राणों को सङ्कट में डाल रहे हैं—जो असह्य कष्ट भोग रहे हैं—अपना कर्त्तव्य पालन करना वे भी ख़ूब जानते हैं।

कुमारी लेना एशवेल (Miss Lena Ashwell) नाम की एक नटी ने कुछ दिनों तक अपने प्रत्येक खेल में २० घायल सिपाहियों को मुफ़्त टिकट दिया। आप—किंग्ज़ वे—नाम के थियेटर की मालकिन भी हैं और व्यवस्थापिका भी। आपके खेलों को लोग बहुत पसन्द करते हैं। एक दिन की बात है कि मैं भी खेल देखने गया। देखा कि उसके कितने ही मेहमान अस्पताली नीली वर्दी पहने थे। थियेटर के भीतर जो दो कतारें उनके लिए अलग कर दी गई थीं उन्हीं में वे लोग बैठ गये। उनमें दो अफ़सर ऐसे भी थे जिनके टाँगें न थीं। वे बनावटी टाँगों की मदद से चलते-फिरते थे। उन्हें बैठने के लिए एक सन्दूक दी गई। क्योंकि उन कतारों की बैठकों में इतनी जगह न थी कि वे अपने पैर फैला सकते। नटी महाशया की ओर से उन्हें चाय पिलाई गई। जो लोग चल-फिर सकते थे वे परदा गिर जाने पर सिगार पीने चले जाते थे। इसके लिए एक जगह नियत थी। कुमारी लेना ने उनके लिए मुफ़्त सिगार देने का भी प्रबन्ध कर दिया था। सच-मुच, यह कुमारिका बड़ी ही देश-भक्त है। इसने अपना बहुत सा अमूल्य समय और द्रव्य सिपाहियों और उनके आश्रितों की सहायता में ख़र्च किया है। युद्ध के इन कठिन दिनों में इसने परोपकारशीलता का बहुत ही अच्छा उदाहरण दिखाया है।

बात यहीं तक नहीं। यहाँ जितने ही नामी नामी नट, नटी गवैये आदि दल-बल सहित रणभूमि में पहुँचे हैं। वे वहाँ भिन्न भिन्न विधानों से उन सिपाहियों का मनोरञ्जन करते हैं जो लड़ते लड़ते थक कर विश्राम कर रहे हैं, जो युद्ध में बुलाये जाने के लिए ख़ेमों में तैयार बैठे हैं और जो घायल होकर वहाँ के अस्पतालों में इलाज करा रहे हैं।

क्या बालिका, क्या युवती, और क्या वृद्धा; क्या धनी और क्या दरिद्र, सभी प्रकार की स्त्रियों ने इस सत्कार्य में सहायता दी है। अनेकों ने रोटियाँ तथा अन्य खाद्य पदार्थ सैनिकों, घायलों और बीमारों के लिए दिये हैं। बहुतों ने अपने हाथ से बुने या सिले हुए वस्त्र दिये हैं। कितनों ही ने और कितनी ही चीज़ें दी हैं। बहुत सी स्त्रियाँ अस्पतालों और बीमारों के रहने के स्थानों पर जाया करती हैं। वे सिपाहियों को मिठाइयाँ, फूल, फल आदि बाँटती हैं और उनका मनोरञ्जन करने के लिए गप-शप भी उनके साथ करती हैं। इन जगहों में प्रायः ऐसे बीमार और घायल रहते हैं जो अपने देश—अपने घर—से बहुत दूर हैं। वहाँ न कोई उनके सङ्गी-साथी ही हैं, न कोई जान-पहचान वाले ही, जिनसे बात-चीत करके वे मन बहलावें। अतएव यदि ये दयाशीला देवियाँ उनका मन न बहलावें—उन्हें आशा-भरोसा न दें—तो उन्हें आराम होने बहुत समय लगे। कुछ स्त्रियाँ तो घायलों और अपाहजों के साथ विवाह करने के लिए भी तैयार हो जाती हैं। वे उन्हें विश्वास दिला देती हैं कि तुम्हारे अच्छे हो जाने पर हम जन्म पर्यन्त तुम्हारी सङ्गिनी बन कर तुम्हारी सेवा करेंगी। इस आश्वासन से वे लोग बहुत जल्द आराम हो जाते हैं।

अनेक स्त्री-पुरुषों ने तो घायलों और बीमारों की सेवा-शुश्रूषा के लिए अपना काम-काज और घर-द्वार सभी छोड़ दिया है। इस अलौकिक स्वार्थ-त्याग का कुछ ठिकाना है। इन्होंने अपने कुटुम्बियों और बाल-बच्चों की भी परवा नहीं की। समस्त सांसारिक सुखों से मुँह मोड़ कर वे लोग रेड-क्रास सोसायटी में भरती हो गये हैं। अब वे अस्पतालों में, युद्ध के मैदानों में, जहाज़ों और ख़ेमों में तन-मन से

आर्टी की रेजिमेंट के चुने हुए जवान कुश्ती लड़ रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

(Lovek), कम्बोज का पुराना गढ़, वट-त्रैलंग (Watt Trailang) का मन्दिर तथा इन्द्र का भवन आदि मिलते हैं। फिर कम्पोंग-ट्रिलेक (Kompong-Trelac) मिलता है, जो एक जङ्गल में स्थित है। इसके बाद कम्पोंग-च्नैंग (Kompong-Chnang) और अन्त में स्नोक-ट्रो (Snoc-Trou), अर्थात् झीलों का द्वार, मिलता है।

झीलों में स्टीमर कभी किनारे किनारे चलता है और कभी बीच में आ जाता है। झीलों के बीच जाते समय ऐसा मालूम पड़ता है मानों समुद्र में जा रहे हैं। दक्षिण की ओर कार्डोमम (Cardamomes) पर्वत के गगन-भेदी शिखर दिखाई देते हैं। नौम-पेनह से चल कर १८ घण्टे बाद स्टीमर सीमरीप (Siem-Reap) नदी की खाड़ी में लङ्गर डाल देता है। उसके समीप ही एक पहाड़ी है, जिस पर नौम-क्रौम (Pnom-Krom) का मन्दिर है।

सीम-रीप नाम का ३।४ हज़ार की बस्ती का एक सुन्दर क़स्बा भी नदी-तट पर है। उसके उत्तर, कुछ दूर पर, प्राचीन ख्मेर-राज्य की विशाल राजधानी अङ्कुर के खँडहर विद्यमान हैं। नौम-क्रौम से अङ्कुर-वट को एक सड़क आती है, जिसे तै करने में २।३ घण्टे लगते हैं। अङ्कुर की पुरानी इमारतें अङ्कुर-थोम (Angkor-Thom—अङ्कुर-स्तम्भ) राजधानी की सीमा के भीतर तथा उसके आस पास विद्यमान हैं। यह महा नगरी सीम-रीप से कोई चार मील उत्तर को है। इसके गिर्द चौड़ी खाई और मीलों लम्बी फ़सील है, जिसके सामने चौड़ी ख़न्दक़ है। पाँच बड़े दरवाज़ों से नगर में प्रवेश होता है, जिनके शिखरों पर वृहदाकार मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। नगर की दीवारों के भीतर तथा बाहर भी घनी बेलों और वनस्पतियों का घोर आक्रमण हो रहा है। तथापि गली-कूचों का पता लग गया है। कहीं कहीं सुन्दर राजपथों के दोनों ओर भी विद्यमान हैं।

अङ्कुर-थोम के बीचों बीच बायोन (Bayon) का विचित्र मन्दिर है। यह ईसा की दसवीं शताब्दी के लगभग बना मालूम होता है। यह इमारत चढ़ते उतरते चबूतरों पर बनी हुई है। इसमें पहले ५१ शिखर थे, और प्रत्येक शिखर पर ब्रह्माजी के चार मुख खुदे हुए थे। मध्य में, आठ शिखरों के बीच, एक सबसे ऊँचा शिखर है, जिसके गिर्द गोल प्रदक्षिणा है। मन्दिर से आगे निकली हुई, पर उस प्रदक्षिणा में मिली हुई, हर तरफ़, एक एक शाखा है, जिस पर दो दो शिखर हैं। मन्दिर में जाने के लिए १६ दरवाज़े हैं। पहली मंज़िल के इर्द गिर्द खम्भों का घेरा है, जिन पर खुदाई का बढ़िया काम है। पूर्वकाल में, एक से एक बढ़ते हुए ५१ शिखरों वाले इस मन्दिर का दृश्य निस्सन्देह बड़ा ही अद्भुत होगा। चबूतरों पर और आँगनों के भीतर अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ घुस गई हैं। दीवारों और शालाओं पर हरियाली का पर्दा पड़ा हुआ है। मण्डपों में विशाल वृक्ष उग आये हैं। कहीं प्रबल लतायें शिखर फोड़ कर निकल पड़ी हैं और कहीं उन्हें जकड़े खड़ी हैं। इस प्रकार विकृत हो जाने के कारण हमारे पूज्यपाद ब्रह्माजी के मुख कहीं तो हँसते हैं, कहीं मुँह बनाते हैं और कहीं अपने शान्त रूप में विराजते हैं। मन्दिर और वन के मेल का यह अद्वितीय दृश्य देखने वाले के चित्त पर अमिट प्रभाव पैदा करता है।

बायोन के सामने एक बड़ा चौक है। उसके इर्द गिर्द कई यादगार हैं। दाहिनी ओर १० शिखर वाले प्राह-पिथु (Prah Pithu—पराप्रभु ?) की दीवारें हैं। बाईं ओर एक चबूतरा गरुड़ों के सहारे बना है, जिसकी दीवारों पर हाथियों के जुलूस खुदे हुए हैं। आगे चल कर पिमानाकास (Pimanakas—विमान-आकाश ?) की गगनचुम्बी बलन्द इमारत है। उसके इर्द गिर्द दीवार तथा ख़न्दक़ है। इस इमारत की प्रत्येक प्रदक्षिणा चौकोर सीढ़ियों द्वारा बाहर की ओर खुली हुई है। इसके पीछे बाफ़ोन (Baphon) की विशाल इमारत है। इन सब स्थानों में भी

प्रकार चार चैाक बनते हैं। उनके इर्द-गिर्द मेहराबें चली गई हैं। इन मेहराबों पर बहुत बढ़िया काम है।

दूसरे खन के आगे जो चबूतरा है उस पर ऊँची कुर्सी देकर दो छोटे छोटे मन्दिर बनाये गये हैं। उनके सुन्दर और निराले आकार आकाश में अङ्कित से जान पड़ते हैं। इसी खन में, जिसके चारों कोने शिखरों से शोभित हैं, आगे पीछे दालान बने हुए हैं, जो बाहर की ओर खिड़कियों द्वारा खुलते हैं। अन्दर की ओर द्वारों में से गुज़र कर एक चैाक आता है, जहाँ तीसरे खन की भीमकाय इमारत की दीवारें आरम्भ होती हैं।

तीसरी दीवार की ऊँचाई कोई १२ गज़ है। उसके ऊपर पहुँचने के लिए तीन ज़ीने हैं—दो सिरे पर और एक बीच में। इस बीच वाले ज़ीने से चढ़ने पर खम्भों से सज्जित एक सुन्दर दरवाज़ा है। सिरे के ज़ीनों द्वारा कोनों के ऊँचे विमानों तक लोग पहुँच सकते हैं। पृथ्वी की कोई दूसरी प्राचीन इमारत शायद इतनी विशाल तथा पूर्ण नहीं है। इसकी महत्ता तथा पूर्णता हृदय पर अपना आतङ्क जमाये बिना नहीं रहती।

तीसरी मंज़िल में, चैापार के आकार में, चार विशाल स्थान हैं। मध्य में यात्रियों के बैठने की जगह है। इसी में देवालय है, जिसका गगन-भेदी शिखर पहले खन से सत्तर गज़ ऊँचा है।

ऐसी विचित्र इमारत की हर एक ख़ूबी का वर्णन प्रायः असम्भव है। इसका महत्त्व देखने ही से जाना जा सकता है और दर्शक को पद पद पर उन प्राचीन शिल्पियों के अद्भुत नैपुण्य और उनके असीम बुद्धि-वैभव की प्रशंसा करनी पड़ती है। उसे उनकी भवन-निर्माण-कला के ज्ञान पर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है।

मन्दिर की छत से बाहर की चहारदीवारी दिखाई देती है। उसके भीतर भी वनस्पतियाँ खड़ी हैं। पहले चबूतरे पर ताड़-वृक्षों के पास-स्थान भी हैं, जो ताड़ के वृक्षों में छिपे हुए हैं। दूर प्नोम-कौलिन (Pnom-Coulen) पर्वत की निचली शिखरमाला दृष्टिगोचर होती है, जहाँ से इस मन्दिर को बनाने के लिए भीमकाय शिलायें काट कर लाई गई थीं। पत्थर की जिन विशाल शिलाओं से मन्दिर बनाया गया था और जिनकी बदौलत आज भी वह ऊँचा सिर किये निर्भय खड़ा है, उनको लाने और ऊपर चढ़ाने के लिए प्राचीन कारीगरों के पास कौन से यन्त्र थे, इसका विचार करने पर दर्शक की बुद्धि चकराने लगती है।

अन्त में हम पूर्वोक्त स्टीमर-कम्पनी का हृदय से धन्यवाद करते हैं, जिसकी कृपा से हमें अपने पूर्वजों के कीर्त्ति-स्तम्भ-रूप इन विशाल मन्दिरों का हाल पढ़ने को मिला। इस कम्पनी ने इनकी सैर या यात्रा कराने का उत्तम प्रबन्ध कर रक्खा है। हमारा अनुरोध है कि भाग्यवान् भारतवासी इनके अवश्य दर्शन करें।

बालकृष्ण शर्म्मा

विविध विषय।

१—"गृहस्थ" की गरिमा।

गया में "गृहस्थ" नाम का एक मासिक पत्र निकलता है। दो तीन महीने से इसने हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं की समालोचना आरम्भ की है। यह अच्छी बात है। इसके लिए हम गृहस्थ के कृतज्ञ हैं। क्योंकि, सम्भव है, इसकी समालोचनाओं से हमें लाभ उठाने का मौक़ा मिले। पर, खेद है, इसकी अब तक की आलोचनाओं में सार कम, असारता ही अधिक है।

बङ्गाली भाव-प्रचार में हिन्दी भाषा-भाषियों की निद्रा-वृद्धि की मार करना यहाँ का न्याय है? बङ्गाल ही रत्न-भूमि, विद्यार्थियों, मातृभक्तों के मगर के मयूर भी

गढ़वाल ब्रिगेड के कुछ जवान, कैप्टन पेज की निगरानी में, फ़्रांस के एक गाँव में, एक मकान के ऊपर टेलिफ़ोन का तार लगा रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

९—श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर-स्वामी।

संस्कृत के विद्वानों से यह बात छिपी नहीं कि श्रीमद्भागवत बहुत ही उत्कृष्ट, किन्तु क्लिष्ट ग्रन्थ है। पर इसका कोई कोई अंश अत्यन्त सरस और ललित भी है। यह अष्टादश पुराणों में सबसे बढ़ कर है। जिन्होंने इस अनुपम पुराण का यत्किञ्चित् भी अभ्यास किया है उन्हें श्रीधर-स्वामी की टीका देखने का बहुत करके अवश्य ही अवसर प्राप्त हुआ होगा। यथार्थ में यह टीका बहुत ही अच्छी है। इसमें गूढ़ विषयों का निरूपण बड़ी योग्यता से किया गया है। यह अपने नाम—भावार्थदीपिका—को खूब ही सार्थक करती है। मेरा मत है कि इस टीका से अच्छी टीका आज तक नहीं बनी। इस टीका के विषय में बाबू पूर्णेन्दुनारायणसिंह, एम॰ ए॰, बी॰ एल॰ अपनी एक पुस्तक (A Study of the Bhagwata Purana) में लिखते हैं—

Once a Pandit prided himself before Shri Chaitanya on his having put an interpretation upon a certain Śloka of the Purana, different from that of Shridhar Swami. Now "Swami" is a designation of a learned Sanyasi, such as Shridhar Swami was, and it also means a husband. Shri Chitanya remarked —"One that does not follow the Swami is unchaste" Such was the opinion which the great teacher held regarding Shridhara's commentary.

अर्थात् किसी समय एक पण्डित ने श्रीचैतन्य से गर्व से कहा कि मैंने श्रीमद्भागवत के एक श्लोक का ऐसा अर्थ किया है जो श्रीधर-स्वामी के अर्थ से भिन्न है। संस्कृत भाषा में "स्वामी" शब्द विद्वान् संन्यासी का वाचक है, जैसे कि श्रीधर-स्वामी थे। इसका दूसरा अर्थ पति भी है। इस पर श्रीचैतन्य ने उन पण्डितजी से कहा कि जो स्वामी का अनुयायी नहीं वह व्यभिचारी है। देखिए। यह उत्तर कितनी खूबी से भरा हुआ है। इस टीका के विषय में श्रीचैतन्य का बड़ा ही पूज्यभाव था।

इस टीका के कितने ही स्थलों में श्रीधर-स्वामी ने अपने शुद्ध विचार बड़ी उत्तमता से प्रकाशित किये हैं। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्धान्तर्गत रासपञ्चाध्यायी (अध्याय २९ से ३३) के विषय में बहुत लोगों के विचार प्रायः अच्छे नहीं। परन्तु उक्त टीकाकार ने इस विषय पर एक बहुत ही उत्कृष्ट प्रस्तावना लिखी है। उसका आंशिक अवतरण नीचे दिया जाता है—

ननु विपरीतमिदं परदारविनोदेन कन्दर्पविजयकथनमिति। नैवम् योगमायामुपाश्रितः आत्मारामोऽप्यरीरमत् साक्षात् मन्मथमन्मथः आत्मन्यवरुद्धसौरत इत्यादिषु स्वातन्त्र्याभिधानात् तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्येव तत्त्वम् किञ्च शृङ्गारकथापदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः (टीका अध्याय २९)

रासापदेशतः कामं निर्दूरीकृत्य कामनः।
अनुगृह्णन् वरां तिस्त्रे तथा विद्याधराधिपम्॥
(टीका अध्याय ३४)

जिन श्रीधर-स्वामी ने इतनी अच्छी टीका लिखी है उनमें नम्रता की मात्रा कितनी थी। सो भी सुनिए—

क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः॥

इस टीका में अद्वैत विषय का बहुत ही अच्छा प्रतिपादन किया गया है।

श्रीधर-स्वामी कब हुए, इसका ठीक पता नहीं चलता। टीका से विदित होता है कि वह श्रीस्वामी शङ्कराचार्य के पश्चात् लिखी गई है। शङ्कराचार्य दो हो गये हैं—आदि शङ्कराचार्य और दूसरे वे जिन्होंने शारीरक भाष्य बनाया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार शङ्कराचार्य का समय ईसा के ३०० वर्ष पूर्व होना चाहिए (सरस्वती १९१२, संख्या ६, पृष्ठ २२२, २२३) परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि शङ्कराचार्य ईसा की आठवीं शताब्दी में विद्यमान थे। प्रोफ़ेसर मानियर विलियम्स ने भी अपने संस्कृत-अँगरेज़ी कोश के दूसरे परिशिष्ट में लिखा है कि शङ्कराचार्य ७८८ ईसवी में उत्पन्न हुए और ८२० में, ३२ वर्ष की अवस्था में, परलोकवासी हुए। परन्तु प्रोफ़ेसर मिस्टर तैलङ्ग और डाक्टर भाण्डारकर का मत है कि शङ्कराचार्य ईसा की छठी या सातवीं शताब्दी में विद्यमान थे। यदि हम अन्तिम मत को स्वीकार करें तो

२—श्रीमद्भागवत के टीकाकार श्रीधर-स्वामी।

संस्कृत के विद्वानों से यह बात छिपी नहीं कि श्रीमद्भागवत बहुत ही उत्तम, किन्तु क्लिष्ट ग्रन्थ है। पर इसका कोई कोई अंश अत्यन्त सरस और ललित भी है। यह अठारह पुराणों में सबसे बढ़ कर है। जिन्होंने इस पुराण का थोड़ा सा भी अभ्यास किया है उन्हें श्रीधर-स्वामी की टीका देखने का बहुत करके अवश्य ही अवसर प्राप्त हुआ होगा। यथार्थ में यह टीका बहुत ही अच्छी है। इसमें गूढ़ विषयों का निरूपण बड़ी योग्यता से किया गया है। यह अपने नाम—भावार्थदीपिका—को खूब ही सार्थक करती है। मेरा मत है कि इस टीका से अच्छी टीका आज तक नहीं बनी। इस टीका के विषय में बाबू पूर्णेन्दुनारायणसिंह, एम० ए०, बी० एल० अपनी पुस्तक (A Study of the Bhagavata Purana) में लिखते हैं—

Once a Pandit prided himself before Shri Chaitanya on his having put an interpretation upon a certain Śloka of the Purana, different from that of Shridhar Swami. Now "Swami" is a designation of a learned Sanyasi, such as Shridhar Swami was, and it also means a husband. Shri Chitanya remarked —"One that does not follow the Swami is unchaste." Such was the opinion which the great teacher held regarding Shridhara's commentary.

अर्थात् किसी समय एक पण्डित ने श्रीचैतन्य से गर्व करके कहा कि मैंने श्रीमद्भागवत के एक श्लोक का ऐसा अर्थ किया है जो श्रीधर-स्वामी के अर्थ से भिन्न है। संस्कृत भाषा में "स्वामी" शब्द विद्वान् संन्यासी का वाचक है, जैसे कि श्रीधर-स्वामी थे। उसका दूसरा अर्थ पति भी है। इस पर श्रीचैतन्य ने उन पण्डितजी से कहा कि जो स्वामी का अनुयायी नहीं वह व्यभिचारी है। इसलिए। यह उत्तर कितना खूबी से भरा हुआ है। इस टीका के विषय में श्रीचैतन्य का बड़ा ही दृढ़ भाव था।

इस टीका के कितने ही स्थलों में श्रीधर-स्वामी ने अपने ग्रन्थ विचार बड़ी उत्तमता से प्रकाशित किये हैं। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्धान्तर्गत रासपञ्चाध्यायी (अध्याय २९ से ३३) के विषय में बहुत लोगों के विचार प्रायः अच्छे नहीं। परन्तु उक्त टीकाकार ने इस विषय पर एक बहुत ही उत्तम प्रस्तावना लिखी है। उसका आंशिक अव-तरण नीचे दिया जाता है—

ननु विपरीतमिदं परदारविनोदेन कन्दर्पविजेतृत्वमिति: मैवम् योगमायामुपाश्रितः आत्मारामोऽप्यरीरमत् साक्षात् मन्मथमन्मथः आत्मन्यवरुद्धसौरत इत्यादिषु स्वातन्त्र्याभिधानात् तस्माद्रासक्रीडाविडम्बनं कामविजयख्यापनायेत्यत्त्वम् किञ्च शृङ्गारकथापदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेयं पञ्चाध्यायीति व्यक्तीकरिष्यामः (टीका अध्याय २९)

शास्त्रोपदेशतः कामं किङ्करीकृत्य यत्नतः ।
अनुरक्तं कथं निन्ये तथा विषयराजिभिः ॥
(टीका अध्याय १४)

जिन श्रीधर-स्वामी ने इतनी अच्छी टीका लिखी है उनमें नम्रता की मात्रा कितनी थी, सो भी सुनिए—

क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मथनं क्षीरवारिधेः ।
किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥

इस टीका में अद्वैत विषय का बहुत ही अच्छा प्रति-पादन किया गया है।

श्रीधर-स्वामी कब हुए, इसका ठीक पता नहीं चलता। टीका से विदित होता है कि वह श्रीस्वामी शङ्कराचार्य के पश्चात् लिखी गई है। शङ्कराचार्य दो हो गये हैं—आदि शङ्कराचार्य और दूसरे वे जिन्होंने शारीरक भाष्य बनाया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार शङ्कराचार्य का समय ईसा के ३०० वर्ष पूर्व होना चाहिए (सरस्वती १९१५, संख्या १, पृष्ठ २९३, २९४) परन्तु पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध किया है कि शङ्कराचार्य ईसा की आठवीं शताब्दी में विद्यमान थे। परलोकवासी मिस्टर आप्टे ने भी अपने संस्कृत-अंगरेज़ी कोश के दूसरे परिशिष्ट में लिखा है कि शङ्कराचार्य ७८८ ईसवी में उत्पन्न हुए और ८२० में, ३२ वर्ष की अवस्था में, परलोकवासी हुए। परन्तु परलोकवासी मिस्टर तैलङ्ग और डाक्टर भाण्डारकर का मत है कि शङ्कराचार्य ईसा की छठी या सातवीं शताब्दी में विद्यमान थे। यदि हम पाश्चात्य मत का स्वीकार करें तो

आदि की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी वह सदा उसको उत्साह और सहायता देती है। यही कारण है जिसकी बदौलत जापान का व्यापार चमकता ही चला जाता है। जब से वर्तमान युद्ध छिड़ा है तब से तो जापान ने अपना व्यापार बढ़ाने की और भी अधिक चेष्टा आरम्भ कर दी है। भारत में जो चीज़ें जर्मनी से आती थीं उनकी आमदनी अब बन्द हो गई है। वे अब जापान से आने लगी हैं। जापान चाहता है कि भारत का बाज़ार अब उसी की चीज़ों से पट जाय। अनेकांश में उसकी यह चेष्टा सफल भी हो रही है। भारतीय गवर्नमेंट ने १९१४-१५ ईसवी से सम्बन्ध रखने वाली व्यापार-विषयक रिपोर्टें, अभी कुछ ही दिन हुए, प्रकाशित की हैं। उससे स्पष्ट सिद्ध है कि जापान का व्यापार भारत में दिन दूना बढ़ रहा है। बीस वर्ष पहले केवल २ करोड़ की जापानी चीज़ें यहाँ खप जाती थीं। दस वर्ष पहले उनकी क़ीमत बढ़ कर ११ करोड़ होगई। पर वर्तमान युद्ध छिड़ने के पहले जापान का व्यापार एकदम दूना हो गया। अर्थात् डेढ़ दो वर्ष पहले वहाँ से आई हुई चीज़ों की क़ीमत कोई साढ़े सत्ताईस करोड़ रुपया हो गई थी। और, अब तो कुछ न पूछिए। अब तो एक ही साल में जिधर देखिए उधर जापान ही जापान दिखाई दे रहा है। उसकी चीज़ों की खपत कई गुना अधिक हो गई है। यदि कुछ दिन और यही दशा रही तो और देश मुँह ताकते ही रह जायँगे, जापान सब पर व्यापारिक विजय प्राप्त कर लेगा। यदि हम लोग अब भी सचेत हो जायँ और व्यापार तथा उद्योग-धन्धों की ओर अपना ध्यान दें तो सम्भव है कि बिगड़ी बात बहुत कुछ बन जाय। यदि गवर्नमेंट हमारी इच्छा के अनुकूल सहायता देने में असमर्थता प्रकट करे तो हम स्वयं ही क्यों न कुछ कर दिखावें। ऐसे हज़ारों व्यापारी यहाँ हैं जो करोड़पति हैं। वे यदि चाहें तो कारख़ाने खोल कर ऐसी कितनी ही चीज़ें यहाँ तैयार कर सकते हैं जो पहले जर्मनी से आती थीं और अब जापान से आने लगी हैं। व्यापार और उद्योग-धन्धे सिखाने के स्कूलों का यहाँ प्रायः अभाव सा है। पर है उनकी अत्यन्त आवश्यकता। यदि हमारे देश के धनवान् चाहें तो गवर्नमेंट की सहायता के बिना भी ऐसे कितने ही स्कूल खोल सकते हैं। यदि हम लोग इस ओर ध्यान दें और स्कूल खोलने का दृढ़ निश्चय कर लें तो सम्भावना यही है कि इस काम में सरकार भी हमारी सहायता करेगी।

५—प्लेग की दवा।

प्लेग कष्ट-साध्य और बहुधा असाध्य रोग है। उस पर अनेक नई नई ओषधियाँ निकली हैं। किसी से थोड़ा लाभ होता है, किसी से बहुत, और किसी से कुछ भी नहीं। कुछ समय हुआ, सैलवेशन आरमी (Salvation Army) अर्थात् मुक्ति फ़ौज नामक ईसाई धर्म के एक सम्प्रदाय के कुछ अधिकारियों ने टिंचर आफ़ आयोडीन (Tincture of Iodine) नामक अँगरेज़ी दवा की प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा था। उन्होंने यह सूचित किया था कि इस दवा के प्रयोग से अधिकांश रोगी बच जाते हैं—उनके अनुसार यह बात उन्होंने अपने तजरबे से लिखी थी। इस सम्प्रदाय वाले नीच जाति के हिन्दुस्तानियों को, अपनी "फ़ौज" में अधिक भरती करते, उनको उद्योग-धन्धे सिखलाते और उनका दुराचरण दूर करके उन्हें सदाचारी बनाने की चेष्टा करते हैं। जरायम पेशा लोगों को भी इन्होंने अपनी "फ़ौज" में ले लिया है और उनके लिए अलग बस्तियों या उपनिवेशों की योजना कर दी है। विशेष करके ऐसे ही लोगों में पूर्वोक्त दवा का प्रयोग करके इन मोक्ष-मार्गियों ने अनुभव प्राप्त किया है।

इस सम्प्रदाय के सबसे बड़े अधिकारी या आचार्य बूथ टकर महाशय हैं। आपने अख़बारों में इस दवा के सम्बन्ध में एक पत्र, अभी हाल में ही, प्रकाशित कराया है। उसमें आप लिखते हैं कि बम्बई में प्लेग रिसर्च-लेबोरेटरी नाम की जो प्लेग-सम्बन्धिनी रसायनशाला है उसके प्रधान अफ़सर, मेजर लिस्टन, ने भी इस दवा को प्लेग-नाशक बताया है। पञ्जाब की गवर्नमेंट ने भी तजरबे से इस दवा को प्लेग निवारक पाया है। वह अब इस दवा को मुफ़्त बाँटती है। इस दवा से १०० में ८० रोगी तन्दुरुस्त हो जाते हैं। गत वर्ष कई ज़िलों में यह दवा दी गई। फल क्या हुआ सो नीचे देखिए—

ज़िला	जितने बीमारों को दवा दी गई	कितने अच्छे हुए	कितने मरे
लाहोर	१३१	११६	११
डेरा-ग़ाज़ीख़ाँ	३११	३१०	१८
गुरदासपुर	३३	९१	

जुरमाना होता था। नदी, तालाब इत्यादि के बाँध तोड़ने वाले पानी में डुबो दिये जाते थे।

समय की बात है। जो दण्ड इस समय अमानुषीय समझे जाते हैं वही उस समय न्यायसङ्गत समझे जाते थे।

८—दुनिया में सबसे बड़ा कोश।

जिन्होंने केवल बँगला का विश्वकोश, या शब्दसागर, या शब्दपारिजात देखा है वे समझते होंगे कि वे बहुत बड़े ग्रन्थ हैं। पर अँगरेज़ी के विश्वकोश (Encyclopædia Britannica) के सामने वे कोई चीज़ ही नहीं। उसकी बड़ी बड़ी कोई २९ जिल्दें हैं। अँगरेज़ी का यह विश्वकोश जिनके साहित्य का अंश है उन्हें इस बात का अवश्य ही गर्व होगा कि हमारे साहित्य में इतना बड़ा और इतने महत्त्व का ग्रन्थ विद्यमान है। पर इस गर्व को खर्व करनेवाले एक और बहुत ही बड़े विश्वकोश का पता मालूम हुआ है। यह विश्वकोश चीन की भाषा में है। इसका वर्णन बड़ौदे की लाइब्रेरी मिसलेनी नाम की सामयिक पुस्तक के एक अङ्क में प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखा है—

१४०३ ईसवी में चीन के सम्राट् यंग—लो के मन में यह आया कि ऐसा ग्रन्थ तैयार होना चाहिए जिसमें सभी शास्त्रों और सभी बातों का थोड़ा-बहुत वर्णन रहे। इस काम पर उसने सी-चिन नाम के एक विद्वान् की नियोजना की और १४७ सहायक सम्पादक उसकी सहायता के लिए दिये। १६ महीने में यह काम हो गया। पर इससे सम्राट् को सन्तोष न हुआ। कोश बना तो, पर बहुत बड़ा न बना। तब उसने उससे भी बहुत बड़े कोश के निर्म्माण का प्रबन्ध किया। सी-चिन को उसने कमिश्नर बनाया। साथ ही दो और कमिश्नर भी नियत किये। इन तीनों कमिश्नरों ने ५ डाइरेक्टर, २० सहायक सम्पादक और २,१४१ सहायक लेखक रक्खे। इन लोगों ने धर्म्म, विज्ञान, इतिहास, दर्शन, कला-कौशल, शिल्पकला, खगोल, भूगोल, ज्योतिष, वैद्यक, काव्य, भाषा, साहित्य—आदि जितने शास्त्र और पदार्थीय विषय थे सब पर चीनी-भाषा में लिखे गये ग्रन्थों का सार-सङ्कलन करना आरम्भ किया। चार वर्ष के सतत परिश्रम से ११,१०० जिल्दों में एक प्रकाण्ड कोश बन कर तैयार हुआ। यह इतना बड़ा ग्रन्थ २२,८७७ अध्यायों में लिखा गया। हर एक जिल्द की मुटाई आध इंच हुई। अर्थात् यदि ये जिल्दें एक के ऊपर एक रक्खी जायँ तो इनकी ऊँचाई ४६० फ़ीट हो। बात यह कि अँगरेज़ी के वर्तमान विश्वकोश से यह कोश बहुत ही अधिक बड़ा बना।

सम्राट् यङ्ग—लो की राजधानी उस समय नानकिंग नगर था। १४२१ ईसवी में पेकिंग को उसने राजधानी बनाया। वहीं तक इस विश्वकोश को भी ले गया। १५६२ ईसवी में चीन के तत्कालीन सम्राट् ने १०० विद्वान् लेखकों से उसकी दो कापियां और तैयार कराईं। तब असल कापी नानकिंग नगर को लौटा दी गई। एक कापी सम्राट् के महल में और दूसरी पेकिंग के राजकीय इतिहासालय में रक्खी गई। १६४४ ईसवी में तत्कालीन राजवंश की इतिश्री हुई। देश में विप्लव हुआ। मिंग् वंश के साम्राज्य की समाप्ति हुई। विप्लव के समय नानकिंग और पेकिंग के इतिहासालय की कापियां आग लगने से जल गईं। केवल राजमहल की कापी बच रही। इस साल, बाक्सर-विद्रोह के समय वह भी जल गई। उसकी कुछ ही जिल्दें बचीं। उनमें से ५ जिल्दें विलायत पहुँचीं। ये पाँचों जिल्दें हर्बर्ट ए० गाइल्स नामक एक महाशय के पास हैं। विशेष करके उन्हीं के आधार पर इस विश्वकोश का वर्णन प्रकाशित हुआ है। चीन के राजकीय पुस्तकालय की पुस्तकों की एक बहुत बड़ी सूची है। उसमें इसका भी वर्णन है। इस वर्णन को पढ़ कर पहले लोगों को इस कोश के इतने बड़े होने में सन्देह था। उनका ख़याल था कि बात बढ़ा कर लिखी गई है; इतना बड़ा कोश चीनी भाषा में होना सम्भव नहीं। पर अब इसकी पूर्वोक्त ५ जिल्दें मिल जाने से उस सन्देह का निराकरण हो गया।

९—विष्णु की दस हज़ार वर्ष की पुरानी प्रतिमायें।

ज़िला रङ्गपुर (बङ्गाल), परगना गैबन्धा, मौज़ा मालपगञ्ज के पास एक संथाली मज़दूर हल जोत रहा था। ९ नवंबर १९१० का दिन था। उसके हल में कोई बड़ी कड़ी चीज़ लगी। खोदने पर मिट्टी की एक बहुत बड़ी नांद निकली। उसके भीतर रक्खी हुई विष्णु की पाँच मूर्तियाँ पाई गईं। मूर्तियाँ इतनी सुन्दर और इतनी अच्छी दशा में निकलीं कि पुरातत्त्व-विभाग के अफ़सरों ने उनमें से तीन को उठा कर कलकत्ते के अजायब घर में रख दिया। शेष दो रङ्गपुर

संयुक्त-राज्य स्पेन से भिड़ गये। युद्ध में स्पेन की हार हुई। फ़िलीपाइन द्वीप अमेरिका वालों के अधिकार में चले गये। यह बात १८९८ ईसवी की है। अमेरिका के संयुक्त-राज्यों का सिद्धान्त राज्य-विस्तार करना नहीं। दूसरों का देश छीन कर वे अपने प्रभुत्व की वृद्धि करने के प्रतिकूल हैं। इस कारण उन्होंने फ़िलीपाइनवालों को शिक्षित बनाने और उनका देश उन्हीं को दे देने का वचन दिया। दिन पर दिन शिक्षा का विस्तार और प्रचार होने लगा। धीरे धीरे द्वीप-निवासी राज्य-कार्य्य में भी शामिल किये जाने लगे। उन्हें स्वराज्य की ओर ले जाने की चेष्टा अधिकाधिक होने लगी। इस पन्द्रह सोलह वर्ष के अल्पस्वल्प समय में ही अमेरिका ने उन लोगों को यथेष्ट शिक्षित और राज्य-कार्य्य-सञ्चालन योग्य बना दिया। उनकी इतनी उन्नति करके अब संयुक्त राज्य के राष्ट्रपति, मिस्टर विल्सन, ने यह घोषणा की है कि कम से कम ढाई और अधिक से अधिक चार वर्ष में फ़िलीपाइन-द्वीप-पुञ्ज स्वतन्त्र कर दिया जायगा। तब वहाँ वाले अपने देश का शासन आप ही करेंगे। अमेरिका की यह उदारता सच-मुच ही अद्वितीय है। फ़िलीपाइन कोई सभ्य द्वीप नहीं। यह कोई तीन हज़ार छोटे बड़े द्वीपों का समूह है। वहाँ अनेक जाति के लोग निवास करते हैं। उनमें से कितने ही निरे असभ्य हैं और जङ्गलों में रहते हैं। कुछ जातियाँ वहाँ ऐसी भी हैं जो अब तक नरमेध-यज्ञ करती हैं। यहाँ तक कि वे लोग जिन मनुष्यों का शिकार करते या मारते हैं उनका माँस तक खा जाते हैं। वे उनकी खोपड़ियों को बड़ी आव-भगत से अपने झोपड़े के द्वार पर वन्दनवार की तरह लटकाते हैं। तथापि, ऐसे भी लोगों को संयुक्त-राज्य, अमेरिका, ने शिक्षित बना कर उनके देश का शासनभार उन्हीं को सौंप दिया।

१२—बुद्धदेव की अस्थियाँ।

बुद्धदेव के निर्वाण के उपरान्त उनके पार्थिव शरीर की भस्म और अस्थियाँ यहाँ इस देश के कई स्थानों में रक्खी गईं और भावुक बौद्धों ने उन पर बड़े बड़े विशाल स्तूप बना दिये। कालाधिक्य के कारण वे स्तूप नष्ट हो गये, इनके भग्नांश पृथ्वी के पेट में दब गये। खोदने से कहीं कहीं वे ज़मीन के भीतर गड़े हुए अब तक मिलते हैं। उस साल पेशावर के पास एक स्तूप निकला था। उससे बुद्ध के शरीर की कुछ भस्म भी निकली थी। वह ब्रह्मदेश को भेज दी गई, इसलिए कि वहाँ बौद्ध-धर्म्म का ही विशेष प्रचार है—बौद्ध धर्म्म वहाँ जागरूक दशा में है। अब, सुनते हैं, तक्षशिला में भी बुद्ध का कुछ शरीरांश मिला है। गवर्नमेंट को चाहिए कि इस अस्थिशेष को वह तक्षशिला ही में रहने दे। वहाँ न रक्खे तो कहीं बिहार में रख दे। क्योंकि बिहार ही बुद्ध-देव की लीलाभूमि है। जिस देश में बुद्ध का जन्म हुआ और जहाँ उन्होंने अपने धर्म्म का बीज बोया वहीं उनका शरीरांश भी रहना चाहिए। बौद्ध-धर्म्म के अनुयायी भारतवर्ष को आदर-दृष्टि से देखते हैं। इसका कारण यही है कि यह देश बुद्ध की जन्मभूमि है। यदि उनकी अस्थियों की स्थापना यहाँ हो जायगी तो बौद्धों की श्रद्धा और भी बढ़ जायगी। जिस स्थान में अस्थि-स्थापना होगी उस स्थान को वे तीर्थ मानने लगेंगे और लाखों बौद्ध यहाँ की यात्रा करने आवेंगे। इससे उनकी दृष्टि में भारत का महत्त्व बढ़ जायगा। ऐसा होने से किसी की कुछ भी हानि न होगी। जिस भारत ने बुद्ध को जन्म दिया उसकी भूमि को बुद्ध की चिताभस्म से वञ्चित करना किसी प्रकार न्याय्य नहीं। इस भस्म की यहीं स्थापना होने के लिए कुछ लोगों ने यत्न करना शुरू कर दिया है। इस निमित्त बांकीपुर में एक कमिटी भी बन गई है। आशा है, गवर्नमेंट कमिटी की प्रार्थना स्वीकार कर लेगी और अस्थियों की स्थापना कहीं यहीं कर देगी।

१३—सामयिक पुस्तकों की प्रदर्शिनी।

बम्बई में एक प्रदर्शिनी हो रही है। इस नोट के प्रकाशित होने तक शायद वह उठ भी जाय। यह प्रदर्शिनी सामयिक पुस्तकों की है—इस देश की सामयिक पुस्तकों की नहीं, किन्तु योरप, अमेरिका और जापान में छपी हुई पुस्तकों की। प्रत्येक विषय की पुस्तकें इसमें अलग अलग सजाई गई हैं। इससे इस देश के पुस्तक-प्रकाशकों को यह मालूम हो जायगा कि अन्य देशों ने इस विषय में कितनी उन्नति की है। हर विषय की अनेकानेक पुस्तकें वहाँ प्रकाशित होती हैं। राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कृषि-कार्य्य, उद्योग-धन्धा, यन्त्र-विद्या, ललित कला, वनस्पतिशास्त्र, व्यायाम—यहाँ तक कि छोटे छोटे बच्चों के पढ़ने योग्य भी बढ़िया सामयिक पुस्तकें, बड़े ही मनोरञ्जक रूप-रङ्ग में, सचित्र निकलती हैं। इससे इस लोगों को यह लाभ तो

ही चीज़ों पर कर न था। पर अब उनमें से भी कई चीज़ों पर लगा दिया गया है। जो काग़ज़ विदेश से इस देश में आता है उस पर पहले २ रुपया सैकड़ा कर था। अर्थात् सौ रुपये के काग़ज़ पर सरकार को २ रुपया देना पड़ता था। अब यह कर साढ़े सात रुपया हो गया है। इस देश में काफ़ी काग़ज़ नहीं बनता। जितना काग़ज़ यहाँ बनता है उसका प्रायः दूना विदेश से आता है। युद्ध के कारण काग़ज़ पहले ही दुष्प्राप्य था। जो प्राप्य भी था उसके दाम प्रायः दूने हो गये थे। अब कर ड्योढ़ा हो जाने से उसकी दुष्प्राप्यता और भी बढ़ जायगी। स्याही आदि तथा छापने की मशीनों पर पहले कर न था। अब इन चीज़ों पर भी २½ रुपया सैकड़ा कर लगा है। फल यह होगा कि पुस्तकों और समाचार-पत्रों के द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा और भी बहुमूल्य और दुष्प्राप्य हो जायगी। भारत जैसे अल्पशिक्षित देश के लिए यह बड़ी ही दुर्भाग्य की बात है। अब यहाँ की प्रकाशित पुस्तकों का मूल्य बहुत बढ़ जायगा। अतएव थोड़ी आमदनी के लोग उन्हें आसानी से मोल न ले सकेंगे। पर विदेश से जो पुस्तकें छप कर यहाँ आवेंगी उन पर कुछ भी कर न देना पड़ेगा। वे पूर्ववत् ही बिना कर के आवेंगी। इस कारण इस देश के प्रकाशकों की और भी हानि होगी—विशेष करके उन लोगों की जो अँगरेज़ी की स्कूली किताबें छापते हैं। यदि वे विलायती पुस्तक-प्रकाशकों का मुक़ाबला करना चाहेंगे तो शायद न कर सकेंगे। क्योंकि यहाँ वालों को काग़ज़, स्याही और मशीनों पर अधिक कर देना पड़ेगा, पर विलायत वाले इससे साफ़ बचे रहेंगे।

१४—इन्दौर-राज्य में शिक्षा-प्रचार के लिए नया प्रबन्ध।

शिक्षा-प्रचार करने में बड़ौदा और माइसोर की रियासतें बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। अब इन्दौर-राज्य का भी ध्यान इस तरफ़ गया है। शिक्षा-सम्बन्धिनी बातों पर विचार करने के लिए इन्दौर-नरेश, महाराजा होलकर, ने एक कमिटी बना दी थी। इस बात को दो तीन वर्ष हुए। यथासमय कमिटी ने अपनी रिपोर्ट भेजी। उस पर महाराजा ने अब एक आज्ञापत्र प्रकाशित किया है। इस पत्र को पढ़ने से विदित होता है कि महाराजा होलकर कितने विद्या-प्रेमी और शिक्षा-प्रचार के कितने पक्षपाती हैं। आप अपने राज्य को किसी अन्य देशी राज्य से पीछे नहीं रहने देना चाहते। आपने सर्वत्र प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य कर दी है। कहीं दो में, कहीं पाँच में, कहीं छः वर्ष में माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए क़ानूनन मजबूर होंगे। स्कूलों की संख्या भी बढ़ेगी। उन के लिए मकान और सामान भी लाखों रुपया ख़र्च कर के दिया जायगा। अँगरेज़ी के स्कूलों और कालेजों की भी उन्नति होगी। हर साल एक छात्र राज्य के ख़र्च से उपयोगी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेश भेजा जायगा। कला-कौशल्य और उद्योग-धन्धे सीखने का भी प्रबन्ध होगा। जागीरदारों को कम से कम मेट्रिकुलेशन तक अवश्य ही शिक्षा प्राप्त करनी होगी। इसके सिवा शिक्षा-प्रचार और शिक्षा-विस्तार के कामों में और भी कितनी ही उन्नतियाँ होंगी। अतएव महाराजा होलकर की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। आपने मराठी और हिन्दी भाषा के साहित्य की अभिवृद्धि के लिए भी पाँच हज़ार रुपया साल ख़र्च करने की मंज़ूरी दी है। इस लिए दो कमिटियाँ बनी हैं। एक मराठी के लिए, दूसरी हिन्दी के लिए। ये कमिटियाँ नये नये ग्रन्थ तैयार करावेंगी और ग्रन्थकारों को उनके परिश्रम का पुरस्कार देंगी। आशा है, ढाई हज़ार रुपया हर साल ख़र्च करने से हिन्दी में बहुत शीघ्र बहुत सी अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित हो जावेंगी। पुस्तकें काम की होनी चाहिए। विज्ञान, कला-कौशल, उद्योग-धन्धे, राजनीति, समाज-नीति, इतिहास आदि विषयों पर हिन्दी में बहुत ही कम साहित्य है। इस कमी की पूर्ति की ओर हिन्दी-कमिटी को अधिक सचेष्ट होना चाहिए।

१५—भारतवासियों की साम्पत्तिक अवस्था।

उस दिन भारतीय गवर्नमेंट के अर्थसचिव ने कौंसिल में जमा-ख़र्च का चिट्ठा पेश किया और बताया कि १९१६-१७ में ख़र्च बहुत होगा, आमदनी कम होगी। इस कारण आमदनी बढ़ानी होगी। पाँच हज़ार और उससे अधिक आमदनी वालों को जितना कर देना पड़ता है उस से अधिक देना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में अर्थसचिव ने यह भी बताया कि इस देश में कितनी आमदनी के कितने लोग हैं। पर उस का ब्यौरा हमें देने की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता केवल इतना ही बताने की है कि इस देश के कोई ३२ करोड़ निवासियों में से केवल २,३२,००० आदमी आमदनी पर कर देते हैं। अर्थात् इतने ही लोगों की सालाना आमदनी एक

बड़ा नाम हुआ । दूर दूर तक के व्यापारी और व्यवसायी आपको आदर की दृष्टि से देखने लगे ।

पाँच वर्ष तक आप अहमदाबाद की मिल ओनर्स एसोसिएशन के सभापति रहे । वहाँ की म्युनिसिपैलिटी ने आपको अपना चेअरमैन चुना । आपकी ख्याति धीरे धीरे इतनी बढ़ी कि सरकार ने भी आपको, सन् १९०० में, सी० आई० ई० की उपाधि से अलङ्कृत किया । सन् १९०१ में आप पहले दरजे के सरदार बनाये गये । आपको "सर" की पदवी मिली ।

अहमदाबाद में आप अपनी उदारता और सौजन्य के कारण इतने लोकप्रिय थे कि आपकी मृत्यु-वार्ता सुनकर नगर की सब मिलें, स्कूल, कालेज, म्युनिसिपल-दफ़्तर, बाज़ार और दुकानें बन्द हो गईं ।

शिक्षा-प्रचार तथा अन्य उपयोगी कामों के लिए आपने हज़ारों रुपया दान किया । व्यवसाय, व्यापार और समाज की उन्नति के लिए आपने जितना श्रम और जितना ख़र्च किया उतना आज तक गुजरात में शायद ही और किसी ने किया होगा ।

पुस्तक-परिचय ।

१—हैमाद्रि । भाषा बँगला, आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १२०, छपाई और काग़ज़ सुन्दर, मूल्य एक रुपया । लेखक, श्रीयुत विजयचन्द्र मजूमदार, बी० एल०, सम्बलपुर । उन्हीं से प्राप्य । मजूमदार महाशय बड़े विद्वान् हैं । अँगरेज़ी और बँगला, इन दोनों भाषाओं में आपके लेखों और पुस्तकों से हमने बहुत लाभ उठाया है । बड़े दुःख की बात है, आप की दृष्टि जाती रही है । शायद यह आपके अत्यधिक अध्ययन का परिणाम है । आपही ने कृपा करके इस हैमाद्रि नामक पुस्तक की एक प्रति हमें भेजी है । इसमें आपकी फुटकर कविताओं का संग्रह है । कवितायें बँगला में हैं । इस कारण हम उनके गुण-दोष बताने के अधिकारी नहीं । पर यह कहने में हमें कुछ भी सङ्कोच नहीं कि पुस्तक में आपकी जो संस्कृत-कवितायें हैं वे यथेष्ट भावपूर्ण और सरस हैं । ईश-स्तुति का एक नमूना लीजिए—

> [illegible] ।
> [illegible] ॥

[illegible]
[illegible] ।

प्रमाणगीति नामक कविता का भी एक नमूना—

> [illegible]
> [illegible] पुनः प्रणामे ।
> [illegible]
> [illegible] न करोति दुःखम् ॥

इन कविताओं के अन्त में "निवेदन" नामक एक पद्य मजूमदार महाशय ने लिखा है । उसे पढ़ कर हमारे हृदय को अतीव क्लेश हुआ । वह पद्य यह है—

> [illegible]
> [illegible] ।
> [illegible]
> [illegible] ॥

भगवान् करे आपकी यह प्रार्थना फलवती हो ।

पुस्तकान्त में अश्वघोष के बुद्ध-चरित के प्रथम सर्ग का पद्यानुवाद भी है । अनुवाद पद्य में है । साथ ही संस्कृत-मूल भी दे दिया गया है ।

☆

२—आरोग्य-व्रत । भाषा मराठी, पृष्ठ-संख्या ३४, मूल्य लिखा नहीं, मिलने का पता—नैसर्गिक आरोग्यमाला कार्यालय, रेवस, पोस्ट मारड़ी, कुलाबा । इस पुस्तक में इसाप्प मसापण देशपाण्डे वैद्य ने उपवास-व्रत की विधि का वर्णन किया है और लिखा है कि इस विधि से, बिना औषधि-प्रयोग के, अनेक रोग दूर होते हैं । नीरोग आदमी भी यदि इसे करते हैं तो फिर रोगी नहीं होते ।

३—जीवन-यात्रा । आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १२०, मूल्य अज्ञात, लेखक—पण्डित हरिकृष्ण शर्मा, दिल्ली, सहारनपुर । यह बड़ी अच्छी पुस्तक है । इसमें मनुष्य की तीनों अवस्थाओं के कर्तव्य कार्यों का वर्णन है । वर्णाश्रम-धर्म की सभी मुख्य मुख्य बातों के सिवा देशभक्ति, राजभक्ति तथा सदाचार आदि का भी उल्लेख है । और भी अनेक सदुपदेश एवं शिक्षाओं का समावेश इसमें है । स्थान स्थान पर संस्कृत-श्लोकों के श्लोक उद्धृत हैं । उनके अर्थ भी हिन्दी में लिख दिये गये हैं । संस्कृत-पद्यों में कहीं कहीं दोष रह गये हैं, जो क्षम्य हैं । पुस्तकारम्भ में एक विषय-सूची की कमी है ।

फ्रांस के एक बगीचे में गोरखे बाँसुरी बजा रहे हैं और फ्रांसीसी
स्त्री-पुरुष-बच्चे सुन रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

६—एकू-महल-रहस्य। यह एक प्रकार का ऐतिहासिक उपन्यास है। सचित्र है। पृष्ठ-संख्या १०२ है। छपाई-सफ़ाई अच्छी है। सुन्दर जिल्द बँधी हुई है। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा। पण्डित रामानन्द द्विवेदी ने इसे बँगला से अनुवादित किया है। मूल पुस्तक श्रीयुक्त हरिसाधन मुखोपाध्याय की लिखी हुई है। यद्यपि इस पुस्तक में विलासिता के अवतार शाहज़ादा सलीम के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है, तथापि अश्लीलता नहीं आने पाई। मूल ग्रन्थकार ने प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र ख़ूब समझ-बूझ कर चित्रित किया है। समष्टि रूप में पुस्तक अच्छी बन पड़ी है। पढ़ने में मन ख़ूब लगता है। अनुवाद की भाषा समास-बहुल होने पर भी सरस है। कहीं कहीं कुछ शब्द-प्रयोग खटकनेवाले हैं। जैसे—'रश्मिमाला' 'मासाद्यातुल्य महल' इत्यादि।

वाक्य और वाक्यांश भी यत्र-तत्र आक्षेप योग्य हैं। यथा—"मूसलधार वृष्टि नहीं थमी" (पृ० ७ पं० ३) "यमुना भी उसी तरह + + + + एक पत्थर के छोटे टुकड़े को भी स्थान च्युत न कर सक क्षोभ और रोष से + + + + उन्मादिनी की भाँति दौड़ती" इत्यादि।

छापे की भी भूलें रह गई हैं। तथापि इन त्रुटियों के होते हुए भी पुस्तक का भाव अच्छी तरह समझ में आ जाता है। पुस्तक शायद सुलभ-ग्रन्थ-प्रचारक मण्डली, नं० १२, हरि सरकार लेन, बड़ा-बाज़ार, कलकत्ता को लिखने से मिल सकती है।

देवीदत्त शुक्ल।

☼

७—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें (१) अनाथ-बालक। एक गार्हस्थ्य उपन्यास है। पृष्ठ संख्या १०० है। मूल्य १० आने है। इसे पण्डित पारसनाथ त्रिपाठी ने इसी नाम की बँगला पुस्तक से हिन्दी में अनुवाद किया है। मूल पुस्तक के लेखक बाबू चन्द्रशेखर कर हैं। इसमें एक हिन्दू-गृहस्थ की दशा का चित्र खींचा गया है। पहले इस कुटुम्ब की अच्छी दशा का वर्णन किया गया है, फिर बुरी दशा का। इतनी बुरी कि एक अनाथ बालक और एक विधवा के सिवा इस कुटुम्ब में और कोई न रह गया। इसके बाद इन दोनों के प्रशंसनीय उद्योगों का वर्णन है। कर्ता महोदय ने चरित्र-चित्रण ऐसे अच्छे ढंग से किया है कि उनकी प्रत्येक पंक्ति से उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। उपन्यास बहुत अच्छा है। पढ़ने की चीज़ है। अनुवाद की भाषा सरल है।

(२) सावित्री—यह भी एक गार्हस्थ्य उपन्यास है। इसके अनुवादक हैं—पण्डित गुलज़ारीलाल चतुर्वेदी। मूल लेखक का नाम है शरच्चन्द्रप्रसाद चक्रवर्ती। पृष्ठ-संख्या २०४ और मूल्य आठ आने है। इसमें एक पति-परायणा साध्वी का चरित्र लिखा गया है। यह पतिव्रता सुन्दरी सास-ससुर और पति-द्वारा परित्यक्त कर दी गई थी। पति ने द्वितीय विवाह कर लिया था। दूसरी पत्नी ऐसी कुचरित्रा थी कि उसके कारण उसके पति की सारी सम्पदा और कुल-मर्यादा नष्ट हो गई। अन्त में तिरस्कृता पतिव्रता को पुनः अपने घर में आश्रय मिला। उसके आने पर उस घर में लक्ष्मी की फिर कृपादृष्टि हुई। विषय भी अच्छा है। भाषा भी अच्छी है। पुस्तक से स्त्री-पुरुष दोनों को शिक्षा मिलती है।

(३) पन्ना—यह नाटक है। इसमें छोटे छोटे छः अङ्क हैं। पृष्ठ-संख्या ७२ और मूल्य ४ आने है। लेखक, श्रीयुत भण्डारी कृष्णप्रकाशसिंह हैं। मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को, उनकी बाल्यावस्था में, बहुत बड़ा आत्मोत्सर्ग करके धात्री पन्ना ने बचाया था। इसी घटना के आश्रय पर इस नाटक की सृष्टि हुई है। इसका कथानक अच्छा है। नाटक पढ़ने में अच्छा मालूम होता है, खेलने में कैसा मालूम होगा, यह मैं नहीं कह सकता।

(४) पत्रोपहार—लेखक, पण्डित धर्म्मदत्तप्रसाद मिश्र। पृष्ठ संख्या ६१, मूल्य चार आने। इसका द्वितीय संस्करण होना ही इसकी उपयोगिता का अच्छा प्रमाण है। इसमें पत्र द्वारा पुत्रों को पिता के उपदेश हैं। पत्र सब १० हैं। हर पत्र में बड़ी सुन्दर सुन्दर शिक्षायें हैं। बच्चों के लिए पुस्तक बड़े काम की है।

(५) पतिव्रता सुनीति लेखक, पण्डित कामताप्रसाद त्रिवेदी। पृष्ठ-संख्या ७१, मूल्य चार आने। यह उपन्यास एक पौराणिक कथा के आधार पर लिखा गया है। इसमें राजा उत्तानपाद की बड़ी रानी सुनीति की पति-भक्ति और छोटी रानी सुरुचि की मानसिक अपवित्र ईर्षा का वर्णन है। पुस्तक अच्छी है और शिक्षा-

सिखाने के लिए कालेज में नियुक्त हैं। यह पुस्तक किसानों को खेती का काम सिखाने के लिए नहीं लिखी गई, किन्तु खेती के काम का पर्याप्त वैज्ञानिक रीति से करने के लिए लिखी गई है। तथापि इसमें किसानों के काम के लिए प्रक्रिया-विषयक बातें भी सैकड़ों आगई हैं। वनस्पति, भूमि, कृषि के औज़ार, आबोहवा, कृषि को हानि पहुँचाने वाले कीड़े, पशु-चिकित्सा, कृषि की नई रीतियाँ—इन बातों के सिवा इसमें व्यावहारिक कृषि का भी वर्णन है। अन्त में १०० के ऊपर कृषि-सम्बन्धिनी कहावतें हैं। भाषा सीधी सादी सबके समझने योग्य है। अब कानपुर के कृषि कालेज में भी अधिकांश शिक्षा हिन्दी-उर्दू में ही जाती है। आशा है कि लेखक महाशय की पुस्तक उसमें पाठ्य पुस्तक कर दी जायगी।

※

११—विश्वविद्याप्रचारिका ग्रन्थमाला। इस माला की दो पुस्तकें हमें प्राप्त हुई हैं। पहली का नाम है—भ्रातृ-स्नेह। इसका आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १६ और मूल्य १ आना है। इसके सम्पादक पण्डित रामस्वरूप शर्म्मा हैं। इसमें भरतजी पर एक छोटा सा निबन्ध है, जिसमें भरतजी के भ्रातृस्नेह और स्वार्थ-त्याग आदि का वर्णन है। दूसरी पुस्तक का नाम है—प्राचीन सभ्यता की झलक। इसका भी वही आकार है। पृष्ठ संख्या २१ और मूल्य ४ आने है। इसके भी सम्पादक पूर्वोक्त शर्म्माजी हैं। इसमें बुद्ध और स्वामी विवेकानन्द पर एक एक छोटा लेख है। इसके सिवा दो एक कविताएँ तथा "ग्राम का सुधार" नामक एक और लेख भी है। दोनों पुस्तकों के मिलने का पता है—विश्व-विद्याप्रचारक महामण्डल, धर्म्मीमी।

※

१२—श्रीजिनदत्त सूरि का संक्षिप्त चरित। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ४२, मूल्य १ आने, जैन-साहित्य प्रचारक मण्डल, देहली, से प्राप्य। विक्रम की बारहवीं शताब्दी में जिनदत्त सूरि नाम के एक जैन विद्वान् हो गये हैं। उन्हीं का संक्षिप्त वृत्तान्त इस छोटी सी पुस्तक में है। वृत्तान्त में सूरि महाराज की अनेक मनुष्यातिग बातों और सिद्धियों का भी वर्णन है। कहाँ से ये सब बातें लेखक, धनपतसिंहजी भणसाली, को मालूम हुईं और ये कहाँ तक सच हैं, इसका पता और प्रमाण पुस्तक में कहीं नहीं। छपाई और काग़ज़ अच्छा है।

※

१३—लघुसारसंग्रहः। पृष्ठ-संख्या ७१, प्रकाशक श्रीयुत शिवकृष्ण, सुपरिंटेंडेंट, सीताराम-कृषिशाला, कमच्छा, बनारस सिटी। इसके आरम्भ के ४८ पृष्ठों में गीता, वेदान्त, उपनिषद् आदि का सार-संग्रह है। रचना स्वामी चिद्घनानन्द सरस्वती की है और संस्कृत में है। उसके नीचे संस्कृत-श्लोकों का अन्वय और हिन्दी में मूल का भावार्थ भी है। थोड़े में वेदान्त की बातें अच्छे ढँग से कही गई हैं। सारसंग्रह के आगे १० संस्कृत-श्लोकों में गङ्गास्तोत्र है। स्तोत्र का भावार्थ भी हिन्दी में है। कविता सरस है। इसके आगे, पुस्तकान्त में, कुछ भजन आदि हैं। उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की बातें हैं। पुस्तक पर मूल्य नहीं लिखा।

※

१४—तेजीमन्दीप्रकाश। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य ४ आने, सम्पादक, पण्डित ब्रह्मादत्त शर्म्मा, ज्योतिषशास्त्र—कार्य्यालय, रेवाड़ी—से प्राप्य। इसमें सरसों, अलसी, रुई, गेहूँ, घी, तेल, अनाज आदि की तेजी-मन्दी तथा सुभिक्ष-दुर्भिक्ष की सूचनायें हैं। ज्योतिषग्रन्थों के प्रमाण भी लिख दिये गये हैं। यात्रा के मुहूर्त्त और व्रतों आदि का भी उल्लेख है। इन सब बातों का सम्बन्ध संवत् १९७२ से है। मालूम नहीं, यह तेजी-मन्दी की भविष्य-वाणी कहाँ तक विश्वसनीय है।

※

१५—कुसुमकुमारी। लेखक पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी, बड़ी सांची, पृष्ठ-संख्या ११४, सचित्र, मूल्य १ रुपया। मिलने का पता—श्रीसुदर्शन प्रेस, वृन्दावन (मथुरा)। पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक हैं। उनके लिखे कोसियों बड़े बड़े उपन्यास हिन्दी में मौजूद हैं। गोस्वामीजी ने इस उपन्यास को एक सच्ची घटना के आधार पर लिखा है। बीच बीच में वात्स्यायन का भी मज़ा मिलता है। प्रत्येक परिच्छेद के आरम्भ में संस्कृत-साहित्य से चुने हुए श्लोक आदि दे दिये हैं। जो लोग प्रेम-कहानी पढ़ने के लिए शौक़ीन हैं उनके लिए कुसुमकुमारी विनोद की चीज़ है। भाग्य का दाम्पत्य-प्रेम-कथा

गृहलक्ष्मी

मैनेजर, गृहलक्ष्मी, इलाहाबाद

भाग १७, खण्ड १]
SARASVATI—Reg. No. A248
मई, १९१६
[संख्या ५, पूर्ण संख्या १९७
सरस्वती
वार्षिक मूल्य ४)
सम्पादक—महावीरप्रसाद द्विवेदी
[प्रति संख्या ।=)
इंडियन प्रेस, प्रयाग, से छप कर प्रकाशित।

कविता-कलाप

(सम्पादक—पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

इस पुस्तक में सरस्वती से आरम्भ करके ४५ प्रकार की सचित्र कविताओं का संग्रह किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवि राय देवीप्रसाद बी० ए, बी० एल, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्मा, पण्डित कामताप्रसाद गुरु, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी की ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई कविताओं का यह अपूर्व संग्रह प्रत्येक हिन्दी-भाषाभाषी को मँगाकर पढ़ना चाहिए। इसमें कई चित्र रंगीन भी हैं। ऐसी उत्तम सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रुपये।

(सचित्र)

हिन्दी-कोविदरत्नमाला।

दो भाग

(बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० द्वारा सम्पादित)

पहले भाग में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र और महर्षि दयानन्द सरस्वती से लेकर वर्तमान काल तक के हिन्दी के नामी नामी चालीस लेखकों और सहायकों के सचित्र संक्षिप्त जीवन-चरित दिये गये हैं। दूसरे भाग में पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी तथा पण्डित माधवराव सप्रे, बी० ए० आदि विद्वानों के तथा कई विदुषी स्त्रियों के जीवनचरित छापे गये हैं। हिन्दी में ये पुस्तकें अपने ढंग की अकेली ही हैं। स्कूलों में ऊँची कक्षाओं में पढ़नेवाले छात्रों को ये पुस्तकें पारितोषिक में देने योग्य हैं। प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी को यह 'रत्नमाला' मँगाकर अपना कण्ठ अवश्य सुभूषित करना चाहिए। प्रत्येक भाग में ४० हाफ़टोन चित्र दिये गये हैं। मूल्य प्रत्येक भाग का १॥) डेढ़ रुपया, एक साथ दोनों भागों का मूल्य ३) तीन रुपये।

स्त्रीशिक्षा का एक सचित्र, नया और अनूठा ग्रन्थ

सीता-चरित।

अभी तक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी जिसमें आरम्भ से अन्त तक मुख्यतया सती सीता जी की अनुकरणीय जीवन-घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन हो, जिसमें सीताजी के जीवन की प्रत्येक घटना पर स्त्रियों के लिए लाभदायक उपदेश दिया गया हो। इसी अभाव को दूर करने के लिए हमने "सीता-चरित" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। इसमें सीताजीकी जीवनी तो विस्तारपूर्वक लिखी ही गई है, किन्तु साथ ही उनकी जीवन-घटनाओं का महत्त्व भी विस्तार के साथ दिखाया गया है। यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है भारतवर्ष की प्रत्येक नारी को यह पुस्तक अवश्य मँगा कर पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक से स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी अनेक शिक्षायें ग्रहण कर सकते हैं। क्योंकि इसमें कोरा सीताचरित ही नहीं है, पूरा रामचरित भी है। आशा है, स्त्री-शिक्षा के प्रेमी महाशय इस पुस्तक का प्रचार करके स्त्रियों को पातिव्रत धर्म की शिक्षा से अलंकृत करने में पूरा प्रयत्न करेंगे।

पृष्ठ २३५। काग़ज़ मोटा। सजिल्द। पर, तो भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य बहुत ही कम। केवल १।) सवा रुपया।

कविता-कुसुम-माला।

इस पुस्तक में विविध विषयों से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न भिन्न कवियों की रची हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी १०९ कविताओं का संग्रह है। हिन्दी-कविताओं का ऐसा उपादेय संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा। मूल्य ।=) दस आने।

बालगीता ।

८—गीता की एक एक शिक्षा, एक एक बात मनुष्यों को मुक्ति और मुक्ति की देनेवाली है। ऐहिक और पारमार्थिक सुख चाहने वालों को गीता के उपदेशों से ज़रूर शिक्षा लेनी चाहिए। गीता में जगह जगह ऐसा अमृतमय उपदेश भरा हुआ है कि जिसके पान से मनुष्य अमर-पदवी तक पा सकता है। श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए सदुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और बलिष्ठ बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

बालोपदेश ।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और ज्ञानसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के विमल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एक दम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।)

बालभारत्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के लिए दुनिया भर के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इसमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इसलिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक़ है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आयेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। कहाँ तक कहें, इसके पढ़ने से अनेक लाभ होंगे। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपंचतंत्र ।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरंजक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। यह "बालपंचतंत्र" विष्णुशर्मा कृत असली पंचतंत्र का सरल हिन्दी में सार है। यह पुस्तक प्रत्येक हिन्दीपाठक और विशेष कर बालकों के पढ़ने के योग्य है। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बालहितोपदेश ।

१५—इस पुस्तक के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बढ़ती है, नीति की शिक्षा मिलती है, मित्रता के लाभों का ज्ञान होता है और शत्रुओं के पंजे में न फँसने और फँस जाने पर उनसे निकलने के उपायों और कर्तव्यों का बोध हो जाता है। यह पुस्तक, पुरुष हो या स्त्री, बालक हो या बूढ़ा, सभी के काम की है। इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य आठ आने।

बालहिन्दीव्याकरण ।

१६—यदि आप हिन्दी-व्याकरण के गूढ़ नियमों को सरल और सुगम रीति से जानना चाहते हैं, यदि आप हिन्दी शुद्ध रूप से लिखना और बोलना जानना चाहते हैं, तो "बालहिन्दीव्याकरण" पुस्तक मँगा कर पढ़िए और अपने बाल-बच्चों को पढ़ाइए। स्कूलों में लड़कों के पढ़ाने के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। मूल्य ।) चार आने।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, लाला कन्नोमल एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माघव कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द्र कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। अब तक कवियों के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं उन से इसमें कई तरह की नवीनता है। पुस्तक छोटी होने पर भी बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

बाल-कालिदास

या

कालिदास की कहावतें

यह बालसखा पुस्तकमाला की २४ वीं पुस्तक है। इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल रत्न हैं। इन में सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। कालिदास की उक्तियां मनुष्य मात्र के काम की हैं। इस पुस्तक की उक्तियां बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।)

सचित्र

देवनागर-वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।≈)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कभी नहीं छपी। इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है। देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बड़े काम की किताब है। बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पाते ही वह खेल भूल कर किताब के सौन्दर्य को देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा। खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है। एक बार मँगा कर इसे ज़रूर देखिए।

संक्षिप्त वाल्मीकीय-रामायणम्

[संपादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

आदि-कवि वाल्मीकिमुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। मूल्य भी उसका अधिक है। सर्वसाधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से संपादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। ऐसा करने से पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। पुस्तक यों तो संस्कृत जानने वाले सर्वसाधारण के काम की है ही, पर कालिज के विद्यार्थियों और संस्कृत की परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के बड़े काम की । सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। कल्पित नहीं। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद जी, मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक़ चीज़ है। मूल्य ।≈)

इन्साफ़-संग्रह

दूसरा भाग।

मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ़ की बनाई हुई 'इन्साफ़-संग्रह, पहला भाग' पुस्तक पाठकों ने पढ़ी होगी। ठीक उसी ढंग पर यह दूसरा भाग भी मुंशीजी ने लिखा है। इसमें ३७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ दर्ज किये गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ≈) दो आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भारतवर्ष के धुरन्धर कवि

(लेखक, बाबा कालीमत्र एम० ए०)

इस पुस्तक में आदि-कवि वाल्मीकि मुनि से लेकर माघप कवि तक संस्कृत के २६ धुरंधर कवियों का और चन्द्र कवि से आरम्भ करके राजा लक्ष्मणसिंह तक हिन्दी के २८ कवियों का संक्षिप्त वर्णन है। कौन कवि किस समय हुआ यह भी इसमें बतलाया गया है। अब तक कवियों के सम्बन्ध में जितनी पुस्तकें लिखी गई हैं उन से इसमें कई तरह की नवीनता है। पुस्तक छोटी होने पर भी बहुत काम की है। मूल्य केवल ।) चार आने।

बाल-कालिदास

या

कालिदास की कहावतें

यह बालसखा पुस्तकमाला की २४ वीं पुस्तक है। इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल रत्न हैं। उन में सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी ख़ूबी के साथ वर्णन किया गया है। कालिदास की उक्तियाँ मनुष्य मात्र के काम की हैं। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें ये काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।)

सचित्र

देवनागर-वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।=)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी। इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है। देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बड़े काम की किताब है। बच्चा कैसा भी रिसाहा हो पर इस किताब को पाते ही वह रोना भूल कर किताब के सौन्दर्य को देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा। खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है। एक बार मँगा कर इसे ज़रूर देखिए।

संक्षिप्तं वाल्मीकीय-रामायणम्

[संपादक श्री डाक्टर सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर]

आदि-कवि वाल्मीकि-मुनिप्रणीत वाल्मीकीय रामायण संस्कृत में बहुत बड़ी पुस्तक है। मूल्य भी उसका अधिक है। सर्वसाधारण उससे लाभ नहीं उठा सकते। इसी से संपादक महाशय ने असली वाल्मीकीय को संक्षिप्त किया है। ऐसा करने से पुस्तक का सिलसिला टूटने नहीं पाया है। यही इसमें बुद्धिमत्ता की गई है। पुस्तक यों तो संस्कृत जानने वाले सर्वसाधारण के काम की है ही, पर कालिज के विद्यार्थियों और संस्कृत की परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के बड़े काम की । इसलिए पुस्तक का मूल्य केवल १) रुपया।

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। कल्पित नहीं। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद जी, मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक़ चीज़ है। मूल्य ।=)

इन्साफ़-संग्रह

दूसरा भाग।

मुंशी देवीप्रसाद जी मुंसिफ़ की बनाई हुई 'इन्साफ़-संग्रह, पहला भाग' पुस्तक पाठकों ने पढ़ी होगी। ठीक उसी ढंग पर यह दूसरा भाग भी मुंशीजी ने लिखा है। इसमें ६३ न्यायकर्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ दिये गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।=) छः आने।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भाग १७, खण्ड १ संख्या ५,
मई १९१६—बैशाख १९७३ पूर्ण संख्या १९७

भक्त की अभिलाषा।

(१)

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ—तू है महासागर अगम मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ—तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ॥

(२)

तू है सुगन्धर मधुमास तो मैं एक छोटा फूल हूँ—तू है अगर दक्षिण-पवन तो कुसुम की मैं धूल हूँ।
तू है सरोवर अमल तो मैं एक उसका मीन हूँ—तू है पिता तो पुत्र मैं तव अङ्क में आसीन हूँ॥

(३)

तू अगर सर्वाधार है तो एक मैं आधेय हूँ—आश्रय मुझे है एक तेरा, श्रेय या आश्रेय हूँ।
तू है अगर सर्वेश तो मैं एक तेरा दास हूँ—तुझको नहीं मैं भूलता हूँ, दूर हूँ या पास हूँ॥

(४)

तू है पतित-पावन प्रखर तो मैं पतित मशहूर हूँ—[illegible] मुझे यदि है दया तो मैं [illegible] दूर हूँ।
है भक्ति की यदि भूख तुझको तो मुझे तव भक्ति है—[illegible]॥

बालक पञ्चम एडवर्ड को राजसिंहासन मिला। उस समय वह बे-पूक और बच्चा था। इस कारण उसका और उसके भाई ड्यूक आफ् यार्क का संरक्षक उसका चचा नियुक्त हुआ। धोखा देकर ये दोनों कुमार इसी बुर्ज में क़ैद किये गये। कुछ दिनों बाद यहीं इनकी हत्या सोते में की गई। तदनन्तर इनका संरक्षक, तृतीय रिचर्ड नाम रख कर, राजा बन गया। शाहजहाँ और औरङ्गज़ेब केवल भारत ही में नहीं हुए। अपने भाइयों और भतीजों को मार कर सिंहासन पर बैठने वाले नृपति इँगलेंड में भी हुए हैं। इन मृत कुमारों की सूखी हुई हड्डियाँ बहुत वर्षों के बाद एक सीढ़ी के नीचे, १६४१ ईसवी में, गड़ी हुई पाई गई थीं। उन्हें तत्कालीन राजा द्वितीय चार्ल्स ने जातीय श्मशान-भूमि, वेस्ट मिनिस्टर एबे, में राजाओं की पंक्ति में गड़वा दिया।

महारानी एलिज़बेथ के समय तक यहाँ राजा लोग निवास किया करते थे। पर एलिज़बेथ को यह स्थान पसन्द न था, क्योंकि वह बालपन में, कई वर्षों तक, यहीं क़ैद थी। राजा प्रथम जेम्स और द्वितीय चार्ल्स के सिर पर यहीं राज-मुकुट रक्खा गया था। इसके बाद इस स्थान से यहाँ के नरेशों का सम्बन्ध छूट गया। अब तो यह स्थान यहाँ के नरेशों के आभूषण रखने के काम आता है। यहाँ फ़ौजी सिपाहियों का बैरक भी है। यहाँ प्राचीन समय के ज़िरहबख़्तर इत्यादि भी रक्खे हुए हैं। दण्ड देने के कई प्रकार के औज़ार भी यहाँ हैं। इस युद्ध के समय, सुना जाता है, यहाँ पर कई मनुष्यों को देश-द्रोह के अपराध में प्राण-दण्ड भी दिया गया है।

अँगरेज़-जाति उन्नतशालिनी और समयानुकूल चलने वाली अवश्य है, पर इन लोगों के घर में घुस कर देखने से पता लगता है कि ये कुछ बातों में पुरानी लकीर के फ़क़ीर भी हैं। पुरानी रीति को ये लोग मुश्किल से छोड़ते हैं। इस बुर्ज में घुसते ही एक अजीब प्रकार की वर्दी पहने हुए सन्तरी नज़र आते हैं। कहते हैं, यही वर्दी कई शताब्दी हुए तब भी, यहाँ पहनी जाती थी।

यहाँ सबसे अद्भुत और मनोरञ्जक स्थान वह है जहाँ पर तमाम शाही आभूषण रक्खे हुए हैं। लोहे के कटघरे के भीतर चमचमाते हुए अमूल्य रत्न यहाँ संगृहीत हैं। राज्याभिषेक तथा अन्य बड़े बड़े उत्सवों पर सम्राट् तथा महारानी के गले और सिर की शोभा बढ़ाने के लिए ये निकाले जाते हैं। भिन्न भिन्न आभूषणों तथा शस्त्रों के पास ही उनके ऐतिहासिक वर्णन लिखे हुए रक्खे हैं। सबके ऊपर हीरों से जड़ा हुआ वह मुकुट रक्खा है जो १९११ ईसवी में सम्राट् पञ्चम जार्ज के सिर पर रक्खा गया था। उसमें ३००० हीरे तथा मोती इत्यादि जड़े हैं, जो वज़न में सवा सेर के क़रीब हैं। मुकुट के ऊपर ईसाई धर्म के क्रास का सूचक एक बड़ा सा हीरा है। उसके नीचे एक और भी बहुत बड़ा हीरा जड़ा हुआ है, जो १९०८ ईसवी में ट्रान्सवाल-निवासियों ने महाराज एडवर्ड को भेंट किया था। इस हीरे का वज़न ३०९ ३/१६ कैरट है। महारानी इसे मुकुट से निकाल कर अलग गले में भी पहन सकती हैं। इसके पास ही एक और भी हीरा है, जो वज़न में संसार में सबसे भारी गिना जाता है। इसका वज़न ५१६ कैरट है। इस मुकुट के चारों ओर राज-चिह्न—कटोरा, तलवार, न्यायदण्ड इत्यादि—रक्खे हैं। इसके पास ही भारत के प्रसिद्ध हीरे कोहेनूर की नक़ल है। वहीं पर लिखा है कि पञ्जाब-विजय के उपरान्त यह हीरा महारानी विक्टोरिया को भेंट किया गया था। असली कोहेनूर महारानी मेरी के पास रहता है। यह उसकी ठीक नक़ल लोगों के देखने के लिए है।

यहाँ पर एक उम्दा वह मुकुट भी है जो राज्याभिषेकोत्सव के समय दिल्ली में सम्राट् के सिर पर रखने के लिए, भारत के धन से, १९११ ईसवी में, बना था।

Tower of London.

लन्दन का बुर्ज ।
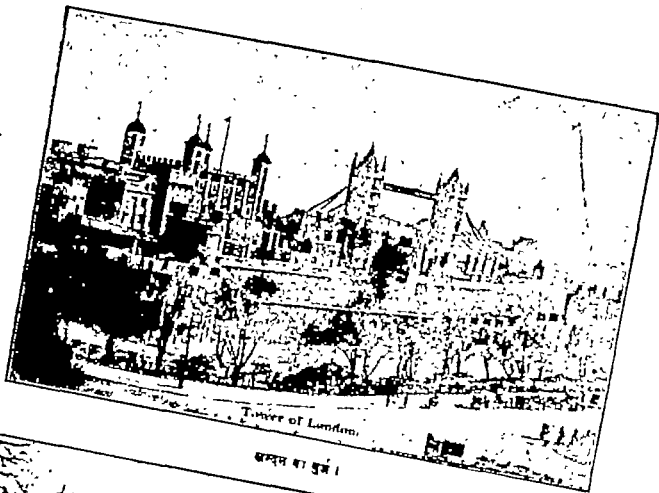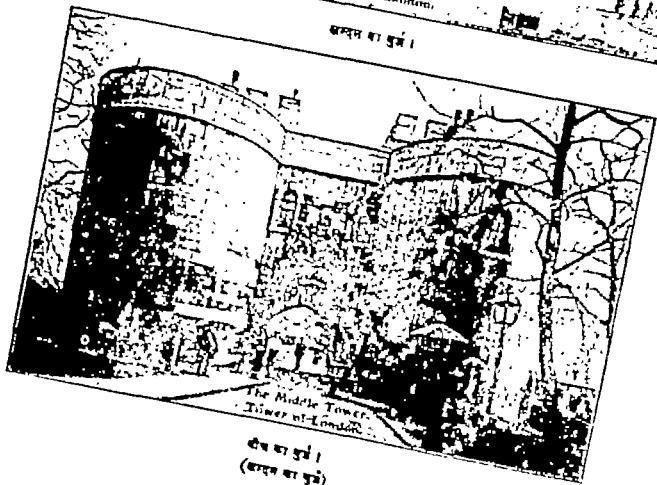
The Middle Tower, Tower of London.

बीच का बुर्ज ।
(लन्दन का बुर्ज)

दहकती हुई शाखाओं से मनुष्य ने आग प्राप्त की। फिर लकड़ियों की रगड़ से स्वयं आग निकालना भी इसने सीखा। अग्नि के आविष्कार से मनुष्य को बड़ा लाभ हुआ। अब फल-मूल के साथ मांस-मत्स्य भी पका कर यह खाने लगा। अब पत्थर की छुरियाँ धीरे धीरे अधिक तीखी और चिकनी बनने लगीं। पत्थर ही के बर्छे की नोकें और दाँव भी बनने लगे। पर दूर से लक्ष्य बेधने का काम इन आयुधों से ठीक न होता था। इसलिए, काल पाकर, मनुष्य ने धनुष और बाण बनाना आरम्भ किया। इस दशा को पहुँचने पर आग की सहायता से शीत प्रदेशों में भी नर-जातियाँ रह सकती थीं और बाण के द्वारा वेग से चलते हुए लक्ष्य को भी मार कर उसे आग में भून कर खा सकती थीं। पर अभी भूनने के अतिरिक्त खाना पकाने की और कोई रीति इनको ज्ञात न थी। इस कारण मिट्टी के बर्तन बनने और आग में पकाये जाने लगे। तब पके बर्तनों में लोग भोज्य वस्तुओं को उबाल कर खाने लगे। आज भी कितनी ही वन्य जातियाँ ऐसी हैं जिनमें से कुछ धनुर्बाण का प्रयोग तक नहीं जानतीं और कितनी ही बर्तन बनाना भी नहीं जानतीं।

बर्तन बनाने के बाद गाय, बैल, घोड़ा, कुत्ता आदि जन्तुओं को मनुष्य पालने लगे। उनसे खेत जोतने तथा ईंट, पत्थर आदि के घर बनाने में सुभीता हो चला। अब झोपड़ियों में रहने वाले शिकारी मनुष्य के पुत्र धीरे धीरे अच्छे मकानों में रहने वाले तथा सवारी पर दूर दूर जाने वाले गृहस्थ हो चले। धान्य बोये जाने लगे और वाणिज्य की वृद्धि होने लगी।

उस समय गृहस्थ-जीवन में एक बात की कसर रह गई थी। पत्थर, हड्डी आदि के आयुधों से काम न चलता था। नरम धातु, सोना आदि, कम मिलते थे तथा काम भी उनसे ठीक न हो सकते थे। किसी सुलभ और कड़े धातु की हमें कृषि, युद्ध आदि अनेक कार्यों के लिए, अपेक्षा थी। अन्ततः यह धातु भी हमें मिल गया। उसे साफ़ करने और पीटने आदि की रीति भी हमें ज्ञात हुई। यह था लोहा। इससे बड़ा काम चला। लोहे के द्वारा गाड़ी, रथ आदि बनने लगे। सड़कें पीटी जाने लगीं। उत्तम इमारतें बनने लगीं। शहर और क़िले तैयार हुए। हड्डियों पर तथा हाथी-दाँत पर गैंडे, भैंसे आदि की खुदी हुई तसवीरें बनने लगीं। ऐसी कितनी ही चीज़ें आज तक पृथ्वी के भीतर मिलती हैं। मनुष्य फलाहारी से शिकारी हुए थे और शिकारी से गृहस्थ। अब लोहा मिल जाने से वे यन्त्र-निर्माता भी हुए। दूर दूर तक होने वाले वाणिज्य-व्यवहार आदि में चिट्ठी-पत्री आदि की बड़ी अपेक्षा पड़ने लगी। तब कई विकसित बुद्धि वाली नर-जातियों ने पहले चित्रों के द्वारा, फिर अक्षरों के द्वारा, लिखने की भी शैली निकाल ली। अब तो भोजन के साधन अग्नि आदि, धन के साधन पशु आदि, और विजय के साधन अस्त्र-शस्त्र मनुष्य को मिल ही चुके थे। शिक्षा के साधन लेख-प्रणाली के आविष्कार से साधन-समष्टि की पूर्ति हुई। कुम्भकार-कला के आते आते राक्षसावस्था की तीनों दशायें निकल चली थीं, लेख-शैली निकलते निकलते बर्बरावस्था की भी तीनों दशायें समाप्त हुईं और सभ्यता का विकास होने लगा। अब अपने विचारों को मनुष्य दूर दूर के लोगों में फैला सकता था। केवल यही नहीं। लेखों के द्वारा एक पुश्त की बात दूसरी पुश्त वाले समझ सकते थे और ज्ञान-विज्ञान अधिक आगे बढ़ा सकते थे। फलतः अब मनुष्य शिक्षित या सभ्य होने लगे। बहुत से लोग लौहावस्था को सभ्य दशा में गिनते हैं। कितने ही उसे अर्द्ध-बर्बरावस्था कहते हैं। वस्तुतः निम्न-लेख तक बर्बरावस्था ही है, पर लेख-लेख के साथ सभ्यावस्था का आरम्भ है।

सभ्यावस्था में मनुष्य ने अनेक उन्नतियाँ कीं।

बढ़ कर ज्ञान नहीं और सर्वोपकार से बढ़ कर धर्म नहीं है। अद्वैत-ज्ञान से सर्वात्मभाव की उत्पत्ति होती है, अर्थात् परमार्थ का प्रचार होता है। इन विषयों में भारत का जगद्गुरुत्व आज भी बना हुआ है।

भारत में तीन प्रकार के लोग हैं। बहुतेरे तो अशिक्षित हैं। कुछ थोड़े से लोग, मुख्यतया वैदेशिक भाषा आदि के ज्ञाता, विद्वान् हैं। थोड़े संस्कृत के विद्वान् हैं, जो अँगरेज़ी आदि भाषायें या तो जानते ही नहीं, या थोड़ा जानते हैं। हिन्दी, बँगला आदि में अभी स्वतन्त्र ज्ञान-विज्ञान है ही नहीं। इसलिए, उनके ज्ञाता या तो संस्कृत या अँगरेज़ी जानने वालों के अनुयायी हैं। इनकी पृथक् गणना नहीं की जा सकती। धार्मिक हठ, विचार की परतन्त्रता, अपने स्वार्थ के लिए ही दुनिया से सम्बन्ध रखना, बिना पैसा लिये किसी के काम न आना, इत्यादि नवीन सभ्यता के लक्षण हैं। परस्पर स्वार्थ के धक्के में रात दिन द्वेष-मोह, मामला-मुक़दमा, चोरी-घूस आदि छोटे छोटे बखेड़ों से लेकर बीभत्स युद्ध तक ऐसी ही सभ्यता में होते आये हैं। अतएव कहना चाहिए कि इस अवस्था में ज्ञान-विज्ञान का सदुपयोग नहीं हो रहा।

प्राचीन भारत ने संसार में ज्ञान-विज्ञान तथा धर्म का प्रचार किया था। भारतीय धर्म के प्रचार से चीन और जापान को सभ्यता और शान्ति का लाभ हुआ था। सबकी भलाई—सबका सुख—अर्थात् एक 'सर्व' शब्द ही इस धर्म का मूलमन्त्र था। वैदिक समयों के ऋषियों से लेकर भगवान् कृष्ण और गौतम बुद्ध आदि तक ने, समय समय पर, इसी धर्म का प्रचार किया। इस धर्म में दूसरों को अपने धर्म में लाने की चेष्टा न की जाती थी और अपने सुख के लिए दूसरों की हानि की चेष्टा परम पाप बताया जाता था। इस कारण धीरे धीरे संसार से धार्मिक और नैतिक झगड़े दूर होते जाते थे। भारतवर्ष इस शान्ति का घर हो चला था। दूसरे देशों या दूसरे धर्मों पर आक्रमण करने की बात भारतमाता को न सूझी थी। किसी के मत्थे हम लोग अन्ध-विश्वास न मढ़ते थे। सबको प्रमाण-पूर्वक वस्तु-ज्ञान कराते थे। धन जितना अपने लिए रखते थे उससे कहीं अधिक परोपकार में लगाते थे। बल का उपयोग दुर्बलों की रक्षा ही में समझते थे। आज भी प्राचीन शिक्षा वालों की यही समझ है।

अब तो भीतरी और बाहरी, अनेक विघ्न-बाधाओं के फेर में पड़ कर भारतीय धर्म का घर-बाहर, सभी कहीं, ह्रास हो गया है। पर यह धर्म सनातन है। इसका सर्वथा नाश कभी नहीं हो सकता। धर्मों की उत्पत्ति होती है और नाश भी होता है। संसार में अनेक धर्म उत्पन्न हुए और गये। दो तीन हज़ार वर्ष पहले कोई धर्म न था। इस समय धर्म में किसी की श्रद्धा नहीं, पर धर्म का नाश नहीं है। "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः"—धर्म के तिरस्कार से भयानक नाश उपस्थित हुए हैं। धर्म-धर्म चिल्लाते हुए लोग एक दूसरे का गला घोंटते आये हैं। पर सबकी दृष्टि फिर धर्म की ओर जा रही है। बिना धर्म के ऐक्य नहीं, शान्ति नहीं। धर्म देश-काल से परिच्छिन्न है। धर्म सनातन और व्यापक है। हाल में अपने समाज के वार्षिक उत्सव के समय व्याख्यान देते हुए रवीन्द्र बाबू ने भी आज कल की अशान्ति को दूर करने का उपाय विश्व-व्यापक धर्म ही बताया है। पर साथ ही आपने अपने देशवासी मत को ही व्यापक धर्म कहा है। बौद्ध, नास्तिक और निरीश्वरवादी से एकता नहीं हो सकता। सनातन धर्म तो भगवान् मनु ने कहा है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

यही धर्म है। सेश्वर, निरीश्वर किसी भी धर्म में

परोपकार-मूलक धर्म के प्रचार से जगत् शान्ति लाभ करेगा।

रामावतार शर्म्मा

लाला बलदेवदासजी कवि।

अनेक विद्वानों की यह समझ है कि कवित्व-शक्ति की प्राप्ति बहुत करके ईश्वर की कृपा पर ही अवलम्बित है। जो कवि हैं वे कवित्व-शक्ति का बीज लेकर ही जन्म लेते हैं। उन्हें अच्छी शिक्षा चाहे मिले, चाहे न मिले, कविता उनकी अवश्य ही अच्छी होती है। जिनमें कवित्व का बीज नहीं वे अच्छे विद्वान् और अच्छे पण्डित होकर भी स्वाभाविक कवियों की बराबरी नहीं कर सकते। विद्वत्ता के बल पर की गई कविता से न तो सर्वसाधारण का विशेष मनोरञ्जन ही होता है और न उन्हें उससे विशेष शिक्षा ही मिलती है। प्रकृत कवियों की वाणी में जो रस और जो मधुरता होती है वह बलपूर्वक बने हुए कवियों की वाणी में नहीं होती। जिन कविजी का परिचय देने के लिए हम यह स्वल्प लेख लिख रहे हैं उन्होंने यद्यपि अधिक प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की तथापि उनकी पुस्तकों से सिद्ध होता है कि वे प्रकृत कवि हैं।

बङ्गाल में एक जगह रानीगञ्ज है। वहाँ के श्रीयुत जगन्नाथ झुँझुनूवाले ने हमारे पास जो सामग्री भेजी है उसी के आधार पर हमने यह लेख लिखा है। रानीगञ्ज में सावित्री-विद्यालय नाम की एक पाठशाला है। मुंशी भवानीचरण नामक एक सज्जन उसके प्रधान अध्यापक हैं। वे बाँदा ज़िले के रहने वाले हैं। उसी ज़िले में, राजापुर के पास, रारबारा नाम का एक गाँव है। कवि बलदेवदास वहीं के रहने वाले हैं। लाला भवानीचरण उनसे अच्छी तरह परिचित हैं। उनसे अनेक बार मिलने और उनके साथ रहने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कविजी की कविता और उनके अन्य गुणों पर मुग्ध होकर लालाजी ने कविजी से प्रार्थना की कि आप अपना संक्षिप्त जीवनचरित लिख भेजने की कृपा कीजिए। कविजी ने उनकी यह प्रार्थना मान ली। आषाढ़ शुक्ल सप्तमी संवत् १९६९ को एक पत्र उन्होंने लाला भवानीचरणजी को लिखा। उसी में उन्होंने अपना संक्षिप्त हाल लिख भेजा। लालाजी ने उसी पत्र की नक़ल हमारे पास ज्यों की त्यों भेज दी है। वह नीचे दी जाती है—

"प्रियवर मुन्शी भवानीचरणजी श्रीवास्तव— अनेकानेक जयरामजी स्वीकृत हो। आपका पत्र मिला। उत्तर देने में विलम्ब हुआ। कारण यह था कि मैं बाबू भगवानबख़्शसिंह, राज्य कटारी, ज़िला सुलतानपुर, की एक नई पुस्तक बनाने में लगा था। क्षमा कीजिएगा। मेरी जीवनी आप ने माँगी। अपने ही मुख अपना वृत्तान्त कहते मुझे लज्जा आती है। पर यदि आपका विशेष आग्रह है तो कुछ लिखता हूँ।

"ज़िला बाँदा, डाकख़ाना राजापुर, से एक मील दक्षिण रारबारा नाम का एक गाँव है। रारबारा कँपवारा का अपभ्रंश है। यहाँ कायस्थों की बस्ती है। बान्धवगढ़-नरेश महाराज व्याघ्रदेव के समय में गुजरात से एक कायस्थ (श्रीवास्तव दूसरे) यहाँ आये। उनका नाम राय मनोहरलाल था। वे पहले बान्धवगढ़ में रहे। फिर महाराज व्याघ्रदेव की आज्ञा और कृपा से उन्होंने कँपवारा गाँव बसाया और वहीं वे रहने लगे। उन्हीं की पन्द्रहवीं पीढ़ी में मुनमन्दन उपनाम मुनदेव नाम के एक भगवद्भक्त सज्जन पैदा हुए। उनका आचरण हमारे अन्य पूर्वजों के आचरण से विभिन्न था। अन्य पूर्वज १४ पीढ़ियों से क्षत्रिय राजाओं, बादशाहों और अँगरेज़ सरकार की नौकरी करते आते थे। पर, मुनदेवजी बाल्यावस्था से ही भगवद्भक्ति और तीर्थाटन में मग्न रहने लगे। पिता के मरने पर वे रीवाँ में नौकर होकर वहीं रहने लगे। पर, उनका अधिकांश समय ईश्वर की वन्दना ही में व्यतीत होता था। रीवाँ में ही रह कर उन्होंने गोविन्दचरित्र नाम की एक पुस्तक लिखी। उन्हीं की ग्यारहवीं सन्तान मैं हूँ। मेरा जन्म संवत् १९०८ में आश्विन शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। संवत् १९११ में मेरे माता-पिता मुझे, मेरे बड़े भाई और एक बहन को लेकर अपने गाँव रारबारे में आ गये।

"मेरे पिता विरक्त स्वभाव के तो पहले ही से थे। संवत् १९११ के ही आषाढ़ मास में वे मुझे, मेरे बड़े भाई और मेरी बहन को मेरी माता के अधीन छोड़ कर तीर्थयात्रा के बहाने घर से चले गये। मेरी उम्र उस समय केवल ढाई वर्ष की थी। चलते समय पिताजी मेरी माता से कह गये थे कि तू अपने बड़े पुत्र गुरुप्रसादलाल का भरोसा न रखना।

ऐसे कराल कलिकाल में बलदेवप्रसादजी के सदृश भग-वद्भक्त कवि का होना हम परमेश्वर की कृपा ही समझते हैं।

भारतीय कृषक ।

१—प्रभुवर ! हम क्या कहें कि कैसे दिन भरते हैं ?
अपराधी की भाँति सदा सबसे डरते हैं ।
याद यहाँ पर हमें नहीं यम भी करते हैं,
फिर भी आदि में अन्न समय आकर मरते हैं !

२—शिक्षा को हम और हमें शिक्षा रोती है,
पूरी बस वह अगर मोहन में होती है ।
यहाँ कहाँ विज्ञान, रसायन भी सोती है ;
हुआ हमारे लिए एक हरना मोती है !

३—परदेशों की तरह नहीं कुछ धन का दम है,
यह तो अपने लिए मन्त्र, माया या भ्रम है ।
जो कुछ है बस वही पुराना हल अभ्यस्त है,
और सामने क्षमाधार यह पृथ्वीतल है ॥

४—बहते हुए समीप नदी की निर्मल धारा—
रोग भुगतने यहाँ, नहीं चलता कुछ चारा ।
एक बूंद भी बिना समुदाय हमारा—
भीख माँगता हुआ भटकता मारा मारा ।

५—बहता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना,
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना ;
हा हा खाना और सदैव आँसू पीना,
नहीं चाहिए नाथ ! हमें अब ऐसा जीना !

मैथिलीशरण गुप्त ।

महाराजा यशवन्तसिंह का पत्र—औरङ्गज़ेब के नाम ।

जोधपुर-नरेश महाराजा यशवन्तसिंह का जन्म उस ज़माने में हुआ था जब भारतवर्ष अपने भाग्य की डोर मुसल्मान विजेताओं के हाथों में समर्पित कर चुका था। देश के दुर्गम बालुकामय और पहाड़ी प्रदेश, जहाँ मुसल्मानों की पहुँच न हो सकी थी, यद्यपि देशी शासकों के हाथ में ही थे, तथापि उनमें उतनी क्षमता न रह गई थी जो किसी स्वावलम्बी नरेश के लिए आवश्यक थी। देश के भिन्न भिन्न स्थानों में ऐसे ही नरेश अधिक थे जो अपनी स्वाधीनता से हाथ धो चुके थे और जो मुसल्मान शासकों के हाथ की कठपुतली हो रहे थे। इन्हीं पिछले प्रकार के हिन्दू-नरेशों में यशवन्तसिंह भी थे।

ऐसी दशा के होते हुए भी यशवन्तसिंह अपने स्वभाव की विलक्षणता प्रकट करने से नहीं चूके। आत्म-मर्य्यादा और क्षात्र-धर्म्म क्या वस्तु है, यह प्रमाणित करना वे ख़ूब जानते थे। स्वाभिमान की प्रेरणा से उनसे दो एक कार्य्य ऐसे हो गये जिनके कारण इतिहास-लेखकों को उनकी भी गिनती नामी नरेशों में करनी पड़ी। अन्यान्य राजाओं की तरह वे सदा के लिए विस्मृति के गर्त में नहीं गिर गये। यदि उनका चरित महत्त्वपूर्ण, अतएव गेय, न होता तो हमारे अनेक उदार-हृदय इतिहास-लेखक उनका नाम तक न लेते। यह हमारे लिए गौरव की बात है कि हमारे यहाँ इतिहास की छोटी छोटी स्कूली पुस्तकों तक में उनका नाम पाया जाता है। परन्तु, उनके सम्बन्ध का जो कुछ वर्णन हमें इन इतिहासों में मिलता है वह पर्य्याप्त नहीं। उसे पढ़ कर हम उनकी महत्ता का ठीक ठीक अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। इन पुस्तकों में हम उन्हें एक सामान्य राज्य-कार्य्य-धारी के रूप में देखते हैं। परन्तु जब हम इधर उधर लिखे गये उनके सम्बन्ध में अन्यान्य वर्णनों को पढ़ते हैं तब यशवन्तसिंह को हम एक बड़े निपुण राज-नीतिज्ञ और शक्तिशाली राजपूत के रूप में देखते हैं। हम उन्हें देखते हैं कि मुग़ल-सम्राट् के सेवक होकर भी वे उसे फटकार तक बतलाने का साहस कर सकते हैं।

राजपूतों के चरित्रों की समालोचना करने से अधिकांश में यही बात प्रमाणित होती है कि वे लोग बड़े ही भोले-भाले हुआ करते थे। उनका

भगवान् श्रीमान् को प्रसन्न रक्खे। श्रीमान् के पूर्वज, स्वर्गवासी मुहम्मद जलालुद्दीन अकबर, ने इस साम्राज्य की रक्षा नीति और दृढ़ता के साथ की और ५२ वर्ष पर्यन्त प्रत्येक जाति के लोगों को सुख-चैन से रक्खा। सभी लोग—चाहे वे ईसा के अनुयायी हों, चाहे मूसा के, चाहे दाऊद के, चाहे मुहम्मद के, चाहे वे ब्राह्मण हों, चाहे अब्राह्मण, चाहे आस्तिक हों, चाहे नास्तिक—उनकी कृपा के एक से पात्र रहे। उन्होंने अपनी प्रजा की इतनी रक्षा की कि वह उनकी एकमता के पाश में बँध सी गई। इसी से उसने उन्हें जगद्गुरु की उपाधि से विभूषित किया।

श्रीमान् नूरुद्दीन जहाँगीर, जिनका निवास अब स्वर्ग में है, उसी तरह अपनी प्रजा के सिर पर संरक्षा का छत्र २२ वर्ष पर्यन्त लगाये रहे। अपने सेवकों और सरदारों की निरन्तर सहायता तथा अपने भुजबल से वे भी सदा ही अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर रहे। इसमें उन्हें सफलता भी हुई।

प्रसिद्ध शाहजहाँ ने भी अपने शान्तिपूर्ण ३२ वर्ष के शासन में इससे कुछ कम कीर्ति नहीं प्राप्त की। क्योंकि भलाई और सदाचरण का फल अवश्य ही अच्छा होता है और कीर्ति भी उससे अवश्य ही बढ़ती है।

श्रीमान् के पूर्वजों के भाव बड़े ही उदार थे। उनके सिद्धान्त ऊँचे और प्रजा की हितलिप्सा के द्योतक थे। जहाँ कहीं उन्होंने अपना क़दम रक्खा विजय और सुख-समृद्धि ने उनका साथ दिया। उन्होंने अनेक देश जीते और अनेक दुर्गों पर अपना अधिकार जमाया।

पर श्रीमान् के शासन-काल में अनेक देश साम्राज्य के विरुद्ध हो गये। बहुत सम्भव है कि भविष्यत् में उससे और भी हानि हो। क्योंकि अत्याचार और अन्याय का सर्वत्र राज्य है। प्रजा पददलित की जा रही है। प्रान्त के प्रान्त उजड़ते चले आ रहे हैं। चारों तरफ़ हाहाकार मचा हुआ है। कठिनाइयाँ बढ़ रही हैं। शाहज़ादों और श्रीमान् के राज-प्रासादों तक दीनता पहुँच चुकी है। इस दशा में अमीर-उमरा की दुर्दशा का कहना ही क्या है। सैनिक असन्तुष्ट हैं। सेठ-साहूकार कष्ट पा रहे हैं। मुसल्मान प्रजा भी प्रसन्न नहीं। हिन्दू तो बहुत ही बुरी दशा में हैं। जन-साधारण को रात के भोजन तक का सुभीता नहीं। अतः वे क्रोध और निराशा से उद्विग्न हुए सिर धुना करते हैं।

इतनी बुरी दशा को प्राप्त प्रजा से कर के रूप में भारी भारी रक़में वसूल करने की चेष्टा करने वाला सम्राट् अपनी मान-मर्य्यादा की रक्षा नहीं कर सकता। क्योंकि अत्याचार और प्रजा-पीड़न से उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है। अपनी शक्ति का ऐसा दुरुपयोग करने के कारण आप का भविष्यत् अच्छा नहीं जान पड़ता। इस समय पश्चिम से पूर्व तक सर्वत्र यही सुनाई पड़ता है कि हिन्दुस्तान का सम्राट् अपनी दीन हिन्दू प्रजा से द्वेष रखता है। अतएव वह ब्राह्मण, योगी, वैरागी, साधु, संन्यासी आदि से भी कर वसूल कर रहा है। बिना इस बात पर विचार किये कि तैमूर-वंश की मर्य्यादा कैसी है, आज वह पवित्र-चरित और उदासीन लोगों पर अपनी शक्ति प्रकट करने को उद्यत हुआ है। यदि श्रीमान् अपनी पूज्य पुस्तकों पर विश्वास रखते हों तो, श्रीमान् को उनमें यह उपदेश मिलेगा कि परमेश्वर सारी मनुष्य-जाति का परमेश्वर है, केवल मुसल्मानों ही का नहीं। उसके सामने काफ़िर और मुसल्मान दोनों बराबर हैं। रङ्ग के भेद का उत्पादक ईश्वर ही है। यही सब का पिता है। मसजिदों में उसी के नाम पर बाँग दी जाती है। हिन्दुओं के मन्दिरों में भी, जहाँ घण्टे बजाये जाते हैं, उसी की पूजा होती है।

दूसरों के धर्म्म और रीति-रस्मों को तुच्छ बतलाना परमेश्वर की इच्छा का अनादर करना है। यदि हम किसी चित्र को नष्ट करेंगे तो उसके बनाने

यह यह कि लोगों में धर्म-कर्म की मात्रा तो अधिक है, पर देश के प्रति भी उनका कुछ कर्तव्य है या नहीं, यह उनको नहीं मालूम । यह बड़ा भारी दोष है । अतएव शिक्षा वही अच्छी है जिससे ईश्वर का ज्ञान हो और जो अपने देश या जाति के सुधार में सहायक भी हो सके ।

शिक्षा-सम्बन्धी विषयों में उद्योग-धन्धे की शिक्षा का प्रचार होना परमावश्यक है, क्योंकि बिना ऐसी शिक्षा के हम स्वदेश में अनेक ऐसी वस्तुओं के अभाव की पूर्ति नहीं कर सकते जिनका व्यवहार प्रति दिन हमें करना पड़ता है । अन्य देशों से हम को बहुत सी चीज़ें मिलती हैं । उनको पाने के लिए हम सदा दूसरे देशों का मुँह ताका करते हैं । इससे हमको असुविधा ही नहीं होती, किन्तु हमारे देश का धन भी समुद्र पार चला करता है ।

उद्योग-धन्धे की शिक्षा की बदौलत मनुष्य अपने अनुभूत ज्ञान की वृद्धि से ऐसी चीज़ें प्रस्तुत कर सकता है जिनकी ज़रूरत हर गृहस्थ को प्रति दिन रहती है । इस विषय में जर्मनी सबसे आगे बढ़ा हुआ है । फ़्रांस भी इसी कोशिश में है कि उसके यहाँ के कला-कौशल की उत्तरोत्तर वृद्धि हो । आस्ट्रिया भी पीछे नहीं । इटली में कितने ही ऐसे विद्यालय हैं जिनमें छात्र इसी विषय की शिक्षा पाते हैं । इँग्लेंड में भी बहुत से ऐसे स्कूल और कालेज हैं जहाँ लोगों को दस्तकारी की अमली शिक्षा दी जाती है । अमेरिका की तो बात ही निराली है । वहाँ की हर रियासत में कम से कम एक ऐसा कालेज अवश्य है जहाँ छात्रों को प्रायोगिक शिक्षा दी जाती है । यह तो प्रायः सभी पढ़े लिखे मनुष्य जानते हैं कि पचास ही वर्ष में जापान की काया पलट गई है । आज कल जापान बड़े बड़े सभ्य देशों में गिना जाता है । यह क्यों ? इसी लिए कि जब जापानियों का ध्यान अपने देश में शिल्प और कला-कौशल बढ़ाने की ओर गया तब उन लोगों ने अपने युवकों को यूरोप और अमेरिका भेजना इस निमित्त शुरू कर दिया कि वे वहाँ जाकर विज्ञान और कला-सम्बन्धिनी शिक्षा प्राप्त करें । क्योंकि देशोन्नति का दारोमदार उन्होंने इसी शिक्षा को समझा । हमारे देश में केवल एक ही ऐसा विद्यालय है । उसके लिए भारतवासी श्रीमान् ताता के सदैव ऋणी रहेंगे । आशा है, अब काशी-विश्वविद्यालय इस त्रुटि को पूरा करने का यत्न करेगा ।

मानसिक शिक्षा के साथ शारीरिक शिक्षा देना भी बहुत ज़रूरी है । इससे शारीरिक शक्ति के साथ साथ मानसिक शक्ति की भी वृद्धि होती है और लड़के-लड़कियों को शिक्षा-प्राप्ति में सुगमता होती है ।

हर सभ्य मनुष्य का यह मुख्य कर्तव्य है कि वह लोगों में जागृति उत्पन्न करके यथाशक्य शिक्षा का प्रचार करे । देश का काया-पलट तभी सम्भव है जब घर घर शिक्षा और विद्या का प्रचार हो । महाराजा बड़ोदा का मत है कि प्रत्येक राजा का पहला फ़र्ज़ यह है कि प्रजा में शिक्षा का प्रचार करे । इस कार्य की सिद्धि के लिए महाराजा साहब ने जो कुछ अपने राज्य में किया है वह किसी से छिपा नहीं । बड़ोदा में इतनी शिक्षोन्नति और इतने सुधार हुए हैं कि वह राज्य औरों के लिए नमूना हो गया है ।

किसी भी देश की भावी उन्नति उसके सार्वजनिक विद्या-प्रचार पर ही अवलम्बित है । बिना विद्यारूपी सूर्य के प्रकाश के जातीय अन्धकार का दूर होना असम्भव है । भारतवासी उन्नति की दौड़ में सबसे पीछे क्यों पड़े हैं ? इसीलिए कि यहाँ सार्वजनिक शिक्षा की बहुत कमी है । सामाजिक सुधार भी शिक्षा पर ही अवलम्बित है । खुशी की बात है, अब कुछ लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है । इस सम्बन्ध में महात्मा गोखले का नाम सबसे पहले याद आता है ।

(८)

गांजा, मद, अफ़ीम आदि का यदि प्रचार रुक जावे,
तो होकर नीरोग देश यह सदा सभी सुख पावे।
छिप कर किन्तु साथ चण्डी के आँटी पिया करूँ मैं—
हानि नहीं, जो सुख पर खण्डन इनका किया करूँ मैं॥

(९)

स्वार्थहीन मैं रहूँ, स्वार्थ से हीन सभी हो जावें,
मैं परतन्त्र रहूँ पर सारे जन स्वतन्त्र हो जावें।
मुझे छोड़ कर सब सद्गुण हो जावें पल भर में,
जाकर सब विदेश शिक्षित हों, मैं सोऊँ निज घर में॥

(१०)

मन से अलग रहूँ पर तन से सबको गले लगाऊँ;
सच्चे सभी बनें, पर कपटी केवल मैं रह जाऊँ।
देश-दुःख को समझा करके आँसू खूब बहाऊँ;
कुछ न करूँ, पर बैठा बैठा मन के मोदक खाऊँ॥

रामचरित उपाध्याय।

भारतीय शासन-प्रणाली।

(२)

बोर्ड आव् रेवेन्यू और कमिश्नर।

भारतीय शासन के चार अत्यावश्यक अङ्गों का वर्णन हो चुका। इन को गाड़ी के चार पहिये समझना चाहिए। सेक्रेटरी आव् स्टेट, बड़े लाट, छोटे लाट और ज़िलाधीश का सम्बन्ध शासन के प्रायः प्रत्येक विभाग से है। परन्तु अनेक अधिकारी ऐसे भी हैं जिनकी स्थिति किसी विशेष विषय की विवेचना अथवा निरीक्षण के लिए है। अतएव उनका पद बड़े महत्त्व का समझा जाता है। उन में से बोर्ड आव् रेवेन्यू और कमिश्नर का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

बोर्ड आव् रेवेन्यू।

सरकारी आमदनी का सबसे बड़ा भाग भूमि-कर द्वारा प्राप्त होता है। ज़िलाधीश के कर्तव्यों में वर्णन किया जा चुका है कि कलेक्टर को माल-गुज़ारी वसूल करनी पड़ती है और इस काम के लिए उनके अधीन अनेक कर्मचारी रहते हैं। परन्तु प्रान्तिक सरकार और कलेक्टर के बीच में भी इस काम के लिए कुछ अफ़सर हैं। भूमि-कर के शासन से सम्बन्ध रखने वाली एक समिति है, जो बोर्ड-आव् रेवेन्यू कही जाती है। उसके दो सभासद होते हैं। मदरास की बोर्ड में चार सभासद हैं। ये अफ़सर बोर्ड आव् रेवेन्यू के मेम्बर कहाते हैं। माल-गुज़ारी सम्बन्धी पत्र-व्यवहार इसी बोर्ड द्वारा होता है। ये सभासद इस विभाग के मुक़द्दमे सुनते हैं। बम्बई में बोर्ड आव् रेवेन्यू नहीं है। उसका काम वहाँ के गवर्नर की कार्य्य-कारिणी (Executive) कौन्सिल का एक सभासद करता है। आईनी सूबों में यह बोर्ड बङ्गाल, मदरास, संयुक्त-प्रान्त और बिहार में है। ग़ैर आईनी सूबों में इस काम के लिए एक ही अधिकारी रहता है, जिसको फ़िनान्शल कमिश्नर (Financial Commissioner) कहते हैं। पञ्जाब, बरमा और मध्यप्रदेश में एक एक फ़िनान्शल कमिश्नर है। बोर्ड के सभासद और फ़िनान्शल कमिश्नर भारतीय सिविल सर्विस परीक्षा पास किये हुए और अनुभव प्राप्त अफ़सर नियुक्त होते हैं।

कमिश्नर।

बोर्ड आव् रेवेन्यू और कलेक्टर के बीच में कमिश्नर होते हैं। ये भी मालगुज़ारी सम्बन्धी मुक़द्दमे सुनते हैं। इनके अधीन कई ज़िले रहते हैं। उन सब के शासन का भार इनके ऊपर रहता है। एक कमिश्नरी में ३ से लेकर ७ ज़िले तक रहते हैं। मदरास-प्रान्त में कमिश्नरियाँ नहीं हैं। इसी लिए वहाँ की बोर्ड आव् रेवेन्यू में अन्य प्रान्तों से अधिक सभासद हैं। ग़ैर आईनी सूबों में पञ्जाब, आसाम, मध्य-प्रदेश, बलोचिस्तान और बरमा प्रान्त कमिश्नरियों में विभक्त हैं। कमिश्नरों के पद पर भी अनुभवी सिवि-

धीरे धीरे उन्नति होनी चाहिए कि चुनाव की प्रथा सारे देश में प्रचलित हो जाय। लार्ड रिपन की इच्छा थी कि सरकारी अफ़सर बाहर से इन संस्थाओं का निरीक्षण करें, परन्तु इनमें हस्तक्षेप न करें। इसी सिद्धान्त के अनुसार म्यूनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अधिकार धीरे धीरे बढ़ाये जा रहे हैं— विशेष कर म्यूनिसिपल बोर्डों के, जिन में शिक्षित सभासदों की संख्या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की अपेक्षा अधिक रहती है।

किसी किसी प्रान्त में तहसीलों में भी इस प्रकार की संस्थायें हैं। मदरास-प्रान्त में गाँवों के समूह की पञ्चायतें हैं, जो गाँवों का प्रबन्ध करती हैं।

कहीं कहीं क़स्बों को भी इस प्रकार के थोड़े बहुत अधिकार दिये गये हैं। ऐसे क़स्बों को नोटीफ़ाइट एरिया (Notified Area) कहते हैं।

जहाँ फ़ौजी छावनियाँ हैं वहाँ भी एक प्रकार की कमेटियाँ होती हैं, जिनको छावनी की कमेटियाँ (Cantonment Committees) कहते हैं। उनका सभापति छावनी का सबसे बड़ा फ़ौजी अफ़सर होता है और मन्त्री छावनी का मैजिस्ट्रेट। इन कमेटियों के सभासदों में फ़ौजी डाक्टर, फ़ौजी इन्जिनियर और एक छावनी-निवासी हिन्दुस्तानी, इतने आदमी होते हैं।

समुद्र के किनारे या उसके निकट जहाँ बन्दर हैं वहाँ का प्रबन्ध करने के लिए पोर्ट ट्रस्ट (Port Trusts) हैं। ऐसी समितियाँ भारत में इस समय कलकत्ता, बम्बई, मदरास, कराची, रङ्गून और चटगाँव में हैं। इनका सभापति गवर्नमेन्ट चुनती है। इनके सभासद् व्यापारियों के प्रतिनिधि होते हैं। इनका कर्तव्य है कि जहाज़ के यात्रियों और सामुद्रिक वाणिज्य की वस्तुओं को उतारने और चढ़ाने का उचित प्रबन्ध करें। इस प्रबन्ध के लिए उन्होंने कुछ कर बाँध रक्खा है, जिस से उनका ख़र्च चलता है।

ऊपर लिखी हुई संस्थाओं की उत्पत्ति के पूर्व ये सब काम सरकार करती थी। अब सरकार केवल निरीक्षण करती है और समय समय पर धन से सहायता करती रहती है। इन सब की सङ्गठन-शैली में बड़ा भेद है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में म्यूनिसिपल बोर्ड की अपेक्षा सरकारी हस्तक्षेप अधिक और प्रजा द्वारा प्रबन्ध कम है। डिस्ट्रिक्ट बोर्डों में सब जगह कलेक्टर ही सभापति होते हैं। उनके मन्त्री भी डेप्युटी कलेक्टर आदि अधिकारी होते हैं। कहीं कहीं तहसीलदार इत्यादि सरकार की ओर से सेक्रेटरी के पद पर नियुक्त किये जाते हैं। म्यूनिसिपल बोर्डों में अब कई जगह कलेक्टर सभापति नहीं हैं। उनके मन्त्री भी सरकारी नौकर नहीं।

ऊपर कहा जा चुका है कि म्यूनिसिपल बोर्ड शिक्षा-प्रचार, तन्दुरुस्ती, सर्व-साधारण की जीवन-रक्षा और आराम का प्रबन्ध करती है। शिक्षा-प्रचार के लिए स्कूल खोले जाते हैं। तन्दुरुस्ती के लिए शीतला का टीका लगाया जाता है। नगर का कूड़ा-कचरा उठवा कर जला दिया जाता है। नालियाँ साफ़ कराई जाती हैं। प्रतिदिन की जन्म और मृत्यु-संख्या का उल्लेख होता है। प्रजा के आराम के लिए सड़कों पर लालटेनें लगवाई जाती हैं और घर बैठे साफ़ पानी, नलों के द्वारा, लोगों को पीने के लिए पहुँचाया जाता है। इससे स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। लोगों की जीवन-रक्षा के अनेक उपाय किये जाते हैं। पागल कुत्ते पकड़ कर मार डाले जाते हैं, क्योंकि उनके काटने से मृत्यु की आशङ्का होती है। नगर के वे मकान, जिनके गिरने से लोगों के दब जाने का डर हो और जिनकी मरम्मत मकान के मालिक नहीं करवाते, गिरवा दिये जाते हैं। बिना रोशनी के कोई गाड़ी अँधेरे में नहीं चलने पाती। सड़कों पर गाड़ियों के चलने के नियम बनाये जाते हैं। इसी प्रकार मनुष्यों के जीवन की रक्षा के लिए भी नियम बनाये जाते हैं।

लन्दन के बुर्ज का प्रधान सन्तरी—भिन्न भिन्न तीन पोशाकों में।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

और उनके व्यापार वाणिज्य के विषय में जो कुछ लिखा है उसका अंगरेज़ी-अनुवाद हम नीचे देते हैं—

Pliny, the elder, relates the fact, after Cornelius Nepos, who, in his account of a voyage to the north, says, that in the Consulship of Quintus Metellus Celer, and Lucius Afranius (A. U. C. 694, before Christ 60), certain Indians, who had embarked on a commercial voyage, were cast away on the coast of Germany, and given as a present by the King of the Suevians to Metellus, who was at that time Governor of Gaul. The work of Cornelius Nepos has not come down to us; and Pliny, as it seems, has abridged too much. The whole tract would have furnished a considerable event in the history of navigation. At present, we are left to conjecture whether the Indian adventurers sailed round the Cape of Good Hope, through the Atlantic Ocean, and thence into the Northern Seas; or whether they made a voyage still more extraordinary, passing the Island of Japan, the coast of Siberia, Kamschatska, Zembla in the Frozen Ocean, and thence round Lapland and Norway, either into the Baltic or the German Ocean.—Tacitus, translated by Murphy. Philadelphia, 1830, P. 606, note 2.

मदरास और बम्बई प्रदेश के व्यापारी और नाविक अब भी बिना किसी संकोच के समुद्र-यात्रा करते हैं। यह बात सभी जानते हैं। इन दोनों प्रदेशों के व्यापारी अपने व्यापार-वाणिज्य में कितने प्रवीण हैं, इसका प्रमाण स्वयं उनका व्यापार ही है।

इस प्रबन्ध में प्राचीन काल की नौकाओं और जहाज़ों के चित्र भी देने का विचार था। पर दुःख का विषय है कि प्राचीन काल के जलयानों के चित्र मिलने का कोई साधन नहीं। केवल कहीं कहीं मिलिरों और मन्दिरों में खुदे हुए चित्र मिले हैं। बुरोबुदर (जावा) की चित्रावली में सात प्राचीन जहाज़ों के चित्र हैं। सांची के स्तूपों पर दो, जगन्नाथपुरी में एक, भुवनेश्वर में एक और अजन्ता की गुफाओं में चार चित्र पाये जाते हैं।

["मातृभूमि"—से अनुदित]

भाव-परिवर्तन ।

(१)

कष्टापन्नं सुग्गुरुनां दुःखसंक्रान्तो वा नीर्वतस्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ।

मदनमोहन के माता-पिता बहुत ग़रीब थे। उनके पास बहुत ही कम धन था। पर उन्होंने बड़ी मुश्किलों, दिक़्क़तों और संकटों को झेल कर अपने एकमात्र पुत्र मदनमोहन को इन्ट्रेन्स पास करा ही दिया। मदनमोहन बचपन से ही होनहार था। वह स्वयं पढ़ता और दूसरों को पढ़ा कर कुछ कमा भी लिया करता था। जिस वर्ष उसने इन्ट्रेन्स पास किया उसी वर्ष उसको स्कूल में एक जगह मिल गई। जहाँ मदन कल तक विद्यार्थी था वहीं आज वह "मास्टर साहब" हो गया। मदन पर स्कूल के हेड मास्टर की विशेष कृपादृष्टि थी। मदन को पहले २५) मासिक वेतन मिला। स्कूल में पढ़ाते हुए भी उसने अपना अध्ययन बन्द नहीं किया। दो वर्ष बाद उसने एफ़० ए० की परीक्षा दी और यथासमय पास हो गया। हेड मास्टर की सिफ़ारिश पर उसको ३५) मासिक मिलने लगा।

मदन के कारण उसके माता-पिता की अब बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी। अच्छे अच्छे घरों से उसके विवाह के लिए सन्देश आने लगे। परन्तु मदन ने कहीं भी विवाह करना स्वीकार न किया।

और दो वर्ष गुज़र गये। मदन ने बी० ए० भी पास कर लिया। अब वह ६०) मासिक वेतन पाता है और क़ानून के कालेज में क़ानून भी पढ़ता है।

(२)

वर्ष मास

मदन के पास ही सेठ राजाराम का बड़ा मकान है। इनके पास प्रचुर सम्पत्ति है। वहाँ [illegible]

"तब फिर प्राज रात की ट्रेन से ही शहर छोड़ देना चाहिए।"

"सुशीले, कैसा बुरा प्रस्ताव करती हो! शान्त रहो। इस हरकत से हमारा और तुम्हारा—दोनों का—मुँह काला होगा।"

"पर हृदय तो शान्त होगा, मदन।"

"सुशीले, यह शान्ति कलङ्क-कालिमा-मिश्रित है। उसमें सुख नहीं, आनन्द नहीं और निश्चिन्तता नहीं।"

"पर क्या स्वतन्त्रता के लिए संसार के अपवाद का ख़याल करना समझदारी का काम है?"

"प्रत्येक देश के कुछ सामाजिक नियम होते हैं। उन नियमों की रक्षा करते हुए जो स्वतन्त्रता मिले वही उस देश के लिए उत्कृष्ट स्वतन्त्रता है।"

"पर जिन नियमों में मनुष्य के मानसिक भावों का, उसकी प्राकृतिक आवश्यकताओं का, ध्यान नहीं रक्खा जाता क्या वे नियम कभी मान्य हो सकते हैं?"

"समाजशास्त्र बड़ा गहन शास्त्र है। उसमें युक्ति का प्राधान्य ही है, सो बात नहीं। उस देश के निवासियों के स्वभाव, उनके धार्म्मिक संस्कार और उनकी नैतिक अवस्था का भी ख़याल रखना पड़ता है।"

"तो मेरी दृष्टि में यह समाजशास्त्र बहुत ही सङ्कीर्ण है और उसको 'मनुष्य का समाजशास्त्र' न कह कर किसी जाति का समाजशास्त्र कहना चाहिए।"

"समाजशास्त्र का अर्थ ही बहुत से मनुष्यों के किसी समूह का शास्त्र है।"

"तुम अब वकील बाबू हो। तुमको हराना आसान नहीं। पर जब तुम स्कूल-मास्टर थे तब तो मदन बाबू तुमने कई बार मुझसे हार मानी थी।"

"सुनीते, तुमसे हार मानने में ही मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। क्योंकि तुम "Better Half" हो या होने वाली हो। पर यह मामला बड़ा टेढ़ा है। इसलिए तुमको अपनी विरुद्ध सम्मति देनी पड़ी। क्षमा करो।"

इस बातचीत के बाद वे दोनों एक दूसरे से जुदा हुए।

(४)

भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र।

"ओफ़! बड़ा कष्ट है। जान निकली जाती है। ज़रा सा पानी पिलाना।"

सुनीति ने प्लेग से पीड़ित अपने पतिदेव के मुँह में चाँदी की चम्मच से थोड़ा सा गुलाबजल मिला गङ्गाजल डाल दिया। राजाराम ने भूल कर भी कभी किसी का भला नहीं किया। उसके नौकर तक उससे परेशान थे। उसके साथ भी वह कभी सहानुभूति नहीं दिखाता था। इसीलिए आज उसकी बीमारी में भी जान को दाम कर काम करने वाला कोई नहीं दिखाई देता। उसके लिए किसी के हृदय में सच्ची हमदर्दी की ज़रा सी गन्ध भी नहीं। हाँ, एक मदन है—जिसने अपनी जान की ज़रा भी परवा न करके राजाराम की सेवा में कोई बात नहीं उठा रक्खी। डाक्टर के पास वही जाता है। दवा वही पिलाता है। ताऊन की बड़ी भयङ्कर गिल्टियों पर दवा का लेप भी वही ख़ुद करता है। ग़रज़ यह कि मृत्यु का ज़रा भी भय न करके उसने राजाराम की सेवा का महाव्रत अपने ऊपर लिया है। सुनीति के ढाढ़स का कोई आश्रय है तो मदन ही है। शहर के बड़े सर्जन ने कल गिल्टियों में शिगाफ़ दिया है। शिगाफ़ के समय भी मदन उपस्थित था। डाक्टर के मना करने पर भी—छूत वाली बीमारी का भय दिखाने पर भी—आत्मत्यागी मदन ने राजाराम की गिल्टियों से निकलने वाले मवाद को बार बार साफ़ किया। सुनीति मदन के इस परिचर्या-भाव को देख कर मन ही मन उसे अनेक आशीर्वाद देने लगी। राजाराम का कठोर हृदय भी मदन की सेवा से पिघल गया। मदन की निःस्वार्थ सेवा ने राजाराम जैसे स्वार्थी मनुष्य को भी परोपकार की दीक्षा दे ही दी। उसने दिल में कहा कि यदि इस

ही रङ्ग में दिखाती थी। अब आपके श्रीचरणों के प्रसाद से मुझे जिस विमल प्रकाश की प्राप्ति हुई है वह दूसरी चीज़ों के रङ्ग-रूप को प्रकाशित कर देता है।"

"सुशीले, मैं तुम्हारे इस भाव-परिवर्तन पर हर्ष प्रकाश करता हूँ।"

इसी समय एक छोटे से बालक ने बड़े ही मीठे स्वर में सुशीला के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—"अम्मा।"

ज्वालादत्त शर्म्मा।

बड़े दिन की यात्रा।

ईसाइयों में बड़े दिन और नूतन वर्ष का त्योहार बड़े महत्त्व का समझा जाता है। उस दिन सब सरकारी दफ़्तरों में छुट्टी रहती है। छोटी बड़ी प्रायः सभी दुकानें बन्द हो जाती हैं। मिहनत-मज़दूरी करने वालों को भी आराम करने का मौक़ा मिल जाता है। ऐसे ऐसे अवसरों पर कर्म्म-प्रधान देशों के लोग बैठे बैठे मक्खी मारना अच्छा नहीं समझते। त्योहार आने के पहले ही वे उनके सदुपयोग-सम्बन्धी कार्य्य-क्रम निश्चित कर लेते हैं। कोई तो अपना समय आमोद-प्रमोद में बिताते हैं, कोई अपने इष्ट-मित्रों के घर जा कर मनोरञ्जन करते हैं, और कोई ऐतिहासिक स्थानों को देखने की इच्छा से बाहर निकल पड़ते हैं।

नेटाल प्रान्त में भी यह महोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। आज सन् १९१६ का आगमन है। रात को सब लोग अपने अपने बिछौने पर अचेत पड़े हैं। रात्रि शब्द-शून्य और निस्तब्ध है। निद्रा-देवी ने सब के ऊपर अपना प्रभाव जमा रक्खा है। आधी रात के समय, ज्यों ही नये वर्ष का आगमन हुआ बस, सभी कल-कारख़ानों में सीटियाँ बजने लगीं, घण्टाघरों में टन् टन् होने लगा। इन सब ध्वनियों के मिल जाने से जो महाध्वनि हुई उससे समस्त आकाश गूँज उठा। सब लोग चौंक कर जग पड़े। यह क्या? यह ध्वनि कहाँ से आई? ज़रा ही सोचने से बात ध्यान में आ गई। लोग समझ गये कि ये सब नये वर्ष के सन्देश हैं। तब वे बड़े हर्ष से नूतन वर्ष का स्वागत करने लगे।

हम लोग पहले ही इनन्दा नामक जल-प्रपात देखने का निश्चय कर चुके थे। तदनुसार शनिवार को सबेरे ९ बजे हिन्दी-आश्रम से निकल पड़े। आश्रम से तीन ही मील के फ़ासिले पर इनगेनी नाम का स्टेशन है। साथ में हिन्दी-विद्यालय के अध्यापक और कुछ विद्यार्थी भी थे। स्टेशन पहुँचने पर मालूम हुआ कि इनन्दा जाने के लिए गाड़ी तीन बजे मिलेगी। अभी ग्यारह ही बजे थे। चार घण्टे और ठहरना था। हमारे साथियों में कई लोगों को भूख सता रही थी। स्टेशन के पास ही एक चायघर (Tea Room) था, हम लोग वहाँ जा पहुँचे। चायघर में एक बड़ी सी मेज़ रक्खी थी। उसके चारों तरफ़ कुर्सियाँ लगी थीं। हम लोग उन्हीं पर जा डटे। ख़ूब बिसकुट, केक और लेमनेड उड़ाया। चायघरवाला हमारे जैसे भोजन-भट्टों को पाकर बड़ा ख़ुश हुआ। खा पी कर हम लोग स्टेशन आये और रेलगाड़ी का इन्तज़ार करने लगे। स्टेशन पर भी भारतीय स्त्री पुरुषों की भारी भीड़ थी। ज्यों त्यों करके तीन बजे। गाड़ी आई। हम लोग सवार हुए। गाड़ी मनुष्यों से खचाखच भरी थी। हम लोग तीसरे दर्जे के मुसाफ़िर थे। गाड़ी में दो हबशी और कुछ मदरासी भी थे। मदरासी लोग परस्पर अँगरेज़ी में गिट पिट करते जाते थे। उन्हें शुद्ध अँगरेज़ी बोलने का अभ्यास न था। तो भी उन्हें अँगरेज़ी में ही बात चीत करना पसन्द था। उस समय अन्तःकरण में यही भाव उदय हो रहा था—

लोगों की उचित ख़ातिर-तवाज़ो की। फिर हम लोग इण्डियन ओपिनियन के सम्पादक, महाशय वेस्ट, के यहाँ गये। आपने भी हम लोगों की ख़ूब अभ्यर्थना की। महाशय श्याम, महाशय भगा आदि आश्रम-प्रवासियों से मिल जुल कर हम लोग वहाँ से रवाना हुए।

वहाँ से तीन मील की दूरी पर रेवरेन्ड डूबे का आश्रम है। हम लोग अब उसे देखने के लिए चल पड़े। राह में हँसते-खेलते और मज़ाक़ करते हुए हम लोग आ रहे थे। आश्रम से कुछ दूर आने पर, हमें तीन लड़के दिखाई दिये। वे थे तो एक भारतीय घराने के, पर उनका सारा बदन भूरा था। बाल एकदम सफ़ेद थे। देखने में वे न यूरोपियन जान पड़ते थे, न काफ़िर, और न भारतीय। इन विचित्र चेहरेवालों का इतिहास जानने के लिए चित्त उत्कण्ठित हुआ। एक प्रवासी से पूछने पर मालूम हुआ कि इनकी माता भारतीय और पिता फिरङ्गी था। अस्तु।

रेवरेन्ड डूबे का आश्रम।

जिस तरह अमेरिका के हब्शियों को ग़ुलामी की कठिन ज़ञ्जीर से छुड़ाने के लिए महात्मा वाशिङ्गटन का जन्म हुआ, उसी तरह अफ़रीक़ा के हब्शियों को विद्या पढ़ाने, उन्हें सभ्यता सिखाने और उनके जीवन को उपयोगी बनाने के लिए पादड़ी जान डूबे का आविर्भाव हुआ है। जान डूबे सरल प्रकृति के आदमी हैं। आप ज़ुलू-जाति के काफ़िर-कुल में पैदा हुए हैं। आप "नेटिव-नेशनल-कांग्रेस" के सभापति हैं। इस आश्रम के संस्थापक भी आप ही हैं। जब हम लोग वहाँ पहुँचे तब मालूम हुआ कि जान डूबे वहाँ नहीं। आप अपने देश-भाइयों के हृदयों में राष्ट्रीय भावों के अङ्कुर जमाने के लिए बाहर गये थे। उनके भाई चार्ल्स डूबे भी ईसाई मत का प्रचार करने के लिए बाहर गये थे। श्रीमती चार्ल्स डूबे हमसे मिलीं और आश्रम को दिखाने के लिए आप ने एक अध्यापक महाशय को हमारे साथ कर दिया।

नेटिव-विद्यालय—यह विद्यालय मिस्टर डूबे की कर्म्म-परायणता का नमूना है। इसमें अँगरेज़ी और ज़ुलू भाषा की पढ़ाई होती है। सातवें दर्जे (Seventh Standard) तक साहित्य की शिक्षा दी जाती है। साथ ही गणित, भूगोल, खगोल, विज्ञान, रसायन आदि आवश्यक और उपयोगी विषयों की पढ़ाई भी होती है। विद्यालय की इमारत दो मंज़िला है। नीचे विद्यालय और ऊपर छात्रालय, अर्थात् विद्यार्थियों के रहने की कोठरियाँ हैं। इस पक्की इमारत के बनाने में कई हज़ार रुपया ख़र्च हुआ है। विद्यालय-भवन में एक ओर दीना ज़ुलू और दूसरी ओर जान डूबे के चित्र लटकाये गये हैं। इन दोनों के बीच में हिन्दी-माता के सपूत, मोहन दास कर्म्मचन्द गान्धी, का चित्र भी भवन की शोभा बढ़ा रहा है। इससे पता लग सकता है कि यहाँ के "नेटिवों" (अधिवासियों) के हृदयों में महात्मा गान्धी के प्रति कितनी श्रद्धा और प्रेम है। इस विद्यालय के एक विभाग में दस्तकारी, शिल्पकारी, टाइप-रायटिङ्ग, शार्टहेंड आदि कलायें सिखाई जाती हैं।

कन्या-विद्यालय—इस कन्या-विद्यालय की इमारत बड़े ही उत्तम ढँग से बनाई गई है। यह पत्थर की बनी हुई, दोमंज़िला, है। विद्यालय को विद्यार्थियों ने ही बनाया है। इसके नीचे के भाग में पढ़ाई होती है और ऊपर के भाग में विद्यार्थिनियाँ रहती हैं। यहाँ भी ऊपर लिखी रीति से ही कन्याओं को शिक्षा दी जाती है। रेवरेन्ड डूबे का दृढ़ विश्वास है कि कन्याओं को अशिक्षित रखने से कोई भी देश उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र के पतन और उत्थान का कारण स्त्रियाँ ही हैं। वे जिस साँचे में चाहेंगी, राष्ट्र को ढाल सकेंगी। इस विद्या-

जा सकता। सच बात तो यही है कि यूनान और रोमवालों ने भारतवर्ष से ही अनेक बातें सीखीं। इन्हीं की शिक्षा-सामग्री के आधार पर इन्होंने अपने साहित्य को पुष्ट किया। एक और पश्चिमीय विद्वान् (Monsieur Delbor) लिखते हैं कि भारत में हज़ारों वर्ष पहले जो सभ्यता फैल रही थी उस का प्रभाव हमारे चारों तरफ़ निरन्तर विद्यमान है। वह पृथ्वी-मण्डल के देश-देशान्तरों में व्याप्त हो रहा है। वह अमरीका और योरप में सर्वत्र ही दिखाई दे रहा है। यह वही सभ्यता है जिसका जन्म स्थान पवित्र गङ्गा-तट है।

भारत के इतिहास में महाभारत का युद्ध बड़ी अपूर्व घटना है। यह युद्ध कलियुग के आदि में, अर्थात् ईसा के कोई ३००० वर्ष पहले, हुआ था। यह युद्ध क्या हुआ भारत की सभ्यता, उसके गौरव और उसके ऐश्वर्य पर वज्रपात हुआ। इस महाभारत में केवल भारत के महा पराक्रमी, शस्त्र शास्त्र-विद्याविशारद योद्धा ही नहीं मारे गये, उस प्रभावशालिनी सभ्यता और अद्वितीय कला-कौशल को भी, जो हज़ारों वर्षों के अविराम परिश्रम और कष्ट से प्राप्त हुआ था, बड़ा धक्का लगा, एक प्रकार से उसका तो नाश ही हो गया। ईश्वर की इच्छा ऐसी ही थी। मनुष्य का क्या सामर्थ्य कि वह ऐसी घटना को रोक सके। इस युद्ध में अनेकानेक वीर, कला-कुशल और धुरन्धर विद्वान् मारे गये। बहुत सी जातियाँ इस देश को छोड़ कर अन्य देशों को चली गईं। वे भारत की सभ्यता, कला-कौशल और व्यवसाय-रहस्य को भी अपने साथ ले गईं। इससे इस देश की अतुल हानि हुई। परन्तु दूसरे देशों को असमन्त लाभ हुआ। क्योंकि इन्हीं के द्वारा उन देशों के गौरव की वृद्धि हुई। पोकोक नाम के एक लेखक (Pocoke) ने अपनी एक पुस्तक (India in Greece) में लिखा है कि संसार में भारतीय युद्ध के सदृश शायद ही कोई दूसरी घटना हुई हो जिसका ऐसा भयानक परिणाम हुआ हो। इस घटना के कारण अगणित भारत-वासी इस देश को छोड़ कर चले गये। विदेश चले जाने वालों में ऐसे मनुष्य थे जो प्राचीन सभ्यता के अद्वितीय ज्ञाता थे। कितने ही ऐसे भी थे जो ऊँचे दरजे की शस्त्र-विद्या में सिद्धहस्त थे। उत्तर में वे हिमालय-पर्वत से भी आगे चले गये, दक्षिण में लङ्का में जा बसे, और पश्चिम में मिस्र के आगे बढ़ गये। इन्हीं लोगों ने पश्चिम में सभ्यता, कला-कौशल और विज्ञान की चर्चा का श्रीगणे[श किया।] पञ्जाब की सीमा को पार करके ये लोग यहाँ त[क बढ़] गये कि समस्त पश्चिमीय एशिया और योरप में [लोग] यहीं से देख पड़ने लगे।

चीन, प्रशान्त महासागर के द्वीप, तुर्किस्तान, स्कैण्डिनेविया, जर्मनी, ग्रेट-ब्रिटेन, ईरान, पू[र्वी] अफ़रीका, अफ़रीका के पूर्व-तटवर्ती देश, मिस्र, अमरीका आदि देशों ने विद्या और ... प्राप्त की। इनमें से अनेक देशों के देवी-देवताओं [के नाम] हिन्दुओं के पुराणों से ली गई प्रतीत होती है।

सर वाल्टर रेले (Sir Walter Raleigh ...) है कि हिन्दुस्तान में ही सबसे पहले मनुष्य-जाति ने ... किया—यहीं मनुष्य-जाति का आदिम जन्म-स्थान ... जाति ने अपनी उन्नति का आरम्भ भी यहीं से किय[ा] ... जाति मध्य एशिया से निकल कर ... कथन असत्य मालूम होता है। क्योंकि जो शक्ति ... विद्या चीन और भारतवर्ष में इस समय है ... विद्याओं का श्रीगणेश है। उसका प्रारम्भिक विकास ... लोगों का यह प्रमाण है कि आर्य-जाति मध्य ए[शिया] में फैली है उन्हें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ... काल में कोई उत्कृष्ट सभ्यता-सम्पन्न जाति ... भारतवर्ष और चीन के साहित्य में उसी की ... के श्रीपाद मिलते हैं। वह कौन जाति थी ... चीनियों और ईरानियों के भी पहले हो गई है, ... तक पता नहीं लगा। इसके अतिरिक्त इस बात से ... सम्मत हैं कि हिन्दुओं का साहित्य, उनकी विद्या ... विद्या और उनकी कलायें गङ्गा और यमुना के ... पर ही पूर्ण विकास को प्राप्त हुई थीं। हिन्दुओं ... की सभ्यता ने जो उन्नति की है वह भी अस[ाधारण है।] इन बातों पर विचार करने से मालूम होता है कि ... मध्य एशिया से निकल कर देश-देशान्तरों में ... वह फैली है भारतवर्ष ही से। आर्य-जाति, के ... देश देशान्तरों में फैलने के विषय में अनेक ... अनेक सम्मतियाँ हैं। कोई कहते हैं कि आर्य-जा[ति का] स्थान मध्य एशिया है, कोई अफ़ग़ानिस्तान के ... स्थलों को उसका उत्पत्ति-स्थान बताते हैं। ...

इन श्लोकों में जो १६ जातियाँ गिनाई गई हैं वे ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की सन्तानों में से थीं।

इनके सिवा और जातियों का भी उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि पहले ये सब लोग हिन्दू ही थे। देश-देशान्तरों में वास करने और स्वदेश को न लौटने से ये पतित समझी गईं। भारतवर्ष वाले इनसे परहेज़ करने लगे।

अब जिन देशों में हिन्दू जातियाँ जाकर बसी थीं उनका ब्योरा सुनिए—

एशिया।

एशिया का प्राचीन नाम जम्बू-द्वीप है। एशिया नाम भी हिन्दुओं ही का रक्खा हुआ है। इस विषय में कर्नेल टाड का कथन सुनिए। वे कहते हैं कि एसिक्रा (Deonida) और भजस्व (Bajaswa) की सन्तानों में इन्दु (चन्द्र) वंशीय 'अश्व' नाम की एक जाति थी। उस अश्व जाति के लोग सिन्धु के दोनों तरफ़ दूर तक जा बसे थे। इस कारण उस पृथ्वी-भाग का नाम एशिया हुआ। एशिया-खण्ड के कितने ही देशों में हिन्दू-जाति फैल गई थी। उनमें से कुछ देशों का संक्षिप्त उल्लेख नीचे किया जाता है।

अफ़ग़ानिस्तान।

प्राचीन भारत में अश्वंश नाम की नाग-जाति थी। उसमें अपगण नाम का एक मनुष्य हुआ। इसी अपगण की सन्तान अफ़ग़ान कहलाई। प्राचीन काल में हिन्दुस्तान और अफ़ग़ानिस्तान में घना सम्बन्ध था। इसके कितने ही प्रमाण हैं। राजा धृतराष्ट्र ने अफ़ग़ानिस्तान के राजा की पुत्री गान्धारी से विवाह किया था। महाभारत में लिखा है कि जिस समय पाण्डव दिग्विजय करने गये थे उस समय वे कन्धार अर्थात् गान्धार देश में राजा धृतराष्ट्र के श्वशुर के मेहमान हुए थे। हिरात-नगर हरि के नाम से विख्यात हुआ है। बौद्ध-राजाओं के समय तक अफ़ग़ानिस्तान हिन्दुस्तान का ही एक भाग समझा जाता था। कर्नेल टाड लिखते हैं कि जैसल-मेर के इतिहास से ज्ञात होता है कि विक्रम संवत् के पूर्व हुए इस पवित्र जाति का राज्य ग़ज़नी से समरकन्द तक फैला हुआ था। यह राज्य महाभारत-युद्ध के पीछे स्थापित हुआ था। ग़ज़नी-नगर इन्हीं लोगों का बसाया हुआ है।

सीस्तान।

जिस देश को अब सीस्तान कहते हैं उसका प्राचीन नाम शीतस्थान था। वह हिन्दुओं ही का बसाया हुआ है। वहाँ पहले हिन्दुओं ही का राज्य था।

तुर्किस्तान।

तुर्किस्तान में भी हिन्दू-जाति का राज्य था। तुर्कों की पूर्व सन्तान हिन्दू-पुराणों में तक्षक के नाम से विख्यात है। अध्यापक मैक्समूलर लिखते हैं कि तुर्वसु और उसकी सन्तान को शाप हुआ था। भारत छोड़ कर उनके चले जाने का यह कारण था कि उन्हें अपना पैतृक धन न मिला था। कर्नेल टाड अपने नामी ग्रन्थ *राजस्थान* में लिखते हैं कि जैसलमेर के प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि यदु-वंश अर्थात् चन्द्र-वंश की यदु और बाह्लीक जाति ने महाभारत के युद्ध के पीछे ख़ुरासान में राज्य किया। यूनानी ग्रन्थ-कर्ताओं ने उन्हें इण्डो-सीदियन कहा है। इन जातियों के सिवा कुरु की सन्तान में से भी कितने ही लोग आस पास के देशों में आ बसे थे। पुराणों में इन लोगों के प्रान्त का नाम उत्तर-कुरु लिखा है। सूर्य और चन्द्र-वंश के लोग इन दूर देशों में निरन्तर जा जाकर बसते रहे थे।

साइबेरिया।

महाभारत के युद्ध के बाद बहुत सी सूर्य और चन्द्र-वंशी जातियाँ हिन्दुस्तान को छोड़ कर दूर दूर जा बसी थीं। एक हिन्दू-जाति ने साइबेरिया में जाकर अपना राज्य स्थापित किया। इस राज्य की राजधानी वज्रपुर था। जब इस देश का राजा किसी युद्ध में मारा गया तब श्रीकृष्ण के तीन पुत्र प्रद्युम्न, गद और साम्ब बहुत से ब्राह्मणों और क्षत्रियों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। इन तीनों भाइयों में ज्येष्ठ भाई वहाँ की गद्दी पर बैठा। श्रीकृष्ण की मृत्यु होने पर वे [illegible] के लिए फिर द्वारिका आये थे। यह सब वृत्तान्त हरिवंशपुराण में विष्णुपर्व के ८० वें अध्याय में लिखा है। साइबेरिया और उत्तरी एशिया के प्रान्तों में हिन्दुओं की सन्तान अभी तक मिलती है। साइबेरिया और [illegible] में यदुवंश की दो जातियों का होना इतिहास से ज्ञात होता है। इन जातियों के नाम "ऐसान-

oyodes"—अर्थात् श्याम पदु और "Tchondes" अर्थात् जाटें हैं।

एशियामाइनर।

पहले इस देश में जो काल्दियन (Chaldeans) नाम की जाति बसती थी उसकी सभ्यता बहुत बढ़ी चढ़ी थी। यह वास्तव में भारत की ब्राह्मण-जाति थी। काल्दियन शब्द कुलदेव का अपभ्रंश है। कुलदेव, ब्राह्मणों ही का नाम है।

बौद्ध मत के प्रचार के समय हिन्दुस्तान से बहुत से बौद्ध साधु एशिया माइनर में पहुँचे थे। उन्होंने बौद्ध-धर्म के नियम ही सिद्धान्त और आचार-विचार उस देश में फैला दिये थे। उसका प्रभाव ईसाई मत पर बहुत कुछ पड़ा। यह प्रभाव अब तक कुछ कुछ देख पड़ता है।

आसीरिया।

प्राचीन काल में आसीरिया देश में उच्च श्रेणी की सभ्यता फैली हुई थी। यह भी हिन्दू-जाति का ही बसाया हुआ है। उस जाति का पहला राजा बलि था। उसका हाल हिन्दू-पुराणों में मिलता है। आसीरिया के इतिहास में Bel या Beal नामक राजा का उल्लेख है। वही राजा हिन्दू-पुराणों का 'बलि' था। यह बड़ा प्रतापी और पराक्रमी राजा था।

ईरान।

मेक्समूलर साहब लिखते हैं कि जिनको ज़ोरोस्ट्रियन (पारसी) कहते हैं वे वास्तव में हिन्दुस्तान ही के रहने वाले थे। वे इस देश को छोड़ कर उत्तर-पश्चिम को चले गये थे। उनकी धर्म पुस्तक ज़िन्दअवस्ता (Zendavasta) है। उससे उनके धर्म के विषय में बहुत कुछ पता चलता है। ईरान शब्द ऐरा शब्द का अपभ्रंश है। चन्द्र-वंशी बुद्ध का पुत्र पुरूरव और पुरूरव का पुत्र ऐरा (इला) था। इसी ऐरा के वंश के लोग ऐरन कहलाते थे। इन्हीं ऐरन लोगों ने ईरान देश को बसाया था। सूर्य और चन्द्र क्षत्रियों के पारस्परिक युद्ध के पश्चात् ऐरन लोग भारत से निकाल दिये गये। तब उन्होंने ईरान बसाया। ईरान के इतिहास में ईरान और तूरान के जो युद्ध-वर्णन हैं उनसे इस बात की बहुत पुष्टि होती है। मनुस्मृति के दसवें अध्याय के ४३-४४ श्लोकों से जान पड़ता है कि ईरानी लोग हिन्दू-क्षत्रिय-जाति में से हैं। सर टामस जोन्स लिखते हैं कि ज़िन्दअवस्ता ग्रन्थ के बीच में प्रत्येक दस शब्दों में छः या सात शुद्ध संस्कृत शब्द हैं। प्रोफ़ेसर हाग (Haug) ने हिन्दुओं और ईरानियों के धर्म-शास्त्रों और धार्मिक ग्रन्थों का मिलान किया तो मालूम हुआ कि उनमें बड़ी एकता—साम्य—है। महाभारत युद्ध के पहले हिन्दू लोग ईरान तक चले गये थे। महात्मा ज़रोस्टर और महर्षि व्यास का तुर्किस्तान के बलख़ नगर में शास्त्रार्थ हुआ था। ईरानियों की धर्म-पुस्तक में लिखा है कि ईरानियों के नेता जमशेद ईरान में पूर्व की तरफ़ के एक स्थान से आये थे। वे स्थान हिन्दुस्तान के उत्तरी-पश्चिमी-भाग—काश्मीर और अफ़ग़ानिस्तान आदि—हो हैं।

पूर्वी एशिया।

हिन्दू-जातियाँ केवल पश्चिमी और उत्तरी एशिया में ही नहीं रहीं, किन्तु एशिया के पूर्व के भी कितने ही देशों में फैल गईं। उनके भी प्रमाण सुनिए—

ब्रह्मा।

विल्सन साहब लिखते हैं कि ब्रह्मदेश और स्याम को हिन्दुस्तान से ही सभ्यता गई थी। ब्रह्मा तो ख़ास हिन्दू नाम है। दूसरे हिन्दुओं और ब्रह्मदेश के रहने वालों के बहुत से रीति-रिवाज एक से हैं। इस बात के कहने की तो आवश्यकता ही नहीं कि ब्रह्मदेश में जिस बौद्ध मत का इतना प्रचार है वह इसी देश की वस्तु है। प्राचीन समय में ब्रह्मा और हिन्दुस्तान में घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कम्बोडिया।

संस्कृत ग्रन्थों में काम्बोज नाम का देश मिलता है। काम्बोज ही से कम्बोडिया बना है। पुरातत्त्व-वेत्ताओं की खोजों से इस देश के कितने ही स्थान खोदे गये तो वहाँ हिन्दुओं के मन्दिर मिले। किसी समय यहाँ हिन्दुओं का बड़ा प्रभाव था।

चीन।

चीन देश भी प्राचीन भारत-वासियों ही का बसाया हुआ है। वहाँ पर पहले पश्चिम क्षत्रिय जाकर बसीं। चीन देश वालों के इतिहासों से ज्ञात होता है कि चीन वाले हिन्दू-

राजा पुरुरवा के पुत्र अमर की सन्तान हैं। सर विल्सन लिखते हैं कि चीन वाले अपने को हिन्दुओं से उत्पन्न बताते हैं। चीनी ग्रन्थों में लिखा है कि ईसा से १,२०० वर्ष पहले फोई नाम के एक सज्जन के साथ चीन वालों के पूर्वज चीन गये। वे लोग चीन के पश्चिमवर्ती उच्च पहाड़ी प्रान्त से आये थे। इससे मालूम होता है कि वे लोग काश्मीर, लद्दाख़ और पञ्जाब से गये होंगे। ये देश प्राचीन भारत के भाग थे। चीन की धर्म-मर्यादा और विद्या की जननी निस्सन्देह भारतभूमि ही है। प्राचीन भारत और चीन में बड़ा गाढ़ सम्बन्ध था। इसके अनेक प्रमाण हैं। रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों में चीन और चीन की वस्तुओं का उल्लेख मिलता है। चीन की राज-सभा में हिन्दुस्तान के राज-दूतों का जाना अच्छी तरह सिद्ध है। चीन में बौद्धमत का फैलना हिन्दुओं के प्रभाव का पूरा पूरा प्रमाण है।

भारतीय उपद्वीप-समूह ।
(INDIAN ARCHEPELAGO)

कर्नेल टाड लिखते हैं कि इन द्वीपों में सूर्य-वंशी क्षत्रिय जाकर बसे थे। वहाँ के मन्दिरों की दीवारों पर ऐसी अनेक चित्रावलियाँ और ग्रन्थों में ऐसी अनेक बातें हैं जिनसे वहाँ वालों का भारतीय क्षत्रिय होना साबित होता है।

जावा-द्वीप ।

जावा के इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि भारत के कलिङ्ग प्रान्त से बहुत से हिन्दू इस द्वीप में जाकर बसे थे। उन्हीं ने वहाँ के मनुष्यों को सभ्यता सिखाई और अपना संवत् चलाया। वह संवत् इस समय तक प्रचलित है। उसका आरम्भ ईसा के ७२ वर्ष पहले हुआ था। एलफिन्स्टन साहब के बनाये हुए इतिहास में यह सब हाल है। इसके पीछे फिर हिन्दुओं का एक दल जावा गया। उस दल के लोग बौद्ध-मतावलम्बी थे। उस द्वीप में यह कथा सुनी जाती है कि सातवीं सदी के प्रारम्भ में गुजरात देश का एक राजा पाँच हज़ार आदमी लेकर वहाँ पहुँचा और मतराम नाम के एक स्थान पर बस गया। कुछ काल पीछे दो हज़ार मनुष्य और गये। ये सब बौद्ध थे। उन लोगों ने बौद्ध मत का प्रचार किया। चीन देश का एक प्रसिद्ध यात्री, जिसने इस द्वीप को चौथी सदी में देखा था, लिखता है कि जावा में उस समय सब लोग हिन्दू-धर्मावलम्बी थे।

बोर्नियो द्वीप ।

एक भारती यात्री का कथन है कि इस द्वीप में स्थान स्थान पर हिन्दू-धर्म के प्राचीन चिह्न मिलते हैं। पर्वतों की कन्दराओं और खुले मैदानों में हिन्दुस्तान के जैसे मन्दिरों और शिवालयों के खँडहर दिखाई देते हैं। समुद्र के किनारे से कोई चार सौ मील दूर बाहू नामक स्थान पर कई मन्दिर उच्च श्रेणी की कारीगरी के द्योतक हैं। उन में हिन्दू-देवताओं की प्रतिमायें भी हैं।

बाली-द्वीप ।

यह द्वीप जावा के पूर्व में है। सर स्टामफर्ड रैफ़िल्स लिखते हैं कि इस जगह केवल ब्राह्मणों का धर्म ही नहीं पाया जाता, किन्तु यहाँ शहर और बस्तियों का शासन-प्रबन्ध भी हिन्दू-शैली का है।

सुमात्रा ।

इस द्वीप में हिन्दुओं का एक विशाल मन्दिर टूटा हुआ मिला है। अनेक खण्डित मूर्तियाँ भी यहाँ मिलती हैं।

सेलेबिस-द्वीप ।

इस द्वीप में भी हिन्दुओं के अनेक चिह्न मिलते हैं। प्रशान्त महासागर में जितने द्वीप-समूह हैं सभी में हिन्दू-धर्म के स्मारक चिह्न पाये जाते हैं। किसी समय वहाँ हिन्दू-धर्म का खूब प्रचार था।

लङ्का ।

लङ्का में तो अत्यन्त प्राचीन काल से हिन्दुओं का आना-जाना रहा है। रामचन्द्रजी के समय में लङ्का में ब्राह्मण-कुल-सम्भव रावण का राज्य था। रावण को मारने के बाद लङ्का का राज्य सदाचारी विभीषण को दे दिया गया था। पिछले समय में हिन्दुस्तान के लोगों ने वहाँ जाकर बौद्ध मत का प्रचार किया। सम्राट् अशोक के समय में लङ्का और भारत-वर्ष में बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध था। इस द्वीप का दूसरा नाम सिंहल-द्वीप है, जिसका अपभ्रंश नाम सीलोन है।

यह तो एशिया के सम्बन्ध की बात हुई। अब हम महाद्वीपों का हाल भी सुनिए—

आस्ट्रेलिया।

इस महाद्वीप में भी हिन्दू-जाति पहुँच गई थी; परन्तु उसने वहाँ पर बहुत समय तक वास नहीं किया। तथापि इस द्वीप में हिन्दू-जाति के प्रभाव की सूचक कितनी ही वस्तुएँ मिली हैं। उसमें रहने वाली जातियों के पास एक ऐसा शस्त्र है जो हिन्दुओं की विख्यात शस्त्र-विद्या की याद दिलाता है। उस शस्त्र का नाम बोमरङ्ग (Boomerang) है। वह चाप के आकार का होता है। उसमें यह अपूर्वता है कि शत्रु पर चोट करके वह चलाने वाले के पास ही लौट आता है। यह शस्त्र उसी प्रकार के शस्त्रों में से है जो महाभारत के युद्ध में अर्जुन और कर्ण के पास थे।

अफ़रीक़ा।

मिस्र।

आज चार हज़ार वर्ष हुए जब एक मनुष्य-दल हिन्दुस्तान से मिस्र गया और वहीं बस गया। वहाँ इन हिन्दुओं ने बड़ी उच्च श्रेणी की सभ्यता फैलाई और अपनी विद्या और पराक्रम से एक प्रभावशाली साम्राज्य स्थापित किया। एक प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता लिखते हैं कि मिस्र-निवासी बहुत प्राचीन काल में हिन्दुस्तान से स्वेज़ के रास्ते आये थे। वे नील नदी के किनारे बस गये थे। मिस्र के प्राचीन इतिहास से मालूम होता है कि उस देश के निवासियों के पूर्वज एक ऐसे स्थान से आये थे जिसका ठीक पता अब हिन्दुस्तान के समुद्र के किनारे निश्चित हो गया है। उस स्थान को वे पन्त कहते थे। वही जगह उनके देवताओं के रहने की थी। जब उन देवताओं के उपासक और भक्त उस पन्त-स्थान को त्याग कर चले गये तब वे भी उनके साथ पहुँच गये। दीर बहरी नामक स्थान में रानी हत्शेपसट (Queen Hatshop) का एक मन्दिर है। वह मिस्र वालों का है। उसकी दीवारों पर चित्रात्मक लेख खुदे हुए हैं। उनके अर्थ समझने से यह निश्चय हो गया है कि पन्त-स्थान हिन्दुस्तान ही था। मिस्र-निवासियों ने अपनी पुरानी मातृ-भूमि से हज़ारों वर्ष पर्यन्त व्यापार-सम्बन्ध रक्खा। इसके बड़े प्रमाण मौजूद हैं। पन्त-भूमि के राजाओं के, वहाँ की वनस्पतियों और पशु-पक्षियों आदि के, विशेष कर वहाँ की अनेक प्रकार की क़ीमती लकड़ियों के, नाम इस बात को सिद्ध करते हैं कि पन्त भूमि हिन्दुस्तान में ही थी, क्योंकि ये सब चीज़ें सिवा हिन्दुस्तान के और किसी देश में न होती थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन मिस्र की सभ्यता का आदिम स्थान हिन्दुस्तान ही था।

अफ़रीक़ा को उत्तर-पश्चिमीय हिन्दुस्तान के मनुष्यों ने ही जा कर बसाया था। मिस्टर पोकाक (Pococke) ने अपनी एक पुस्तक (India in Greece) में इस बात के कितने ही प्रमाण दिये हैं। उनमें से कुछ प्रमाण सुन लीजिए—

(१) अफ़रीक़ा के स्थानों और नदियों के नाम हिन्दुस्तान के स्थानों और नदियों के नामों से बहुत मिलते हैं। सम्भव नहीं निश्चय ही ये नाम हिन्दुस्तान से लिये गये हैं।

(२) राजाओं के नाम भी हिन्दुस्तान के राजाओं के नाम से मिलते-जुलते हैं जैसे रमेसिस (Rameses) यह शब्द हमारे राम शब्द से बना है।

(३) हिन्दुस्तान के नगरों और सीमा-प्रान्तों के नाम भी अफ़रीक़ा में पाये जाते हैं, विशेष कर हिन्दुस्तान की उत्तरी सीमाओं के नाम।

(४) दोनों देशों की शिल्प-कला में समानता है।

(५) मिस्र की भाषा के कितने ही शब्द संस्कृत के रूपान्तर हैं।

और और विद्वानों ने भी इस विषय में प्रमाणों का संग्रह किया है। सिन्धु नदी का जल अटक में बहुत नीला नीला आकर नीला दिखाई देता है। इस कारण वहाँ पर सिन्धु का नाम नीलाब हो गया है। यही नीलाब या नील नाम मिस्र की सबसे प्रसिद्ध नदी का है।

सिन्धु नदी का प्राचीन नाम अबोसिन (Abosin) है। अबीसीनिया (Abyssinia), जो अफ़रीक़ा में एक बड़े प्रान्त का नाम है, इसी अबोसिन से बना है। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि सिन्धु तट के निवासियों की पहुँच मिस्र तक अवश्य हुई थी।

प्रोफ़ेसर हीरन (Heeren) ने अपने एक ग्रन्थ (Historical Researches) की जिल्दों में हिन्दुओं और प्राचीन मिस्र-निवासियों के एक होने के विषय में अनेक प्रमाण दिये हैं। क्योंकि इन दोनों जातियों के रीति-रिवाज, धार्मिक-आचरण और सामाजिक विचारों की समता दिखाई

मसजिद कुव्वत-उल-इसलाम और लोहस्तम्भ। (देहली)

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

रोम की समीपवर्तिनी यूट्रेस्कन जाति भी हिन्दू थी। रोम के देवी-देवता भी हिन्दुस्तान के देवी-देवताओं के प्रतिरूप हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि रोम-निवासी हिन्दू-जाति के ही हैं।

जर्मनी।

ऑर साहब लिखते हैं कि जैसे हिन्दू मनुजी को मनुष्य-जाति का आदि पुरुष मानते हैं वैसे ही जर्मनी वाले भी मानते हैं। अंगरेज़ी का मेन (Man) जर्मन और संस्कृत का मनु (Menu) एक ही चीज़ है। जर्मन का मेन्श (Mensch) शब्द संस्कृत के मनुष्य शब्द से मिलता जुलता है।

जर्मन शब्द संस्कृत के शर्मन् का अपभ्रंश है। हिन्दुस्तान में शर्मन् उपाधि ब्राह्मण-सूचक है। इस से यह सिद्ध होता है कि भारतवर्ष के जो लोग जर्मनी में जाकर बसे थे वे ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों की रीति-रवाजों से जर्मनी वालों की बहुत सी रीतियां मिलती हैं। जैसे खान-पान करके स्नान करना, अपने हाथ रोटी बनाना, जनेऊ जूता बांधना, टोपी अथवा पहनना इत्यादि। स्नान शीत-प्रधान देश की प्रथा नहीं हो सकती। यह उष्ण देश की ही प्रथा है।

आर्यावर्त्त की उत्तरी पश्चिमी सीमाओं पर जो शक नाम की जाति रहती थी, सेक्सन लोग उसी की सन्तान हैं। सेक्सन (Saxon) शब्द शक + सूनु से बना है। सूनु का अर्थ सन्तान है। इस लिए सेक्सन का अर्थ शक की सन्तान होता है।

जर्मन लोग स्वर्ग को उसी नाम से पुकारते हैं जिससे हिन्दू। कर्नल टाड लिखते हैं कि जब इंगलैंड और यूरप में सेक्सन जाति के बड़े बड़े सिक्कों के चित्र, उनकी कारीगरी और उनकी मूर्त्तियों को देखते हैं तब श्रीकृष्ण और गोपियों की याद आजाती है। दोनों में साम्य देख पड़ता है।

ग्रेट-ब्रिटन।

प्राचीन काल में ग्रेट-ब्रिटन में ड्रूयड (Druid) नाम का एक जन समुदाय था। ये लोग बौद्ध-मतावलम्बी थे। वे जीव के आवागमन के सिद्धान्त को मानते थे। जीव के पूर्व-जन्म और उसके निर्णय में उनका विश्वास था। त्रिमूर्त्ति में भी उनका विश्वास था। हिन्दुओं का विश्वास है कि ईश्वर एक रूप से जगत् की उत्पत्ति करता है, दूसरे रूप से उसकी रक्षा करता है, और तीसरे रूप से उसका संहार करता है। इन लोगों का भी यही विचार था। इनकी सेना पृथक् थी, और धार्मिक रहस्यों का मर्म्म बताना इनका काम था। जैसे ब्राह्मण शाप देते थे वैसे ही ये भी शाप देते थे। बड़े बड़े राजा इनसे डरते थे। ड्रूयड (Druid) शब्द द्रौणदेव का अपभ्रंश है। द्रौणदेव अश्वत्थामा के पुत्र राजा की सन्तान थे। इनके पास चन्द्रमा का चिह्न रहता था। जब ब्रिटन पर रोम-निवासियों ने आक्रमण किया तब ड्रूयड लोग भाग कर मोना द्वीप में चले गये। मोना द्वीप का शुद्ध रूप मुनिद्वीप है। एक बार विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ शाल्मलीद्वीप (ग्रेट-ब्रिटन) से द्विजातियों के किसी राजा को हिन्दुस्तान में उठा लाये थे। यह घटना भी उस देश में हिन्दू जाति के रहने का प्रमाण है। कोलब्रुक (Colebrooke) साहब की एक पुस्तक (Miscellaneous Essays) और गाडफ्रे हिगिन्स (Godfrey Higgins) की भी एक पुस्तक (Celtic Druids) इस विषय में अवलोकनीय है।

स्केण्डिनेविया।

इस देश के प्राचीन निवासी हिन्दू-क्षत्रियों की सन्तान थे। संस्कृत शब्द स्कन्धनाभि से स्केण्डिनेविया बना है। स्कन्ध का अर्थ सरदार या मुखिया, अर्थात् क्षत्रिय, है। अतएव क्षत्रिय और स्केण्डिनेवियन का अर्थ एक ही है। इनकी एडा (Edda) नामक पुस्तक से पता लगता है कि गेटिस या जिटस (Getes or Jits) लोग, जो स्केण्डिनेविया में पहले पहल आये थे, असि कहलाते थे और उनके प्रधान वास-स्थान का नाम असिगढ़ (Asigord) था।

महात्मा ओडन (Oden) स्केण्डिनेविया में ईसा के २०० वर्ष पहले आये थे। इनके उत्तराधिकारी का नाम गौतम था। यह गौतम बुद्ध के समय का—विक्रम-संवत् के ४०० वर्ष और ईसवी सन् के ५१२ वर्ष पहले का—है।

इस देश के देवी देवताओं का वर्णन और इनकी वीर-रसात्मक कविता हिन्दुओं की सी है। इन लोगों की प्राचीन पुस्तक का नाम एद है। यह शब्द वेद का अपभ्रंश मालूम होता है। हिन्दुस्तान और स्केण्डिनेविया के दिनों के नामों का अर्थ भी प्रायः एक सा है।

अमरीका

अमरीका की आश्चर्य-जनक प्राचीन सभ्यता के चिह्नों पर दृष्टि डाली जाय तो मालूम होगा कि यूरप-वासियों के प्रवेश करने के पहले, यहाँ कोई सभ्य जाति अवश्य रहती थी। दक्षिणी अमरीका में बड़े बड़े नगरों के खँडहरों, दृढ़ क़िलों, सुन्दर भवनों, जलाशयों, सड़कों, नहरों आदि के चिह्न मिलते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में यहाँ कोई बड़ी उच्च श्रेणी की सभ्य जाति रहती थी। अच्छा तो यह सभ्यता आई कहाँ से? यूरोपीय-पुरा-वस्तु-वेत्ताओं ने इसका पता लगाया है। वे कहते हैं कि यह सभ्यता और कहीं से नहीं, हिन्दुस्तान से ही आई थी। बेरन हमबोल्ट महाशय (Baron Humboldt) का कथन है कि इस समय भी अमरीका में हिन्दुओं के स्मारक चिह्न मिलते हैं।

अब पोकोक महाशय (Pococke) का कथन सुनिए। वे कहते हैं कि पेरू-निवासियों की और उनके पूर्वज हिन्दुओं की सामाजिक प्रथायें एक सी पाई जाती हैं। प्राचीन अमरीका की इमारतों का ढँग हिन्दुओं का सा है। स्क्वायर (Squire) साहब कहते हैं कि जैसे बौद्ध मत के स्तूप दक्षिणी हिन्दुस्तान और उसके टापुओं में मिलते हैं वैसे ही मध्य अमरीका में भी पाये जाते हैं। प्राचीन अमरीका वालों की देव-कथायें हिन्दुस्तान की सी हैं। जैसे हिन्दू पृथ्वी माता को पूजते हैं वैसे ही वे भी पूजते हैं। देवी-देवताओं और महात्माओं के पद-चिह्न जैसे हिन्दुस्तान में पुजते हैं वैसे ही यहाँ भी। जिस प्रकार लङ्का में भगवान् बुद्ध के और गोकुल में श्रीकृष्ण के पद-चिह्नों की पूजा की जाती है उसी तरह मेक्सिको (Mexico) में भी एक देवता के पद-चिह्न पूजे जाते हैं। जैसे सूर्य, चन्द्र और उनके ग्रहण हिन्दुस्तान में माने जाते हैं उसी तरह यहाँ भी। पूर्णिमा, अमावास, ग्रहण आदि जैसे हिन्दुस्तान में इन अवसरों पर बजाये जाते हैं, यहाँ भी उसी तरह के बाजे बजते हैं। सूर्य-चन्द्र का राहु से ग्रसित होना वे भी मानते हैं। वहाँ के पुजारी सर्प आदि के चिह्न कण्ठ में धारण करते हैं। इससे हिन्दुस्तान के महादेव, काली आदि देवी-देवताओं का स्मरण होता है।

हिन्दुस्तान में जैसे गणेशजी की मूर्ति की पूजा होती है उसी तरह यहाँ भी एक वैसे ही देवता की पूजा होती है। जिस प्रकार हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में प्रलय का वर्णन है वैसा ही उन लोगों के ग्रन्थों में भी है। उनमें एक कथा है कि उनके एक महात्मा की आज्ञा से सूर्य की गति रुक गई थी—वह ठहर गया था। हमारे महाभारत में भी ऐसा ही वर्णन है। जयद्रथ वध के समय श्रीकृष्ण की आज्ञा से सूर्य ठहर गये थे। कृष्ण की मृत्यु पर अर्जुन के शोक-नाद से भी सूर्य का रथ रुक गया था। हिन्दुओं की तरह अमरीका के आदिम निवासी भी पृथिवी को कच्छप की पीठ पर ठहरी हुई मानते हैं। सूर्य-देव की पूजा दोनों देशों में होती है। मेक्सिको में सूर्य के प्राचीन मन्दिर हैं। जीव के आवागमन के सिद्धान्त में भी हिन्दुओं ही की तरह उन लोगों का विश्वास है। धार्मिक विषयों के अतिरिक्त सामाजिक विषयों में भी बहुत कुछ समता देख पड़ती है। उन लोगों के कितने ही रीति-रवाज हिन्दुओं के से हैं। उनका पहनावा हिन्दुओं ही के ढँग का है। वे भी खड़ाऊँ पर चलते हैं। स्त्रियों के वस्त्र भी हिन्दू-स्त्रियों के सदृश हैं। जान पड़ता है, अमरीका में हिन्दू श्रीरामचन्द्रजी के बाद गये। ऐतिहासिक कथाओं से भी जाना जाता है कि महाभारत के युद्ध के बहुत पीछे तक हिन्दू अमरीका को जाया करते थे। रामचन्द्र और सीताजी की पूजा उनके असली नाम से वहाँ अब तक होती है। पेरू (Peru) में रामेश्वर नाम से रामलीला भी होती है। अमरीका वालों की भवन-निर्माण-शैली, उनकी कथायें, उनके दार्शनिक विचार, उनकी आचरण शैली और प्राचीन ऐतिहासिक बातें ऐसी हैं जिनका विचार करने पर उन लोगों को हिन्दू-जाति से ही उत्पन्न मानना पड़ता है। महाभारत में लिखा है कि अर्जुन ने पाताल देश जीत कर वहाँ के राजा की कन्या उलूपी से विवाह किया था। उन से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अरावन था। वह बड़ा बलवान् योद्धा था।

प्राचीन काल में भारतवर्ष से अमरीका जाने के दो रास्ते थे। एक हिन्दुस्तान से लङ्का अथवा बङ्गाल की खाड़ी से जावा और पॉलिनेशिया होते हुए मेक्सिको, पेरू या मध्य अमरीका तक चला गया था। दूसरा—चीन, मङ्गोलिया, साइबेरिया और बेरिङ्ग के मुहाने से होकर उत्तरी अमरीका तक गया था।

इस समय जहाँ बेरिङ्ग का मुहाना (Behring Strait) है वहाँ प्राचीन समय में जल न था। वह स्थल था।

रिका से मिला हुआ था। पीछे भौमिक परिवर्तन होने से यह अलग हो गया। जैसे पहले एशिया से अफ़्रीका महाद्वीप स्थल-मार्ग से मिला था उसी तरह अमरीका देश भी मिला था। अब एशिया और अफ़्रीका के बीच स्वेज़ नहर (Suez Canal) और एशिया और अमरीका के बीच बहरिङ्ग का मुहाना (Behring Strait) है।

कन्नोमल, एम० ए०

नोट—इस लेख में अनुमान का अंश अधिक और प्रमाण का कम है। पढ़ने समय पाठक इस का स्मरण रक्खें।

सम्पादक

परिताप।

(१)

है जो सच्चा प्रेम ध्यान में वह न हमारे,
कलुषित अज्ञान दशा में हैं हम सारे।
शान्ति प्राप्त कर सकें न, फिरते फिरते मारे मारे,
कोई शरण हाय! सर्व-साधन सब हारे।
गहरा संसार-समुद्र है अति ही दुस्तर हो गया,
हम पा सके न अभीष्ट फल बुरा बीज वह बो गया॥

(२)

किया कभी न विचार साथ क्या अपने लावे,
होंगे क्या वे विदा—न समझे, पाप कमावे।
सच्चा त्याग न किया व्यर्थ ही वासर खोवे,
पापी बने पाखण्ड राह में कांटे बोवे।
हा! कलुषित अपकीर्ति ही, छोड़ चले संसार में!
हम क्या होंगे क्या भला ईश्वर के दरबार में!

(३)

व्यर्थ गंवाकर आयु, न तब भी सुपथ कमाते,
हाय! हमारे भाव बिगड़ते ही हैं जाते।
विषयों में फंस रहे न मन का मैल छुड़ाते,
कलुषित चित भरे काम जग में फैलाते।
हम शुचि सच्चे प्रभु प्रेम को प्राप्त न होना चाहते।
प्रभु-भक्ति की मन सिन्धु में कृपा हिलोरा चाहते॥

वर्द।

ईश्वर की सत्ता।

ईश्वर की सिद्धि अनेक प्रकार से की जा सकती है। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। अतः भाव ही सर्वदा विद्यमान रहता है। जो पत्थर की तरह ज्ञान-रहित है उससे ज्ञान-कार्य्य कभी नहीं हो सकता। प्रकृति के जड़ परमाणुओं द्वारा वर्तमान आश्चर्य्यमय ब्रह्माण्ड की रचना स्वयमेव नहीं हो सकती। क्योंकि जीवन-रहित वस्तु से जीवन नहीं मिल सकता और जो ज्ञानरहित है वह दूसरों को ज्ञान भी नहीं दे सकता। इसी लिए स्वीकार करना पड़ता है कि अनादि काल से एक स्वयम्भू जीवन-शक्ति है, जिसे बुद्धिमान् लोग ईश्वर कहते हैं और जिसकी उपासना करते हैं।

जब हम लोग किसी नियम-कार्य्य को देखते हैं तब विश्वास होता है कि यह कार्य्य किसी ज्ञानपूर्ण जीवनी शक्ति द्वारा किया गया है।

मान लीजिए कि एक ऐसा रेतीला द्वीप है जिस पर मनुष्यों का नामोनिशान नहीं। यदि उसके रेत पर रेखागणित के चित्रों का दर्शन हो तो उसी समय मानना पड़ेगा कि वहाँ पर कोई न कोई पुरुष अवश्य ही विद्यमान था। क्योंकि ऐसे चित्रों की बनावट दैवी घटना से नहीं हो सकती। मान लीजिए कि मनुष्यों से रहित एक और दूसरा द्वीप है जिसमें एक उत्तम राज-प्रासाद बना है। यदि यह राज-प्रासाद मनुष्येच्छा को पूर्ण करने वाली सर्व वस्तुओं से परिपूर्ण हो तो उससे लोग क्या समझेंगे? यही कि इसे कुछ आदमियों ने बनाया है। क्योंकि हम सब जानते हैं कि जीवन एवं ज्ञान-रहित पत्थर, लोहा तथा काष्ठादि द्वारा गृह की रचना स्वयमेव नहीं हो सकती। इसी लिए मानना पड़ेगा कि गृह-रचना किसी ज्ञानी ही के द्वारा हुई है। इसी प्रकार इस संसार-रूपी गृह का निर्माण

करने वाला कोई ज्ञानमय तथा शक्तिशाली कर्ता अवश्य है।

सिसरो नाम के एक प्रसिद्ध रोमन लेखक का कथन है कि—"यदि परमाणुओं के संयोग से सृष्टि स्वयमेव बन सकती है तो मन्दिर, गृह एवं नगर आदि क्यों नहीं बन जाते?"

रसायन-विद्या हमें बतलाती है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना ऐसे सूक्ष्म परमाणुओं से हुई है जिन्हें हम लोग पृथक् पृथक् नहीं देख सकते। ध्यान देने से मालूम होता है कि जिस स्थान में जितने परमाणुओं की आवश्यकता है वहाँ पर केवल उतने ही परमाणु एकत्र हैं। इसी से कहना पड़ता है कि इन परमाणुओं का सङ्कलन करने वाला परमात्मा ही है।

यदि कोई यह कहे कि यह सृष्टि आप ही आप बन गई है तो हम यह भी कह सकते हैं कि रामायण की पुस्तक भी असंख्य अक्षरों के संयोग से स्वयं पद्य-रूप में परिवर्तित होकर पुस्तकाकार बन गई है।

यदि कोई घड़ी उसी प्रकार की बनी हो जैसी कि दूसरी बनी है, पर उसका कर्ता अज्ञात हो, तो उस कर्ता के विषय में केवल चातुर्य-विषयक भाव उठेंगे। उसके अस्तित्व में सन्देह न होगा, क्योंकि इस प्रकार की रचना ज्ञान-शून्य प्रकृति द्वारा नहीं हो सकती। उसी प्रकार बालकों का भी जन्म केवल माता-पिता की बुद्धिमत्ता से नहीं हो सकता।

ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने वाले पुरुष थोड़े बहुत इस संसार में सदा रहे हैं। परन्तु सृष्टि-कर्ता के अस्तित्व को मानने वाले पुरुषों की संख्या उससे भी अधिक रही है।

सिसरो का कथन है कि—"संसार में ऐसा कोई पुरुष नहीं (चाहे वह जङ्गली अथवा महा-जङ्गली ही क्यों न हो) जो ईश्वर पर विश्वास न करता हो"। इसी विषय में अरस्तू नामक प्रसिद्ध ग्रीक तत्त्ववेत्ता का कथन है कि—"यद्यपि परमात्मा मनुष्यों की दृष्टि से अगोचर है तो भी अपने सृष्टि-रूप कार्यों से वह प्रत्यक्ष है।"

प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता न्यूटन कहता है कि—"सूर्य तथा तारों आदि का नियमबद्ध होना ही बतला रहा है कि ये सब ज्ञानस्वरूप सर्वशक्तिमती जीवनी शक्ति की इच्छा से भ्रमण कर रहे हैं।"*

भवानीप्रसाद।

युद्ध और ब्रिटिश-जाति की क्षमता।

[लेखक—श्रीयुत सेंट निहालसिंह, लन्दन]

(२)

यह पहले ही कहा जा चुका है कि इस समय ब्रिटिश सेना की संख्या ३०—४० लाख हो गई है। उसके लिए भोजन, युद्ध-सामग्री तथा गोली-बारूद आदि के विषय में भी लिखा जा चुका है। इस कारण ब्रिटिश गवर्नमेंट को बहुत अधिक ख़र्च उठाना पड़ता है। वर्तमान युद्ध के लिए जो कुछ ख़र्च किया जा रहा है उसका हिसाब यदि लगाया जाय तो सिर चकरा जाय।

कुछ ही महीने पहले की बात है, मिस्टर एस्क्विथ ने हाउस आव् कामन्स में युद्ध के ख़र्च का हिसाब बताया था। आपने कहा था कि कोई साढ़े सात करोड़ रुपया प्रति दिन ख़र्च होता है। इसी प्रकार होम सेक्रेटरी, मिस्टर हर्बर्ट सैमुएल, ने भी अपने एक भाषण में, जो आपने लन्दन के [illegible] में दिया था, युद्ध के ख़र्चे का ज़िक्र किया था। आपने बताया कि कोई १० लाख रुपये प्रति घंटे के हिसाब से ख़र्च हो रहा है। दोनों हिसाब मिलते-जुलते ही हैं। क्योंकि दोनों प्रकार के अङ्कों का मूल एक ही है। अब प्रश्न यह है कि इतना रुपया आता कहाँ से है? स्पष्ट बात है कि युद्ध करना तो दूर, घर पर बैठ कर

* एक अँगरेज़ी ग्रंथ के आधार पर लिखित।

लगा कर प्राप्त किया जाता है और कुछ ऋण लेकर। इन दोनों साधनों का वर्णन थोड़े में सुनिए।

युद्ध शुरू होने के पहले जिनकी वार्षिक आमदनी २,४०० रुपया थी उन्हें आमदनी पर कर (Income Tax) न देना पड़ता था। पर अब १,९२० रुपये तक की आमदनी पर कर लिया जाता है। जिनकी वार्षिक आमदनी इतनी या इससे ज़ियादह है उन सबको अब कर देना पड़ता है। इसका फल यह हुआ है कि अब ऐसे भी आम्दी लोगों से कर लिया जाता है जिनसे पहले नहीं लिया जाता था। यह सब रुपया सरकारी ख़ज़ाने में जाता है।

जिन लोगों की वार्षिक आमदनी २,४०० रुपये से ज़ियादह पर ६,००० रुपये से कम थी उन्हें लड़ाई छिड़ने के पूर्व, आमदनी के प्रथम २,४०० रुपये पर कर देना पड़ता था। कल्पना कीजिए कि किसी की वार्षिक आमदनी ३,६०० रुपया है। पहले उसे ३,६०० − २,४०० = १,२०० रुपये पर ही कर देना पड़ता था, ३,६०० रुपये पर नहीं। पर अब उसे १,५०० रुपये के बदले १,९२० पर कर देना पड़ता है। इसी से गवर्नमेंट की आमदनी इस मद से बहुत बढ़ गई है।

कर की दर भी बढ़ा दी गई है। युद्ध के पहले थोड़ी आमदनी वालों को फ़ी पौंड (१५ रुपये) ९ पेन्स (९ आने) कर देना पड़ता था। अब १ शिलिंग (१२ आने) ६ पेन्स उनसे लिया जाता है। अर्थात् कर की दर दूनी से भी अधिक हो गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि पुरानी दर से १०० पौंड (रुपया १,५००) पर ३ पौंड १५ शिलिंग कर लिया जाता था। पर अब उतनी ही रक़म पर ८ पौंड देना पड़ता है। याद रखना चाहिए कि युद्ध के पहले जिन्हें १,५०० रुपये पर कर देना पड़ता था उन्हें अब १,९२० पर देना पड़ता है। इस हिसाब से कर की रक़म ८ पौंड (१२० रुपये) से बहुत अधिक हो जाती है।

आमदनी पर कर बढ़ाने के लिए और भी कितनी ही युक्तियाँ की गई हैं। उन सबका ज़िक्र करने से पाठकों का जी ऊब उठेगा। इस कारण इन युक्तियों का उल्लेख न करके मैं सिर्फ़ इतना ही कहूँगा कि इस आय-कर की वृद्धि के कारण ही पिछले साल की अपेक्षा इस साल कोई ३ करोड़ ४० लाख पौंड—५१ करोड़ रुपये—की आमदनी अधिक होने की सम्भावना है। पर मैं समझता हूँ कि असल में इस मद से इससे भी अधिक आमदनी होगी।

शक्कर, तम्बाकू, चाय, शराब आदि पेय पदार्थ, पेटेन्ट दवाइयाँ और कितनी ही अन्य चीज़ों पर चुंगी बढ़ा दी गई है। घड़ियाँ आदि जिन चीज़ों पर पहले चुंगी न लगती थी अब लगने लगी है। इससे भी कुछ न कुछ आमदनी बढ़ ही जायगी। शराब ही पर लगाई गई चुंगी को देखिए। उसी से पिछले साल की अपेक्षा इस साल कोई १८ करोड़ रुपये अधिक मिलने की आशा है।

गवर्नमेंट ने तार और टेलीफ़ोन की दर भी बढ़ा दी है। तार के १२ शब्दों के लिए ६ पेन्स (६ आने) की जगह अब ९ पेन्स (९ आने) लिये जाते हैं। पता भी इन्हीं १२ शब्दों में शामिल है। चिट्ठियों और पार्सलों के लिए डाक का महसूल भी बढ़ा दिया गया है। लन्दन में जो टेलिफ़ोन हैं उनमें एक बार एक जगह से दूसरी जगह किसी से बातचीत करने के लिए—पहले २ पेन्स देना पड़ता था, अब ३ पेन्स देने पड़ते हैं। इन मदों से भी गवर्नमेंट की आमदनी बहुत बढ़ गई है। केवल कर-वृद्धि ही से युद्ध के ख़र्च की रक़म पूरी नहीं होती। अतएव ऋण भी लेना पड़ा है। ऋण से ही अधिकांश ख़र्च चल रहा है। अब ऋण का हाल सुनिए—

यहाँ दो प्रकार के क़र्ज़ों की योजना की गई है। पहला ऋण तो युद्ध छिड़ने के कुछ ही दिन बाद लिया गया था। इस पर गवर्नमेंट ने ४ फ़ी सदी सूद देना निश्चित किया। लोगों ने ख़ूब शौक़ से गवर्नमेंट को रुपया दिया। सवा पाँच अरब रुपया माँगा गया था। पर लोग इससे भी अधिक देने को तैयार हो गये। गवर्नमेंट को जितना चाहिए था उतना रुपया उसने ले लिया। अब दूसरे ऋण की बात सुनिए। उस पर गवर्नमेंट ने ४½ फ़ी सदी सूद देना निश्चित किया। इस बार भी अधिक लोगों ने इस ऋण का रुपया गवर्नमेंट को दिया। इसके द्वारा गवर्नमेंट ने कुछ ऊपर नौ अरब रुपया प्राप्त किया।

इन दोनों क़र्ज़ों के सम्बन्ध में प्रत्येक मनुष्य ने यह चेष्टा की कि ऋण की रक़म शीघ्र ही इकट्ठा हो जाय। मंत्रि-मण्डल के सदस्यों, राजनीतिज्ञों, महाजनों, समाचार-पत्रों और अख़बार वालों ने लोगों को ऋण देने के लिए ख़ूब ही उत्साहित किया। थोड़ी पूँजी के लोगों से भी रुपया-

रहे हैं। परन्तु, इतने पर भी कुछ और भी ऋण लेने की व्यवस्था की जाने वाली है। सुनते हैं, गवर्नमेंट शीघ्र ही तीसरी दफ़े युद्ध-सम्बन्धी ऋण अपने ही देश में लेने की सूचना देगी।

इन बातों से मेरा यह अभिप्राय है कि आप पर विदित हो जाय कि इस देश के लोग युद्ध के लिए गवर्नमेंट को किस उदारता से सहायता दे रहे हैं। यहाँ एक भी आदमी ऐसा नहीं है जिसने इस काम में बाधा डालने का यत्न किया हो। धनी-निर्धनी और स्त्री पुरुष जिन जिन से मुझे मिलने का प्रसङ्ग आया है सभी ने यही इच्छा प्रकट की है कि इस युद्ध में ब्रिटिश जाति की जीत हो। फिर, इस निमित्त चाहे जितना ही धन क्यों न ख़र्च हो जाय और जितने ही मनुष्य क्यों न खेत रहें। सच तो यह है कि ऐसे ही जोश और ऐसे ही उत्साह की बदौलत किसी देश या किसी जाति को समर में विजय-प्राप्ति हो सकती है। शान्ति के समय भी इन्हीं गुणों के कारण विजय-प्राप्ति होती है।

सर्वसाधारण लोग इधर तो युद्ध के ख़र्च के लिए गवर्नमेंट की सहायता रुपये से कर रहे हैं। उधर वे इस बात पर भी ज़ोर दे रहे हैं कि रुपये का सदुपयोग किया जाय, वह बेकार न फेंका जाय। वे कहते हैं कि रुपया चाहे सेना के लिए ख़र्च किया जाय, चाहे दैत्यपोत के लिए ख़र्च किया जाय, चाहे व्योमयानों के महकमे के लिए ख़र्च किया जाय, और चाहे गोली-बारूद के लिए ख़र्च किया जाय, किन्तु एक कौड़ी न जाने पावे। गवर्नमेंट भी यही चाहती है। वह भी हर तरह से लोगों को विश्वास दिला रही है कि ख़र्च यथासाध्य सोच समझ कर ही किया जायगा और व्यर्थ एक पैसा न जाने पावेगा। जहाँ तक हो सकेगा, ख़र्च में कमी करने की बड़ी चेष्टा की जायगी।

उस दिन प्रधान मन्त्री का भाषण हाउस आफ़ कामन्स (पार्लियामेंट) में इस विषय पर हुआ। आपने कहा कि थोड़े ही दिनों में आमदनी और ख़र्च का लेखा पार्लियामेंट में पेश होने वाला है। तब यह अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि हर महकमे में ख़र्च कितना कम कर दिया गया है। मुझे निज के तौर पर भी मालूम हुआ है कि मुख्य मुख्य दफ़्तरों में भी ख़र्च में बहुत कमी की जा रही है।

क़रीब क़रीब सारे अजायबघर और चित्रशालायें बन्द कर दी गई हैं। गवर्नमेंट का कथन है कि यह दुर्दिन समय मनोरञ्जन करने और खेल-तमाशे देखने का नहीं। इस छोटी सी बात से गवर्नमेंट की प्रवृत्ति का हाल जाना जा सकता है। इसमें गवर्नमेंट को कितने ही सुभीते हो गये हैं। अजायबघरों आदि में जो लोग नौकर थे वे युद्ध के कार्यों में लगा दिये गये हैं। उनके निमित्त जो ख़र्च गवर्नमेंट को करना पड़ता था वह भी बच गया है। कितने ही बड़े बड़े लोगों ने गवर्नमेंट से इस विषय पर फिर से विचार करने का आग्रह किया, पर मिस्टर एस्क्विथ ने किसी की न सुनी। उनकी इस दृढ़ता से यही सिद्ध होता है कि गवर्नमेंट एक पैसा भी व्यर्थ नहीं जाने देना चाहती। वह नहीं चाहती कि बेकार ख़र्च बढ़ाया जाय।

म्युनिसिपैलिटियाँ भी सड़कों, पुलों, इमारतों आदि के ख़र्च में यथासम्भव कमी कर रही हैं। फिर भी लोग कह रहे हैं कि ख़र्च और भी कम किया जाय।

जो लोग गवर्नमेंट से यह कह रहे हैं कि एक पैसा भी व्यर्थ न जाने पावे, सो अकारण नहीं। क्योंकि एक तो उन्हें कर ही पहले से अधिक देने पड़ते हैं, दूसरे वे कर और भी बढ़ाये जाने वाले हैं। इसके सिवा युद्ध-सम्बन्धी ऋण देने और एक्सचेकर बांड आदि लेने में भी लोगों ने अपने सञ्चित धन का बहुत सा अंश ख़र्च कर डाला है। इसलिए उनका यह कहना सर्वथा स्वाभाविक है कि कहीं, किसी भी महकमे में, एक पाई भी फ़िज़ूल न जाय।

परन्तु जितनी बचत गवर्नमेंट कर सकती है उससे अपेक्षा जनसाधारण कहीं अधिक बचा सकते हैं। अँगरेज़ थोड़े ख़र्च से अपनी गुज़र-बसर नहीं कर सकते। भारतवासियों की अपेक्षा वे बहुत अधिक ख़र्च करते हैं। हम लोगों से वे कोई १० गुना अधिक कमाते भी हैं। ख़र्च भी वे उसी परिमाण से करते हैं। भारत के धनी अब भी जिन चीज़ों को विलास वस्तु समझते हैं उन्हीं को यहाँ के साधारण लोग नित्य की आवश्यक चीज़ें समझते हैं।

इसका एक उदाहरण लीजिए। हमारे देश, हिन्दुस्तान, में बहुत थोड़े आदमी शराब पीते हैं। जो लोग पीते हैं वे उसे एक प्रकार की विलास-वस्तु समझते हैं। पर यहाँ बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जो शराब नहीं पीते। यहाँ तो कुली-

यह ख़र्च ख़ूब घटा देना चाहिए। इस विषय का एक उदाहरण लीजिए—

कुछ समय हुआ, लार्ड डेवनपोर्ट (Devonport) नाम के एक नामी अँगरेज़ से एक अख़बार के प्रतिनिधि ने भेंट की। लार्ड साहब ने उससे कहा कि यदि चाहें तो यहीं वाले यदि चाहें तो थोड़ी सामग्री से खाद्य पदार्थों का ख़र्च घटा सकते हैं। उनके कथन का सारांश सुनिए। आपने कहा—

"हम लोग भोजन-पान आदि की सामग्री ख़रीदने में आवश्यकता की अपेक्षा से अधिक रुपया फूँकते हैं। उसे हम बहुत कम कर सकते हैं। कुछ चीज़ों के खाने अथवा बहुत अधिक खाने की कोई ज़रूरत नहीं। बिना इन चीज़ों के भी हम तन्दुरुस्त रह सकते हैं। ये चीज़ें ऐसी नहीं कि बिना इनके पेट में हाथ ही न जा सके। इनको न खाना उपवास करना नहीं। आदमी चाहे तो इन्हें सहज में छोड़ सकता है"।

कपड़े-लत्ते और ज़ेवर आदि के ख़र्च में भी बहुत कुछ बचत की जा सकती है। धनी और मध्यम स्थिति की स्त्रियों की फ़िज़ूलख़र्ची यहाँ बहुत बढ़ी हुई है। वे अपने लहँगे (गौन) और टोपियाँ साल में कई दफ़े बदला करती हैं। वे नित नई पोशाकें बनवाती हैं। यह बात वे इसलिए नहीं करतीं कि उनके कपड़े बहुत ख़राब हो जाते या फट जाते हैं। बात यह है कि वे फ़ैशन (नये तर्ज़) की ग़ुलाम सी हो रही हैं। ये फ़ैशन समय समय पर बदला करते हैं। इसीसे इनकी पोशाकें भी बदला करती हैं। इस मूर्खता का यहाँ ठिकाना है। इनकी नक़ल ग़रीब स्त्रियाँ भी, जहाँ तक हो सकता है, करती हैं।

तरह तरह की चीज़ें मोल लेने में यहाँ वालों को प्रवीण हैं। कुछ न कुछ वे लोग ख़रीदते ही रहते हैं। युद्ध के कारण इनकी यह आदत बहुत कम हो चली है। सोने और चाँदी के ज़ेवरात की दुकानें अब सूनी सी हो गई हैं। कपड़े वालों के यहाँ भी अब पहले के सदृश भीड़ नहीं होती। दर्ज़ियों की दुकानों पर भी अब भीड़ नहीं दिखाई देती। स्त्रियाँ भी अब सादे कपड़े पहनने लगी हैं। अमीरों के यहाँ अब वैसा अच्छा खाना नहीं पकता जैसा कि युद्ध छिड़ने के पहले पकता था।

इन बातों से यही सूचित होता है कि अब यहाँ के लोग एक नये और सादे जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। ज्यों ज्यों कर बढ़ते जायँगे और युद्ध के लिए ऋण के रूप में लोग ज्यों ज्यों अधिक रुपया देंगे त्यों त्यों वे आप ही विलास-वस्तुओं में ख़र्च करना कम करते जायँगे। जो लोग अब तक सुख-चैन की सामग्री प्राप्त करना नहीं छोड़ते उन्हें भी धीरे धीरे छोड़ना पड़ेगा। इन लोगों की दैनिक आवश्यकतायें भी कम हो जायँ तो आश्चर्य नहीं। कुछ भी हो, भोजन-पान और वस्त्राच्छादन की सामग्री का ख़र्च कम हुए बिना न रहेगा।

युद्ध के ख़र्च के लिए रुपये का सङ्ग्रह करने में ये लोग जिस बहुमुखिता का परिचय दे रहे हैं उसे देख कर यही कहना पड़ता है कि इन द्वीपों के निवासी सचमुच ही बड़े देशभक्त हैं।

भारत का पुनरुत्थान।

संसार परिवर्तनशील है। इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। हम जो कुछ देखते हैं सभी में परिवर्तन का चिह्न पाया जाता है। भूगर्भ-शास्त्रवेत्ताओं का कथन है कि हिमालय के स्थान पर पहले समुद्र था। ज्योतिष-शास्त्रज्ञ बताते हैं कि सूर्य के उत्ताप में कमी हो रही है। पदार्थ-विज्ञान के विद्वान् कहते हैं कि अङ्गार ही हीरे के रूप में बदल जाता है। हम भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि गङ्गा-यमुना आदि नदियों के प्रवाह-स्थल बदलते रहते हैं। इसके सिवा नगर, जनपद आदि के ध्वंस का साक्ष्य इतिहास दे ही रहा है। अच्छा, प्राकृतिक जगत् को छोड़ दीजिए। थोड़ी देर के लिए मानसिक जगत् की तरफ़ ध्यान दीजिए। देखिए, यहाँ भी चारों तरफ़ परिवर्तन ही परिवर्तन देख पड़ता है। मनुष्य-जाति के आचार-व्यवहार, विद्या-बुद्धि, धर्म-विश्वास, ज्ञान-विज्ञान, रीति-नीति, सभ्यता आदि सब कहीं यही अँगरेज़ी कहावत चरितार्थ होती है कि—

The old order changeth yielding place to new.

प्रायः देखा जाता है कि मनुष्य की सांसारिक अवस्था बदल जाने पर, किसी न किसी समय, उसके दुर्दिन आ जाते हैं। इसी तरह जाति, समाज, देश या भूखण्ड भी कभी कभी नीचे गिर जाता है—अवनति की काल-कोठरी में बन्द हो जाता है। यह बात सभी देशों के इतिहास में पाई जाती है। एक समय यूरोप का भी यही हाल था। वह ज़माना अब अन्धयुग (Dark Ages) कहलाता है। उस समय यूरोप पर अविद्या और अवनति का बड़ा भारी परदा पड़ा हुआ था। साहित्य, दर्शन, विज्ञान, कला-कौशल आदि सभी कुछ अवनति-सागर में निमग्न था। कोई चार सौ वर्ष बाद समय ने पलटा खाया। इसी पलटे का नाम है रेनेसान्स (Renaissance) या पुनरुत्थान।

पुनरुत्थान के साथ विद्या के पुनरुत्थान (Revival of Learning) का ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि यदि हम एक का विचार करने लगते हैं तो दूसरे का भी करना ही पड़ता है। इसके सिवा एक और भी वस्तु है जिस पर विचार करना आवश्यक होता है। वह है पुनर्गठन (Reformation)। यह इन दोनों का फल-स्वरूप है। अर्थात् पुनरुत्थान और विद्योन्नति की अन्तिम अवस्था पुनर्गठन है। या यों कहिए कि पुनरुत्थान और विद्योन्नति होने पर पुनर्गठन का आरम्भ होता है। अतएव पुनरुत्थान के साथ ही इन दोनों विषयों का भी विचार करना पड़ता है।

इतिहास की आलोचना से यह ज्ञात होता है कि जातीय अवनति के तीन मुख्य कारण हुआ करते हैं—पहला पराधीनता या दबाव, दूसरा उदासीनता, तीसरा उत्साह-हीनता। यूरोप में, मध्ययुग (Middle Ages) में, रोमन कैथलिक धर्म प्रचलित था। वहाँ के समाज पर उसका ख़ूब ही दबाव था। यूरोप वाले हृदय से उसके अनुयायी थे। अतएव उस धर्म के विरुद्ध जहाँ किसी ने कुछ कहा कि झट उस पर नास्तिकता या अधर्मोपदेश का दोष लगा दिया गया। फल यह होता था कि उसे कठोर दण्ड भोगना पड़ता था। कितने ही मनुष्य केवल अपने स्वाधीन भावों अथवा विचारों को प्रकाशित करने के कारण ही जीते जला दिये गये। यूरोप के इतिहास में तो ऐसे उदाहरण पग पग पर मिलते हैं। लैटिमर, रिडले, कोपर्निकस, गैलिलियो तथा अन्यान्य स्वाधीन-विचार-प्रवर्तकों के नाम इतिहासज्ञों के लिए नये नहीं। सभी जानते हैं कि केवल अपने मतों को—अपने सच्चे अनुभवों तथा आविष्कार के फलों को—जन-साधारण में प्रकट करने के कारण ही किसी को कारावास भोगना पड़ा, किसी को फाँसी पर लटक जाना पड़ा, और किसी को अन्य प्रकार के कष्ट सहने पड़े। देश की, जाति की, समग्र समवेत शक्ति ने जब तक इस अत्याचार के विरुद्ध सिर नहीं उठाया तब तक यूरोप अविद्या के घोर अन्धकार में पड़ा रहा।

भारत की अवनति के भिन्न भिन्न कारणों को गिनाते समय कोई कोई यह कह बैठते हैं कि प्राचीन समय में अन्य वर्णों पर ब्राह्मणों का जो अनुचित प्रभुत्व था वह भी हमारी अवनति का एक कारण है। परन्तु ज़रा ही गौर करने से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि यह बात सच नहीं। माना कि ब्राह्मणेतर जातियों के लिए वेद पढ़ना मना है। ब्राह्मण अपने को ऊँचा तथा अन्य जातियों को नीचा बताते आये हैं। परन्तु एक मात्र सामाजिक बन्धन को छोड़ कर ऐसी और कौन सी शक्ति थी जिसके द्वारा वे लोगों को उसी प्रकार के दण्ड दे सकते थे अथवा उन पर वैसे ही अत्याचार कर सकते थे जैसे यूरोप में किये गये।

स्वयं ब्राह्मण-जाति भी जो अवनति के गढ़े में पड़ी पड़ी गोते खा रही थी। उस पर किसका दबाव था? वह किसकी अधीनता में थी? ब्राह्मण जाति उस समय भी तो जीवित थी। मुसलमान

बादशाहों के शासन-काल में भी हिन्दू राजाओं के उपदेष्टा ब्राह्मण ही थे। वीरता में क्षत्रिय चिर-प्रसिद्ध हैं सही, परन्तु उनकी नियुक्ति करने वाले अधिकांश ब्राह्मण ही थे। मुसलमानों के शासन में हिन्दू-जाति पराधीन थी सही, परन्तु हिन्दू-प्रतिभा उस समय भी गौरव-गिरि पर विद्यमान थी। बादशाहों के दरबार में हिन्दू-विद्वानों का वैसा ही आदर होता था जैसा कि मुसलमानों का। हमारा अधःपतन तो इसके पीछे हुआ।

अधःपतन का दूसरा कारण है उदासीनता। मध्ययुग में तो मनुष्य एक प्रकार क्रिया-शील भी थे। धर्मोन्माद उनमें लबालब भरा हुआ था। लड़ने के लिए वे सर्वदा तैयार रहते थे। उनके युद्ध-सम्बन्धी उत्साह पर तो कितने ही नाटक, कितने ही उपन्यास, कितनी ही कवितायें लिखी गई हैं। इस विषय में तो उन्होंने बहुत कुछ उन्नति कर ली थी। परन्तु जिस सांसारिक उन्नति से मनुष्य-जाति का कल्याण समझा जाता है उसकी आवश्यकता ने उनके चित्त में स्थान ही न पाया।

सुख दो प्रकार का है। एक सांसारिक, दूसरा आध्यात्मिक। जो आध्यात्मिक सुख चाहता है उसके लिए सांसारिक हानि-लाभ कोई चीज़ नहीं। वह जो कुछ करता है सब परमार्थ के लिए। उसके लिए वह सब कुछ करने को तैयार रहता है। परमार्थ के लिए वह युद्ध कर सकता है—यथा, यूरोप के धर्म-युद्ध (Crusades), हत्या कर सकता है—यथा, तान्त्रिक और कापालिकों की नरबलि और पशु-बलि, और भी कितने ही कुकर्म कर सकता है—यथा, वाम-मार्गियों की साधन-पद्धति। पक्षान्तर में जो मनुष्य सांसारिक सुख का अभिलाषी है वह यह समझता है कि मैं संसार में थोड़े ही दिनों के लिए आया हूँ—मैं सुख-पूर्वक रहने के लिए आया हूँ। अतएव मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने को तथा औरों को सुख पहुँचाऊँ। मुझे चाहिए कि मैं अपने को स्वाधीन समझूँ, शक्तिमान् समझूँ और मनुष्य-मात्र की भलाई के लिए, उसके सुभीते के लिए, उसके सुख के लिए, उसकी उन्नति के लिए, उसकी ज्ञान-वृद्धि के लिए, उसकी शक्ति-वृद्धि के लिए अपने हाथ-पैरों और मस्तिष्क का यथा-सम्भव उपयोग करूँ।

ऐसे भावों को मनुष्य-भाव (Humanism) कहना चाहिए। पुनरुत्थान के मूल में मानुष्य भाव का होना अत्यन्त आवश्यक है—अर्थात् जहाँ मनुष्य-भाव नहीं वहाँ पुनरुत्थान की आशा करना आकाश के सौंग पाने की आशा करना है। भगवान् की कृपा से भारतवासी जब इस मानुष्य भाव की प्रेरणा से सचेत होंगी है तभी उसकी उदासीनता नष्ट होती है। तभी उसकी आगृति का—उसके पुनरुत्थान का—सूत्रपात होता है, अन्यथा नहीं।

अवनति या अधःपतन का तीसरा कारण है—उत्साह-हीनता। जहाँ उत्साह नहीं वहाँ कर्तव्य-पालन भी नहीं और जहाँ कर्तव्य-पालन नहीं वहाँ अधःपतन हुए बिना नहीं रहता। इसके विपरीत—सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुष्करम्—यह ध्रुव सत्य है। देखिए, हज़ारों विघ्न-बाधाओं का सामना करके गैलिलियो ने सिद्ध ही कर दिया कि सूर्य अचल है और पृथ्वी उसके चारों ओर घूमती है। सुकरात ने ज़हर का प्याला पी लिया, पर अपने स्वाधीन मतों का प्रचार करना न छोड़ा। सबसे पहले जिसने पानी को यौगिक पदार्थ (Compound Substance) सिद्ध किया होगा उसे भी अपने पक्ष का समर्थन करने में बहुत कष्ट उठाना पड़ा होगा। जान वेसली, मार्टिन लूथर इत्यादि मनुष्यों को भी अपना धर्म-विचार प्रचलित करने में कितने ही यत्न करने पड़े होंगे। इँगलेंड के जन-साधारण कुछ दिनों तक रेलगाड़ी चलाने के भी विरोधी थे। इस कारण रेलगाड़ी चलाने के पक्षपातियों को भी कितनी ही आपदाओं का सामना करना पड़ा होगा। ईश्वर-

चन्द्र विद्यासागर अविरल परिश्रम करने पर भी विधवाविवाह का बाधारहित प्रचार जारी न कर पाये। राममोहन राय सती-प्रथा को कुछ ही दूर तक बन्द करा सके। दयानन्द सरस्वती ने भी अपने मत के प्रचार के लिए बहुत श्रम किया। मधुसूदन दत्त ने जिस समय पहले पहल बँगला में अतुकान्त कविता (Blank Verse) की सृष्टि की उस समय लोग उन्हें पागल तक कहने लगे। मतलब यह है कि जिसमें उत्साह की मात्रा जितनी ही ज़ियादह या कम थी, सफलता भी उसे उतनी ही मिली। विघ्न-बाधाओं का प्रतीकार करके भी मनुष्य-समाज जीवित रह सकता है। पर यदि विघ्न-बाधा के बदले उत्साह मिले तो जागृति शीघ्र और अधिक हो सकती है।

बहुत लोगों का मत है कि मनुष्य के अङ्गीकृत कार्य में जब बाधायें उपस्थित होने लगती हैं तब वह बहुधा हठी बनने लगता है—वह दुराग्रही हो जाता है। पर हठी बनना और बात है, धैर्य और दृढ़ता-पूर्वक अपने उद्दिष्ट कार्य्य की सफलता के लिए प्रयत्न करना और बात। रोम के बादशाह आगस्टस के समय में रोमन लोगों ने जो उन्नति की थी, विक्रमादित्य के समय में भारतवर्ष ने जो उन्नति हुई थी, एलिज़ाबेथ के समय में इंग्लैंड के जातीय इतिहास में जो चमक दिखाई दी थी उसका मुख्य कारण राजा की सहानुभूति थी।

औरङ्गज़ेब के पिछले दिनों से आज तक के समय को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं। एक तो वह समय जब मुग़ल-साम्राज्य का धीरे धीरे लोप हो रहा था। औरङ्गज़ेब ने अपनी अदूरदर्शिता, अविश्वास, धर्म्मान्धता आदि के कारण मुग़ल-शक्ति की जड़ ढीली कर दी थी। दक्षिण में महाराष्ट्र-शक्ति, राजपूताने में राजपूत और भरतपुर के जाट, रुहेलखण्ड के रुहेले और पञ्जाब के सिक्ख लोगों ने मुग़ल-शक्ति को छिन्न भिन्न कर डाला था। इसके सिवा यूरोप के व्यवसायियों ने भी यहाँ कुछ समय पहले ही से अपने डेरे-डण्डे जमाना शुरू कर दिया था। इसके बाद कोई दो सौ वर्ष तक भारत भिन्न भिन्न जातियों का युद्ध-क्षेत्र बना रहा। १८५३-५८ ईसवी तक सिक्ख, मरहटे, राजपूत, जाट, अँगरेज़, फ़्रेंच, पोर्तुगीज़, डच इत्यादि जातियों की कितनी ही चढ़ाइयाँ हुईं। वह समय भारतवर्ष के लिए सचमुच ही बड़ा सङ्कटदायी था। हिमालय से लेकर कुमारिका अन्तरीप तक युद्ध-विग्रह, षड्यन्त्र, अशान्ति, स्वार्थ-सिद्धि के सिवा और कुछ न देख पड़ता था। जातीय उन्नति-अवनति, धर्म, विद्या आदि किसी की ओर किसी का ध्यान न था। यह उस समय के दूसरे भाग की बात हुई। अब तीसरे भाग का वर्णन सुनिए—

सिपाही-विद्रोह के बाद भारतवर्ष में शान्ति स्थापित हुई। भारतवर्ष में ब्रिटिश शासन की जड़ धीरे धीरे जम गई। प्रजा-शासन, प्रजा-पालन, न्याय निरूपण के साथ साथ प्रजा की शिक्षा का भार भी ब्रिटिश जाति ने ग्रहण किया। तब प्रश्न उपस्थित हुआ कि शिक्षा-पद्धति में कुछ परिवर्तन होना चाहिए अथवा नहीं। इस पर बहुत कुछ वाद-विवाद के पीछे स्थिर हुआ कि प्रचलित अरबी, फ़ारसी, संस्कृत की जगह अँगरेज़ी में शिक्षा दी जाय। उस समय से लेकर आज तक अँगरेज़ी ढँग से भारतवासी शिक्षित हो रहे हैं। आधुनिक भारतीय जागृति का—उसके पुनरुत्थान का—प्रथम सूत्रपात यहीं से हुआ। इसके पश्चात् आज तक भिन्न भिन्न विषय में किस तरह इस जागृति का विकास हो रहा है, यह कौन कौन रूप धारण कर रहा है, इससे देश-वासियों की शिक्षा, आचार-व्यवहार आदि में कौन कौन परिवर्तन हुए अथवा हो रहे हैं—ये बातें विचार करने योग्य हैं। भारतवर्ष में अँगरेज़ी शिक्षा कोई साठ-सत्तर वर्ष से ही हो रही है, पर इतने ही थोड़े समय में भारत के

एक पंजाबी रेजिमेंट फ्लैंडर्स (बेलजियम) में मार्च कर रही है।

युद्ध-स्थल में सिक्खों की एक कम्पनी।
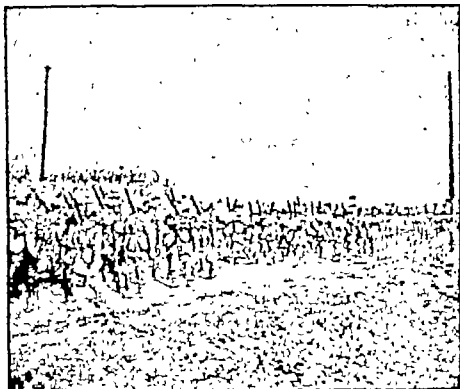
इंडियन प्रेस, प्रयाग।

इतिहास में युगान्तर उपस्थित हो गया है। इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

अँगरेज़ी शिक्षा के प्रचार से भारतवासियों की विचार-प्रणाली के ऊपर नवीन आलोक पड़ा। इसका फल यह हुआ कि लोग पुराने विचारों को ज्यों का त्यों मानने के लिए तैयार न रहने लगे। सभी बातों में, चाहे भली हो चाहे बुरी, अपनी विचार-शक्ति से काम लेना लोग अच्छा समझने लगे। मिल, स्पेन्सर, बेकन, डारविन की विचार-प्रणाली का अनुकरण करने लगे। जान ब्राइट, बर्क, पिट, फ़ाक्स के राजनैतिक विचारों से उन्होंने कितने ही उदार-भाव ग्रहण किये। नियम-बद्ध शासन-व्यवस्था (Constitution) सर्वथा विदेशी वस्तु है। यह अँगरेज़ी शिक्षा ही की बदौलत उपलब्ध हुई है। अब तक भारतवासी "दिल्लीश्वर" तथा "जगदीश्वर" का एक ही अर्थ समझते थे। अब उनको समझाया गया है कि राजा प्रजा के हित के लिए है, उससे सेवा लेने के लिए नहीं।

यहाँ पर एक बात और कह देना उचित है। वह यह कि भारतवासी अब धन से ज्ञान को श्रेष्ठ समझने लगे हैं। इससे पहले शक्ति, धन, प्रभुत्व का ही आदर था। बड़े आदमी वे कहलाते थे जो अपने धन तथा प्रभुत्व के बल से कुछ मनुष्यों पर रोब जमाये हुए थे। नवाबी ठाट-बाट, वेश्याओं का नाच-मुजरा, बुलबुलों की लड़ाई, चपरासी, अरदली इत्यादि की विपुलता, विवाह आदि में फ़िज़ूलख़र्ची, ज़री के कपड़े और मख़मल और कमख़ाब के अँगरखे को ही लोग मनुष्य-जीवन के सार पदार्थ समझते थे। मूर्ख को उसकी मूर्खता सुझानेवाला कोई न था। फल यह हुआ कि मुसलमानों की अवनति का आरम्भ हो गया। बाबर और हुमायूं की अपूर्व वीरता, अकबर की समदर्शिता और गुणग्राहिता, फ़िरदौसी, अबुल-फ़ज़ल इत्यादि का पाण्डित्य इस समय लुप्त-प्राय था। केवल विलासिता, धन तथा प्रभुत्व का गर्व और व्यसन चमक रहे थे। नैतिक अधःपतन से ही जाति का अधःपतन होता है। इतिहास इस बात को डङ्के की चोट कह रहा है। मुसलमानों के संसर्ग से हिन्दुओं का आदर्श भी बहुत गिर गया।

ऐसी अवस्था में समुद्र-पार से स्वाधीनता की भनक इस देश में गूँजने लगी। गद्य, पद्य, नाटक, चित्र-विद्या, दर्शन, इतिहास, स्थापत्य इत्यादि प्रत्येक विषय में हम परिवर्तन देखते हैं। राज्य-शासन तथा राजनैतिक विषयों में हम नये भावों से परिचित हो रहे हैं। इसी तरह सामाजिक तथा धार्मिक विषयों में भी नये भावों का सञ्चार हो रहा है।

ग्राम-संस्था (Village community) के सदृश न मालूम कितनी पुरानी बातें, पुरानी संस्थायें, पुरानी रीति-रस्में बदल गईं और कितनी बदलती जा रही हैं। ये परिवर्तन विचार करने और उनसे शिक्षा ग्रहण करने योग्य हैं।

सुरेन्द्रनाथसिंह

भविष्यद्वाणी।

(१)

उन्नति का आमुख जीर्ण हो ही जावेगा,
　　निश्चय ही वह बाग़ कभी भारी पावेगा।
वह उन्नति के बिना सभी कुछ ढह जावेंगे,
　　उनके निष्ठुर निगड़ सहज ही कट जावेंगे।

(२)

मन-शक्ति-साम्राज्य विश्व में हो जावेगा,
　　अन्ध-भक्तिमागार कहीं न स्थिति पावेगा।
हैं ये तीनों एक — ईश, स्वातन्त्र्य, समता —
　　ज्ञान नहीं, तो कभी सिद्ध होगी यह ममता।

—सत्य।

इस प्रान्त का शिक्षाविभाग ही नहीं, स्वयं सर जेम्स मेस्टन भी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि इस प्रान्त में प्रारम्भिक शिक्षा की दशा अत्यन्त हीन है। यदि हिन्दी-प्रचार को उत्तेजना दी जाय तो बहुत शीघ्र यह दशा सुधर जाय। उर्दू-फ़ारसी बहुत समय लेती है, हिन्दी कम। अतएव प्रारम्भिक शिक्षा का यथेष्ट विस्तार तब तक न होगा जब तक हिन्दी को अधिक आश्रय न दिया जायगा।

कायस्थ-पाठशाला कालेज (प्रयाग) के अध्यक्ष श्रीयुत सञ्जीव राव, एम० ए०, ने लखनऊ की शिक्षा-परिषद् में इस विषय पर बहुत अच्छा भाषण किया था। उसमें आपने जो कुछ कहा था उससे भी हमारी बात की पुष्टि होती है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। हिन्दी की जगह हिन्दुस्तानी (उर्दू) का अदालतों में प्रवेश होना ही इस प्रकार की शिक्षा-वृद्धि में रुकावट का मूल कारण है। द्रव्य की कमी भी इसका कारण है, पर वह गौण है।

५—गवर्नमेंट की प्रकाशित कृषि-विषयक पुस्तकें।

कृषि-विद्या सिखाने के लिए पूना में एक बहुत बड़ा कालेज है। कृषिविषयक खोज भी वहाँ होती है। इस काम के लिए वहाँ कई एक नामी नामी विद्वान् नियत हैं। गवर्नमेंट आव् इंडिया को खेती के मामलों में सलाह देने के लिए वहाँ एक अलग अफ़सर भी है। ये सब लोग, तथा अन्य विद्वान् भी, समय समय पर, खेती की भिन्न भिन्न बातों पर पुस्तकें लिखा करते हैं। इन्हें गवर्नमेंट प्रकाशित करती है। हर तीसरे महीने एक जर्नल भी वहाँ से निकलता है। इन सब लेखों और पुस्तकों में खेती और तत्सम्बन्धिनी अनेकानेक बातों का वर्णन रहता है। नये नये तत्त्वों और नई नई खोजों का विवरण भी प्रकाशित होता है। पर यह समग्र-साहित्य अँगरेज़ी भाषा में निकलता है। माना, हमारे पूसा वाले, पूना वाले, नागपुर आदि कालेजवाले अँगरेज़ी के एम० ए०, बी० ए० हैं। अच्छा, ये सब पुस्तकें निकलती किस के लिए हैं? इनका उद्देश क्या है? यदि इनके प्रकाशन का उद्देश कालेजों और अफ़सरों को खेती की शिक्षा और खेती की उन्नति के उपायों से अभिज्ञ करना है तो इनका प्रकाशन प्रायः व्यर्थ ही समझिए। कृषि-शास्त्र के नये नये तत्त्वों का जानना शिक्षित छात्रों और कृषि के महकमे के बड़े बड़े अँगरेज़ कर्मचारियों के लिए भी आवश्यक है। यदि वे अपने काम से सम्बन्ध रखने वाली बातों और नवीन आविष्कारों से परिचित न होंगे तो वे अपना काम अच्छी तरह न कर सकेंगे और अपने ज्ञान की उन्नति के लिए उन्हें सुभीता भी न प्राप्त होगा। पर इस कालेज की, इस कृषि-गवेषणालय की, और इस कृषि विज्ञान-वेत्ता सलाहकार की, स्थापना और नियुक्ति इसी लिए नहीं। इनकी सृष्टि का सब से बड़ा उद्देश देश में कृषि की दशा सुधारने के उपाय बताने और नये नये तत्त्वों की ख़बर किसानों तथा सर्वसाधारण जनों तक पहुँचाने के लिए है। यह बात कालेज में छात्रों को कृषि-विद्या सिखाने और पुस्तकादि द्वारा कृषि-विषयक ज्ञान का प्रचार करने ही से हो सकती है। अँगरेज़ी जानने वालों और कृषि के महकमे के कर्मचारियों की ज्ञान वृद्धि के साधक द्वार हैं। पर बेचारे अपढ़ किसानों के लिए भी कुछ सुभीता होना चाहिए या नहीं?

पूना की एक बुलेटिन इस समय हमारे सामने है। उसमें हरी खाद के उपयोग और प्रयोग आदि का वर्णन है। जनवरी १९ के जर्नल की एक कापी भी सामने है। उसमें शक्कर के व्यवसाय पर एक अच्छा लेख है। प्रार्थना यह है कि इन लेखों से कितने रोज़गारियों ने लाभ उठाया होगा? क्यों न गवर्नमेंट कृपा करके इस तरह की बातों का संक्षिप्त वर्णन देश-भाषाओं में प्रकाशित करे? ऐसी पुस्तकें यदि मुफ़्त न बाँटी जायँ तो देहात में अनेक पटवारी और प्राथमिक मदरसों के मुदर्रिसों को तो मुफ़्त दी जायँ और उनसे हिदायत की जाय कि वे उनमें प्रकाशित बातें अपढ़ किसानों को पढ़ कर समझा दें। यदि मूल्य ही लेना है तो लागत के दाम लेकर ये पुस्तकें बेची जायँ। तभी इनका प्रकाशन सफल होगा और तभी इनके द्वारा खेती आदि की उन्नति करने का मौक़ा किसानों को मिलेगा। केवल अँगरेज़ी में बेशक़ीमती जर्नल और बुलेटिन प्रकाशित करने से बहुत ही कम लाभ की सम्भावना है।

प्रत्येक सूबे से कृषि-विषयक जो जर्नल, रिपोर्टें और बुलेटिन निकलते हैं वे सब भी प्रान्तीय भाषाओं में भी निकलने चाहिए—"गुलगुल मशाइख़" की भाषा में नहीं, बोलचाल की भाषा में।

भारतीय सवार फ्रांस के गाँव से मार्च करते हुए आ रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

पर किये गये नोटों से मालूम होता है कि यह फ़रमान शाही दफ़्तर के चार महकमों में पेश हुआ था— दीवाने-इशराफ़, दीवाने-ख़ालसा, दीवाने-वज़ारत और दीवाने-रसालत। यह फ़रमान पटना के चौधरी बहादुरजी के पास है। उन्हीं से यह प्राप्त हुआ था।

फ़रमान के मज़मून की कापी नीचे दी जाती है।

اسمه اعلی و حمده اولی

الواثق بتائید الرحمن ضیاء الدنیا والدین ابوالظفر سلطان غیاث الدین

یا ایها الذین آمنوا اطیعوا الله و اطیعوا الرسول و اولی الامر منکم

ابوالظفر غیاث الدین محمد بادشاه غازی سنه احد

بعرض اشرف اعلی رسید چون که سیادت و نقابت پناه نجابت و صفوت دستگاه حقایق آگاه خواجه حیدر

موازی چهار جریب زمین سکنی در بلده مفاخره دارالخلافت دهلی در قبض و تصرف

مالکانه خود دارد و با اولاد صلبی خویش در انجا آباد است درینولا اراضی مذکوره درون احاطه

قلعه ظفر اثر مضبوط گشته لهذا حکم جهانمطاع آفتاب شعاع شرف نفاذ یافت که اراضی مسطوره از

محل قدیم بدستور سابق در قبض و تصرف مشارالیه مقرر و مسلم شد تا که مومی الیه با فرزندان

موطن مستقل دانسته بشت بپشت و ظهر بظهر و بطن ببطن متصل آباد باشد و احدی بعلت

اسه ل محال و بجمیع تکالیف دیوانی و مطالبات سلطانی مزاحمت نرساند و هر قومی را که او

آباد سازد ارباب امور سلطنة و کاربرداران ریاستهای عدد از عهده آنها معاف دارند الرمست

که متصدیان حال و استقبال در استمرار این حکم عالی تخلف و انحراف نورزند تحریر

فی السابع شعبان المعظم سنه الرابع جلوس مطابق سنه احد و سبعین و ستمایه هجری

फ़रमान की पीठ पर यह मज़मून है—

مقررا شرح ضمن بموجب التماس سیادت و نقابت پناه حقایق و معارف آگاه خواجه حیدر

موازی چهار جریب زمین سکنی در قبض و تصرف مالکانه این دعاگوی است درینولا در احاطه

قلعه ظفر مضبوط گشته حکم جهانمطاع شرف نگار یافت که اراضی مذکوره از محل قدیم بدستور

سابق در قبض و تصرف مشارالیه با فرزندان او بحال دارند و درین باب فرمان قلمی سازند

भारतीय और अँगरेज़ी सैनिक मैदान में मिल जुल कर बैठे हुए आराम कर रहे हैं।

कमाण्डर साहब एक गोरखा बटालियन का मुआइना कर रहे हैं।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

काग़ज़ अत्यन्त मोटा और साफ़ स्याही की छपाई बहुत ही भली मालूम होती है। इसमें भी वर्धमान-महेश का एक सुन्दर चित्र है। इसकी भी चित्रावलि बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा के कर-कौशल की कहानी कह रही है। पुस्तकों पर मूल्य नहीं लिखा। चित्रकार महाशय का पता है—43/3, Corporation Street, Calcutta.

※

३—हरिदास एंड कम्पनी की पुस्तकें। इस कम्पनी ने तीन पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—सिराजुद्दौला। इसकी पृष्ठ-संख्या ११० और मूल्य ११) है। यह बँगला "बङ्गेर शेष नवाब" नामक पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक—पण्डित कुञ्जबिहारी लाल चतुर्वेदी हैं। हरिदास एंड कम्पनी अब तक भाषा विविध ही पुस्तकें प्रकाशित करती रही है। पर अब उसने अपनी पुस्तकों की शोभा और समृद्धि चित्रों द्वारा बढ़ाने का भी उपक्रम किया है। प्रस्तुत पुस्तक में कई सुन्दर सुन्दर हाफ़टोन चित्र हैं। उनमें से एक रङ्गीन भी है। पुस्तक ऐतिहासिक है, पर इतिहास के साथ ही साथ इसमें हृदयहारिणी अन्य घटनाओं की मात्रा भी यथेष्ट है। इसे पढ़ने से इतिहास का भी आनन्द आता है और उपन्यास का भी। पुस्तक में सिराजुद्दौला और तत्कालीन अँगरेज़ी राज्य की अनेक ऐसी बातें हैं जिनको पढ़ते समय कभी तो हर्ष, कभी क्रोध, कभी घृणा और कभी शोक के विकार हृदय में जागृत हो उठते हैं। हिन्दी में यह बहुत अच्छी पुस्तक प्रकाशित हुई। अनुवादक महाशय को चाहिए कि इसके अगले संस्करण में मूल बँगला-पुस्तक के लेखक का नाम भी देदें। पुस्तक का नाम देना ही यथेष्ट नहीं। यद्यपि आपकी पुस्तक बँगला का अविकल अनुवाद नहीं—यद्यपि आपने मज़मून को घट बढ़ कर और उसमें उचित संशोधन करके अनुवाद के महत्त्व को बढ़ा दिया है—तथापि यह ऐसी सुन्दर पुस्तक हमें बँगला-पुस्तक के बदौलत ही की बदौलत पढ़ने को मिली है। अतएव उसके नाम-कीर्तन की आवश्यकता है।

दूसरी पुस्तक का नाम है—प्राचीन कीर्त्ति। अँगरेज़ी में एक पुस्तक है—Seven Wonders of the World उसकी सहायता से अन्य भाषाओं में भी इस तरह की पुस्तकें बन गई हैं। हिन्दी में ऐसी पुस्तक न थी, सो हो गई। इसके सङ्कलनकर्त्ता पण्डित शिवनारायण द्विवेदी हैं। इसमें मिस्र के स्तूपाकार मीनारों और बाबुल के लटकते हुए बाग़ आदि सात विख्यात आश्चर्यों के सिवा चीन के शीशमहल और आगरे के ताजमहल आदि चार और भी आश्चर्यों का वर्णन है। इन सब के चित्र भी दिये गये हैं। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ८० और मूल्य आठ आने है। विषय-सूची में एक भूल रह गई है। पहले आश्चर्य का नाम—"मिस्र के प्राचीन स्तूप"—के बदले—मिस्र या ईजिप्ट के प्राचीन स्तूप—होना चाहिए।

तीसरी पुस्तक का नाम है—पत्र-पुष्प। इसकी पृष्ठ-संख्या ९१ और मूल्य ।=) आने है। इसे पण्डित नर्म्मदाप्रसाद मिश्र ने लिखा है। "यह नव-युवकों के लिए है"। इसमें १० चिट्ठियाँ हैं। सरस्वती की किसी पूर्व संख्या में पत्रोपहार नामक पुस्तक का परिचय प्रकाशित हो चुका है। वही सिलसिला इसमें भी जारी रक्खा गया है। इसमें लिखी गई बातें विद्यार्थियों के बहुत हित की हैं। "पत्रों में पिता की ओर से पुत्र को जो बातें लिखी गई हैं वे नियन्त्रण पुत्र को परित्राण + + + + बनाने में + + + सहायक हो सकती हैं"।

तीनों पुस्तकें अच्छे काग़ज़ पर, अच्छे टाइप में, छपी हैं। टाइटिल पेज बहुत ही मनोरम है। मिलने का पता—हरिदास एंड कम्पनी, २०१ हरिसन रोड, कलकत्ता।

※

४—राष्ट्रगौरव की पुस्तकें। श्रीयुत नारायण भास्कर राव पारसी मराठी के नामी लेखक हैं। आप कोई १० वर्ष से बड़े महत्त्वपूर्ण नई नई ऐतिहासिक पुस्तकें लिख लिख कर अपनी मातृभाषा मराठी के साहित्य का भाण्डार भर रहे हैं। आपने—भारतीय साम्राज्य—नाम का एक बहुत बड़ा ग्रन्थ २२ जिल्दों में लिखा है। उनमें से ११ जिल्दें छप कर प्रकाशित हो गई हैं, ११ अभी छपने को हैं। आपकी गम्भीर गवेषणा, अनवरत परिश्रम और महती मननशीलता देख कर आश्चर्य और आनन्द दोनों होते हैं। आपने अच्छी अच्छी दो पुस्तकें और भी मराठी में लिखी हैं। वे छप रही हैं, शीघ्र ही निकलेंगी। तब तक आपने मराठी न जानने वालों के सुभीते के लिए इन दोनों पुस्तकों के अँगरेज़ी-अनुवाद प्रकाशित कर दिये हैं। आपने इन दोनों अनु-

अनेक उपयोगी विषयों पर कजरी, दादरा, चौताला आदि छन्दों के द्वारा उपदेश-प्रदान किया गया है। कविता साधारण है। पर देहातियों के याद करने और गाने लायक़ है। पुस्तक मतलब की है। छपाई प्रशंसनीय है।

※

१५—राष्ट्रीयवीणा। आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या १२१, मूल्य आठ आने। कानपुर के प्रसिद्ध पत्र "प्रताप" के १९१७ और १८ के अङ्कों में देशभक्तिविषयक जितनी अच्छी अच्छी कवितायें निकली हैं उन्हीं सब का संग्रह इसमें है। इसका सम्पादन पण्डित शिवनारायण मिश्र ने और प्रकाशन नवजीवन-सभा, कानपुर, ने किया है। इस सभा का खोला हुआ एक पुस्तकालय कानपुर में है। अब इसने पुस्तक-प्रकाशन का काम भी आरम्भ कर दिया है। यह बहुत अच्छा हुआ। आशा है, यह सभा उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित करेगी। प्रस्तुत पुस्तक अवश्य ही अवलोकनीय है। इसमें कोई एक सौ कवितायें हैं। कविताओं के भाव प्रायः सुन्दर हैं। कोई कोई कविता तो बहुत ही बढ़िया है। ऐसी ऐसी कविताओं का निकलना हिन्दी के सौभाग्य का सूचक है। इस प्रकार की कविताओं के संग्रह का खूब प्रचार होना चाहिए।

※

१६—खाद की कहानी। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ३८, मूल्य ४ आने, प्रकाशक—पण्डित चक्रराम उपाध्याय, रायपुर पोस्ट, देहरादून, से प्राप्य। सरकारी रिपोर्टों के आधार पर इस पुस्तक की रचना हुई है। खाद की खेती करने वालों के काम की है।

※

१७—सन्तानपालन। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ३९, मूल्य ४ आने, अनुवादक—पण्डित शिवदीलाल काला, प्राप्ति-स्थान—पेंच आफ़िस, मुरादाबाद। अर्सा हुए पूने से मराठी भाषा में एक पुस्तक निकली है। उसके अँगरेज़ी अनुवाद का नाम है—Rearing of Children. यह पुस्तक उसी का हिन्दी-रूप है। इसमें बच्चों के पालने-पोसने की विधि है। यह विधि हुई पूने की ही लिखित की हुई है। पुस्तक काम की है।

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी मिल गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) जैन-सिद्धान्त-विद्यालय, मुरैना, की पञ्चम वार्षिक रिपोर्ट—प्रकाशक, श्रीयुत गोपालदास बरैया, मुरैना।

(२) गो-महिमा-प्रकाश, अठारहवाँ—रत्नाकर, पण्डित गोविन्दराम शर्म्मा, रोपड़।

(३) सम्मेदशिखर-सम्पत्ति—प्रकाशक, श्रीधर्मानन्द जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अम्बाला शहर।

(४) कर्णावत-वैश्योत्पत्ति-भास्कर—लेखक, बाबू भागीरथ कर्णावत वैश्य, गोरखपुर।

(५) विलाप-चिन्ता—सम्पादक, बाबू मनीराम कपूर, इटिया, कानपुर।

(६) वृन्दावन के आचार्य्य-कुल-ब्रह्मचर्य्याश्रम की रिपोर्ट—प्रकाशक, गो० दामोदराचार्य्य, वृन्दावन।

(७) प्रताप-यश-दर्पण—लेखक, पं० मनीलाल मिश्र, चौक, कानपुर।

(८) श्रीरामलीला का स्वाँग—लेखक, पण्डित रमादयाल मिश्र, काशी।

(९) काशी बुक, नं० १ से ४ तक
(१०) हिन्दी प्राइमर
(११) हिन्दी की क्रमिक पुस्तकें नं० १ से ५ तक
(१२) भूगोल हिन्दुस्तान
(१३) चित्तविलास, भाग १
— प्रेषक, लालचन्दीलाल एंड सन्स, लाहौर।

(१४) Soap Making Industry—By U. K. Soman, Soap-Factory, Mehkar, Berar.

(१५) होली में तमाशा—लेखक, बलदेव प्रसाद, गया।

(१६) सूर्यवंश कान्यकुब्ज-सम्मेलन (जबलपुर) की कार्यवाही—लेखक, पण्डित नर्मदाप्रसाद मिश्र, जबलपुर।

(१७) सृष्टि का रहस्य—लेखक, भाई हरदत्तसिंह अधिकारी, धौला, होशियारपुर।

(१८) आनन्द-मङ्गल—लेखक, पं० कृष्णानन्द शर्म्मा, धौला, होशियारपुर।

सिर्फ २॥।) में रेलवे लीवर वाच मय चेन और साथ में ६ अत्युपयोगी दवाइयां मुफ्त भेंट !!!

ग्राहकगण ! आपको मालूम है कि इस समय युद्ध के कारण स्विस की घड़ियां दूने दाम से बिक रही हैं किंतु हमारा सीधा कारखाने से एग्रीमेंट होने के कारण पहिले दाम पर माल बराबर आ रहा है ऐसी घड़ी और जगह से इस समय ६ में भी न मिलेगी। इसके अच्छे व सस्ते होने का सबूत यह है कि यह घड़ियां बड़े बड़े शहरों को हमारे यहां से थोक बंद हो जाती हैं। यह घड़ी स्विस के सब से नामी अमुक कारखाने की बनी है जिसकी गारंटी हम सिर्फ दो साल की देते हैं किंतु संभाल कर रखने से यह दस बीस साल चल सकती है। यह घड़ी बहुत खूबसूरत बनावट मजबूत साफ और ३६ घंटा की चाभी वाली है। मँगाने में जल्दी कीजिये, आगे दाम बहुत बढ़ जायगा। इसके साथ निम्नलिखित ६ दवायें १) मूल्य की प्रयाग-निवासी प्रसिद्ध वैद्य पं० रामगोपाल शर्म्मा की बनाई ६ मास तक बिना मूल्य देंगे। ऐसा अवसर न चूकिये। यह औषधियां हर एक गृहस्थ के घर में रखना चाहिये। हर एक दवा का विज्ञापन-पत्र साथ है।
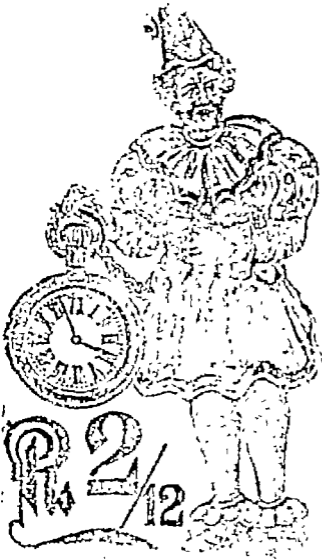
१ जीवनदाता यह ४० रोगों की दवा है, २ अमृतचूर्ण अत्यन्त जायकेदार हाज़मे की दवा, ३ नयनामृत सुर्मा समस्त नेत्र-रोग-नाशक, ४ बाल-रसायन छोटे बालकों के प्रत्येक रोग को खोता है, ५ सुगंधित दंत-मंजन, ६ दादनाशक।

(भेंट) घड़ी व औषधियों पर डाकखर्च ।) वापी १) में घर बैठे पारसल मिलेगा।

पता—व्रजवासीलाल वैश्य प्रो० नावेलटी एजन्सी (बी 13) ब्रांच

बलदेव बिल्डिंग, झांसी Jhansi U. P.

पुष्पाञ्जलि ।

(प्रथम भाग)

साहित्य ग्रंथ

पंडित श्यामविहारी मिश्र और पंडित शुकदेव-विहारी मिश्र को हिन्दी-संसार भले प्रकार जानता है। उन्हीं महाशयों के बढ़िया लेखों का यह संग्रह है। इसमें चार सौ से भी अधिक पेज हैं। तीन चित्र भी दिये गये हैं; जिल्द भी बँधी हुई है; तो भी मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया।

समृद्धि ।

कोई मनुष्य ऐसा न मिलेगा जिसे समृद्धि की चाह न हो। किन्तु इच्छा रखते हुए भी समृद्धि-साधन का उपाय न जानने के कारण कितने ही लोग सफल-मनोरथ न होकर भाग्य को दोष देते हैं और श्रीवृद्धि के प्रयत्न से विमुख होकर कष्ट पाते हैं। जो लोग भाग्य के भरोसे रह कर दरिद्रता का दुःख झेलते हुए भी समृद्धि-प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग नहीं करते उनके लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक में उदाहरण के लिए उन अनेक उद्योग-शील, निराश्रय कर्मवीरों की संक्षिप्त जीवनी दी गई है जो लोग स्वा-वलम्बन-पूर्वक व्यवसाय करके अपनी दरिद्रता दूर कर करोड़पति हो गये हैं। इतनी बढ़िया पुस्तक का मूल्य सजिल्द होने पर भी केवल १।) सवा रुपया रक्खा गया है।

विनोद-वैचित्र्य ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग से निकलने वाली हरिदास-माला के उप-सम्पादक पण्डित सोमेश्वरदत्त शुक्ल, बी० ए० को हिन्दी-भाषा-भाषी भले प्रकार जानते हैं। यह पुस्तक उक्त पण्डित जी की लिखी हुई है। २१ विषयों पर बढ़िया बढ़िया लेख लिख कर उन्होंने इसे २४५ पेज में सजिल्द तैयार किया है। मूल्य १) एक रुपया।

सचित्र

अद्भुत कथा ।

यह पुस्तक बाबू श्यामाचरण दे-प्रणीत बँगला के 'अद्भुतउपकथा' नामक पुस्तक का अनुवाद है। इसमें ११ कहानियाँ हैं। बालक-बालिका एवं सभी मनुष्य स्वभावतः क़िस्से-कहानी सुनने और पढ़ने के अनुरागी होते हैं। इस पुस्तक में ऐसी विचित्र विचित्र हृदया-कर्षक और मनोरञ्जक कहानियाँ हैं जिन्हें सब लोग बड़े चाव से सुनें और पढ़ेंगे। साथ ही साथ उन्हें अनेक तरह की शिक्षा भी मिलेगी। इसमें कहानियों से सम्बन्ध रखने वाले पाँच चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य ॥।) बारह आने।

राजर्षि ।

मूल्य ॥।≈) चौदह आना

हिन्दी-अनुरागियों को यह सुन कर विशेष हर्ष होगा कि श्रीयुत बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के "बँगला राजर्षि" उपन्यास का अनुवाद हिन्दी में दुबारा छप-कर तैयार है। इस ऐतिहासिक उपन्यास के पढ़ने से बुरी वासना चित्त से दूर होती है, प्रेम का निरवलम्ब भाव हृदय में उमड़ पड़ता है। हिंसा-द्वेष की बातों पर घृणा होने लगती है और ऊँचे ऊँचे खयाल में दिमाग़ भर जाता है। इस उपन्यास को स्त्री-पुरुष दोनों निःसङ्कोच भाव से पढ़ सकते हैं और इसके महान उद्देश्य को भली-भाँति समझ सकते हैं।

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

बालमनुस्मृति।

४—'मनुस्मृति' में से उत्तम उत्तम श्लोकों को छाँट छाँट कर उनका सरल हिन्दी में अनुवाद लिखा गया है। मूल्य।)

बालनीतिमाला।

५—शुक्रनीति, विदुरनीति, चाणक्यनीति और कणिकनीति का संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद है। इसकी भाषा बालकों और स्त्रियों तक के समझने लायक है। मूल्य ॥)

बालभागवत—पहला भाग।

६—इसमें 'श्रीमद्भागवत' की कथाओं का सार लिखा गया है। इसकी कथायें बड़ी रोचक, बड़ी शिक्षा-दायक और भक्ति, रस से भरी हुई हैं। मूल्य ॥) आने।

बालभागवत—दूसरा भाग।

अर्थात्

श्रीकृष्णलीला

७—श्रीकृष्ण के प्रेमियों को यह बालभागवत का दूसरा भाग ज़रूर पढ़ना चाहिए। इसमें, श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण भगवान् की अनेक लीलाओं की कथायें लिखी गई हैं। मूल्य केवल ॥)

बालगीता।

८—श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के मुखारविन्द से निकले हुए मधुपदेश को कौन हिन्दू न पढ़ना चाहेगा? अपने आत्मा को पवित्र और पवित्र बनाने के लिए यह "बालगीता" ज़रूर पढ़नी चाहिए। इसमें पूरी गीता का सार बड़ी सरल भाषा में लिखा गया है। मूल्य ॥)

बालोपदेश।

९—यह पुस्तक बालकों को ही नहीं युवा, वृद्ध, वनिता सभी को उपयोगी तथा चतुर, धर्मात्मा और शीलसम्पन्न बनाने वाली है। राजा भर्तृहरि के निर्मल अन्तःकरण में जब संसार से वैराग्य उत्पन्न हुआ था तब उन्होंने एकदम भरा पूरा राज-पाट छोड़ कर संन्यास ले लिया था। उस परमानन्दमयी अवस्था में उन्होंने वैराग्य और नीति-सम्बन्धी दो शतक बनाये थे। इस 'बालोपदेश' में उन्हीं भर्तृहरि-कृत नीतिशतक का पूरा और वैराग्यशतक का संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद छापा गया है। यह पुस्तक स्कूलों में बालकों के पढ़ने के लिए बड़ी उपयोगी है। मूल्य।)

बालआरब्योपन्यास (सचित्र) चारों भाग।

१०-१३—दिलचस्प क़िस्से कहानियों के उपन्यासों में अरेबियन नाइट्स का नम्बर सबसे पहला है। इनमें से कुछ अयोग्य कहानियों को निकाल कर, यह विशुद्ध संस्करण निकाला गया है, इस लिए, अब, यह किताब क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने लायक है। इसके पढ़ने से हिन्दी-भाषा का प्रचार होगा, मनोरञ्जन होगा, घर बैठे दुनिया की सैर होगी, बुद्धि और विचार-शक्ति बढ़ेगी, चतुराई सीखने में आवेगी, साहस और हिम्मत बढ़ेगी। मूल्य प्रत्येक भाग का ॥)

बालपञ्चतंत्र।

१४—इसके पाँचों तंत्रों में बड़ी मनोरञ्जक कहानियों के द्वारा सरल रीति पर नीति की शिक्षा दी गई है। बालक-बालिकायें इसकी मनोरंजक कहानियों को बड़े चाव से पढ़ कर नीति की शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं। मूल्य केवल ॥) चार आने।

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का साररूप यह "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ॥) आठ आने।

बाल-कालिदास ।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।) चार आने है।

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर विरचित "सीतार-वनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-कृत गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-भरी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ॥)

सचित्र

आदर्शमहिला ।

यों तो स्त्री-शिक्षा की अब तक अनेक पुस्तकें बन चुकी हैं। पर यह पुस्तक स्त्री-शिक्षा के लिए आदर्श-स्वरूप है। श्रीपण्डित भवनचन्द्र जी मुखोपाध्याय ने बंगला भाषा में एक पुस्तक, 'आदर्शमहिला' लिखी है। उसी पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें पाँच आख्यान हैं—उनमें १—सीता, २—सावित्री, ३—दमयन्ती, ४—शैव्या, ५—चिन्ता—इन पाँच देवियों के जीवन-घटनाओं का जीता जागता वर्णन अनोखे ढंग पर लिखा गया है। पुस्तक डिमाई साईज़ के पौने तीन सौ पेज़ों में समाप्त हुई है। तेरह बढ़िया चित्र भी दिये गये हैं जिन में कई चित्र रंगीन हैं। जिल्द भी बढ़िया बाँधी गई है। इतने पर भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

षोडशी ।

बंगला के प्रसिद्ध आख्यायिकालेखक श्रीयुत प्रभातकुमार बाबू की प्रभावशालिनी लेखनी से लिखी गई १६ आख्यायिकाओं का यह संग्रह बंगला में बड़ा प्रसिद्ध है। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। ये कहानियाँ हिन्दी में एकदम नई हैं और पढ़ने योग्य हैं। मूल्य ३२७ पृष्ठ की पोथी का १)

बालभोजप्रबन्ध ।

२३—राजा भोज का विद्याप्रेम किसी से छिपा नहीं है। संस्कृत भाषा के "भोजप्रबन्ध" नामक ग्रन्थ में राजा भोज के संस्कृत-विद्याप्रेम-सम्बन्धी अनेक आख्यान लिखे हुए हैं। वे बड़े मनोरञ्जक और शिक्षादायक हैं। उसी भोजप्रबन्ध का साररूप यह "बाल-भोजप्रबन्ध" छपकर तैयार हो गया। सभी हिन्दी-प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।।) आठ आने।

बाल-कालिदास ।

या

कालिदास की कहावतें

२४—इस पुस्तक में महाकवि कालिदास के सब ग्रन्थों से उनकी चुनी हुई उत्तम कहावतों का संग्रह किया गया है। ऊपर श्लोक दे कर नीचे उनका अर्थ और भावार्थ हिन्दी में किया गया है। कालिदास की कहावतें बड़ी अनमोल हैं। उनमें सामाजिक, नैतिक और प्राकृतिक 'सत्यों' का बड़ी खूबी के साथ वर्णन किया गया है। इस पुस्तक की उक्तियाँ बच्चों को याद करा देने से वे चतुर बनेंगे और समय समय पर उन्हें वे काम देती रहेंगी। मूल्य केवल ।) चार आने है।

सीतावनवास ।

सुप्रसिद्ध पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित "सीतार-बनवास" नामक पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। इस पुस्तक में श्रीरामचन्द्रजी-द्वारा गर्भवती सीताजी के परित्याग की विस्तारपूर्वक कथा बड़ी ही रोचक और करुणारस-मयी भाषा में लिखी गई है। इसे पढ़ सुन कर आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और पाषाण-हृदय भी मोम की तरह द्रवीभूत हो जाता है। मूल्य ।।)

सचित्र

आदर्शमहिला ।

यों तो स्त्री-शिक्षा की अब तक अनेक पुस्तकें बन चुकी हैं। पर यह पुस्तक स्त्री-शिक्षा के लिए आदर्श-स्वरूप है। श्रीपण्डित नगेन्द्रचन्द्र जी मुखोपाध्याय ने बंगला भाषा में एक पुस्तक, 'आदर्शमहिला' लिखी है। उसी पुस्तक का यह हिन्दी-अनुवाद है। इसमें पाँच आख्यान हैं—उनमें १—सीता, २—सावित्री, ३—दमयन्ती, ४—शैव्या, ५—चिन्ता—इन पाँच देवियों के जीवन-घटनाओं का जीता जागता वर्णन अनोखे ढंग पर लिखा गया है। पुस्तक डिमाई साइज़ के पौने तीन सौ पेजों में समाप्त हुई है। तेरह बढ़िया चित्र भी दिये गये हैं जिन में कई चित्र रंगीन हैं। जिल्द भी बढ़िया बाँधी गई है। इतने पर भी सर्वसाधारण के सुभीते के लिए मूल्य केवल १।) सवा रुपया।

षोडशी ।

बँगला के प्रसिद्ध आख्यायिकालेखक श्रीयुत प्रभातकुमार बाबू की प्रभावशालिनी लेखनी से लिखी गई १६ आख्यायिकाओं का यह संग्रह बँगला में बड़ा प्रसिद्ध है। उसी का यह हिन्दी अनुवाद है। ये कहानियाँ हिन्दी में एकदम नई हैं और पढ़ने योग्य हैं। मूल्य १२० पृष्ठ की पुस्तक का ।)

कादम्बरी।

यह कविवर बाणभट्ट के सर्वोत्तम संस्कृत-उपन्यास का सर्वोत्तम हिन्दी-अनुवाद, प्रसिद्ध हिन्दी-लेखक स्वर्गवासी बाबू गदाधरसिंह वर्मा ने किया है। कलकत्ता की यूनिवर्सिटी ने इसको एफ० ए० क्लास के कोर्स में सम्मिलित कर लिया है। दाम ॥), सचित्र संस्करण में ॥।)

गीताञ्जलि।

मूल्य १) रुपया।

डाकुर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बनाई हुई "गीताञ्जलि" नामक अँगरेज़ी पुस्तक का संसार में बड़ा भारी आदर है; उस पुस्तक की अनेक कवितायें बँगला गीताञ्जलि में तथा और भी कई बँगला की पुस्तकों में छपी हुई हैं। उन्हीं कविताओं को इकट्ठा करके हमने हिन्दी-अक्षरों में 'गीताञ्जलि' छपाया है। जो महाशय हिन्दी जानते हुए बँग-भाषा-माधुर्य का रसास्वादन करना चाहते हैं उनके लिए यह बड़े काम की पुस्तक है।

विचित्रवधूरहस्य।

बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर लिखित "बऊठाकुरानीर हाट" नामक बँगला उपन्यास का यह हिन्दी अनुवाद 'विचित्रवधूरहस्य' के नाम से तैयार हो गया उपन्यास कितना रोचक है, इसकी घटनायें कितनी महत्त्वपूर्ण हैं, उपन्यास का भाव कैसा उत्तम है, पाठकों पर इसकी कथाओं का कैसा प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातें उपन्यास के पाठकों को स्वयं विदित हो जायँगी। मूल्य ॥।)

स्वर्णलता।

रोचक, शिक्षादायक और सामाजिक उपन्यास है। बँगला में इस उपन्यास के १९०८ तक १४ संस्करण हो चुके थे। इसी से आप इस उपन्यास की उपयोगिता का अनुमान कर सकते हैं। बँगला में इस उपन्यास की बड़ी प्रतिष्ठा है। उपन्यास क्या इस पुस्तक को गृहस्थाश्रम का सच्चा नक्शा समझना चाहिए। हिन्दी में इसके जोड़ का अभी तक कोई उपन्यास नहीं निकला। ३६१ पृष्ठ की भारी पोथी का दाम केवल १।) सवा रुपया।

माधवीकंकण।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित 'माधवीकङ्कण' बड़ा रोचक बड़ा शिक्षादायक और बड़ा मनोरञ्जक है। यह उसी का हिन्दी-अनुवाद है। हृदय-हारिणी घटनाओं से भरपूर है। वीर और करुणा आदि अनेक रसों का समावेश इसमें किया गया है। उपन्यास का उद्देश पवित्र और शिक्षादायक है। मूल्य ॥।)

मुकुट।

यह बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीरवीन्द्र बाबू के बँगला उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। भाई भाई में परस्पर अनबन होने का परिणाम अन्त में क्या होता है। यही इस छोटे से उपन्यास में बड़ी विलक्षणता के साथ दिखलाया गया है। इसे पढ़ कर लोग अपने मन को वैमनस्य के दोषों से बचा सकते हैं। मूल्य ।) चार आने।

उपदेश-कुसुम।

यह गुलिस्ताँ के आठवें बाब का हिन्दी-अनुवाद है। यह पढ़ने लायक और शिक्षादायक है। मूल्य =)

इंडियन प्रेस, प्रयाग की सर्वोत्तम पुस्तकें

भारतीय विदुषी।

इस पुस्तक में भारत की कोई ४० प्राचीन विदुषी देवियों के संक्षिप्त जीवन-चरित लिखे गये हैं। स्त्रियों को तो यह पुस्तक पढ़नी ही चाहिए, क्योंकि इसमें स्त्री-शिक्षा की अनेक उपयोगी बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन के पढ़ने से स्त्रियों के हृदय में विद्यानुराग का बीज अङ्कुरित हो जाता है, किन्तु पुरुषों को भी इस पुस्तक में कितनी ही नई बातें मालूम होंगी। मूल्य ।=)

तारा।

यह नया उपन्यास है। बँगला में "शैशवसहचरी" नामक एक उपन्यास है। लेखक ने उसी के अनुकरण पर इसे लिखा है। यह उपन्यास मनोरञ्जक, शिक्षा-प्रद और सामाजिक है। यह बढ़िया टाईप में छापा गया है। २५० पेज की पोथी का मूल्य केवल ॥।=)

गारफील्ड।

इस पुस्तक में अमरीका के एक प्रसिद्ध प्रेसीडेंट "जेम्स एबरम गारफ़ील्ड" का जीवनचरित लिखा गया है। गारफ़ील्ड ने एक साधारण किसान के घर जन्म लेकर, अपने उत्साह, साहस और संकल्प के कारण, अमरीका के प्रेसीडेंट का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया था। भारतवर्ष के सब युवकों को इस पुस्तक से बहुत अच्छा उपदेश मिल सकता है। मूल्य ॥)

हिन्दीभाषा की उत्पत्ति।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी)

यह पुस्तक हर एक हिन्दी जाननेवाले को पढ़नी चाहिए। इसके पढ़ने से मालूम होगा कि हिन्दी भाषा की उत्पत्ति कहाँ से है। पुस्तक बड़ी खोज के साथ लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तक, अभी तक कहीं नहीं छपी। इसमें और भी कितनी ही हिन्दुस्तानी भाषाओं का विचार किया गया है। मूल्य ।)

शकुन्तला नाटक।

कविशिरोमणि कालिदास के शकुन्तला नाटक को कौन नहीं जानता ? संस्कृत में जैसा बढ़िया यह नाटक हुआ है वैसा ही मनोहर यह हिन्दी में लिखा गया है। कारण यह कि इसे हिन्दी के सच्चे कालिदास राजा लक्ष्मणसिंह ने अनुवादित किया है। मूल्य १)

हिन्दी-शेक्सपियर।

छः भाग

शेक्सपियर एक ऐसा प्रतिभाशाली कवि हुआ है जिस पर योरप देश के रहने वाली गौराङ्ग जाति को ही नहीं किन्तु संसार भर के मनुष्य मात्र को अभिमान करना चाहिए। उसी जगत्प्रतिष्ठित कवि के नाटकों पर से ये कहानियाँ बिलकुल नये ढंग से लिखी गई हैं। हिन्दी सरल और सरस है तथा सब के समझने योग्य है। यह पुस्तक छः भागों में विभाजित है। प्रत्येक भाग का मूल्य ॥) आने और छः हों भाग एक साथ लेने पर १) तीन रुपए

नूतनचरित्र।

(बाबू रतनचन्द्र बी॰ ए॰ वकील हाईकोर्ट प्रयाग लिखित)

यों तो उपन्यास-प्रेमियों ने अनेक उपन्यास देखे होंगे पर हमारा अनुमान है कि शायद उन्होंने ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कहीं नहीं देखा होगा। इसलिए हम बड़ा ज़ोर देकर कहते हैं कि 'नूतनचरित्र' को अवश्य पढ़िए। मूल्य १)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

युगलांगुलीय ।

अर्थात्

दो अँगूठियाँ

बँगला के प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक बंकिम बाबू के परमोत्तम और शिक्षाजनक उपन्यास का यह सरल हिन्दी-अनुवाद है। यह उपन्यास क्या स्त्री, क्या पुरुष सभी के पढ़ने और मनन करने योग्य है। मूल्य ≡)

धोखे की टट्टी ।

मूल्य ।≈)

इस उपन्यास में एक अनाथ लड़के की नेकनीयती और नेकचलनी और एक सनाथ और धनाढ्य लड़के की बदनीयती और बदचलनी का फोटो खींचा गया है। हमारे भारतीय नवयुवक इसके पढ़ने से बहुत कुछ सुधर सकते हैं, बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात ।

का

हिन्दी अनुवाद छप कर तैयार हो गया। इसमें महाराष्ट्रवीर शिवाजी की वीरता-पूर्ण ऐतिहासिक कथायें लिखी गई हैं। मूल्य ॥।≈)

मिस्टर आर० सी० दत्त-लिखित

राजपूत-जीवन-सन्ध्या ।

का भी अनुवाद तैयार हो गया। इसमें राजपूतों की वीरता कूट कूट कर भरी है। पर, साथ ही राजपूतों के वीरता-पूर्ण जीवन की सन्ध्या के वर्णन को पढ़ कर आपको दो आँसू ज़रूर बहाने पड़ेंगे। उपन्यास पढ़ने योग्य है। मूल्य ॥।)

पारस्योपन्यास ।

जिन्होंने "पारस्योपन्यास" की कहानियाँ पढ़ी हैं उन्हें यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि पारस्योपन्यास की कहानियाँ कैसी मनोरञ्जक और अद्भुत हैं। उपन्यास-प्रेमियों को एक बार प्रस्तुत उपन्यास भी अवश्य पढ़ना चाहिए। मूल्य १)

वन-कुसुम ।

मूल्य ।)

इस छोटी सी पुस्तक में छः कहानियाँ छापी गई हैं। कहानियाँ बड़ी रोचक हैं। कोई कोई तो ऐसी हैं कि पढ़ते समय हँसी आये बिना नहीं रहती।

समाज ।

मिस्टर आर० सी० दत्त लिखित बँगला उपन्यास का हिन्दी-अनुवाद बहुत ही सरल भाषा में किया गया है। पुस्तक बड़े महत्त्व की है। यह सामाजिक उपन्यास सभी हिन्दी जाननेवालों के बड़े काम का है। एक बार पढ़ कर अवश्य देखिए। मूल्य ॥)

पतिव्रता ।

आजकल स्त्री-पाठ्य पुस्तकों की अधिक आवश्यकता देख कर हमने 'पतिव्रता' नाम की एक पुस्तक छाप कर प्रकाशित की है। इस पुस्तक में—सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती और शकुन्तला—इन छः पतिव्रताओं का चरित्र लिखा गया है। इसकी भाषा बड़ी सरल और सरस है। इसकी वर्णन-शैली बड़ी ही मनोहर है। भारत की प्रत्येक हिन्दी पढ़ी-लिखी नारी को यह पतिव्रता अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य ॥)

(आगे का पेज देखिये)

१८ बंकिम निबंधावली—स्वर्गीय बंकिम बाबू के चुने हुए बँगला निबंधों का अनुवाद। इसमें धार्मिक, राजनैतिक, मनोरंजक और साहित्यक सब प्रकार के निबंध हैं—जिनसे हिन्दी संसार बिलकुल अपरिचित है। बंकिम बाबू के लेखों की प्रशंसा करने की ज़रूरत नहीं। मूल्य एक रुपया।

सीरीज़ के सिवा भी हमारे यहाँ कई अच्छी अच्छी पुस्तकें निकली हैं।

१ व्यापारशिक्षा—इसे अर्थशास्त्र आदि ग्रन्थों के लेखक पं० गिरिधर शर्मा ने लिखा है। इसमें व्यापार का महत्त्व, धन्दा, पूँजी, सिक्का, हुंडी, बैंक, बहीखाता, साख, साझा, विज्ञापन, तेज़ीमन्दी, बीमा, अकाल, धनविद्या आदि विषयों के बहुत उपयोगी पाठ हैं, जिन्हें पढ़कर लोग व्यापार के नवीन और प्राचीन तत्त्वों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। हिन्दी में अपने ढंग की यह पहली पुस्तक है। मूल्य आठ आने।

२ युवाओं को उपदेश—इस पुस्तक में जो अभी अभी युवा हुए हैं, जो पढ़ रहे हैं, जो विवाह करने वाले हैं, जिनका विवाह हो चुका है, जिनकी पत्नी आ चुकी है, जो पिता बनने वाले हैं अथवा बन चुके हैं उन सब युवकों के लिए बहुत ही अच्छे अच्छे उपदेश दिये गये हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज़ लेखक विलियम कावेट के 'एडवाइस टू यंगमेन' नाम की पुस्तक के आधार से यह लिखी गई है। मूल्य दस आने।

३ शान्तिवैभव—विलियम जार्ज गार्डन की 'मैजेस्टी आफ़ कामनस' का अनुवाद है। बड़ी अच्छी पुस्तक है। इसमें इतने विषय हैं। शान्ति, उतावली नाश का कारण है, असफलता में सफलता, सदा उद्योग करो, आनंद का मार्ग और सुख शान्ति। मूल्य चार आने।

४ लन्दन के पत्र—एक विलायत-प्रवासी भारतवासी के जोशीले देशभक्ति-पूर्ण और सच्चे हृदय से लिखे हुए पत्रों का संग्रह। पढ़ते ही देश-भक्ति की बिजली दौड़ जाती है। मूल्य तीन आने।

५ विद्यार्थी जीवन के उद्देश्य ~) ७ बूढ़े का ब्याह ।~)
६ पिता के उपदेश ~)॥ ८ दिया तले अँधेरा ~)॥

मितव्ययता, स्वावलम्बन, सफलता और उसकी साधना के उपाय, पिता के उपदेश, अच्छी आदत डालने की शिक्षा, चरित्र गठन और मनोबल ये छः पुस्तकें मध्य प्रदेश और बरार के तमाम स्कूलों लायब्रेरियों और इनाम के लिए मंज़ूर हो चुके हैं।

सीरीज़ का उन्नीसवाँ ग्रन्थ छत्रसाल छप रहा है। यह उपन्यास है और बुंदेलखंड-केशरी, शिवाजी महाराज छत्रसाल के वीरचरित को लेकर लिखा गया है। महाराष्ट्र प्रान्त को स्वाधीन करने वाले महाराज शिवाजी के समान बुंदेलखंड को स्वाधीन करने के कारण छत्रसाल को भी अपूर्व यश मिला। पुस्तक पढ़ने योग्य है।

इनके सिवा हमारे यहाँ हिन्दी की और और और अच्छी पुस्तकें भी मिलती हैं। सूचीपत्र देखिये।

पुस्तक मिलने का पता—

हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगांव, बम्बई
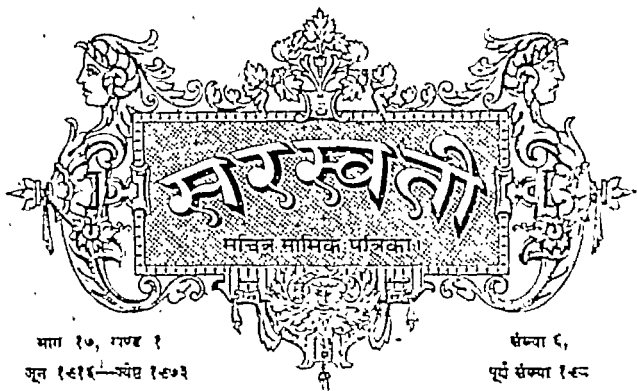
रागिनी मेघ-मल्लार।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

भाग १७, खण्ड १ — संख्या ६,
जून १९१६—ज्येष्ठ १९७३ — पूर्ण संख्या १९८

हिन्दू और मुसलमान।

अर्वाचीन और प्राचीन समय के विचारों में चाहे और कोई अन्तर हो चाहे न हो, आज कल की बहुत बड़ी विशेषता यह है कि जिस भूमि पर मनुष्य रहते हैं उस भूमि पर उनका अद्भुत स्नेह होता है, जो देशभक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्नेह के आधिक्य के कारण संसार इस समय पृथक् पृथक् देशों में विभक्त है और प्रत्येक देश के निवासी अपने देश की उन्नति के लिए बड़े बड़े यत्न करते हैं। उसे वे अन्य देश के राज्यों के आक्रमण से बचाते हैं और अपने देश के सुधार के लिए, अपने वैभव की वृद्धि के लिए, अपने देश को सर्वाङ्गसुन्दर बनाने के लिए सदा तत्पर रहते हैं।

ऐसा दृश्य प्रायः अन्य समयों में नहीं देखा गया। बड़े बड़े राज्य प्राचीन काल में हो गये हैं। बड़े बड़े प्रतापशाली सम्राटों ने संसार पर अपना प्रभाव डाला है। विशाल नगरों तथा धन-वैभव से पूर्ण नगरियों का इतिहास हम पढ़ते हैं, परन्तु यह दृश्य हमें कहीं देखने में नहीं आता कि किसी देश के निवासियों का यह दृढ़ विश्वास हो कि इस देश के सुख-दुःख हमारे सुख-दुःख हैं, इस देश को

आक्रमण से बचाने के लिए ध्यान देना भी हमारा कर्तव्य है, युद्ध में केवल राजा और राज्यपुरुष ही नहीं, किन्तु हम सब को सम्मिलित होना चाहिए, इत्यादि। यह विशेषता इसी समय की है और इस विशेषता का पूर्ण परिचय आज यूरप के देशों में देख पड़ता है। पहले जनसमूह का बन्धन धर्म या राज्य-भक्ति के विचार से होता था अब यह बात नहीं।

राष्ट्रप्रियता, कर्तव्य तथा स्वत्व आदि का विचार किसी भूमि पर निवास करने ही से आज कल इतना बढ़ गया है कि आधुनिक देशों के आपस के समझौते के नियमानुसार यदि कोई मनुष्य दूसरे देश में जाय तो उसमें पैर रखते ही वहाँ के निवासियों के बराबर उसके अधिकार आदि हो जाते हैं। वह मनुष्य अपने घर के क़ानून को छोड़ कर उस देश के क़ानून का पालन करता है। उदाहरणार्थ, देखिए, फरासीसी देश में यह न्याय-विरुद्ध नहीं कि दो मनुष्य अपने झगड़ों को आपस में बन्दूक़ या तलवार से लड़ कर तै करें। परन्तु यदि दो फरासीसी इस प्रकार से अपना झगड़ा लन्दन में तै करना चाहें तो उन्हें जेल भोगना पड़े, क्योंकि यहाँ ऐसा करना न्याय-विरुद्ध है। यदि वे दो फरासीसी न्यायाधीश से कहें कि हमारे देश में यह नियम-विरुद्ध नहीं, हम न जानते थे कि आप की यहाँ यह मना है, तो भी न्यायाधीश उनकी बात न सुनेगा। जिस क्षण आपने ग्रेट-ब्रिटन में अपना पैर रक्खा उसी क्षण से आप अँगरेज़ी न्याय के अधि-कार के भीतर आ गये, अनभिज्ञता के कारण आप उसके परिणाम से नहीं बच सकते। ऐसे ही यदि दो अँगरेज़ों में वैमनस्य हो जाय और वे तलवार से लड़ कर अपनी शत्रुता का बदला लेना चाहें तो वे फ्रान्स में जाकर अपना हृदय शीतल कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आज कल संसार में मनुष्य के निवास-स्थान पर मनुष्य का जातीय स्नेह होता है। न धर्म पर होता है, न जाति पर, न धन पर। आज कल रोमन कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट, आदि धर्मावलम्बी पीछे होते हैं, अँगरेज़, फरासीसी, अमेरिकन आदि पहले। सुना जाता है कि जापान में एकही घर में कभी कभी माँ शिन्टो, पिता बौद्ध और पुत्र ईसाई होते हैं, पर सब प्रेम से रहते हैं।

समय की ऐसी गति होते हुए भारत में किसी दूसरे लिहाज़ से अपनी राष्ट्रियता नहीं स्थापित कर सकता। जातीयता और देश-प्रियता के चिह्न चारों ओर देख पड़ रहे हैं। अब प्रश्न अब यह उपस्थित हुआ है कि किस विचार, किस आदर्श, किस लिहाज़ से यह जातीयता स्थापित होनी चाहिए।

इस प्रश्न का यथेष्ट उत्तर देने के लिए बहुत समय और बहुत जगह दरकार है। अतएव हम अपना निवेदन थोड़े ही में करेंगे। आज कल देश में एक अद्भुत प्रकार का भ्रमजाल सा फैल गया है। हमें चाहिए कि उसे दूर करें। जब हमने यह मान लिया कि इस भूमि पर रहने ही से हम इस भूमि से बँधते गये हैं तब इसकी सेवा करना हमारा मुख्य कर्तव्य हो गया। इसके बाद हमको इस बात का विचार करना चाहिए कि हम हिन्दू हैं या मुसल्मान, ईसाई हैं या पारसी, इत्यादि। विचार करने से यह मतलब नहीं कि अपनी अपनी जाति की रहन-सहन के जो विशेष नियमादि हैं उन्हें हम छोड़ दें। तात्पर्य इतना ही है कि देश के हित के लिए जो कुछ कर्तव्य हो उसमें अपने अपने पन्थ या जाति का विचार छोड़ दिया जाय। क्योंकि हमारे हिन्दू या मुसल्मान होने ही से किसी जातीय काम—म्युनिसिपैलिटी या सभा-समाज-सम्बन्धी आदि—में कुछ अन्तर नहीं आ सकता। सड़क की सफ़ाई कराना है या नगर में नल लगवाना है। इन कामों के लिए धार्मिक झगड़े की तो सम्भावना ही नहीं। शासन के लिए क़ानून बनाने पड़ते हैं। उनमें पृथक् पृथक्

अपने अपने धर्म के विचार से प्रतिनिधि चुनने से क्या लाभ ? जो इन कार्यों के करने योग्य हैं, जो इन सब बातों को समझते हैं, उन्हीं को ये काम करने चाहिए—चाहे वे हिन्दू हों चाहे मुसल्मान। दोनों ही अब इस देश में बस गये हैं, किसी को कहीं किसी अन्य देश में जाने की ज़रूरत नहीं। यदि दुर्भिक्ष है तो दोनों दुखी हैं। यदि शासन-पद्धति खराब है तो दोनों को कष्ट है। यदि हमारे ग्राम और नगर धन-धान्य से पूर्ण हैं तो दोनों ही सुखी हैं। यदि सुशासन की कृपा से किसी के प्राण या धन-वैभव जाने का भय नहीं है तो यह सुभीता दोनों के लिए एकसा है। देश में शान्ति हो तो दोनों सुखी हैं। यहाँ तो अपने अपने धर्म की बात आती ही नहीं। फिर हम क्यों इस माया-जाल में फँस गये हैं ? इसका उत्तर पाना कठिन क्या असम्भव सा है।

अपने देश के इतिहास की विशेषता दिखलाते हुए कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने क्या ही सुन्दर भाव प्रकट किये हैं—

"मनुष्य का इतिहास भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार से विकसित हुआ है। भारत का इतिहास पृथक् है। परन्तु आरम्भ ही से उसमें हम देखते हैं कि यह इतिहास किसी एक विशेष सभ्यता या विशेष जाति का नहीं है। द्राविड़ प्रान्त की सभ्यता और आर्य्य सभ्यता दोनों हमारे अन्तर्गत हैं। हमारा देश जितना हिन्दुओं का है उतना ही मुसल्मानों का भी। जितना यह मुसल्मानों का है उतना ही हिन्दुओं का भी है। वायुरूपी भिन्न भिन्न जातियों के एकत्र होने के कारण आकाश की तरह भारत के इतिहास की भी परिभाषा नहीं बताई जा सकती। कितनी ही जातियों का संघर्ष क्यों न हो, हमारा कोई स्थिर रूप नहीं। कभी तक इस कल्पना रूपी मेघ से आच्छादित आकाश में कोई स्थिर और निश्चित स्वरूप नहीं देख पड़ता।"*

* Modern Review, April 1916, p. 420.

हिन्दू-मुसल्मानों का झगड़ा भी एकाएक हम लोगों के सम्मुख उपस्थित हो गया है। दस बीस वर्ष हुए, कम से कम संयुक्त-प्रान्त में तो दोनों जातियों में बहुत मेल था—हिन्दुओं और मुसल्मानों में बहुत प्रेम था। सर सैयद अहमदख़ाँ को अलीगढ़ का कालेज बनाने में हिन्दुओं से बहुत सहायता मिली थी। पहले इन दोनों जातियों में बहुत एकता थी। अब एकाएक वैमनस्य क्यों हो गया है ? क्यों प्रत्येक चीज़ में भेद का विचार उत्पन्न हो गया है ? इन प्रश्नों को हल करना कठिन है। उचित यही है कि जब हमको एक ही स्थान पर रहना है, हमको एक दूसरे के सुख-दुःख में अपनी इच्छा के विरुद्ध भी सम्मिलित होना है, तब क्यों हम आपस में द्वेष-भाव रक्खें ? क्यों न हम भेदक विचारों को दूर करके एकता की रज्जु से बद्ध हो जायँ ?

इसकी सिद्धि के लिए उचित है कि दोनों जातियों के अगुओं को आगे बढ़ना चाहिए। दोनों को यह बात जाननी चाहिए कि दोनों के भाग्य एक ही सूत्र से बँधे हुए हैं। एक जाति दूसरे को छोड़ कर नहीं रह सकती। इस बात को मान लेने से आगे पैर रखना सहल है। हिन्दुओं में छुआछूत बहुत है। इससे लोगों को भ्रम होता है कि ये हमसे घृणा करते हैं। इसे छोड़ना पड़ेगा। अन्य जाति के भाइयों से भी यह प्रार्थना है कि इस सम्बन्ध में वे हिन्दुओं को क्षमा कर सकते हैं, क्योंकि किसी को न छूने का कारण घृणा नहीं। हिन्दुओं में यह प्रथा ही चली आती है कि वे आपस में भी छुआछूत का विचार करते हैं। कभी कभी तो माता-पिता भी अपनी पुत्र-पुत्रियों को नहीं छूते। कहाँ तो इसका अर्थ यह था कि शारीरिक स्वच्छता रहे, कहाँ अब इससे आपस में वैमनस्य पैदा होता है। चाहे अन्य जाति हिन्दुओं को क्षमा करें चाहे न करें, यह अब अच्छा अव-

श्यक है कि हिन्दू इस झगड़े को छोड़ें और अपने को बहुत पवित्र समझ कर दूसरों से वैर न मोल लें। बहुत से हिन्दुओं का धर्म तो अब केवल चौके में रह गया है। हिन्दू स्वच्छता रक्खें, पर विवेकपूर्वक। इसका यह मतलब नहीं कि जो हिन्दू निरामिष-भोजी हैं वे आमिषभोजी हो जायँ। मतलब केवल इतना ही है कि उनको अन्य जाति के लोगों के साथ बैठने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।

मुसल्मानों के लिए भी यह आवश्यक है कि जिन बातों से हिन्दुओं के हृदय में चोट लगती है वे न की जायँ। *गो-वध का ही बड़ा झगड़ा है।* कितने ही विचारशील मुसल्मान और काबुल के अमीर जैसे नेता तक कह रहे हैं कि इस्लाम धर्म में गोवध की आवश्यकता नहीं। अमीर साहब जब भारत में आये थे तब ईद के दिन थे। तथापि ऐसे समय भी आपने यही कहा कि गोवध न किया जाय। मुसल्मान भाई यह पूछ सकते हैं कि गोवध करने और बकरा या भैंसा मारने में क्या अन्तर है? इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि मनुष्य के सभी काम हार्दिक इच्छाओं के कारण नहीं हुआ करते। निष्कारण भी मनुष्य बड़ी बड़ी बातें किया करते हैं। बड़ी बड़ी सद्भावना, रागद्वेष आदि निष्कारण भी हो जाते हैं। पर ये सब बातें मनुष्य के जीवन पर मज़बूत प्रभाव डालती हैं। इस तरह की बातों को भी निष्कारण धार्मिक विचार समझ कर, एकता बढ़ाने के उद्देश से, हमारी प्रत्येक जाति को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उसके किसी काम से किसी दूसरी जाति का जी न दुखे।

हिन्दू-मुसल्मानों के झगड़े यदि तै न होंगे तो इसका परिणाम बहुत बुरा हो सकता है। यही दो भारत की प्रधान जातियाँ हैं। इनकी देखा-देखी और छोटी छोटी जातियाँ भी ऐसा ही करेंगी और भेद पर भेद बढ़ता ही जायगा। सिक्ख, जैन, पारसी, ईसाई इत्यादि सभी अपने अपने रास्ते चलने लगेंगे। ऐसा होने से हमारा यह लम्बा विस्तीर्ण देश चिथड़े चिथड़े हो जायगा।

भारत की जातियों में भेद दिखाने वाले लोग बहुत हैं। सर जान स्ट्राची ने एक ग्रन्थ लिखा है।* नाम है—भारत की उन्नति और उसका शासन। उसमें जगह जगह पर उन्होंने यह दिखाने का यत्न किया है कि हम सब लोग भिन्न भिन्न हैं, हममें एकता नहीं। "भारत की जातियाँ"—नाम अध्याय में आपने पारसियों को विदेशी बतलाया है। "देशीय राज्य" शीर्षक अध्याय में आपने भारत के राजाओं को—जैसे हैदराबाद के निज़ाम, ग्वालियर के सेंधिया, इन्दौर के होलकर आदि को—विदेशी बताया है। उनका कहना उचित है। मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन के समय जब भारत के सैनिक नेताओं और मुग़ल-साम्राज्य के प्रतिनिधियों आदि में परस्पर घोर युद्ध आरम्भ हुआ तभी ये सब राज्य बने थे। इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु अब तो इस बात को सैकड़ों साल हो गये। क्या अब भी ये विदेशी ही हैं? हाँ, यदि उनका कोई अपना घर या अन्य देश होता, जहाँ ये जा सकते अथवा यहाँ आने के लिए ये उत्सुक होते, तो बात दूसरी थी। तो ये अवश्य विदेशी कहाते। परन्तु अब तो ये यहीं बस गये हैं। इन्हें और कहाँ जाना ही है। तब ये विदेशी कैसे?

पारसी भी परदेशी क्यों? १२०० वर्ष से ऊपर उन्हें यहाँ आये हो गये। अब भी वे परदेशी ही बने हैं? तो फिर संसार की कोई भी जाति कहीं भी स्वदेशी नहीं। इँगलैंड, फ्रान्स, इटली आदि देशों के वर्तमान निवासियों के अधिकांश पूर्वज बाहर ही से आये थे। उन्हें भी आये कोई १५०० या १२०० वर्ष से अधिक नहीं हुए। वर्तमान अंगरेज़ राष्ट्र है। क्या वे अपने देश को परदेश समझ कर ही रहते

*Sir John Strachey: India, Its Progress and Administration.

ब्रह्म की हैं चार जैसी मूर्तियाँ—
ठीक वैसी चार माया-स्फूर्तियाँ।
धन्य दशरथ-जनक पुण्योत्कर्ष है,
धन्य भगवद्भूमि भारतवर्ष है॥

देख लो, साकेत नगरी है यही—
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
केतु-पट अञ्चल-सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे॥

स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत गृह बने,
इन्द्रधनुषाकार तोरण हैं तने।
देव-दम्पति अट्ट देख सराहते,
उतर कर विश्राम करना चाहते॥

हैं धरा पर विविध शालायें बड़ी,
चारु चित्रित दिव्य दीवारें खड़ीं।
वायु ही है जो स्वयं आ-जा सके,
शत्रु क्या जो धन्य साहस पा सके॥

फूल-फल कर, फैल कर, जो हैं बढ़ीं—
दीर्घ छज्जों पर विविध बेलें चढ़ीं।
पौर-कन्यायें प्रसून-स्तूप कर—
वृष्टि करती हैं यहीं से भूप पर॥

फूल-पत्ते हैं गवाक्षों में कढ़े,
प्रकृति से ही वे गये मानों गढ़े।
दामिनी भीतर दमकती है कभी,
चन्द्रमाला-सी चमकती है कभी॥

सर्वदा स्वच्छन्द, छज्जों के तले—
प्रेम के आदर्श पारावत पले।
केश-रचना के सहायक हैं शिखी,
चित्र में मानों अयोध्या है लिखी॥

सम्पदा का केन्द्र-सा आगार है,
सत्य का सर्वत्र ही व्यवहार है।
देखने के योग्य दूकानें घनी,
नित्य क्रय-विक्रय किया करते धनी॥

शिल्पियों के वस्तुयें पहले यहीं—
इनसे बिकती विदेशों सब कहीं—
आह ! भारत के बने पर कम हैं !
आलस्य, खाने, खिलौने, हाय है !…

कामरूपी वारिदों के चित्र-से,
इन्द्र की अमरावती के मित्र-से।
कर रहे नृप-सौध गगन-स्पर्श हैं,
शिल्प-कौशल के परम आदर्श हैं॥

अवनि के उत्थान की पद-पीढ़ियाँ—
हो न हो, सुरलोक तक हैं सीढ़ियाँ।
शक्ति हो, सानन्द चढ़ते जाइए,
अन्त में अमरेन्द्र से मिल आइए॥

कोट-कलशों पर प्रणीत विहंग हैं,
ठीक जैसे रूप वैसे रंग हैं।
वायु की गति गान देती है उन्हें,
बाँसुरी की तान देती है उन्हें॥

ठौर ठौर अनेक अध्वर-यूप हैं,
आर्य-धर्मोन्नति-निदर्शन-रूप हैं।
राघवों की इन्द्र-मैत्री के बड़े—
वेदियों के साथ साक्षी-से खड़े॥

मूर्तिमय, विवरण समेत, जुदे जुदे,
ऐतिहासिक वृत्त जिनमें हैं खुदे।
यत्र तत्र विशाल विजय-स्तम्भ हैं,
दूर करते दानवों का दम्भ हैं॥

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु वैतरणी कहाँ ? सरयू कहाँ ?
वह मरों को पार मात्र उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती !

अङ्गराग पुराङ्गनाओं के धुले—
रङ्ग देकर नीर में जो हैं घुले।
दीखते उनसे विचित्र तरङ्ग हैं,
कोटि शक्र-शरासन होते भङ्ग हैं॥

है बनी साकेत नगरी नागरी,
और सात्त्विक भाव से सरयू भरी।
प्रेम की प्रत्यक्ष धारा बह रही,
कर्ण-कोमल कल-कथा-सी कह रही॥

तीर पर हैं देव-मन्दिर सोहते,
भावुकों के भाव मन को मोहते।
आस पास लगी वहाँ फुलवारियाँ,
हँस रही हैं खिलखिला कर क्यारियाँ॥

है अयोध्या अवनि की अमरावती,
इन्द्र हैं दशरथ विदित वीरव्रती।
वैजयन्त विशाल उनके धाम हैं,
और नन्दन वन बने आराम हैं॥

एक तरु के विविध सुमनों-से खिले—
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी॥

व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शङ्का नहीं मन के लिए।
चोर की चिन्ता नहीं धन के लिए,
सर्व सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए॥

अलग रहती हैं सदा ही ईतियाँ,
भटकती हैं शून्य में ही भीतियाँ।
नीतियों के साथ रहती रीतियाँ,
पूर्ण हैं राजा-प्रजा की प्रीतियाँ॥

पुत्र-रूपी चार फल पाये यहीं,
भूप को अब और कुछ पाना नहीं।
बस, यही अभिलाष पूरा एक हो—
शीघ्र ही श्रीराम का अभिषेक हो॥

कौन कह दे, क्या सुहाता है राम को?
हो चुकीं तैयारियाँ सब काम की।
बीच में बस एक ही अब रात है,
अधिक क्या, अभिषेक है कि प्रभात है॥

सूर्य्य का अब भी नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अङ्ग पीले पड़ गये,
रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ गये॥

एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा!
सूर्य्य का आना सुना जब तब मिटा॥

नींद के भी पैर हैं कँपने लगे,
देख लो, लोचन-कुमुद झँपने लगे।
वेष-भूषा साज ऊषा आ गई,
मुख-कमल पर मुसकराहट छा गई॥

पक्षियों की चहचहाहट हो उठी,
चेतना की अधिक आहट हो उठी।
स्वप्न के जो रङ्ग थे वे धुल उठे,
प्राणियों के नेत्र कुछ कुछ खुल उठे॥

दीप-कुल की ज्योति निष्प्रभ हो सिरी—
रह गई अब एक घेरे में घिरी।
किन्तु दिनकर आ रहा, क्या सोच है?
उचित ही गुरुजन-निकट सङ्कोच है॥

रात के तम का हुआ है पात-सा,
पूर्व में है समर-शोणित-पात सा।
छट गई मणि-खचित भित्ति की शान भी,
हैं पड़े दो-चार मणि इस काल भी॥

हिमकणों ने है जिसे शीतल किया,
और सौरभ ने जिसे नव बल दिया।
प्रेम से पागल पवन चलने लगा,
सुमन-रज सर्वाङ्ग में मलने लगा॥

ठौर ठौर प्रभातियाँ होने लगीं,
अलसता की ग्लानियाँ खोने लगीं।
कौन भैरव राग कहता है इसे—
श्रुति-पुटों से प्राण पीते हैं जिसे?

दीखते थे रङ्ग जो काले अभी,
प्रक्षालित पर आ गये हैं वे सभी।
सूर्य्य के रथ में अरुण हय जुत गये,
लोक के घर-द्वार मानों धुल गये॥

खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर में उठा क्या ज्वार है!
कौन जाने, पूर्व का यह कोप है,
या निपति का राग किंवा रोष है॥

अरुण-पट पहने हुए, आह्लाद में—
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट मूर्त्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रहीं॥

यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई—
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनकलतिका भी कमल-सी कोमला,
धन्य है उस श्रेष्ठ शिल्पी की कला॥

मन की हैं चार जैसी मूर्तियाँ—
ठीक वैसी चार माया-स्फूर्तियाँ।
धन्य दशरथ-जनक पुण्योत्कर्ष है,
धन्य भगवद्भूमि भारतवर्ष है॥
देख लो, साकेत नगरी है यही—
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
केतु-पट अञ्चल-सदृश हैं उड़ रहे,
कनक-कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे॥
स्वच्छ, सुन्दर और विस्तृत गृह बने,
इन्द्रधनुषाकार तोरण हैं तने।
देव-दम्पति अट्ट देख सराहते,
उतर कर विश्राम करना चाहते॥

हैं बनी वर विविध शालायें बड़ीं,
छाद चित्रित दिव्य दीवारें खड़ीं।
वायु ही है जो स्वयं आ-जा सके,
शक्ति क्या जो अन्य साहस पा सके॥
फूल-फल कर, फैल कर, जो हैं बढ़ीं—
दीर्घ छज्जों पर विविध बेलें चढ़ीं।
पौर-कन्यायें प्रसून-स्तूप कर—
वृष्टि करती हैं यहीं से भूप पर॥
फूल-पत्ते हैं गवाक्षों में कढ़े,
प्रकृति से ही वे गये मानो गढ़े।
दामिनी भीतर दमकती है कभी,
चन्द्रमाला-सी चमकती है कभी॥
सर्वदा स्वच्छन्द, छज्जों के तले—
प्रेम के आदर्श पारावत पले।
केश-रचना के सहायक हैं शिखी,
चित्र में मानो अयोध्या है लिखी॥

सम्पदा का केन्द्र-सा बाज़ार है,
सत्य का सर्वत्र ही व्यवहार है।
देखने के योग्य दूकानें बनीं,
भिन्न क्रय-विक्रय किया करते धनी॥
दीखतीं वे वस्तुयें पहले कहीं—
कहते जिनसे विदेशी सब कहीं—
"अहह! भारत के बने सब वस्त्र हैं!
चामरादि, छाते, सिंधौरे, गन्ध हैं!"

कामरूपी वारिदों के चित्र-से,
इन्द्र की अमरावती के मित्र-से।
कर रहे नृप-सौध गगन-स्पर्श हैं,
शिल्प-कौशल के परम आदर्श हैं॥
अवनि के उत्पात की पर-वीथियाँ—
हो न हो, सुरलोक तक हैं सीढ़ियाँ।
शक्ति हो, सानन्द चढ़ते जाइए,
स्वर्ग में अमरेन्द्र से मिल आइए॥
कोट-कलशों पर प्रणीत विहंग हैं,
ठीक जैसे रूप वैसे रंग हैं।
वायु की गति गान देती है उन्हें,
बाँसुरी की तान देती है उन्हें॥

ठौर ठौर अनेक अध्वर-यूप हैं,
मार्ग-धर्मोन्नति-निदर्शन-रूप हैं।
राघवों की इन्द्र-मैत्री के बड़े—
वेदियों के साथ साक्षी-से खड़े॥
मूर्तिमय, विवरण समेत, जड़े जड़े,
ऐतिहासिक वृत्त जिनमें हैं बड़े।
पद पद विराजत विजय-स्तम्भ हैं,
दूर करते दानवों का दम्भ हैं॥
स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किन्तु वैतरणी कहाँ! सरयू कहाँ!
वह मरों को पार मात्र उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती!
अङ्गराग पुराङ्गनाओं के धुले—
रङ्ग देकर नीर में जो हैं घुले।
दीखते उनसे विचित्र तरङ्ग हैं,
कोटि शक्र-शरासन होते भङ्ग हैं॥

है बनी साकेत नगरी नागरी,
और सात्विक भाव से सरयू भरी।
प्रेम की प्रत्यक्ष धारा बह रही,
कर्म-कौशल कल-कथा-सी कह रही॥
तीर पर हैं देव-मन्दिर सोहते,
भावुकों के भाव मन को मोहते।
आस पास लगी यहाँ फुलवारियाँ,
हँस रही हैं खिलखिला कर क्यारियाँ॥

है अयोध्या अवनि की अमरावती,
इन्द्र हैं दशरथ विदित वीरव्रती।
वैजयन्त विशाल उनके धाम हैं,
और नन्दन वन बने आराम हैं॥
एक तरु के विविध सुमनों-से खिले—
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ, शिक्षित, शिष्ट, उद्योगी सभी,
बाह्य भोगी, आन्तरिक योगी सभी॥
व्याधि की बाधा नहीं तन के लिए,
आधि की शङ्का नहीं मन के लिए।
चोर की चिन्ता नहीं धन के लिए,
सर्व सुख हैं प्राप्त जीवन के लिए॥
अलग रहती हैं सदा ही ईतियाँ,
भटकती हैं शून्य में ही भीतियाँ।
नीतियों के साथ रहती रीतियाँ,
पूर्ण हैं राजा-प्रजा की प्रीतियाँ॥
पुत्र-रूपी चार फल पाये यहीं,
भूप को अब और कुछ पाना नहीं।
बस, यही अभिलाष पूरा एक हो—
शीघ्र ही श्रीराम का अभिषेक हो॥
कौन कह दे, क्या दशा है राम की?
हो चुकी तैयारियाँ सब काम की।
बीच में बस एक ही अब रात है,
अधिक क्या, अभिषेक है कि प्रभात है॥
सूर्य्य का अब भी नहीं आना हुआ,
किन्तु समझो रात का जाना हुआ।
क्योंकि उसके अङ्ग पीले पड़ गये,
रम्य रत्नाभरण ढीले पड़ गये॥
एक राज्य न हो, बहुत से हों जहाँ,
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।
बहुत तारे थे, अँधेरा कब मिटा!
सूर्य्य का आना सुना जब तब मिटा॥
नींद के भी पैर हैं कँपने लगे,
देख लो, लोचन-कुमुद झँपने लगे।
वेष-भूषा साज ऊषा आ गई,
मुख-कमल पर मुसकराहट छा गई॥

पक्षियों की चहचहाहट हो उठी,
चेतना की अधिक आहट हो उठी।
स्वप्न के जो रङ्ग थे वे घुल उठे,
प्राणियों के नेत्र कुछ कुछ खुल उठे॥
दीप-कुल की ज्योति निष्प्रभ हो निरी—
रह गई अब एक घेरे में घिरी।
किन्तु दिनकर आ रहा, क्या सोच है!
उचित ही गुरुजन-निकट सङ्कोच है॥
रात के तम का हुआ है पात-सा,
पूर्व में है समर-शोणित-पात सा।
छिन गई मणि-खचित निशि की शाल भी,
हैं पड़े दो-चार मणि इस काल भी॥
हिमकणों ने है जिसे शीतल किया,
और सौरभ ने जिसे नव बल दिया।
प्रेम से पागल पवन चलने लगा,
सुमन-रज सर्वाङ्ग में मलने लगा॥
ठौर ठौर प्रभातियाँ होने लगीं,
अलसता की ग्लानियाँ धोने लगीं।
कौन भैरव राग कहता है इसे—
श्रुति-पुटों से प्राण पीते हैं जिसे?
दीखते थे रङ्ग जो काले अभी,
अस्तशिखर पर आ गये हैं वे सभी।
सूर्य्य के रथ में अरुण हय जुत गये,
लोक के घर-द्वार मानों धुत गये॥
खुल गया प्राची दिशा का द्वार है,
गगन-सागर में उठा क्या ज्वार है!
कौन जाने, पूर्व का यह कोष है,
या नियति का राग किंवा रोष है॥
अरुण-पट पहने हुए, आह्लाद में—
कौन यह बाला खड़ी प्रासाद में?
प्रकट मूर्त्तिमती उषा ही तो नहीं?
कान्ति की किरणें उजेला कर रहीं॥
यह सजीव सुवर्ण की प्रतिमा नई—
आप विधि के हाथ से ढाली गई।
कनक-लतिका भी कमल-सी कोमला,
धन्य है उस कल्प-शिल्पी की कला॥

जान पड़ता—नेत्र देख बड़े बड़े—
हीरकों में गोल नीलम हैं जड़े!
पद्मरागों से अधर मानों बने,
मोतियों से दाँत निर्मित हैं घने॥
और इसका हृदय किससे है बना?
वह हृदय ही है कि जिससे है बना।
प्रेम-पूरित, सरल, कोमल चित्त से—
तुल्यता की जा सके किस वित्त से?
शाण पर सब अङ्ग मानों चढ़ चुके,
भाव फिर उनमें पड़े अब गढ़ चुके।
झलकता आता अभी तारुण्य है,
गोरता ने आ मिला आरुण्य है॥
लोल कुण्डल मण्डलाकृति गोल हैं,
घन-पटल-से केश, कान्त कपोल हैं।
देखती है जब जिधर यह सुन्दरी—
दामिनी-सी दमक उठती द्युति-भरी॥
हैं करों में भूरि भूरि भलाइयाँ,
लचक जातीं अन्यथा न कलाइयाँ?
चूड़ियों के अर्थ, जो हैं मणिमयी,
अङ्ग की ही कान्ति कुन्दन बन गई॥
एक ओर विशाल दर्पण है लगा,
पार्श्व से प्रतिबिम्ब उसमें है जगा।
मन्दिरस्था कौन यह देवी भला?
किस कृती के अर्थ है इसकी कला?
स्वर्ग का यह सुमन धरती पर खिला,
नाम इसका उचित ही है उर्मिला।
शील-सौरभ की तरङ्गें आ रहीं
मग्न भाव भवाब्धि में हैं ला रहीं॥
सौध-सिंहद्वार पर अब भी वहीं—
बाँसुरी में ध्वनि है बज रही।
अनुकरण करता उसी का कीर है,
पञ्जरस्थित जो सु-रम्य-शरीर है॥
उर्मिला ने कीर-सम्मुख दृष्टि की,
या वहाँ दो खञ्जनों की सृष्टि की।
मौन होकर कीर भी विस्मित हुआ,
रह गया वह देखता-सा स्थित हुआ॥

प्रेम से उस प्रेयसी ने तब कहा—
"रे सुभाषी! बोल, चुप क्यों हो रहा?"
पार्श्व से सौमित्र आ पहुँचे तभी,
और बोले—"लो, बताऊँ, मैं, अभी।
नाक का मोती अधर की कान्ति से—
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रान्ति से,
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है, अन्य शुक यह कौन है?"
यों वचन कह कर सहास्य विनोद से,
मुग्ध हो सौमित्र मन के मोद से।
कमलिनी के पास मत्त मराल-से—
हो गये आकर खड़े स्थिर चाल से॥
चित्र-चित्रित भित्तियाँ भी वे बड़ी—
देखती ही रह गईं मानो खड़ी।
प्रीति से आवेग मानों आ मिला,
और बातों का बढ़ा फिर सिलसिला॥
रसिकता में सु-रस सरसाती हुई—
मुसकरा कर अमृत बरसाती हुई।
उर्मिला बोली कि—"क्या तुम जग गये!
नींद में यों नयन कब से लग गये?"
"जागना अब से तुम्हें प्यारा हुआ"
अनुभवोचित भी यथा, प्यारा हुआ!
किन्तु फिर भी उर्मिला का मन चला,
"जागना है नींद से तब भी भला!"
"प्रेम में कुछ भी बुरा होता नहीं,"
दे दिया सौमित्र ने उत्तर यहीं।
उर्मिला का भी विचार सराहिए,—
"कोमलता क्या कुछ न होनी चाहिए?"
"धन्य है प्यारी! तुम्हारी चेतना,
मोहिनी-सी मूर्ति मञ्जु मनोरमा।
पा सका सौभाग्य से सद्भाग हूँ,
किन्तु मैं भी तो तुम्हारा दास हूँ!"
"दास बनने का बहाना किस लिए?
क्या मुझे दासी कहाना, इस लिए?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो—
और देवी ही मुझे रक्खो अहो!"

अहमदशाह दुर्रानी ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

नादिरशाह और मुहम्मदशाह।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

उर्मिला यह कह तनिक चुप हो रही,
तब कहा सौमित्रि ने कि—"यही सही।
तुम रहो मेरी हृदय-देवी सदा,
मैं तुम्हारा हूँ प्रणय-सेवी सदा॥"
फिर कहा—"वरदान क्या दोगी मुझे?
प्रेम का सम्मान क्या दोगी मुझे?"
उर्मिला बोली कि—"यह क्या धर्म है?
कामना को छोड़ कर ही कर्म है॥"
किन्तु मन्मथ ने नहीं माना इसे,
और वे बोले—"भुलाती हो किसे?
कामना मेरी न समझो वासना,
सफल ही होगी मनस्योपासना॥
विफलता का भी न हो क्यों सामना
किन्तु छोड़ूँगा न तुमसे कामना।
अब कहो, वरदान दोगी या नहीं?
प्रेम का सम्मान दोगी या नहीं?"
उर्मिला ने तब कहा हँस कान में—
"क्यों नहीं, दूँगी तुम्हीं को दान में!"
"पर किसे दोगी?" कहा सौमित्र ने,
(राघवेन्द्रानुज पवित्र-चरित्र ने॥)
उर्मिला ज्यों ही चली कुछ बोलने,
बीच में शुक भी लगा रस घोलने।
तब कहा उसने कि—"तू क्या चाहता?"
है उसे क्या गूढ़ बातों का पता॥
"कनकपुर की स्वर्ण-सौध-विहारिका—
चाहता हूँ एक सुमुखी सारिका!"
देख निज शिक्षा सफल लक्ष्मण हँसे,
उर्मिला के ओठ भी सरस हँसे।
ललित लज्जा-भाव दिखला कर अहा!
उस प्रिया ने इस तरह प्रिय से कहा—
"और भी तुमने किया है कुछ कभी!
या कि तोते ही पढ़ाये हैं अभी!"
"बस तुम्हें पाकर अभी सीखा यही,"
बात यह सौमित्रि ने सस्मित कही;
"देख लूँगी" उर्मिला ने भी कहा,
विजित किन्तु फिर भी विनोदस्मृत रहा॥

हार जाते पति कभी पत्नी कभी,
किन्तु वे होते अधिक हर्षित तभी।
प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है,
हार में भी तो परस्पर जीत है॥
राम के अभिषेक-प्रसंग के लिए—
चित्त में अत्यन्त उत्कण्ठा लिये।
दम्पती वे देर से सोये तथा—
शीघ्र उठने की परस्पर थी कथा॥
उर्मिला ही किन्तु पहले थी जगी,
इस लिए प्राणेश से कहने लगी—
"आज मेरा विजय-हर्षोद्रेक है,
याद तो है, आज ही अभिषेक है?"
प्रेम-पूर्ण सलज्ज सस्मित भाव से—
मुख-सहित सौमित्रि बोले चाव से—
"क्यों न हो, फिर तो किसी की टेक है,
मानता हूँ, आज ही अभिषेक है॥
आज ही अभिषेक होगा आर्य्य का,
और साधन देव-कुल के कार्य्य का।
दृग सफल होंगे हमारे आज ही,
सिद्ध होंगे सुकृत सारे आज ही॥"
उर्मिला बोली कि—"कुछ देना कहो,
सेंतमेंत न दृष्टि-फल लेना अहो।
तो तुम्हें अभिषेक दिखलाऊँ अभी,
दृश्य उसका सामने लाऊँ अभी!"
"चित्र क्या तुमने बनाया है! अहा!"
वचन यह सौमित्रि ने सादर कहा।
"तो उसे लाओ, दिखाओ, है कहाँ?
कुछ नहीं, मैं प्रचुर कुछ दूँगा यहाँ॥"
उर्मिला ने मूर्ति बन कर प्रेम की,
दर्प कर मणि-खचित चौकी हेम की।
आप प्रियतम को बिठा उस पर दिया,
और लाकर चित्र-पट सम्मुख किया॥
चित्र भी था चित्र और विचित्र भी,
रह गये चित्रस्थ-से सौमित्र भी।
देख कर भाव-मग्नता, अर्चता,
वाक्य सुनने को हुई [illegible]—

तूलिका सर्वत्र मानों थी खुली,
हँसने ही भाग्य की छाया खुली ।
चित्र के मिस नेत्र-विहगों के लिए—
जाल मोहन-जाल माया थी लिये ॥
दृग-सम्मुख, दृष्टि-रोध न हो जहाँ,
था सभा-मण्डप बना विस्तृत वहाँ ।
मरकतों में मञ्जु मुक्ता थे जड़े,
माँग में जिस भाँति आते हैं गुहे ॥
शीर्ष खम्भों के बने वैदूर्य के,
थे ध्वजों में चित्र कुल-गुरु सूर्य के ।
बज रही थी द्वार-पर जय-दुन्दुभी,
और प्रहरी थे खड़े हर्षित सभी ॥
लटकते छत में लड़ी के गुच्छ थे,
सामने जिनके चमर भी तुच्छ थे ।
पशुपुङ्गों-से पदासन थे पड़े,
और थे काश्मीरों के पाँवड़े ॥
बीच में था रत्न सिंहासन बना,
छत्र और वितान उस पर था तना ।
जानकी के सहित बैठे राम थे,
प्रकट तुलसी और शालग्राम थे ॥
सब सभासद शिष्ट थे नय-निष्ठ थे,
पोसते अभिषेक और वशिष्ठ थे ।
नमित थे युवराज-दम्पति जो झुके,
भाव मानों लोक-भार उठा चुके ॥
वसनों की विविध मणियों की प्रभा,
ज्योतियों से जगमगाती थी सभा ।
सुर-सभा-गृह चित्र इसका ही बड़ा—
व्योमचारी काव्य है क्या जा पड़ा ?
सुध न अपनी भी रही सौमित्र को,
देर तक देखा किये उस चित्र को ।
अन्त में बोले बड़े ही प्रेम से—
"हे प्रिये ! जीती रहो तुम क्षेम से ॥
मञ्जरी-सी अंगुलियों में यह कला !
देख कर मैं क्यों न सुध भूलूँ भला ?
कर-कमल लाओ तुम्हारा चूम कर—
मोद पाऊँ अब मगन-सा झूम कर !"

कर बढ़ा कर, जो कमल-सा था खिला—
मुसकराई और बोली उर्मिला—
"मत्त गज बन कर विवेक न छोड़ना,
कर कमल कह कर न मेरा तोड़ना !"
वचन सुन सौमित्र लज्जित हो गये,
प्रेम-सागर में निमज्जित हो गये ।
पकड़ कर सहसा प्रिया का कर वही
चूम कर फिर फिर उसे बोले यही—
"एक भी अक्षर तुम्हें आती नहीं,
ठीक भी है, यह तुम्हें भाती नहीं ।
समझ इससे अब रहूँगा मैं सदा,
निरक्षरा तुम को कहूँगा मैं सदा ॥
निरक्षरे ! पर चित्र मेरा है कहाँ ?"
उर्मिला बोली कि—"तुम आओ यहाँ
और कुछ ऐसा तुम्हें स्वीकार हो—
तो तुम्हारा चित्र भी तैयार हो !"
"और जो न हुआ ?" गिरा प्रिय ने कही,
"तो पकड़ कर आप मैं दूँगी वही !"
छोड़ कर यों उर्मिला व्यस्त हुई,
और तत्पर कार्य में वह रत हुई ॥
ज्योति-सी सौमित्र के सम्मुख जगी,
चित्र पट पर तूलिका चलने लगी ।
अवयवों की गठन दिखला कर नई,
भाव बन पर कमल-से फूले कई ॥
साथ ही सात्त्विक-सुमन खिलने लगे,
तूलिका के हाथ कुछ हिलने लगे ।
झलक आया स्वेद भी मकरन्द-सा,
पूर्ण भी धारण हुआ कुछ मन्द-सा ॥
चिबुक-रचना में उमङ्ग भरी रही,
रह गई, लेखनी मानो मुड़ी !
एक पीत-वर्ण रेखा-सी बढ़ी,
और वह बन कुछ का कुछ आ रही ॥
हँस पड़े सौमित्र भावों में भरे,
उर्मिला का हाथ था बोला "अरे !"
फिर कहा सौमित्र ने—"देखा, रहो,
बात ही क्या यों हमारी अब न हो ॥

ऊर्म्मिला भी कुछ लजा कर हँस पड़ी,
वह हँसी थी मोतियों की-सी लड़ी।
"बन पड़ी है बात तो" उसने कहा,
"क्या करूँ, वश में न मेरा मन रहा॥
हार कर तुम क्या मुझे देते कहो?
मैं वही दूँ, किन्तु कुछ का कुछ न हो!"
हाथ लक्ष्मण ने तुरन्त बढ़ा दिये,
और बोले—"एक आलिङ्गन प्रिये!"
सिमिट-सी सहसा गई प्रिय की प्रिया,
एक तीक्ष्ण अपाङ्ग भर उसने दिया।
किन्तु आते में उसे प्रिय ने किया,
आप ही फिर प्राप्य अपना ले लिया॥

बीत जाता एक युग पल-सा यहाँ,
सुन पड़ा पर, कुछ कुलाहल-सा वहाँ।
द्वार पर होने लगी विरुदावली,
गुञ्जरित-सी हो उठी गगन-स्थली॥
सूत, मागध, बन्दिजन यश पढ़ उठे,
छन्द और प्रबन्ध नूतन गढ़ उठे।
मुरज, वीणा, वेणु आदिक बज उठे,
विविध वैतालिक सुरस्वर सज उठे॥
दम्पती चौंके, पवन-मण्डल हिला,
चञ्चला-सी चिहुक छूटी ऊर्म्मिला।
तब कहा सौमित्रि ने—"लो अब चलूँ,
आह रुकना किन्तु जो अवसर न दूँ॥

देखने कुल-वृद्धि-सी, सुत आस से—
आ गये कुल-देव भी पाताल से।
दिन निकल आया, विदा दो अब मुझे,
फिर मिले अवकाश देखूँ कब मुझे॥"
ऊर्म्मिला कहने चली कुछ, पर रुकी—
और प्रिय मस्तक पकड़ कर वह झुकी।
भक्ति-सी प्रत्यक्ष भू-नता हुई,
प्रिय कि प्रभु के प्रेम में मग्ना हुई॥
चूमता था भूमितल को अर्द्ध विधु-सा भाल,
बिछ रहे थे प्रेम के दृग जाल बन कर बाल।
छत्र-सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,
हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ॥

इसके आगे? बिदा विशेष,
हुए दम्पती फिर अनिमेष।
किन्तु जहाँ है मनोभियोग—
वहाँ कहाँ का विरह-वियोग!

मैथिलीशरण गुप्त

गुल देना।

स प्रान्त में एक विचित्र चिकित्सा-प्रणाली प्रचलित है। उसका वर्णन मैं सरस्वती के पाठकों को सुनाता हूँ। आशा है, पाठक उस पर विचार करेंगे।

बहुत से व्यवसायी और मज़दूर चार पैसे कमाने के लिए आसाम तथा पूर्वी बङ्गाल जाते हैं। वहाँ वे प्रायः ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ का जल-वायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं। इस दशा में शीघ्र ही वे ज्वर से पीड़ित हो कर रोगी हो जाते हैं। यदि ज्वर शीघ्र न गया तो अन्त में उनकी पिलही बढ़ जाती है। पिलही हर उम्र के आदमियों की बढ़ती है। पर, युवा मनुष्य बहुधा उससे बचे रहते हैं। कभी कभी साधारण ज्वर, कुपथ्य आदि के कारण, विषम-ज्वर हो जाता है और रोगी के पेट में पिलही बढ़ जाती है। ज्वर की कमज़ोरी में चिकनी चीज़ें, घी आदि खा लेने से भी पेट में पिलही हो जाती है।

पिलही बढ़ जाने पर उसे दूर करने के अनेक उपाय किये जाते हैं। उन उपायों में एक उपाय गुल का देना भी है। गुल क्या चीज़ है यह नीचे के वर्णन से विदित होगा—

गुल देना सभी मनुष्य नहीं जानते। किसी किसी गाँव में ही ये लोग मिलते हैं। गुल शनिवार या आदित्यवार को पूर्वाह्न के समय दिया जाता है। पहले रोगी को पश्चिम की ओर सिरहाना करके ज़मीन पर कम्बल या चटाई बिछा कर लिटा

देते हैं। उसके पेट पर (अर्थात् पेट के बाईं ओर जहाँ तिल्ली होती है वहाँ) एक पैसे के बराबर जगह में गाय का घी लगा देते हैं। घी पर पान रखते हैं और पान पर सोलह तह मोटा नया कपड़ा अच्छी तरह भिगो कर रख देते हैं। भीगे हुए कपड़े पर बाँस के पुराने सूप का एक गोल टुकड़ा और उस पर बबूल की लकड़ी की आग रक्खी जाती है। इसके पश्चात् गुल देनेवाला मनुष्य तीन कच्चे केले लेकर रोगी से बहुत दूर बैठ जाता है। वह कुछ पढ़ पढ़ कर केलों को छुरी से टुकड़े टुकड़े करता जाता है। ज्यों ज्यों केले कटते जाते हैं त्यों त्यों रोगी को, आग की गर्मी से, पेट पर, जलन मालूम पड़ने लगती है। उसकी यह जलन धीरे धीरे और भी बढ़ती जाती है। रोगी चिल्लाता है और व्याकुल होकर छटपटाता है। उस समय उसे दो-चार बलवान् मनुष्य अच्छी तरह पकड़े रहते हैं जिससे वह बिलकुल हिल-डुल न सके। अन्त में जब तीनों कच्चे केले टुकड़े टुकड़े होकर कट जाते हैं और और कुछ भी नहीं बचता तब रोगी को छोड़ देते हैं। उस समय रोगी के पेट के ऊपर से ये सब चीज़ें उठा ली जाती हैं। पर विचित्रता यह है कि ये सब चीज़ें ज़रा भी नहीं निकलतीं। सूप से केवल दो गरम जान पड़ती हैं। रोगी के पेट के ऊपर घी लगे हुए स्थान का चमड़ा कुछ झुलसा हुआ अवश्य दिखाई देता है। एक दिन के भीतर ही उतनी जगह में फफोला पड़ जाता है। कहते हैं कि फफोला पड़ते ही रोग कम होने लगता है। फफोला फूट कर वहाँ पर घाव हो जाता है और फिर दस या पन्द्रह दिनों में घाव भी अच्छा हो जाता है। गुल दिलाने से रोगी आराम हो जाता है।

अब सरस्वती के पाठक वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करें और, यदि हो सके तो इस पर अपना विचार भी प्रकट करें। विचार की बात यह है कि जब तक छुरी से केले नहीं काटे जाते तब तक रोगी को जलन नहीं मालूम होती। जलन जब होने लगती है तब जलन के साथ और पीड़ा नहीं। पान तक नहीं मुरझाता। इसका क्या [illegible] है? सर्व-साधारण तो इसे मन्त्र का प्रभाव [illegible] हैं। पर, विज्ञान यहाँ क्या कहता है।

तारिणीप्रसाद
(पीड़पुर-भागल[illegible])

भर्तृहरिनिर्वेद नाटक।

संस्कृत के साहित्यप्रेमी विद्वानों में बहुत कम होंगे जो भर्तृहरि के शतकत्रय-काव्य—अर्थात् शृङ्गार तथा वैराग्य-शतक[illegible] परिचित न हों। राजा भर्तृहरि विद्वान् और पण्डित थे, यह शतकत्रय में प्रौढ़, सरस और हृदयहारिणी कविता से तरह जाना जा सकता है। उनके जीवन [illegible] विशेषतः ज्ञात नहीं। सिंहासन-बत्तीसी ग्रन्थों तथा लोकोक्तियों से इतना तो अवश्य होता है कि ये महाराज विक्रमादित्य के भाई [illegible] एकाएक संसार से विरक्त होकर, राज-पाट छोड़ करने वन को चले गये थे। अपनी विरक्ति का उन्होंने वैराग्य-शतक के आरम्भ में ही इस प्रकार लिखा है—

> [illegible]

इस श्लोक के उद्गार का मूल कारण यह बतलाई जाती है कि एक ब्राह्मण ने बड़ा [illegible] करके अपने इष्टदेव से वरदान में एक ऐसा [illegible] फल का गुण यह था कि उसे खानेवाला [illegible]

रक्ता था। तब ब्राह्मण उसे लेकर अपने घर आया। उसकी स्त्री ने फल को देख और उसके गुण जान कर अपने पति से कहा—

"तुम दरिद्री हो, अमर होकर क्या करोगे? क्या सदा द्री बने रहना ही तुम्हें अभीष्ट है? ऐसा वरदान क्यों गा? अच्छा होता कि धन या और कुछ माँगते, जिससे रा जीवन तो सुख-पूर्वक बीतता। जाओ, इस फल को मर्तृहरि को दो। वह तुम्हें बहुत कुछ देगा"।

निदान ब्राह्मण देवता ने ऐसा ही किया और जा ने बहुत सा धन देकर उसे बिदा किया।

राजा अपनी रानी को अपने प्राणों से भी अधिक ार करता था। उसने सोचा कि रानी यदि फल ा खा ले तो वह अमर हो जाय। प्रेम से अन्ध होने कारण राजा ने फल अपनी रानी को ही दिया ार उसका गुण भी उसे बताया। कहते हैं कि ानी का कोई गुप्त प्रेमी था। रानी ने यह सोचा कि रे अमर होने से मेरे प्रेमी का अमर होना अच्छा । इससे उसने फल उसे दे दिया। उसका प्रेमी क वेश्या पर मुग्ध था। उसने वह फल उसे दिया। ह बड़ी बुद्धिमती थी। उसने विचार किया कि मैं ुलटा अमर होकर क्या करूँगी। अमर होकर ाधिक पाप की गठड़ी ही सिर पर बाँधूँगी। अतः दि राजा को मैं यह फल भेंट करूँ तो मुझे बहुत न मिले। इस प्रकार वह फल फिर राजा ही े पास लौट आया। वेश्या से पूछने पर राजा को ाब हाल मालूम हो गया। इसी से उसे संसार से ाकदम विरक्ति हो गई। एकान्त में जाकर उसने ास फल को स्वयं ही खाया और राज-पाट छोड़ ार से निकल गया।

भर्तृहरि-निर्वेद नाटक में राजा भर्तृहरि की ैरक्ति की कथा और ही प्रकार से वर्णन की गई । पाठकों के चित्त-विनोदार्थ संक्षेप से यह यहाँ ार दी जाती है—

इस नाटक के रचयिता हरिहरोपाध्याय हैं। उनकी जीवनी के विषय में एक संक्षिप्त टिप्पणी निर्णयसागर प्रेस की ओर से दी गई है। इसी प्रेस ने इस नाटक का प्रकाशन किया है। टिप्पणी में लिखा है—हरिहरोपाध्याय का जन्म मिथिला-प्रान्त में हुआ, पर कब हुआ इसका कुछ भी निश्चय नहीं। इस नाटक की एक प्रति मैथिली-लिपि में लिखित ग्रन्थ से लिखा कर पण्डित चेतनाथ शर्मा मैथिल ने हमारे पास भेजी। उसी के आधार पर यह पुस्तक मुद्रित की गई है। यहीं हरिहरोपाध्याय का बनाया हुआ एक सुभाषित ग्रन्थ भी मिथिला में वर्तमान है। हरिहरोपाध्याय के विषय में इससे अधिक और कुछ भी ज्ञात नहीं।

कवि ने ग्रन्थ का प्रारम्भ इस प्रकार किया है—

जब राजा भर्तृहरि बहुत दिन पीछे बाहर से अपने घर आये तब उनकी रानी भानुमती सम्भ्रम के साथ उनसे मिलने को उठी। उसके मुख की छवि को मानसिक चिन्ता से मलिन देख राजा ने अपने मन में इसका कारण यों समझा—

> चिरविरचितमपुरयितमुग्धमितमूर्तं वदनमस्याः।
> निगदति निरवधिचिन्तासन्तापितमान्तरं तन्व्याः॥

उसने रानी से पूछा—प्रिये! तुम उदास क्यों हो? साथ ही अपनी गाढ़ी प्रीति के सूचक कई एक चाटु-वाक्य भी उससे कहे, जिनका उत्तर रानी ने इस प्रकार दिया—

> अज्जउत्त! अलियं क्खु एदम। अण्णधा कह एतिमं कालं निरप्पहो सो मविम अण्णत्थ गमेसि। वाक्खु जावदि अज्जउत्तो कं कदं पि असहदं मम जीविदं तुह विओअस्स"।

> (संस्कृत) आर्यपुत्र, अलीकं खल्वेतत्। अन्यथा कथमेतावन्तं कालं निरपुक्रोशो मूत्वाऽन्यत्रागमयेः। न खलु जाना-म्यार्यपुत्रो कथमसहनं मम जीवितं तव वियोगस्य।

यह कह कर वह रोने लगी।

राजा ने कहा—प्रिये, मैं एक ज्योतिषी के बताये हुए दुष्टदशान्तर के शास्त्रीय अनुष्ठान करवाने के लिए गङ्गाजी के तट पर गया था। वहाँ

राजा को रोकने में वह समर्थ न हो सकी। राजा जब बाहर निकला तब रोती हुई रानी भी उसके पीछे पीछे दरवाज़े तक गई और उसे उस समय तक देखती रही जब तक वह आँखों की ओट न हो गया।

राजा ने मृगया-स्थल से अपने एक विश्वासपात्र नौकर के द्वारा अपने मरने का अलीक समाचार रानी के कान तक पहुँचाने का प्रपञ्च रचा। उसने सोचा कि देखें मेरे मरने का समाचार सुन कर वह क्या करती है। राजा के आने के कुछ ही घण्टों बाद एक मनुष्य यह भयङ्कर समाचार राजा के महलों में ले आया कि घायल सिंह के द्वारा राजा मारा गया। इस दुःखद समाचार को सुनते ही रानी भानुमती, जैसा कि उसने राजा से कहा था, अपने आपको न सँभाल सकी। उसका हृदय विदीर्ण हो गया और वह विरहानल में अपने प्राणों की आहुति देकर इस असार संसार से कूच कर गई। उसकी प्रशंसा में उसकी दासियों ने कहा—

अश्लीकं प्रियमरणं श्रुत्वा मृतायास्तव कीर्त्यां।
कर्पूरवर्तिरिव भवनस्य प्रकाशितमण्डला॥

रानी का शव जब श्मशान को जा रहा था तब राजा भी आखेट से लौटा। उसका वाम अङ्ग फड़कने लगा; और भी कई एक अपशकुन हुए। इतने में व्याकुल होकर दौड़ता हुआ एक प्यादा उसके पास आया और बोला—

"महाराज! महारानी"—

राजा ने अधीर होकर पूछा—"कह तो, महारानी को क्या हुआ"?

उसने उत्तर दिया—"महाराज का सिंह के आघात से मारा जाना सुनते ही महारानी का प्राण-पखेरू उड़ गया"।

यह अनिष्ट समाचार सुनते ही राजा को मूर्छा आ गई। कुछ देर बाद चेत होने पर वह बोला—

आसा एव परं न पङ्कजदृशो देहाद् बहिर्निर्गता।
गेहाद् भर्तृहरेर्गता विधिहता हा भीषणोत्सवाः॥

कैसा हृदयविदारक विलाप है!

यह कह कर राजा फिर मूर्छित हो गया और बहुत देर बाद होश में आया। यह जान कर कि रानी का शव चिता में जलाने के लिए श्मशान-भूमि को जा रहा है राजा को बड़ा शोक हुआ। वह बोला—

हन्त! हन्त! मैवम्।
अस्याः स्निग्धशिरीषकेसरशिखा स्पर्शक्षमाभिश्रितुं,
प्रोद्यत्पल्लवमालिता बत चिता काष्ठाचिता भाविता।
मद्देहोऽपि चिरं भवत्यभिहिता भस्मसमत्वापत्स्यता—
कल्पान्तस्मरहो बतलुः स्नेहोन्नते होष्यति॥

राजा भर्तृहरि रानी के विरह से इतना शोकाकुल और अधीर हो गया कि श्मशान में जाकर वह पागल की तरह उसके शव से लिपट गया और उसका दाह न करने के लिए उसने आज्ञा दी। उसके मन्त्रियों, परिजनों और बान्धवों ने बहुत कुछ उसे समझाया, पर उसने न माना। कारण यह था कि प्रणय की परीक्षा करके उसने अपने आप ही रानी को खोया था। इससे उसे असीम पश्चात्ताप और दुःख हुआ। यहाँ तक कि जब शव को लोगों ने बलात् चिता पर रख दिया तब राजा भी स्वयं चिता पर कूदने को दौड़ा। तब उसके प्रधान मन्त्री देवतिलक ने बड़ी कठिनता से उसे रोका।

जब राजा का शोक कुछ कम न हुआ तब एक सेवक ने मन्त्री से कहा—

"महाराज, एक योगिराज यहाँ कुछ दूर पर विद्यमान हैं। कदाचित् उनके ज्ञानोपदेश से राजा को कुछ आश्वासन मिले"।

मन्त्री तुरन्त उनके पास गया। इधर राजा फिर उच्च स्वर से विलाप करने लगा। इतने ही में योगिराज के मुख से ये वचन सुन पड़े—

"अरी मेरी हँडिया! तू कहाँ गई? हा निर्दयी

योगीश्वर—राजन्, तुमको अति शोकाकुल देख दयावश मैंने यह प्रपञ्च रचा था।

राजा ताड़ गया, ये और कोई नहीं, महात्मा गोरक्षनाथजी ही हैं। अतएव वह तुरन्त उनके पैरों पर गिर पड़ा और विनीत होकर बोला—

"महात्मन्, अब आप मेरे गुरु हैं। मुझे ज्ञानोपदेश कीजिए, जिससे फिर ऐसे अज्ञानान्धकार में मैं न पड़ूँ"।

गोरक्षनाथ ने कहा—

सङ्कल्पानल्पजल्पापि संसृतिरभूदेषा विषोपमन्यम्—
त्स्वान्तश्चेद्विनिवृत्तिमिच्छसि तदैतन्मूलमुन्मूलय।
नावच्छिन्नमनोवृत्ता न च दिशा मद्गुभक्त सच्चिन्मयं,
तत्त्वं तत्त्वमिदं विचिन्तय परानन्दं पदं प्राप्स्यसि॥

इस उपदेश को सुन कर राजा ने विचार किया कि यहीं कहीं एकान्त में ध्यानमग्न होकर ब्रह्म-विचार-परायण होऊँ। निदान कुछ समय तक ध्यानावस्थित होने पर राजा को बड़ी शान्ति प्राप्त हुई। तब योगिराज के समीप आकर वह बोला—

"विज्ञानसुख का मुझे कुछ कुछ अलौकिक आनन्द प्राप्त हो रहा है"।

योगिराज ने उत्तर दिया—

"अभ्यास से पूर्णानन्द की प्राप्ति होगी। समय आने दो, मैं अष्टाङ्ग हठयोग का उपदेश करूँगा"।

राजा—(प्रसन्न होकर) "महाराज, यह तो आपकी बड़ी ही कृपा होगी"।

इतना कह कर वह गोरक्षनाथ के पैरों पर गिर पड़ा।

देवतिलक मन्त्री यह सारा चरित्र दूर से देख रहा था। उसने समझा कि योगिराज के समझाने बुझाने से राजा का शोक दूर हो गया है और वह सांसारिक कार्यों में फिर प्रवृत्त होगा। अतएव समीप आकर वह बोला—

"महाराज, रानी के शव का अग्निसंस्कार करने के लिए आज्ञा दीजिए"।

परन्तु राजा कुछ न बोला। वह मौन ही धारण किये रहा। मन्त्री ने जब उससे उत्तर के लिए आग्रह किया तब वह हँस कर बोला—

"अरे, आज्ञा देने का अवसर अब निकल गया। क्योंकि—

यस्मादासीन्ममत्वं मम त्वं—
मन्त्री राजा चाहमेतत्परत्र।
श्रीगुर्वाज्ञामन्त्रसर्वोपसिद्धेः
स व्यामोहो मे समूलो विनष्टः॥

अर्थात्—जिस व्यामोह के कारण संसार में मेरे तेरे आदि का ममत्व था, श्रीगुरुदेव के उपदेश से अब वह समूल नष्ट हो गया है।

तब देवतिलक ने गोरक्षनाथ की ओर देख कर कहा—

"महात्मन्, यह तो आपने मानो बिच्छू के विष को दूर करने के लिए सर्प से हमारे महाराज को डसवा दिया"।

योगिराज—मन्त्री, मुझे क्यों उलहना देता है! तू ही राजा के वैराग्य को हटा। मैं भी तेरी बातों का अनुमोदन करूँगा।

निदान राजा और देवतिलक में बड़ा लम्बा-चौड़ा संवाद हुआ। मन्त्री ने राज्य, ख़ज़ाना और राज्य-लक्ष्मी आदि की प्रशंसा करके राजा का चित्त उनकी ओर आकृष्ट करना चाहा। पर राजा की तीव्र विरक्ति को इससे कुछ भी आघात न पहुँचा। अन्त में हार मान कर उसने योगिराज का ही आश्रय लिया। तब गोरक्षनाथजी ने कहा—

"राजन्, आओ, तुम्हारी जिस प्राण-वल्लभा के वियोग से तुम्हें यह उत्कट वैराग्य पैदा हुआ है उसे अपने योग-बल से मैं जिला दूँ, और तुम्हारा वैराग्य जाता रहे"।

योगिराज ने यह बात कर दिखाई। पुनर्जीवित रानी भानुमती एकान्त में राजा भर्तृहरि के सामने आ खड़ी हुई और बोली—

करूँ" ? राजा ने कहा—"प्रभो, जो उपकार आपने मेरी अन्तर्दृष्टि को खोल कर अभी कर दिया है उससे बढ़ कर और क्या हो सकता है" ?

अन्त में गोरक्षनाथ के इस आशीर्वाद के साथ ग्रन्थ समाप्त होता है—

साधोः सिध्यतु कार्य्यमृध्यतु चिरं राज्यं प्रजारञ्जना-
लक्ष्मीरक्षतपक्षपातमधुरा भूयादुदारात्मनाम्।
त्वद्बोधापगमागतास्य सुहृत्सम्बोधसम्पादिनी-
रस्मिन् हरिहरौ परीक्षितगुणा प्रीयात गीर्गौरवम्॥

लीलानन्द जोशी
(राय-साहब)

सत्य।

(१)

सत्य-स्नेही बने सत्य का दम भरते थे; प्राण जायँ या रहें न कुछ परवा करते थे।
किन्तु न सत्पथ त्याग असत्पथ पद धरते थे; जीते थे हम तभी सत्य पर जब मरते थे॥
उर में ममता धाम, धन, जन की हम धरते न थे।
एक सत्य ही के लिए क्या क्या क्षति करते न थे॥

(२)

अविकम्पित था एक सत्य पर ज्ञान हमारा; विचलित पल भर था न सत्य से ध्यान हमारा।
और किसी भी तरह नहीं था त्राण हमारा, जीवन, धन, सर्वस्व सत्य था प्राण हमारा॥
निरङ्कुश थे व्यवहार सब कुटिल चाल चलते न थे।
ध्रुव टल जाता, किन्तु हम निज प्रण से टलते न थे॥

(३)

कभी पिछड़ते थे न सत्य पर जब अड़ते थे; ताल ठोंक कर काल बली से हम लड़ते थे।
पर न कदापि असत्य-मार्ग में पद पड़ते थे; देश देश में तभी सुयश झण्डे गड़ते थे॥
सत्यनिष्ठता में तभी भारत का सम्मान था।
अमरपुरी तक में हुआ गुण-गौरव का गान था॥

(४)

दूर असत्य से और सजग हुए भागते थे; जगत्य और न रङ्ग रङ्ग ऐसा रँगते थे।
दम्भ, कपट, छल से न किसी को हम ठगते थे, "वचन-भ्रष्ट" थे वचन वज्र ही से लगते थे॥
लाज न जाती थी कभी सर जाता स्वीकार था।
सत्य-व्रत प्रतिपालते मर जाना स्वीकार था॥

(५)

वैरी से भी नहीं असत्य को हम कहते थे; परम-पुण्य-मय काम इसी को हम कहते थे।
चारों तरफ़ वितान सत्यता के तनते थे; द्वार द्वार पर सुयश-दमामे तब बजते थे॥
हा हन्त! वही हम अब हुए सुखद सत्य से दूर हैं।
मिथ्या प्रपञ्च से हो गये दूर दूर मशहूर हैं॥

(६)

अगर कहो यह कि वे सत्य-युग की बातें थीं, तब तो दिन ही और और ही कुछ रातें थीं।
भोले भाले लोग न सत्य थी वे घातें थीं; उनको अब थे स्वजन, न थी घातें पातें थीं॥

(१७)

सत्य कहने से लोग रुष्ट मन में आते हैं; प्रकृति धर्म है, नीच दुष्ट हैं, बतलाते हैं।
पक्षपात से पूर्ण हृदय में भरमाते हैं; अवसर पाकर हिंस्र जन्तु से चढ़ आते हैं॥
जहाँ इस तरह से मनुज अनृत-प्रेम में चूर हों।
क्यों न प्रकृति-प्रिय कवि वहाँ भी भूले मशहूर हों॥

(१८)

सँभलो भारत-बन्धु अभी कुछ नहीं गया है, बहुत लोग हैं अभी सत्य की जिन्हें दया है।
सत्य-पूर्ण है हृदय साथ ही साथ दया है; चढ़ा न उन पर कभी झूठ का रङ्ग नया है॥
अभी तुम्हारे सामने ये उत्तम आदर्श हैं।
सत्य-भक्त निर्भीक से पाते मन में हर्ष हैं॥

(१९)

गहो सत्य को मित्र! कपट मिथ्या को त्यागो, कुछ पैशाचिक कर्म समझ कर उससे भागो।
माया में मत फँसो मोह-निद्रा को त्यागो, जागो जागो बन्धु! भला अब तो तुम जागो॥
हरिश्चन्द्र से स्वर्ग में तुम्हें देख दुख पा रहे।
सद्बोधन हैं कर रहे, अश्रु बहाते जा रहे॥

"सनेही"

आधुनिक हिन्दी कविता।

दुःख की बात है कि हमारे जिन पूर्वजों ने ज्ञान और कला की प्रायः प्रत्येक शाखा में चमत्कारिणी उन्नति की थी उन्हीं की सन्तान हम लोगों को आज अच्छी और बुरी कविता का अन्तर नहीं जान पड़ता। अच्छी कविता के अभाव का आरम्भ तो उसी समय से हो गया है जब यह दोहा लिखा गया था कि "अब के कवि खद्योत सम", इत्यादि; परन्तु आज कल तो अच्छी कविता क्वचित् ही मिलती है। "खड़ी बोली" की कविता का आरम्भ हुए लगभग पचीस वर्ष हो गये, पर दो एक को छोड़ कर न तो इसके और कवियों ने प्रसिद्धि पाई और न ऐसी कविता बनी जो तुलसीदास की चौपाइयों के समान कहावतों में प्रचलित होती। इस बात के कई प्रमाण हैं कि आज कल की अधिकांश कविता लोक-प्रिय नहीं है। पञ्चम साहित्य-सम्मेलन के एक लेख से तो यह जान पड़ता है कि अभी तक हमें यही नहीं मालूम कि कविता किस "ढँग" की होनी चाहिए। दस-बारह वर्ष पहले सरस्वती में दो चित्रों के रूप में पुरानी और नई कविताओं के चित्र छपे थे वे भी इसी बात के द्योतक थे कि आधुनिक हिन्दी कविता में "चोख मसा", "लोल मसा" और "लाईम लिखा" की भरमार रहती है।

हिन्दी कविता की इस अधोगति का कारण ठीक ठीक समझ में नहीं आता। कोई कोई तो यह कहते हैं कि वर्तमान युग कविता के लिए अनुकूल नहीं है, क्योंकि आज कल लोगों की बुद्धि प्रबल हो गई है, इसलिए वे लोग कविता को केवल कवियों के चोचले समझते हैं। और देशों तथा प्रदेशों की बात तो हम नहीं कह सकते; पर बङ्गाल में सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर महोदय ने अपनी अपूर्व कविता से इस मत का खण्डन कर दिया है। इसलिए अब हमें हिन्दी कविता की अवनति के दूसरे ही कारण खोजने चाहिए। इनमें से एक कारण तो यह जान पड़ता है कि अभी तक हिन्दुस्तानियों को अपनी मातृ-भाषा पर श्रद्धा नहीं हुई। जिस प्रकार विद्यार्थी किसी भाषा का नया शब्द, वाक्यांश, अथवा वाक्य सीख कर अपनी बोलचाल में "येन केन प्रकारेण" उसका प्रयोग कर देते हैं उसी प्रकार हमारे हिन्दी-भाषी भाई उर्दू अथवा अँगरेज़ी भाषा बोलने में

कैसा क्यों न हो, पर यह बात स्पष्ट दिखाई देती है कि इसकी उत्पत्ति परिस्थिति की किसी विशेष और स्वाभाविक कारण से नहीं हुई। कहने का सारांश यही है कि हिन्दी में आज कल सामयिक के बदले बहुधा असामयिक कविता बहुत होती है। यदि कवि लोग किसी विषय पर कविता लिखने के पूर्व दो बार यह सोच लिया करें कि हम यह कविता लिख कर कौन सा हित-साधन करने वाले हैं तो हिन्दी में बहुत सी तुकबन्दियों के दर्शन और श्रवण का अवसर कम आया करे।

कुछ लोगों का यह मत है कि हिन्दी की बहुत सी तुकबन्दी की जड़ खड़ी बोली है। इसमें सन्देह नहीं कि तुकबन्दी करने वालों को खड़ी बोली से बड़ी सहायता मिली है, जिससे लोगों को यह अनुमान हो गया है कि खड़ी बोली तुकबन्दों के लिए और ब्रजभाषा भावपूर्ण कविता के लिए उपयुक्त है। नहीं कह सकते कि यदि खड़ी बोली का प्रचार न होता तो ये तुकबन्द जन्म लेते या नहीं, पर ब्रजभाषा के राज में भाषा की क्लिष्टता अथवा और किसी कारण से बहुधा वही लोग कविता करते थे जो श्रोताओं का मनोरञ्जन किसी अंश में कर सकते थे। श्रोता का अभाव जितना इस समय है उतना पहले न था, यद्यपि आज कल पहले की अपेक्षा अधिक विषयों पर कविता बनती है। यथार्थ में तुकबन्दी अथवा भावपूर्ण कविता किसी विशेष भाषा के कारण नहीं होती, क्योंकि प्रबन्ध-रचना में भाव मुख्य और भाषा गौण है।

तुकबन्दी को उत्तेजना देने के अपराधी कई एक सम्पादक हैं जिन्हें अपने समाचारपत्र के लिए सामग्री के अभाव में किसी भी लेख को स्थान देने की आवश्यकता होती है। बहुत सी तुकबन्दियों का प्रचार समाचारपत्रों ही के द्वारा होता है, इसलिए यदि इनके सम्पादक भद्दी कविता का तिरस्कार कर दिया करें तो बहुत से नवयुवक अपनी बुद्धि का उपयोग किसी दूसरे प्रकार से करने लगें। आज कल तो बहुधा ऐसा होता है कि यदि किसी कविता को कोई एक सम्पादक नहीं छापता है तो दूसरा झट उसे छाप देता है। कई कवितायें विशेष कारणों से समाचारपत्रों में छापी जाती हैं। किसी के छपने से ग्राहकों की वृद्धि होती है, किसी के छपने से लेखों की सहायता मिलती है, और किसी के छपने से नवयुवक लेखकों का उत्साह बढ़ता है। इस दशा में एक के लाभ के लिए सारे समाज की हानि होती है, जिसे बचाना सम्पादक का मुख्य कर्त्तव्य है।

हिन्दी में समालोचकों की संख्या कम होने से भी तुकबन्दी की बढ़ती हो रही है। जो लोग विदेशी भाषा की पुस्तकों के गुण-दोष निकालने की योग्यता रखते हैं वे अपनी उदासीनता और अदूरदर्शिता के कारण अपनी विद्या का लाभ अपनी मातृ-भाषा को नहीं पहुँचा सकते। कई लोग इस विषय में ऐसे उदासीन हैं कि वे समालोचना करना अपनी प्रतिष्ठा की हीनता समझते हैं। कई लोग ऐसे तीव्र समालोचक हैं कि वे किसी भी कवि को तुलसीदास और किसी भी लेखक को सर वाल्टर स्काट की उपाधि देने को तैयार रहते हैं। हिन्दी में इतनी धाँधली मची हुई है कि हर कोई अपने को कवि और लेखक बनने का स्वतन्त्र अधिकारी समझता है और मनमानी रचना करके भाषा का गला घोंटता है। अराजकता के समय जिस प्रकार रिसाले का धाँइस भी राजा बनने की स्पर्धा करता है उसी प्रकार हिन्दी की वर्त्तमान अवस्था में एक कम्पाजिटर भी लेखक और कवि कहलाने का दावा करता है। ये चिह्न उन्नति-सूचक अवश्य हैं, पर इस प्रवृत्ति को उचित मार्ग और नियत सीमा में रखने के लिए एक ऐसे भाषा-शासक की आवश्यकता है जिसके बिना हिन्दी में पत्ता न हिल सके। क्या ही अच्छा हो यदि कोई नागरीप्रचारिणी सभा एक "समालोचक" पत्र निकालने का प्रबन्ध करके हिन्दी की अराजकता में शान्ति स्थापित करे।

अब हम कुछ उन गुणों का उल्लेख करते हैं जो स्वयं कवि में आवश्यक हैं और जिनकी सहायता से वह अच्छी कविता लिखने में समर्थ हो सकता है। ये गुण ये हैं—

(१) देश, काल और पात्र का ज्ञान।
(२) विषय की नवीनता।
(३) अलङ्कारों की नवीनता।
(४) कर्त्तव्य का ज्ञान।
(५) सहानुभूति और सहृदयता।
(६) समता का पालन।

इन सब गुणों के समर्थन में हम यहाँ प्रसिद्ध कवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त का एक पद्य उद्धृत करते हैं और उसकी कुछ सुन्दरता दिखाकर इस लेख को समाप्त करते हैं—

हिम-कण (१)।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।

हिमकण। (१)

इंडियन प्रे., प्रयाग।

इनमें से दो कण भी एक से नहीं। सब की बनावट भिन्न भिन्न है। ये कण फूलों की तरह, पत्तियों की तरह, तथा भिन्न भिन्न प्रकार के नक्शों की तरह होते हैं। किन्तु विचित्रता यह है कि सभी में केवल छः कोने होते हैं, न कम, न ज़ियादह। एक और भी विचित्र बात यह है कि इन कणों के तमाम कोने एक ही सतह पर होते हैं। इससे ये कण काग़ज़ की तरह बड़े महीन होते हैं। इस संख्या में कुछ कणों के चित्र दिये जाते हैं, जिनको देखने से पता लग जायगा कि ये कण कितने सुन्दर और सुहावने होते हैं।

कुछ कण चिकने और कुछ खुरखुरे होते हैं। चिकने कण कम सर्दी में बनते हैं और खुरखुरे अधिक सर्दी में। सर्दी के कणों में जब किसी कण के बीच का भाग कड़ा हो जाता है और उसके कोने कुछ अधिक फ़ासले पर बनते हैं तब उसकी शक्ल बड़ी ही सुहावनी बन जाती है।

हिम के इन कणों की बाहरी बनावट के अतिरिक्त, इनकी भीतरी बनावट भी बड़ी विचित्र और सुन्दर होती है। सर्दी पाकर जब ये कण पानी से हिम बनते हैं तब आकाश में इनके चारों ओर वायु रहती है। वह वायु, हिम जमने के समय, इन कणों में घुस जाती है। इससे, आकार में, कण बढ़ जाते हैं और उनकी भीतरी सूरत बड़ी सुन्दर हो जाती है।

इन कणों की शक्ल-सूरत पर मोहित होने के अतिरिक्त हम इनसे लाभ भी उठा सकते हैं। चित्रकार, छींट रँगनेवाले और बेलबूटे बनाने वाले इन कणों से गुरु का काम लेते हैं। नये नये प्रकार के असंख्य नमूने उन्हें इन हिम-कणों के चित्रों से मिल सकते हैं।

जगन्नाथ खन्ना, बी० एस-सी०
(लन्दन)

पञ्च परमेश्वर।

जुम्मन शेख़ और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी। साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गये थे तब अपना घर अलगू को सौंप गये थे। और, अलगू जब कभी बाहर जाते जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता; केवल विचार मिलते थे; और मित्रता का यही मूलमन्त्र है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ जब दोनों मित्र बालक ही थे और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमेराती, उन्हें शिक्षा-प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की—ख़ूब रिकाबियाँ माँजीं, ख़ूब प्याले धोये। उनका हुक़ा एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था। क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घण्टे तक किताबों से मुक्त कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचारों के पुरुष थे। शिक्षा की अपेक्षा उन्हें गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वे कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है गुरु के आशीर्वाद से होता है; बस गुरुजी की कृपा-दृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमेराती शेख़ के आशीर्वाद अथवा सत्सङ्ग का कुछ फल न हुआ तो वह यह मान कर सन्तोष कर लेगा कि विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रक्खी; विद्या उसके भाग ही में न थी तो कैसे आती?

मगर जुमेराती शेख़ स्वयं आशीर्वाद के क़ायल न थे। उन्हें अपने सोंटे पर अधिक भरोसा था। और, उसी सोंटे के प्रताप से आज आस-पास के गाँवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रिहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी क़लम

के से बाल। अब इतनी सामग्रियाँ एकत्र हों तब हँसी क्यों न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीन-वत्सल पुरुष बहुत कम थे जिन्होंने उस अबला के दुखड़े को गौर से सुना हो और उसकी सान्त्वना की हो। चारों ओर से घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई। लाठी पटक दी और दम लेकर बोली—

"बेटा तुम भी छन भर के लिए मेरी पञ्चायत में चले आना"।

अलगू—"मुझे बुला कर क्या करोगी? कई गाँव के आदमी तो आवेंहीगे।"

ख़ाला—"अपनी विपद तो सब के आगे रो आई हूँ। आने न आने का अख़तियार उनको है। हमारे ग़ाज़ी मियाँ गाय की गुहार सुन कर पीढ़ी पर से उठ आये थे। क्या एक बेकस बुढ़िया की फ़रियाद पर कोई न दौड़ेगा?"

अलगू—"यों आने को मैं आ जाऊँगा। मगर पञ्चायत में मुँह न खोलूँगा।"

ख़ाला—"क्यों बेटा?"

अलगू—"अब इसका क्या जवाब दूँ? अपनी ख़ुशी। जुम्मन मेरे पुराने मित्र हैं। उनसे बिगाड़ नहीं कर सकता"।

ख़ाला—"बेटा क्या बिगाड़ के डर से ईमान की बात न कहोगे"?

हमारे सोये हुए धर्म-ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाय, उसे ख़बर नहीं होती। परन्तु ललकार सुन कर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई जीत नहीं सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सके। पर उनके हृदय में ये शब्द गूँज रहे थे—"क्या बिगाड़ के भय से ईमान की बात न कहोगे"।

(४)

सन्ध्या-समय एक पेड़ के नीचे पञ्चायत बैठी। शेख़ जुम्मन ने पहले ही से फ़र्श बिछा रक्खा था। उन्होंने पान, इलायची, हुक़्क़े, तम्बाकू आदि का प्रबन्ध भी किया था। हाँ वे स्वयं अलबत्ते अलगू चौधरी के साथ ज़रा दूर बैठे हुए थे। जब कोई पञ्चायत में आता था तब दबे हुए सलाम से उसका "शुभागमन" करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिड़ियों की कलरव-युक्त पञ्चायत पेड़ों पर बैठी तब यहाँ भी पञ्चायत शुरू हुई। फ़र्श की एक एक अङ्गुल ज़मीन भर गई। पर अधिकांश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयों में से केवल वही लोग पधारे थे जिन्हें जुम्मन से कुछ अपनी कसर निकालनी थी। एक कोने में आग सुलग रही थी। नाई तामड़ तोड़ चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलों से अधिक धुआँ निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर उधर दौड़ रहे थे। कोई आपस में गाली गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ़ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते, इस जमाव को भोज समझ कर, झुण्ड के झुण्ड जमा हो गये थे।

पञ्च लोग बैठ गये तो बूढ़ी ख़ाला ने उनसे विनती की।

"पञ्चो! आज तीन साल हुए मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे हीन-हयात रोटी-कपड़ा देना क़बूल किया था। साल भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटे। पर अब रात-दिन का रोना नहीं सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हूँ। कचहरी दरबार कर नहीं सकती। तुम्हारे सिवा और किसे अपना दुःख सुनाऊँ। तुम लोग जो राह निकाल दो उसी राह पर चलूँ। अगर मुझ में कोई बुराई देखो, मेरे मुँह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन में बुराई देखो तो उसे समझाओ। क्यों एक बेकस की आह लेता है? पञ्च का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। तुम्हारा हुक्म सर-माथे पर चढ़ाऊँगी"।

रामधन मिश्र, जिनकी कई असामियों को जुम्मन

कर रहा था। इतनी ही देर में ऐसी काया-पलट हो गई कि मेरी जड़ खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनों की दोस्ती कुछ भी काम न आयेगी?

जुम्मन शेख़ तो इसी सङ्कल्प-विकल्प में पड़े हुए थे कि इतने में अलगू ने फ़ैसिला सुनाया—

"जुम्मन शेख़! पञ्चों ने इस मामले पर विचार किया। उन्हें यह नीति-सङ्गत मालूम होता है कि ख़ाला-जान को माहवार ख़र्च दिया जाय। हमारा विचार है कि ख़ाला की जायदाद से इतना मुनाफ़ा अवश्य होता है कि माहवार ख़र्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फ़ैसिला है। अगर जुम्मन को ख़र्च देना मञ्जूर न हो तो हिबानामा रद समझा जाय—"

(५)

सुनतेही जुम्मन सन्नाटे में आ गये। जो अपना मित्र हो वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे! इसे समय के हेर-फेर के सिवा और क्या कहें! जिस पर पूरा भरोसा था उसने समय पड़ने पर धोखा दिया! ऐसे ही अवसरों पर झूठे-सच्चे मित्रों की परीक्षा हो जाती है! यही कलियुग की दोस्ती है! अगर लोग ऐसे कपटी, धोखेबाज़ न होते तो देश में आपत्तियों का क्यों प्रकोप होता! यह हैज़ा, प्लेग आदि व्याधियाँ दुष्कर्मों के दण्ड हैं!

मगर रामधन मिश्र और अन्य पञ्च अलगू चौधरी की इस नीति-परायणता की प्रशंसा जी खोल कर कर रहे थे। वे कहते थे—इसका नाम पञ्चायत है! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया! दोस्ती दोस्ती की जगह है, मगर धर्म का पालन करना मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियों के बल पृथ्वी ठहरी हुई है, नहीं तो वह कब की रसातल को चली जाती।

इस फ़ैसिले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड़ हिला दी। अब वे साथ साथ बातें करते नहीं दिखाई देते। इतना पुराना मित्रतारूपी वृक्ष सत्य का एक झोंका भी न सह सका। सचमुच वह बालू ही की ज़मीन पर खड़ा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक दूसरे की आव-भगत ज़ियादह करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह जैसे तलवार से ढाल मिलती है।

जुम्मन के चित्त में मित्र की कुटिलता आठों पहर खटका करती थी। उसे हर घड़ी यही चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

(६)

अच्छे कामों की सिद्धि में बड़ी देर लगती है। पर बुरे कामों की सिद्धि की यह बात नहीं। जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर से बैलों की एक बहुत अच्छी गोईं मोल लाये थे। बैल भी पछाईं जाति के सुन्दर, बड़े बड़े सींगों वाले, थे। महीनों तक आस-पास के गाँवों के लोग उनके दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पञ्चायत के एक ही महीने बाद इस गोईं का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तों से कहा—"यह दग़ाबाज़ी की सज़ा है। इनसान सब्र भले ही कर जाय, पर ख़ुदा नेक-बद सब देखता है।" अलगू को सन्देह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन ही पर इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा, जुम्मन ने कुछ कर करा दिया है। चौधराइन और करीमन में इस विषय पर एक दिन ख़ूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनों देवियों ने शब्द-बाहुल्य की नदी बहा दी। व्यङ्ग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलङ्कारों में बातें हुईं। जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उसने अपनी पत्नी को डाँट डपट कर समझा दिया। वे उसे उस रण-भूमि से हटा भी ले गये। उधर अलगू

का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।

प्रेमचन्द

मनुष्य-जीवन और पुरुषार्थ ।

[लेखक, बाबू जगन्मोहन वर्म्मा]

लोके पशुसम मूर्खश्च निर्विवेकमती समौ ।

जीवन से बढ़ कर संसार में कोई बहुमूल्य और दुर्लभ पदार्थ नहीं। सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति ही मनुष्य का एकमात्र पुरुषार्थ है। जीवन होने से ही मनुष्य इन बातों के लिए प्रयत्न कर सकता है। संसार के सभी प्राणियों की यह इच्छा प्रबल रहती है कि हम दीर्घायु हों। सब लोग, जिन्हें समझ है, जानते हैं कि संसार की सारी सम्पत्ति खर्च करने पर भी कोई किसी की आयु को एक पल भी नहीं बढ़ा सकता। इतना बहुमूल्य पदार्थ पाकर भी मनुष्य इसको कहाँ तक उपयोगी बनाता है, इसके द्वारा अपने और पराये हित के लिए कितना काम करता है, इस पर जब हम दृष्टिपात करते हैं तब आश्चर्य में डूब जाते और अवाक् होकर रह जाते हैं। यह पदार्थ इतना बहुमूल्य है कि इसकी बराबरी सारे संसार की सम्पत्ति और ऐश्वर्य मिल कर नहीं कर सकते। लोग जान बूझ कर ऐसी चीज़ का इस प्रकार दुरुपयोग करते हैं मानों वह उन्हें पानी के भाव—बिना मूल्य—मिलती है। फिर भी गर्व यह कि हम संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं।

हमने कितनों को यह कहते सुना है कि मनुष्य का जीवन परिमित है। इसमें वह कर ही क्या सकता है? उसे सैकड़ों काम हैं। किसे करे, किसे न करे। ऐसे लोग जीवन भर समय की कमी का रोना रोया करते हैं। हृदय की दुर्बलता के कारण अपना पेट पालने के सिवा और कुछ नहीं कर सकते।

कितने ही लोगों का सिद्धान्त है कि सुख-दुःख और सफलता-निष्फलता, दैव या भाग्य के अधीन हैं। वे कहते हैं कि मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। वह अपने भाग्य या दैव के हाथ का खिलौना मात्र है। भाग्य उसे जैसा चाहता है वैसा नाच नचाता है। सुख और सफलता यदि उसके भाग्य में बदी हो तो मिलेगी, अन्यथा नहीं। यदि उसके भाग्य में दुःख और अकृतकार्य्यता लिखी है तो वह संसार में दुःख ही भोगता और किसी काम में कृतकार्य्य नहीं होता। ऐसे लोग बड़े ही साहसहीन और आलसी होते हैं। वे अपने जीवन को निठल्लुओं की तरह व्यतीत करते हैं। ऐसे लोग आज ही कुछ नहीं पाये जाते, हमारे देश के दुर्भाग्य से ये पुराने समय से होते चले आये हैं। इन महात्माओं का सिद्धान्त है—

> आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्यानिधनमेव च ।
> पञ्चैतानीह सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥

ऐसे पुरुषार्थहीनों ने केवल अपनी ही हानि नहीं की है किन्तु इनसे समाज, देश और संसार को भी बड़ी हानि पहुँची है।

सुख और सफलता न भाग्यकृत है और न कालकृत वह तो हमारे पुरुषार्थ का ही फल है। मनुष्य को इसका अधिकार प्राप्त है कि वह अपने जीवन को चाहे सुखमय बनावे, चाहे दुःखमय। सफलता प्राप्त करना या न करना भी उसी के अधीन है। मनुष्य आप ही अपना विधाता है। कहा है—

> उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
> आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

अर्थात्— मनुष्य को उचित है कि आपही अपने को नष्ट होने से बचावे। अपने को दुःख में न पड़ने दे। मनुष्य आपही अपना शत्रु और आपही अपना मित्र है।

संसार में नाश दो प्रकार से होता है—एक कालकृत, दूसरा मनुष्यकृत। कालकृत नाश वह है जो अतिवृष्टि, अनावृष्टि अथवा अन्य किसी भौतिक प्रकोप आदि से होता है। उसका प्रतिरोध मानव शक्ति के बाहर है। मनुष्यकृत नाश वह है जिसे मनुष्य स्वार्थ, क्रोध, काम, लोभ, मोह आदि मानसिक विकारों के वशीभूत होकर करता है। इन दोनों में अन्तिम नाश अत्यन्त दारुण और सन्तापजनक है। मनुष्य के किये हुए का प्रतीकार देवता भी नहीं कर सकते। हम लोग अपना बिगाड़ स्वयं करते हैं। बिगाड़ने से बनाना

यदभावि न तद् भावि भावि चेन्नान्यथा भवेत्—
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥

पर ऐसे लोग यह विचार नहीं करते कि मनुष्य चेतन है, वह आप ही अपना विधाता है। जब वह क्रिया करने में स्वतन्त्र है तब फल भी उसी के हाथ में है। उसे जिस फल की इच्छा हो उसी की प्राप्ति के लिए वह कर्म कर सकता है।

कुछ लोग मिथ्यावादी या मायावादी हैं। उन्हें संसार माया-सम्भूत दिखाई देता है। उनका कथन है कि संसार मिथ्या है। उसके सारे व्यवहार मिथ्या हैं। समस्त सुख क्षणिक हैं। इन क्षणिक सुखों के लिए मनुष्य को प्रयत्न न करना चाहिए। ऐसे लोग दिन रात संसार को उसकी असारता के लिए कोसा करते हैं। उन्हें स्त्री, पुत्र, गृह, मित्र, माता-पिता—यहाँ तक कि स्वयं अपना जीवन भी मिथ्या और मायाजनित दिखाई पड़ता है। वे दिन रात परोक्ष का स्वप्न देखा करते हैं। अस्पष्ट और अनिर्वचनीय विषयों पर माथापच्ची किया करते हैं। ऐसों ने ही हमारे देश को अकर्मण्य बनाकर उसकी बड़ी हानि की है। ऐसे लोगों को, संसार में, चारों ओर, दुःख ही दुःख दिखाई पड़ता है—

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धं गतं
तस्यार्धस्य परस्य चार्धमपरं बालत्ववृद्धत्वयोः ।
शेषं व्याधि-वियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते
जीवे वारितरङ्गबुद्बुदसमे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् ॥

इन्हें क्या कहा जाय ? क्या क्षणिक होने से कोई वस्तु असत् या मिथ्या हो सकती है ? यह सच है कि मनुष्य नाशवान् है। उसका जीवन परिमित है। संसार में दुःख भी है। पर, क्या इतने मात्र से हम यह मान लें कि मनुष्य है ही नहीं। संसार के सारे व्यवहार मिथ्या हैं। यहाँ लेशमात्र सुख नहीं। संसार में सभी पदार्थ परिणामी हैं। वे परिणामजन्य हैं। फिर क्या इतने ही से कोई चीज़ ही नहीं ? भोजन करने से क्षुधा की तृप्ति क्षणिक होती है सही, पर दूसरे दिन फिर भूख लगती है—फिर भोजन करने की आवश्यकता पड़ती है। तो क्या लोग भोजन करना छोड़ दें ? क्या वे भोजन के बदले विष खा लिया करें जिससे फिर भोजन ही न करना पड़े ? संसार में सुख भी है, दुःख भी है, भलाई भी है, बुराई भी है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह संसार में हंसवत् विवेक से काम ले। जिसे वह उपकारी और हितकर समझे उसका महण करे। जो इसके विपरीत हो उसका त्याग करे। ऐसा करने से वह संसार में अपने जीवन को आनन्दमय बना सकता है।

एक दल और भी है। वह परोक्ष सुख के लिए दिन रात अपने शरीर को नाना प्रकार के कष्ट दिया करता है। इस प्रकार वह अपने जीवन को दुःखमय बनाये रहता है। उसका सिद्धान्त है कि "देहदुःखं महत्फलम्" संसार में जो जितनाही अधिक कष्ट उठाता है उसे परलोक में उतनाही अधिक सुख और आनन्द मिलता है। भगवान् गौतमबुद्ध ने ऐसे ही लोगों के चक्कर में आकर घोर तप किया था। उससे वे इतने दुर्बल हो गये थे कि उठने बैठने की शक्ति तक न रह गई थी। अन्त में उस महात्मा ने यही निश्चय और साक्षात् किया कि सुख और शान्ति शरीर को कष्ट देने से नहीं मिलती। किन्तु चित्त-वृत्ति को समान रख कर कर्म करने से मिलती है। वह भाग्य, काल, भवितव्यता या यदृच्छा से प्राप्त नहीं होती। किन्तु मनुष्य अपने पुरुषार्थ से उसे प्राप्त कर सकता है।

सबसे अधिक आवश्यक गुण, जो सफलता और आनन्द-प्राप्ति के लिए अपेक्षित है, धृति और दृढ़ प्रतिज्ञा है। हमें उचित है कि हम सबसे पहले यह सोचें कि हम बनना क्या चाहते हैं, हम कैसे अपने जीवन को सर्वोत्तम और आदर्श जीवन बना सकते हैं। हमें अपने ही आनन्द से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, सब के आनन्द से हमें आनन्दित होना चाहिए। महात्माओं का जीवन हमें यही बतला रहा है कि उन लोगों ने अपने ही आनन्द और शान्ति के लिए प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने सारे संसार को आनन्द और शान्तिप्रदान करना ही अपना परम कर्तव्य जाना। बुद्ध, कृष्ण आदि ऐसे ही आदर्श पुरुष थे।

सफलतापूर्वक आनन्द-प्राप्ति का मार्ग सुगम नहीं। पर वह बिलकुल दुःसाध्य भी नहीं। यह वह मार्ग है जिसमें फूल और काँटे मिला कर बिखराये गये हैं। हमें फूँक फूँक कर पैर रखने की आवश्यकता है। सुख से हमें फूल न जाना चाहिए और दुःख से हमें घबराना भी न चाहिए। हमें अपने सङ्कल्प पर दृढ़ रहना चाहिए और अपना कर्तव्य-पालन करते रहना चाहिए। गीता में कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

है। पर उसने सहस्रों वर्षों के अटूट परिश्रम से भी विद्या के समष्टि-ज्ञान के अल्पतम अंश का भी संग्रह नहीं कर पाया है। विद्या अनन्त है। हम जो कुछ विद्या-सम्पादन कर पाते हैं वह बहुत ही कम है। हमें जितनी विद्या प्राप्त करनी है उसके सामने वह समुद्र में बूँद के तुल्य भी नहीं। हम संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाये। एक एक वस्तु में सहस्रों गुण भरे हैं। हम किसी वस्तु के एक गुण को जान कर उससे लाभ उठाते हैं सही। पर उसी वस्तु में अनेक ऐसे भी गुण विद्यमान हैं जिनसे लाभ उठाना तो दूर की बात है, अभी तक हमें उनका ज्ञान भी नहीं हुआ। हम इसी संसार में उत्पन्न होते हैं। इसी में रात दिन अपना जीवन बिताते हैं। यदि हम अपने जीवन के एक अंश मात्र को भी प्रकृति की शक्तियों और तत्त्वों के गुण जानने में लगावें और हम अपने जीवन में किसी गुण के एक अंश को भी जान जायँ तो हमारा जीवन सफल है। तभी हम अपने स्वप्राप्त ज्ञान से अपने पूर्वजों के ज्ञान-भाण्डार को बढ़ा सकेंगे। तभी हम पितृ-ऋण चुका सकेंगे। तभी मनुष्य-समाज हमारा सदा के लिए ऋणी हो सकेगा। यदि हम इसमें कृतकार्य न भी हुए तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि हमारा समय निरर्थक गया। क्योंकि उतने समय में हमारी कुछ न कुछ शारीरिक और मानसिक उन्नति अवश्य ही हुई। मनुष्य-व्यक्ति यदि अपना धन, योग्य, पुरुषार्थ और समय अपनी ही जाति के लोगों को हानि पहुँचा कर स्वार्थ साधने में व्यय करे, तो इससे बढ़ कर खेद की बात और क्या हो सकती है। विद्या के समुद्र को प्राप्त करने की जो जाति उपयुक्त चेष्टा नहीं करती उसके तुल्य मन्दभागिनी जाति दूसरी कौन हो सकती है?

सत्य सदा एक है। वह सब धर्म, सब देश और सब जाति वालों के लिए समान है। दूध सबको मीठा लगता है। दो और दो जोड़ने से सदा चार होते हैं। उनकी चाहे जितनी परीक्षा की जाय वे सदा एक ही ठहरेंगे। यही सत्य है। यही ज्ञान है। यही विज्ञान है। इसी के जानने से मनुष्य कृतकृत्य हो सकता है। संसार के समस्त पदार्थों में यही सत्य व्याप्त है। इसी सत्य को विद्या कहते हैं। यही सारे सुखों का मूल है। पर सत्य का जानना कठिन है। कभी कभी क्या प्रायः सदा ही हम कुछ का कुछ समझते हैं। इसी को भ्रम या अविद्या कहते हैं। यह भ्रम हमें अपनी इन्द्रियों के दोष, असावधानी और अविवेक से होता है। यही भ्रम दुःख का हेतु है। यही बन्धन है। इसी से छूटने या बचने का नाम आनन्द है। इसी को मोक्ष कहते हैं।

साक्षात्करण ही विद्या का प्रधान साधन है। पर सब प्राणी साक्षात्कृतधर्मा नहीं हो सकते। सहस्रों विद्वानों में, जिस प्रकार दो चार बुद्धिमान् होते हैं उसी प्रकार सहस्रों बुद्धिमानों में कहीं एक आध दैवयोग से साक्षात्कृतधर्मा निकल आता है। पर साधारण लोगों के लिए विद्या पढ़ना और पढ़ाना, तथा शास्त्रों का स्वाध्याय भी विद्या की प्राप्ति के साधन हो सकते हैं। बहुत दिन नहीं हुए, सहस्रों में कहीं एक आध पढ़ा लिखा आदमी मिलता था। आज कल अँगरेज़ी सरकार की कृपा से पढ़े-लिखों की संख्या कुछ अधिक हो गई है। यह देख कर कितने ही लोग यह कहा करते हैं कि आज कल शिक्षा आवश्यकता से अधिक हो गई है। जिन्हें पढ़ने की कुछ आवश्यकता नहीं, आज उनके भी लड़के पाठशालाओं में पढ़ते हुए मिलते हैं। भला, इतना पढ़ना हमारे किस काम आवेगा? जितना रुपया लड़कों को पढ़ाने में खर्च होता है उतना तो वे जीवन भर में न कमा सकेंगे। यदि वही रुपया, जो उनकी शिक्षा में खर्च किया जाता है, उनके लिए रख छोड़ा जाय तो उसके ही से वे अपना जीवन सुख से निर्वाह कर सकते हैं। कितने ही लोग यह सोचते हैं कि हमें पढ़ने लिखने से कोई लाभ नहीं। हमारे लड़के पढ़े-लिखे बिना ही अपनी पैतृक सम्पत्ति या काम से सुखपूर्वक अपना निर्वाह कर सकेंगे। पर ऐसे लोग यह नहीं समझते कि मूर्ख मनुष्य पढ़े-लिखों की अपेक्षा अपने धन का अधिक अपव्यय करते हैं। वे उसे व्यर्थ कामों में लगाते हैं। इससे न उन्हें स्वयं कुछ लाभ होता है, न दूसरों ही को कुछ लाभ पहुँचता है। वे सदा दुःखी रहते हैं। उन्हें स्वप्न में भी सच्ची शान्ति और आनन्द नहीं मिलता।

कितने ही लोग जीवन की अव्यक्त अवस्था को जानने के लिए दिन-रात माथा-पच्ची किया करते हैं। वे अपने मानसिक ओज को अनिर्वचनीय बातों की खोज में व्यर्थ नष्ट करते हैं। यदि वे उसे किसी और काम में लगावें तो उससे अनेक लोकोपयोगी काम कर सकें। जिन के लाभ का तो ठिकाना ही न रहे। भगवान् ने गीता में कहा है—

तेरी यह प्यारी किलकारी। हरती है आकुलता सारी॥
तेरा मन्द मन्द मुसकाना। है जादू करता मन माना॥

(१२)

तू उस सीपी का है मोती। जिसकी कान्ति दिव्य है होती॥
तू है हीरा उस मन भाता। जहाँ रहे सब काल उजाला॥
तू है खिला कमल उस सर का। जहाँ राज है सरस मधुर का॥
नहिं कुम्हलाता सकल जिसका दल। तू उस तरु का है सुन्दर फल॥

(१३)

प्यारे तू है उसकी कला। सदा रहा जो फूला फला॥
तू है उस साँचे में ढला। जिसे छू नहीं सकती बला॥
तू उस पलने में है पला। जो है बड़ा अनूठा भला॥
तू उस पथ पर होकर चला। जहाँ अलौकिक दीपक जला॥

(१४)

प्यारे तू है उसकी थाती। जिसका है दुनिया जस गाती॥
तू उस पक्षी जाति का है जन। जिसका सी है बड़ी सजीवन॥
तू है उस ऊँचे कुल वाला। जिसने जग में किया उजाला॥
तू है उस पारस का ही कन। जिसे छू हुआ लोहा कंचन॥

(१५)

जाति सकल आशाओं का थल। प्यारे है तेरा मुख कोमल॥
मन है यह भी सोच समझती। सब है तेरा ही मुख तकती॥
उसकी आँख लालसावाली। तेरे मुख की है मतवाली॥
रहती है अलि-औली भूली। मुख-छवि देख कली सी फूली॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

ज़ेपलिन।

यदि हम युद्ध की समीक्षा ध्यान से करें तो पता लगेगा कि इस युद्ध में जर्मनी को यदि कुछ सफलता हुई है तो केवल विज्ञान द्वारा। जर्मनी के निवासी विज्ञान में दक्ष हैं। इस कारण, सारे संसार के विरोधी बनने पर भी, इतने दिनों तक वे रणक्षेत्र में ठहर सके हैं।

इस युद्ध में जर्मनी को ज़ेपलिन और सब-मेरीन ने बड़ी सहायता दी है। ज़ेपलिन के द्वारा जर्मनी ने बड़े ही अघोर कृत्य कर दिखाये हैं। उसने निर्दयता की हद कर दी है। ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार अब इसका मुँहतोड़ उत्तर दे रही है। उन्होंने भी बड़े बड़े विकट व्योमयानों के बेड़े तैयार करके जर्मनी को नाकों दम करना आरम्भ कर दिया है। ख़ैर, ज़ेपलिन की बातें सुनिए।

ज़ेपलिन एक प्रकार का आकाशचारी जहाज़ है। वायु में उड़ने वाले एक दूसरे प्रकार के विमान भी हैं, जिन्हें "एरोप्लेन" कहते हैं। एरोशिप की श्रेणी के एक प्रकार के वायु-यान को ही ज़ेपलिन कहते हैं। इसे जर्मनी के एक प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता ज़ेपलिन ने बनाया है। इस आविष्कार के लिए इस विज्ञानवेत्ता को कौंट की उपाधि मिली है। इस लिए यह कौंट ज़ेपलिन कहा जाता है।

एरोप्लेन को वायु में ठहराने के लिए बड़ी तेज़ी से चलाने की आवश्यकता पड़ती है। उसमें एक बड़ा तेज़ एंजिन हर समय चलता रहना चाहिए। इस एंजिन की तेज़ चाल इसे वायु में पृथ्वी से बहुत अधिक ऊँचाई पर ठहराये रखती है और गिरने नहीं देती।

एरोशिप या ज़ेपलिन ग़ुब्बारे की तरह होता है। ग़ुब्बारा वायु में क्यों ऊँचा जाता है? इस लिए कि उसमें ऐसी गैस भरते हैं जो वायु से हलकी होती है। विज्ञान का नियम है कि हलका पदार्थ सदैव भारी पदार्थ के ऊपर चला आता है। वज़न में पानी से धातु बहुत भारी होती है। इस लिए यदि हम लोहे का एक टुकड़ा पानी में डालें तो वह फ़ौरन डूब जायगा, किन्तु यदि हम उसी लोहे के टुकड़े की महीन चद्दर पीट कर नाव या जहाज़ बना लें तो वह पानी पर तैरती रहेगी, क्योंकि लोहे की चद्दर का आयतन बढ़ जाने से वह इतने पानी को हटा देती है कि हटा हुआ पानी उस धातु के

ज़ेपलिन ।

गुब्बारे ।
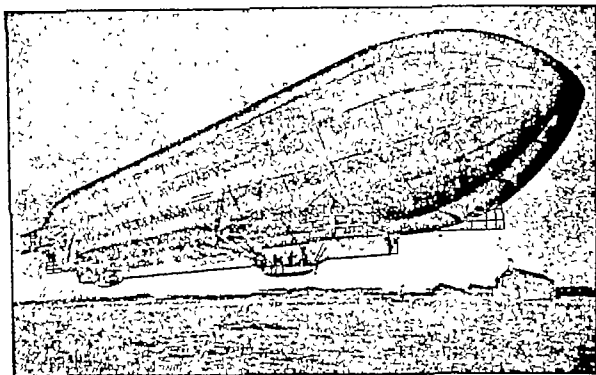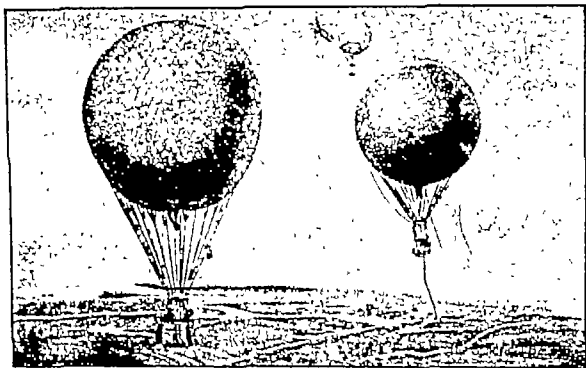
इंडियन प्रेस, प्रयाग ।
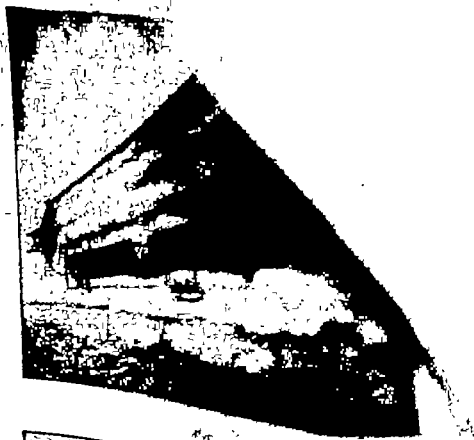
ऊपर कह आये हैं कि ज़ेपलिन को भारी करने के लिए उससे गैस निकाल देते हैं। इससे हलकी गैस के स्थान में भारी हवा आजाती है और ज़ेपलिन नीचे आने लगता है। इस प्रकार कई बार गैस निकाल देने से वह बहुत भारी हो सकता है। गैस न रह जाने से वह वायु में ठहर ही नहीं सकता। इस लिए काउंट ज़ेपलिन ने एक तरकीब निकाल रक्खी है।

ज़ेपलिन के भीतर बहुत से थैले रहते हैं। हर धातु की दो टँकियां भी रहती हैं। एक में वायु भरी रहती है, दूसरी में गैस, जो पम्प की जाती है। इनके सम्बन्ध, नलों द्वारा, थैलों से होते हैं। इस प्रकार जब चाहें, कुछ थैलों को वायु से भर कर भारी कर दें, और जब चाहें वायु की जगह गैस भर कर हलका कर दें।

एक के स्थान में अनेक गैस के थैले रखने से यह लाभ है कि यदि किसी दुर्घटना के कारण थैला फटे तो एक ही दो में से गैस निकल कर ख़राब हो, सब गैस ख़राब न हो।

किसी किसी ज़ेपलिन की लम्बाई ५०० फ़ीट से भी अधिक होती है। उसमें ९,००,००० घन फ़ुट गैस आ सकती है। ऐसा ज़ेपलिन प्रायः साठ मन वज़नी होता है। उसमें सत्तर मन बोझ लादा जा सकता है। यह साठ मील फ़ी घण्टे की गति से चलता है। इसे चलाने के लिए तीन एंजिन, ३५० घोड़े की ताक़त वाले, लगाये जाते हैं।

पृथ्वी से उड़ाने के समय ज़ेपलिन में गैस के सभी थैले गैस से नहीं भरे रहते। कुछ थैले वायु से भरे रहते हैं। ये, भारी होने के कारण, पिछले भाग में रख दिये जाते हैं, जिससे अगला भाग कुछ ऊपर उठा रहे। इस प्रकार उठते समय ज़ेपलिन कुछ भारी रहता है। ज्योंही यह ऊपर की ओर उठता है, त्योंही थैलों से वायु निकाल दी जाती है। इससे गैस के थैले फूल आते हैं और उसका आयतन अधिक हो जाता है। इस प्रकार जब भारी वायु के स्थान में हलकी गैस भर जाती है तब यह वायुयान हलका होकर ऊपर वायु में उठता चला जाता है। अपनी यात्रा आरम्भ करने के समय इसमें बोझ अधिक होता है, किन्तु ज्यों ज्यों यह आगे बढ़ता है त्यों त्यों हलका होता जाता है। क्योंकि इसके एंजिन अपना खाद्य खाते जाते हैं और उन्हें कम करते जाते हैं। ज़रूरत पड़ने पर यह बम के गोले गिराता है। इससे हलका होकर यह और भी ऊँचा उठ जाता है।

इसे चलाने के लिए जो एंजिन रहते हैं उनमें उसी प्रकार पेट्रोल जलता है जिस प्रकार मोटर गाड़ियों के एंजिनों में जलता है। दोनों के एंजिन एक ही क्लास के होते हैं। हाँ, ताक़त में वे एक से नहीं होते। ज़ेपलिन के एंजिन बहुत ताक़तवर होते हैं।

जगन्नाथ खन्ना, बी० ए-सी०

(लखनऊ)

जन्म-भूमि।

१—जहाँ जन्म देता हमें है विधाता,
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता।
जहाँ हैं हमारे पिता, बन्धु, माता,
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥
२—जहाँ की मिली वायु है जीव-दानी,
जहाँ का मिला देह में अन्न पानी,
भरी भूमि में है जहाँ की सुपानी,
वही जन्म की भूमि है भूमि-रानी॥
३—लगी धूल भी देह में जो हमारी,
कभी चित्त से हो सकेगी न न्यारी।
बनाती रही देह को जो निरोगी,
किसे धूल ऐसी सुहाती न होगी ?
४—पिता तुल्य माता हमें पालती है;
हमारे सभी कष्ट भी टालती है।

ऊपर कह आये हैं कि ज़ेपलिम को भारी करने के लिए उससे गैस निकाल देते हैं। इससे हलकी गैस के स्थान में भारी हवा आजाती है और ज़ेपलिम नीचे आने लगता है। इस प्रकार कई बार गैस निकाल देने से वह बहुत भारी हो सकता है। गैस न रह जाने से वह वायु में ठहर ही नहीं सकता। इस लिए कौंट ज़ेपलिम ने एक तरकीब निकाल रक्खी है।

ज़ेपलिन के भीतर बहुत से थैले रहते हैं। दृढ़ धातु की दो टंकियां भी रहती हैं। एक में वायु भरी रहती है, दूसरी में गैस, जो पम्प की जाती है। इनके सम्बन्ध, नलों द्वारा, थैलों से होते हैं। इस प्रकार जब चाहें, कुछ थैलों को वायु से भर कर भारी कर दें, और जब चाहें वायु की जगह गैस भर कर हलका कर दें।

एक के स्थान में अनेक गैस के थैले रखने से यह लाभ है कि यदि किसी दुर्घटना के कारण थैला फटे तो एक ही दो में से गैस निकल कर ख़राब हो; सब गैस ख़राब न हो।

किसी किसी ज़ेपलिम की लम्बाई ५०० फ़ीट से भी अधिक होती है। उसमें ९,००,००० घन फ़ुट गैस आ सकती है। ऐसा ज़ेपलिम प्रायः साठ मन वज़नी होता है। उसमें सत्तर मन बोझ लादा जा सकता है। यह साठ मील फ़ी घण्टे की गति से चलता है। इसे चलाने के लिए तीन एंजिन, २५० घोड़े की ताक़त वाले, लगाये जाते हैं।

पृथ्वी से उड़ाने के समय ज़ेपलिन में गैस के सभी थैले गैस से नहीं भरे रहते। कुछ थैले वायु से भरे रहते हैं। वे, भारी होने के कारण, पिछले भाग में रख दिये जाते हैं, जिससे अगला भाग कुछ ऊपर उठा रहे। इस प्रकार उठते समय ज़ेपलिम कुछ भारी रहता है। ज्योंही वह ऊपर की ओर उठता है, त्योंही थैलों से वायु निकाल दी जाती है। इससे गैस के थैले फूल जाते हैं और उसका आयतन अधिक हो जाता है। इस प्रकार जब भारी वायु के स्थान में हलकी गैस भर जाती है तब वह वायुयान हलका होकर ऊपर वायु में उठता चला जाता है। अपनी यात्रा आरम्भ करने के समय इसमें बोझ अधिक होता है; किन्तु ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ता है त्यों त्यों हलका होता जाता है। क्योंकि इसके एंजिन अपना खाद्य खाते जाते हैं और उन्हें कम करते जाते हैं। ज़रूरत पड़ने पर यह अन्य के मोठे गिराता है। इससे हलका होकर यह और भी ऊँचा उठ जाता है।

इसे चलाने के लिए जो एंजिन रहते हैं उनमें उसी प्रकार पेट्रोल जलता है जिस प्रकार मोटर गाड़ियों के एंजिनों में जलता है। दोनों के एंजिन एक ही क्लास के होते हैं। हां, ताक़त में वे एक से नहीं होते। ज़ेपलिन के एंजिन बहुत ताक़तवर होते हैं।

जगन्नाथ खन्ना, बी० एस्सी०

(लन्दन)

जन्म-भूमि।

१—जहां जन्म देता हमें है विधाता,
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता।
जहां हैं हमारे पिता, बन्धु, माता,
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥

२—जहां की मिली वायु है जीव-दानी,
जहां का मिला देह में अन्न पानी,
भरी जीभ में है जहां की सुबानी,
वही जन्म की भूमि है भूमि-रानी॥

३—उसी भूम की देह में जो हमारी,
कभी चित्त से हो सकेगी न न्यारी।
बनाती रही देह को जो निरोगी,
किसे भूल ऐसी सुहाती न होगी?

४—पिता तुल्य माता हमें पालती है;
हमारे सभी कष्ट भी टालती है।

दृश्य और दूसरे मन्द-दृश्य कहे जा सकते हैं। स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों का अनुभव पहले होता है, मन्द-दृश्य कार्य्यों का पीछे। अर्थात् पहले स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों का अनुभव होता है पीछे मन्द दृश्य कार्य्यों का। क्योंकि जब तक किसी ने जिह्वा से किसी खाद्य का स्वाद नहीं लिया अथवा जब तक नासिका से पुष्प की सुगन्धि नहीं सूँघी तब तक वह खाद्य के स्वाद अथवा उस पुष्प की सुगन्धि का वह चिन्तन नहीं कर सकता।

किसी वस्तु का भाव मन में तभी उदित हो सकता है जब हमने उसे एक बार कभी प्रत्यक्ष देखा हो। इससे यह ज्ञात हुआ कि स्पष्ट-दृश्य कार्य्य आद्य हैं और मन्द-दृश्य कार्य्य उनके अनुगामी अथवा प्रतिबिम्ब-मात्र हैं। पहले कार्य्य ऐसे हैं कि यदि हम चाहें तो भी उन्हें प्रकट नहीं कर सकते, परन्तु दूसरे हमारी इच्छा के अधीन हैं। उदाहरण लीजिए—

देवदत्त का मित्र रामदत्त है। देवदत्त आगरे में और रामदत्त कानपुर में रहता है। जिस समय इच्छा हो उसी समय देवदत्त स्मरण-द्वारा रामदत्त का ध्यान मन में कर सकता है, परन्तु देवदत्त को शरीर-सहित रामदत्त का तभी साक्षात्कार होगा जब रामदत्त स्वयं देवदत्त के घर उपस्थित होगा। केवल देवदत्त की इच्छा से ही रामदत्त शरीर-सहित उपस्थित नहीं हो सकता। इस उदाहरण में शरीर-सहित रामदत्त स्पष्ट-दृश्य कार्य्य है और उसके रूप का स्मरण द्वारा चित्र का चिन्तन मन्द-दृश्य कार्य्य। स्मरण करना हमारी इच्छा के अधीन है, पर जिसका स्मरण किया जाय उसकी उपस्थिति हमारी इच्छा के अधीन नहीं।

स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों को पदार्थ (Object), अजीव (Non-ego) अथवा अनात्मा (Not-self) कह कर व्यक्त करते हैं और मन्द-दृश्य कार्य्यों को ज्ञाता (Subject), जीव (Ego) अथवा आत्मा (Self) कह कर। सारांश यह कि एक अज्ञेय शक्ति तो मन्द-दृश्य कार्य्यों के रूप में दिखाई देती है और एक स्पष्ट-दृश्य कार्य्यों के रूप में। क्योंकि बिना शक्ति-विधान के कोई पदार्थ दृश्य नहीं हो सकता। यदि शक्ति न हो तो कुछ भी दृश्य न हो। जब कुछ दृश्य ही न होगा तब स्पष्ट-दृश्य और मन्द-दृश्य कार्य्य कैसे होंगे? अतएव इन सब दृश्यों का मूलाधार कोई शक्ति अवश्य है।

अब हम पूर्वोक्त दृश्य कार्य्यों के सम्बन्ध में सत्यता का विवरण संक्षेपतः करते हैं—

सत्यता दो प्रकार की है—वास्तविक और व्यावहारिक। यह लिखा जा चुका है कि संसार के मूल-तत्त्व अर्थात् काल, आकाश, प्रकृति, गति, शक्ति और मन—अज्ञेय हैं—अर्थात् हम इनके कारण नहीं जान सकते। वास्तव में ये क्या पदार्थ हैं, कोई नहीं बता सकता, परन्तु व्यवहार में ये कैसे दिखाई देते हैं, यह विषय हमारी बुद्धि-परिधि के अन्तर्गत है। अर्थात्—बुद्धि द्वारा हम इसे जान सकते हैं। अतएव हम यह नहीं बता सकते कि संसार की वास्तविक सत्यता कैसी है। हाँ, हम उसकी व्यावहारिक सत्यता का विचार कर सकते हैं। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि संसार हमारे लिए वास्तविक सत्य नहीं, वह व्यावहारिक सत्य है। इस व्यावहारिक सत्यता के भी दो भेद हैं। एक स्पष्ट दृश्य कार्य्यों की व्यावहारिक सत्यता, दूसरी मन्द-दृश्य कार्य्यों की व्यावहारिक सत्यता। देवदत्त यहाँ उपस्थित है, मैं उसे देख रहा हूँ। देवदत्त यहाँ उपस्थित नहीं है; परन्तु स्मरण द्वारा—कल्पना द्वारा—मैं उसे सामने उपस्थित देखता हूँ। इन वाक्यों में से पहले वाक्य में स्पष्ट-दृश्य-कार्य्य-सम्बन्धिनी व्यावहारिक सत्यता है और दूसरे में मन्द-दृश्य-कार्य्य-सम्बन्धिनी सत्यता। पहले वाक्य की सत्यता में सन्देह नहीं। इस लिए व्यावहारिक दृष्टि से उसे वास्तविक सत्यता कहना चाहिए और दूसरे

से बना है। इस लिए आनुपूर्व्य-सम्बन्ध असली है और सहवर्ती-सम्बन्ध दूसरे सम्बन्धों से निकला हुआ है। आनुपूर्व्य-सम्बन्ध ज्ञान-अवस्था के प्रत्येक परिवर्तन में, प्रत्येक श्रेणी में, होता है; परन्तु सहवर्ती-सम्बन्ध ज्ञान-अवस्था-भेद में आदि से नहीं, क्योंकि अवस्थायें पूर्वापर-क्रम से होती हैं। यह सम्बन्ध उस समय उत्पन्न होता है जब अनुभव करते करते ऐसे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध मालूम हो जाते हैं जो ज्ञानावस्था में अपने दोनों छोरों में एक ही से हों अर्थात् जिनमें आगे पीछे होने वाली घटनायें न हों। जिनमें ऐसी घटनायें हों वे आनुपूर्व्य-सम्बन्ध हैं और जिनमें ऐसी घटनायें न हों वे सहवर्ती-सम्बन्ध हैं। मन में प्रतिक्षण जो जो भाव उदय होते रहते हैं उनमें दोनों तरह के सम्बन्ध रहते हैं। अनुभव करते करते दोनों का अन्तर मालूम होने लगता है और दोनों सम्बन्धों के सार-रूप का ज्ञान हो जाता है। सहवर्ती-सम्बन्धों के सार-रूप का नाम आकाश है। मन में आनुपूर्व्यता और काल का एक सा चिन्तन होना, तथा सहवर्तिता और आकाश का एक सा चिन्तन होना, इस बात का प्रमाण नहीं कि काल और आकाश बुद्धि के वास्तविक रूप हैं। इससे तो यही समझा जाता है कि जैसे दूसरे व्यापक विचारों के साररूप दूसरी विचार-सामग्री से उत्पन्न होते हैं वैसे ही ये भी उत्पन्न होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इनके विषय में अनुभव क्रिया उसी काल से चढ़ती चली आई है, अर्थात् इनका अनुभव तभी से किया जा सकता है जब से बुद्धि का विकाश हुआ है। इस सिद्धान्त का समर्थन व्यवच्छेद-नय से भी होता है। हमें आकाश का जो ज्ञान होता है वह केवल सहवर्ती स्थानों ही का ज्ञान है। यदि हम आकाश की कल्पना करना चाहें तो इस तरह कर सकते हैं। आकाश के किसी स्थान—किसी भाग—को हम ऐसी सीमाओं से घेरें जो आपस में विरोध सम्बन्ध रखती हों और जो सहवर्ती हों। ये सीमायें चाहे रेखायें हों चाहे धरातल हों, जब तक सहवर्ती न होंगी तब तक इनकी कल्पना न हो सकेगी। वे आकाश-रूप बनाने वाली सीमायें सहवर्ती जड़ वस्तुयें हैं। इनमें वस्तुत्व कुछ भी नहीं, वस्तु का नाम-मात्र ही इनमें है। यह कल्पना वस्तुत्व-रहित सहवर्ती-वस्तुओं का सारभूत-रूप है। इसकी उत्पत्ति उन अनेक अनुभवों के संयोग से हुई है जो बुद्धि-विकाश के समय से अब तक होते आये हैं। इस आकाश के ज्ञान के लिए सबसे पहले वस्तुओं को स्पर्श करना चाहिए। यह पहला साधन है। किसी वस्तु के स्पर्श से दो बातों का अनुभव होता है। एक तो उस वस्तु की प्रतिरोधता (Resistance) का, दूसरे उसकी स्नायु-सम्बन्धी वितति (Muscular-tension) का। वस्तु की स्नायु-सम्बन्धिनी वितति प्रति-रोधता के ग्रहण करने में आवश्यक है। अनेक प्रकार के स्नायु-सम्बन्धी समाधानों (Muscular Adjustments) से, जिनमें विविध प्रकार के स्नायु-सम्बन्धी प्रसरणों (Muscular Tensions) की आवश्यकता पड़ती है, अनेक प्रकार के प्रतिरोधक पदार्थों का ज्ञान होता है। जब ऐसी स्थिति वाले पदार्थों का ज्ञान हो जिनमें कोई भी पूर्वापर-सम्बन्ध नहीं, तब उन पदार्थों को सहवर्ती समझिए।

यदि स्नायु-सम्बन्धी समाधानों का संयोग प्रतिरोध करने वाली वस्तुओं से न हो तो उन वस्तुओं का ज्ञान तो होता है, परन्तु उनकी प्रतिरोधता का अनुभव नहीं होता। अर्थात् यह ज्ञान ऐसी सहवर्ती वस्तुओं का होता है जिनमें वस्तुत्व कुछ भी नहीं, केवल उनका रूप ही रूप है। ऐसे ज्ञानानुभवों के सार-रूप का नाम आकाश है।

यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि जिन अनुभवों के द्वारा आकाश का ज्ञान होता है वे सब शक्ति के ही अनुभव हैं। स्नायुसम्बन्धिनी शक्ति

आकाश का भेद मालूम होता है। यदि यह लक्षण न हो तो केवल आकाश का रूप ही रह जाय; वह प्रकृति न रहे। इसके अतिरिक्त, हमें जो अनुभव पहले होता है वह प्रतिरोधता का ही होता है, विस्तार का नहीं। विस्तार का बोध प्रतिरोधता के अनुभवों के प्रयोग से होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि आदि में शक्ति के ही अनुभव होते हैं और वही प्रकृति के ज्ञान के आधार हैं।

प्रकृति, हमारी ज्ञानावस्था में, शक्ति के रूप में वर्तमान रहती है। इसलिए वह हमारी स्नायु-सम्बन्धिनी चेष्टाओं (Muscular Exertions) की प्रति-कूलता करती है। अनुभवों के योग से मालूम होता है कि प्रकृति आकाश को व्याप्त कर रही है। मतलब यह कि प्रकृति ऐसी ही शक्तियों की बनी हुई है जो कोई न कोई विशेष सहवर्ती सम्बन्ध रखती हैं। प्रकृति का यह ज्ञान उसकी व्यावहारिक सत्यता का ज्ञान है। उसकी वास्तविक सत्यता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। इस ज्ञान के विषय में हम यही कह सकते हैं कि यह किसी अज्ञेय कारण का अवस्थान्तर है; यह वास्तविक सत्यता नहीं। तथापि यह सत्यता इतनी स्पष्ट है कि संसार के सारे कार्य्य इसी से चल सकते हैं और इसे मानने से बहुत से उपयोगी नियमों का आविष्कार हो सकता है।

गति (MOTION)

गति के ज्ञान में काल, आकाश, और प्रकृति इन तीनों के ज्ञान का समावेश है। क्योंकि गति का ज्ञान होने के लिए सबसे पहले तो कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिए जो चलती हो; दूसरे, आकाश विद्यमान होना चाहिए, जिसमें वह चले; तीसरे, समय भी विद्यमान होना चाहिए, जो उस वस्तु के एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में आवश्यक है। अर्थात् काल, आकाश और प्रकृति का ज्ञान हुए बिना गति का ज्ञान नहीं हो सकता। हम ऊपर लिख आये हैं कि इन तीनों का—काल आकाश और प्रकृति का—ज्ञान शक्ति के अनुभव-विषयक समाधानों से ही होता है। अतएव गति का ज्ञान भी शक्ति के ही अनुभव से होता है। इस ज्ञान में पहले शरीर के भिन्न भिन्न भागों की वे गतियाँ मालूम होती हैं जिनमें आपस में कोई सम्बन्ध होता है। ये गतियाँ स्नायु-सम्बन्धिनी चेष्टाओं से उत्पन्न होती हैं और स्नायु-सम्बन्धिनी वितति के भावों के रूप में बुद्धि-ज्ञान में दिखाई देती हैं।

इसलिए किसी भी अवयव का प्रसरण अथवा सङ्कोचन उस अवयव के घूमने की गति के अनुसार, पहले पहले ही, स्नायु-सम्बन्धिनी विततियों के माला-रूप में, मालूम होता है। गति का यह आरम्भिक बोध, जो शक्ति के अनुभवों की एक माला है, आकाश और काल के बोध के साथ दृढ़तापूर्वक मिल जाता है। अथवा यों कहिए कि गति का परि-पक्व बोध, प्रारम्भिक बोध के समय, आकाश और काल के बोध के परिपक्व होने के समय ही हो जाता है।

यह गति का बोध व्यावहारिक सत्यता है। अत-एव इससे यह बात ज्ञात होती है कि इसकी वास्त-विक सत्यता भी कुछ न कुछ अवश्य होगी। परन्तु इसके विषय में कुछ कहना हमारी बुद्धि के परे है। कोई न कोई अज्ञेय कारण अवश्य है जिसका कार्य गति के रूप में दिखाई देता है।

शक्ति (FORCE)

काल, आकाश, प्रकृति और गति—इन सब का आधार शक्ति है। प्रकृति और गति अनेक प्रकार के मानसिक सम्बन्धों के मेल से बनी हैं और इन सम्बन्धों के रूप-सार से आकाश और काल बने हैं। इन सम्बधों के परे शक्ति के प्रारम्भिक अनुभव हैं। कोई भी चेतन भूत, जिसमें मानसिक कल्पनायें

(३) वैज्ञानिक तत्त्वों के व्यापक नियम।

काल, आकाश, प्रकृति, गति और शक्ति, ये वैज्ञानिक तत्त्व हैं। इनका वास्तविक अस्तित्व (Real Existence) कैसा है, यह जानना हमारी बुद्धि के परे है। इनका व्यावहारिक अस्तित्व (Phenomenal Existence) कैसा है और इनका ज्ञान कैसे होता है, यह सब हम पहले ही लिख आये हैं। अब हम तत्त्वों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यापक नियमों का निरूपण सुनिए—

इन पाँच तत्त्वों में से काल और आकाश के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है। अतएव अवशिष्ट तीन ही तत्त्वों के नियम बताना है।

प्रकृति का नियम।

किसी भी प्राकृतिक वस्तु का अभाव नहीं हो सकता, अर्थात् प्रकृति का नाश नहीं (Matter is Indestructible)—यह अक्षय है। प्रकृति का रूपान्तर अवश्य होता है; परन्तु उसका सर्वथा क्षय अथवा अत्यन्ताभाव होना असम्भव है।

प्राचीन काल में मनुष्यों का विश्वास था कि प्राकृतिक वस्तुयें सर्वथा नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् उनका नितान्त अभाव हो जाता है। उनका यह भी ख़याल था कि सृष्टि नई होती है। उसकी उत्पत्ति समय समय पर हुआ करती है। विज्ञान के प्रचार से इस विश्वास का अब लोप-सा हो गया है। पुच्छल तारा (Comet) कभी कभी आकाश में अकस्मात् दिखाई देने लगता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी कोई नवीन सृष्टि हुई है—उसका पुनर्जन्म हुआ है। बात यह है कि पहले वह छिपा हुआ था, अतएव हमारी दृष्टि की आड़ में था। पर अब घूमते घूमते यह हमारी दृष्टि के सामने आ गया है। जो पानी भाफ के रूप में होकर दृष्टि से लोप हो जाता है, अर्थात् जो दिखाई नहीं देता, वह वैज्ञानिक साधनों द्वारा फिर पानी के रूप में लाया जा सकता है। वर्षा का जल वही है जो पहले भाफ बन कर हमारी दृष्टि की ओट में हो गया था। मोमबत्ती जलते जलते लुप्त हो जाती है। पर वह अपने परमाणुओं के रूप में अक्षय रहती है। यह न समझना चाहिए कि उसका सर्वथा नाश हो गया है। उसके परमाणु तो वैसे ही वर्तमान रहते हैं—वे तो वैसे ही ज्यों के त्यों बने रहते हैं, उनका रूपान्तर मात्र हो जाता है। रसायन-शास्त्र (Chemistry) के प्रचार से इस सम्बन्ध में मनुष्यों का ज्ञान बहुत अधिक परिष्कृत हो गया है। अब तो यह नियम अखण्डनीय माना जाता है। इस बात के सिद्ध करने में कि प्रकृति का नाश नहीं होता, आरम्भ में बिना प्रमाणों के ही, यह सिद्धान्त मान लेना होगा। क्योंकि प्रकृति को अक्षय सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण दिये जायँगे उनमें यह बात पहले ही से मान ली गई है। इन प्रमाणों में से तौलना (Weighing) मुख्य प्रमाण है, परन्तु तौलने के बाँट (Weights) प्रकृति के बने हुए हैं और यदि उनके एक से रहने में विश्वास न किया जाय तो तौलने की क्रिया भी व्यर्थ ही सिद्ध हो जाय। यदि प्रकृति के अंश एक से न होते तो तपाने और गलाने पर सोना नष्ट हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। उसका एक भी परमाणु कम नहीं होता। इसी तरह रुपयों की तौल लोहे के काँटों से होती है और तौल से यह निश्चय हो जाता है कि रुपयों की संख्या ठीक है। ऐसे कितने ही उदाहरण और भी हैं जिनसे प्रकृति की अक्षयता सिद्ध होती है।

गति के नियम।

गति के तीन नियम हैं:—

(१) गति में विराम नहीं है (Motion is Continuous) अर्थात् गति रुकती नहीं—ठहरती नहीं, यह निरन्तर होती रहती है। यदि ऐसा नियम न होता तो सवितृ-मण्डल (Solar System) में नक्षत्रों

(३) वैज्ञानिक तत्त्वों के व्यापक नियम।

काल, आकाश, प्रकृति, गति और शक्ति, ये वैज्ञानिक तत्त्व हैं। इनका वास्तविक अस्तित्व (Real Existence) कैसा है, यह जानना हमारी बुद्धि के परे है। इनका व्यावहारिक अस्तित्व (Phenomenal Existence) कैसा है और इनका ज्ञान कैसे होता है, यह सब हम पहले ही लिख आये हैं। अब हम तत्त्वों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यापक नियमों का निरूपण सुनिए—

इन पाँच तत्त्वों में से काल और आकाश के विषय में पहले ही लिखा जा चुका है। अतएव अवशिष्ट तीन ही तत्त्वों के नियम बताना है।

प्रकृति का नियम।

किसी भी प्राकृतिक वस्तु का अभाव नहीं हो सकता, अर्थात् प्रकृति का नाश नहीं (Matter is Indestructible)—यह अक्षय है। प्रकृति का रूपान्तर अवश्य होता है, परन्तु उसका सर्वथा क्षय अथवा अत्यन्ताभाव होना असम्भव है।

प्राचीन काल में मनुष्यों का विश्वास था कि प्राकृतिक वस्तुयें सर्वथा नष्ट हो जाती हैं। अर्थात् उनका नितान्त अभाव हो जाता है। उनका यह भी ख़याल था कि सृष्टि नई होती है। उसकी उत्पत्ति समय समय पर हुआ करती है। विज्ञान के प्रचार से इस विश्वास का अब लोप-सा हो गया है। पुच्छल तारा (Comet) कभी कभी आकाश में अकस्मात् दिखाई देने लगता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उसकी कोई नवीन सृष्टि हुई है—उसका पुनर्जन्म हुआ है। बात यह है कि पहले वह छिपा हुआ था, अतएव हमारी दृष्टि की आड़ में था। पर अब घूमते घूमते वह हमारी दृष्टि के सामने आ गया है। जो पानी भाफ के रूप में होकर दृष्टि से लोप हो जाता है, अर्थात् जो दिखाई नहीं देता, वह वैज्ञानिक साधनों द्वारा फिर पानी के रूप में लाया जा सकता है। वर्षा का जल वही है जो पहले भाफ बन कर हमारी दृष्टि की ओट में हो गया था। मोमबत्ती जलते जलते लुप्त हो जाती है। पर वह अपने परमाणुओं के रूप में अक्षय रहती है। यह न समझना चाहिए कि उसका सर्वथा नाश हो गया है। उसके परमाणु तो वैसे ही वर्तमान रहते हैं—वे तो वैसे ही ज्यों के त्यों बने रहते हैं; उनका रूपान्तर मात्र हो जाता है। रसायन-शास्त्र (Chemistry) के प्रचार से इस सम्बन्ध में मनुष्यों का ज्ञान बहुत अधिक परिष्कृत हो गया है। अब तो यह नियम अखण्डनीय माना जाता है। इस बात के सिद्ध करने में कि प्रकृति का नाश नहीं होता, आरम्भ में बिना प्रमाणों के ही, यह सिद्धान्त मान लेना होगा। क्योंकि प्रकृति को अक्षय सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण दिये जायँगे उनमें यह बात पहले ही से मान ली गई है। इन प्रमाणों में से तौलना (Weighing) मुख्य प्रमाण है, परन्तु तौलने के बाँट (Weights) प्रकृति के बने हुए हैं और यदि उनके एक से रहने में विश्वास न किया जाय तो तौलने की क्रिया भी व्यर्थ ही सिद्ध हो जाय। यदि प्रकृति के अंश एक से न होते तो तपाने और गलाने पर सोना नष्ट हो जाता। परन्तु ऐसा नहीं होता। उसका एक भी परमाणु कम नहीं होता। इसी तरह रुपयों की तौल लोहे के बाँटों से होती है और तौल से यह निश्चय हो जाता है कि रुपयों की संख्या ठीक है। ऐसे कितने ही उदाहरण और भी हैं जिनसे प्रकृति की अक्षयता सिद्ध होती है।

गति के नियम।

गति के तीन नियम हैं—

(१) गति में विराम नहीं है (Motion is Continuous) अर्थात् गति रुकती नहीं—ठहरती नहीं; वह निरन्तर होती रहती है। यदि ऐसा नियम न होता तो सवितृ-मण्डल (Solar System) में नक्षत्रों

से यह लेख बहुत बढ़ जायगा। अतएव यहाँ पर ये नियम सूत्ररूप में ही बता दिये गये हैं।

शक्ति के नियम।

शक्ति दो प्रकार की है—व्यक्त (Active-Energy) और अव्यक्त (Dormant-Force)। व्यक्त शक्ति परिवर्त्तन-कारिणी है, अव्यक्त-शक्ति परिवर्त्तन-कारिणी नहीं। लकड़ी में जलने की शक्ति रहती है। जब तक वह अव्यक्त है, लकड़ी नहीं जलती। जब वह व्यक्त होती है तब लकड़ी जलने लगती है। दोनों प्रकार की शक्तियाँ निरन्तर स्थिति वाली हैं। यह नहीं हो सकता कि शक्ति कभी न रहे। शक्ति का अभाव नहीं हो सकता। जिस प्रतिरोधकता (Resistance) का अनुभव हमें पहले होता है वही शक्ति-सूचक सङ्केत है।

शक्ति के मुख्य नियम ये हैं—

(१) शक्ति की स्थिति निरन्तर है (Persistence of Force).

(२) शक्ति के जितने सम्बन्ध हैं उनमें भी वह निरन्तर स्थिति वाली है। (Persistence of Relation among Forces).

(३) शक्ति का रूपान्तर होता है। परन्तु रूपान्तरित अवस्था में भी उसका भार बराबर रहता है (Transformation and Equivalence of Forces).

विद्युच्छास्त्र (Science of Electricity) इन नियमों को अटल प्रमाणों से सिद्ध करके दिखा रहा है। गति के नियम जैसे संसार के सभी पदार्थों में पाये जाते हैं वैसे ही शक्ति के नियम भी सर्वत्र पाये जाते हैं।

नक्षत्र-मण्डल, वायु-मण्डल, जीवधारी, मानसिक भाव और सामाजिक परिवर्तन—सभी में शक्ति के नियमों का निदर्शन विद्यमान है।

अब तक जो नियम लिखे गये वे प्रत्येक तत्त्व के पृथक् पृथक् नियम हैं। परन्तु दृश्य जगत् में, सृष्टि के समस्त पदार्थों में, ये सब तत्त्व अनेक प्रकार से मिले हुए दिखाई देते हैं। अतएव उन नियमों का जानना भी अत्यावश्यक है जो सब तत्त्वों से मिल कर संसार में व्याप्त हैं और जो संसार की स्थिति और नाश के कारण हैं।

[असमाप्त

कन्नोमल, एम० ए०

सन्ध्या का समय।

होता जिसका शुभग उदय है दैव-योग से, होता है वह लिप्त शीघ्र ही गर्व-रोग से।
हाताहत-विचार नहीं उसमें रहता है, इसी हेतु वह कभी कभी दुख भी सहता है।
वही सूर्य जो इस घड़ी डूब रहा है देखिए।
कितने ही इस जगत में कुटिल कर्म इसने किये॥१॥

जिसकी होगी वृद्धि, नाश भी उसका होगा, जिसकी होगी वृद्धि, ह्रास भी उसका होगा।
जिसका है उत्थान, पतन भी उसका होगा, जिसका है आगमन, गमन भी उसका होगा।
उदित हुआ था सूर्य भी डूबेगा फिर क्यों नहीं ?
पड़े किन्तु दृढ़ जानेंगे क्या अपमान इसके यहीं॥२॥

जो फूलेगा उसे कभी कुम्हलाना होगा, जो जन्मेगा उसे कभी मर जाना होगा।
इन बातों पर ध्यान किन्तु क्या जन देते हैं ? करते हैं अन्याय पाप नित ही जैसे हैं।

मृत्यु का नया रूप।

प्राणि-जगत् की ओर स्थूल भाव से दृष्टि डालने पर मालूम होता है कि अपने अपने वंश की रक्षा करना ही प्राणियों और उद्भिदों के जन्म का मुख्य उद्देश है। प्राणी और उद्भिद् दोनों की उत्पत्ति एक एक सूक्ष्म जीव-कोष से होती है। यह जीव-कोष गर्भ में अनेक कोषों वाला हो कर नाना प्रकार के निर्दिष्ट आकार धारण करता है। इस प्रकार के आकारों को धारण कर यह पूर्ण प्राणी या उद्भिद् बन जाता है। इन प्राणियों और उद्भिदों का शरीर जब बढ़ कर पूर्ण हो जाता है तब वे एक-कोष-मय अनेक नवीन जीव पैदा करके अपने जीवन की समाप्ति करते हैं। इस अवस्था को पहुँच कर वे प्राणी और उद्भिद् प्रकृति से मानों अपना सम्बन्ध त्याग देते हैं। उस समय केवल मृत्यु की गोद ही इनका आश्रय होता है। बहुत से ओषधिजातीय उद्भिद् तो एक ही बार फल दे कर चल बसते हैं। बहुत से प्राणी भी सन्तान पैदा करने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस दशा में हमें देख पड़ता है कि सारे संसार के चक्र के भ्रमण के साथ प्राणी का जीवन भी खूब भ्रमण कर रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्राणि-जगत् में एक-कोष वाले जीव से और एक नये कोष वाले जीव की उत्पत्ति होती चली आती है। अपने वंश के प्रवाह को ज्यों का त्यों बनाये रख कर मर जाना ही जीवन की सार्थकता है। पूर्वोक्त विवेचन से यही प्रतीत होता है।

जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध की पूर्वोक्त बातें जड़-विज्ञानियों ही की कही हुई हैं। माता-पिता से जन्म ले कर आहार आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट करना और अन्त में अपने जीवन का प्रवाह अपनी सन्तान की देह में डाल कर मर जाना उद्भिद् और अन्यान्य प्राणियों के जीवन का लक्ष्य हो सकता है। पर मनुष्य-जीवन का यह लक्ष्य नहीं। मनुष्य बहुत बड़ी बुद्धि का अधिकारी हो कर जन्म लेता है। उसको वंश की रक्षा का प्रयोजन बहुत कम है। इस दशा में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति देवी ने अपने हाथ से जो शक्ति मनुष्य के शरीर में निहित की है उसका उपयोग अन्यान्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए आवश्यक है। जो हो, इस कठिन दार्शनिक विचार की आलोचना करना इस लेख के लेखक की शक्ति के बाहर का काम है। हमारा आलोच्य विषय यहाँ 'मृत्यु' है। मृत्यु की तरह कठोर सत्य, मालूम होता है, संसार में दूसरा नहीं।

पृथ्वी के सभी प्राणी मनुष्य की तरह अधिक इन्द्रियों से युक्त हो कर जन्म नहीं लेते। जिनके आँख, कान, नाक और जीभ नहीं, ऐसे भी प्राणी इस भूमण्डल में कम नहीं। ऐसे प्राणी अचेतन की तरह जल या स्थल में पड़े रहते हैं। खाने की कोई चीज़ उनके शरीर से लगते ही उसका सार-भाग चूस कर वे अपना पोषण करते हैं। उनमें स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं देखा जाता। मालूम होता है, अपने शरीर को खण्ड खण्ड करके वंश-विस्तार करना ही उनके जीवन की सार्थकता है। इन सब प्राथमिक प्राणियों की मृत्यु की परीक्षा करने से विदित होता है कि इनकी मृत्यु एक साधारण बात है। उसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं। घृत में गर्मी पहुँचाने से जिस प्रकार वह तरल हो जाता है, इनकी मृत्यु का भी ठीक यही हाल है। जीवन का कार्य समाप्त कर चुकने पर धीरे धीरे इनका शरीर शिथिल हो जाता है। पञ्च-भूतों का बना हुआ यह शरीर फिर पञ्च-भूतों में मिल जाता है। किन्तु उच्च प्राणियों की मृत्यु उनके शरीर की जटिल बनावट ही के सदृश आकस्मिक और भयानक है। स्टीम इञ्जिन जैसे जटिल यन्त्र का यदि कोई कल-पुरज़ा ख़राब हो जाय तो उससे कैसा कर्कश शब्द होने लगता है। शीघ्र ही

इस दिनकर के पतन का तनिक शोक करना नहीं ;
अलौकिक की अन्त में होती है दुर्गति यही ॥३॥

दुख-दायक को दुखी देख कर दुखी न होना—कभी चाहिए, किन्तु चाहिए सुख से सोना।
अब होगा दुख-अन्त शान्ति तब होगी जग में ; फूल खिलेंगे यहीं रहे कांटे जिस मग में।
तपन-पतन के साथ ही विश्व-ताप घटने लगा।
और यहाँ से देख लो, हाहा-रव हटने लगा ॥४॥

अस्ताचल पर पहुँच चढ़कर पूर्ण हुआ क्या ? व्योम इसी के सुभग करों से पूर्ण हुआ क्या ?
लज्जित हो मार्तण्ड निरत क्यों हो जाता है , इसी दृश्य को व्योम हमें क्या दिखलाता है !
या ये तारे हैं उगे एक अग्नि से भिन्न हो।
जहाँ फूट फैली रहे, क्यों न देश वह खिन्न हो ॥५॥

कुछ दिनों दिन अधिक कुदिन देखे आते हैं , कभी स्वप्न में भी न साधुता दिखलाते हैं।
वासर-पति का मान क्षीण होने पाया है , तो भी मन में बनी हुई उसकी ज्वाला है।
रक्त-वदन हो द्वेष से क्रूर-दृष्टि करने लगा।
कांप रहा है क्रोध से यद्यपि यह गिरने लगा ॥६॥

सहज मनुज में नहीं विनयता आ सकती है ; मानी की क्या हृदय-शून्यता जा सकती है ?
हित-अनहित का ज्ञान ज्ञानियों में होता है ; निज कुल का अभिमान मानियों में होता है।
सुखद सूर्य का पतन यह सुखप्रद हुआ किसको नहीं ?
किन्तु कोक वे मूढ़-मति दुखी हुए हैं व्यर्थ ही ॥७॥

काम-वासना क्षीण हुआ जो, अन्य यही है ; पर जगता में सत्य अन्य सुख-खेत नहीं है।
पर, दुख-सुख क्या बिना समय आये मिलते हैं ? कभी निशा में नहीं कमल-कुड्मल खिलते हैं।
कोक, कोकनद शोक में पड़े हुए हैं इस घड़ी।
दीपक ऽपि पर भी इन्हें ममता है कितनी बड़ी ! ॥८॥

निर्विवेक का राज्य जहाँ पर हो जाता है ; ऊँच नीच का भेद वहाँ से खो जाता है।
यही यहाँ भी दृश्य देखने में आवेगा ; तमो-भूप का राज्य दूर अब जम जावेगा।
सब समान हो जायँगे, कुछ भी सूझेगा नहीं।
निपट एक को दूसरा कुछ भी पूछेगा नहीं ॥९॥

अन्धकार-अधिकार यद्यपि बढ़ता जाता है , तो भी इसका अन्त निकट आता जाता है।
किन्तु व्योम में अभी उदित होगा निःसंशय , होंगे नव निर्दोष यहाँ के दुरित-दुःख-भय।
भक्ति-वस्तुओं के सहित सुख से निकलेगा नहीं।
स्वर्णिम-शिखा-सी उस समय चमकेगी भारत-मही ॥१०॥

रामचरित उपाध्याय

मृत्यु का नया रूप ।

प्राणि-जगत् की ओर स्थूल भाव से दृष्टि डालने पर मालूम होता है कि अपने अपने वंश की रक्षा करना ही प्राणियों और उद्भिदों के जन्म का मुख्य उद्देश है। प्राणी और उद्भिद् दोनों की उत्पत्ति एक एक सूक्ष्म जीव-कोष से होती है। यह जीव-कोष गर्भ में अनेक कोषों वाला हो कर नाना प्रकार के निर्दिष्ट आकार धारण करता है। इस प्रकार के आकारों को धारण कर यह पूरा प्राणी या उद्भिद् बन जाता है। इन प्राणियों और उद्भिदों का शरीर जब बढ़ कर पूर्ण हो जाता है तब ये एक-कोष-मय अनेक नवीन जीव पैदा करके अपने जीवन की समाप्ति करते हैं। इस अवस्था को पहुँच कर ये प्राणी और उद्भिद् प्रकृति से मानों अपना सम्बन्ध त्याग देते हैं। उस समय केवल मृत्यु की गोद ही इनका आश्रय होता है। बहुत से ओषधिजातीय उद्भिद् तो एक ही बार फल दे कर चल बसते हैं। बहुत से प्राणी भी सन्तान पैदा करने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस दशा में हमें देख पड़ता है कि सारे संसार के चक्र के भ्रमण के साथ प्राणी का जीवन भी खूब भ्रमण कर रहा है। सृष्टि के आरम्भ से ही प्राणि-जगत् में एक-कोष वाले जीव से और एक नये कोष वाले जीव की उत्पत्ति होती चली आती है। अपने वंश के प्रवाह को ज्यों का त्यों बनाये रख कर मर जाना ही जीवन की सार्थकता है। पूर्वोक्त विवेचन से यही प्रतीत होता है।

जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध की पूर्वोक्त बातें जड़-विज्ञानियों ही की कही हुई हैं। माता-पिता से जन्म ले कर आहार आदि के द्वारा शरीर को पुष्ट करना और अन्त में अपने जीवन का प्रवाह अपनी सन्तान की देह में डाल कर मर जाना उद्भिद् और अन्यान्य प्राणियों के जीवन का लक्ष्य हो सकता है। पर मनुष्य-जीवन का वह लक्ष्य नहीं। मनुष्य बहुत बड़ी बुद्धि का अधिकारी हो कर जन्म लेता है। उसको वंश की रक्षा का प्रयोजन बहुत कम है। इस दशा में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रकृति देवी ने अपने हाथ से जो शक्ति मनुष्य के शरीर में निहित की है उसका उपयोग अन्यान्य प्रयोजनों की सिद्धि के लिए आवश्यक है। जो हो, इस कठिन दार्शनिक विचार की आलोचना करना इस लेख के लेखक की शक्ति के बाहर का काम है। हमारा आलोच्य विषय यहाँ 'मृत्यु' है। मृत्यु की तरह कठोर सत्य, मालूम होता है, संसार में दूसरा नहीं।

पृथ्वी के सभी प्राणी मनुष्य की तरह जटिल इन्द्रियों से युक्त हो कर जन्म नहीं लेते। जिनके आँख, कान, नाक और जीभ नहीं, ऐसे भी प्राणी इस भूमण्डल में कम नहीं। ऐसे प्राणी अचेतन की तरह जल या स्थल में पड़े रहते हैं। खाने की कोई चीज़ उनके शरीर से लगते ही उसका सार-भाग चूस कर वे अपना पोषण करते हैं। उनमें स्त्री-पुरुष का भेद भी नहीं देखा जाता। मालूम होता है, अपने शरीर को खण्ड खण्ड करके वंश-विस्तार करना ही उनके जीवन की सार्थकता है। इन सब प्राथमिक प्राणियों की मृत्यु की परीक्षा करने से विदित होता है कि इनकी मृत्यु एक साधारण बात है। उसमें किसी प्रकार की जटिलता नहीं। घृत में गर्मी पहुँचाने से जिस प्रकार वह तरल हो जाता है, इनकी मृत्यु का भी ठीक यही हाल है। जीवन का कार्य समाप्त कर चुकने पर धीरे धीरे इनका शरीर विश्लिष्ट हो जाता है। पञ्च-भूतों का बना हुआ यह शरीर फिर पञ्च-भूतों में मिल जाता है। किन्तु उच्च प्राणियों की मृत्यु उनके शरीर की जटिल बनावट ही के सदृश आकस्मिक और भयानक है। स्टीम इञ्जिन जैसे जटिल यन्त्र का यदि कोई कल-पुरज़ा ख़राब हो जाय तो उससे कैसा कर्कश शब्द होने लगता है। शीघ्र ही

वह बेकाम हो जाता है और उसकी गति रुक जाती है। किन्तु यदि रहँट जैसा कोई सरल यन्त्र बिगड़ जाय तो उससे न तो भनभनाहट की आवाज़ ही होगी और न वह बहुत बिगड़ा हुआ ही देख पड़ेगा। उच्च प्राणियों का शरीर स्टीम इञ्जिन के सदृश जटिल है। इसी कारण उसमें किसी वस्तु की कमी होते ही वह एकदम गतिहीन और विकृत हो जाता है। शरीर के हर अवयव में रक्त का सञ्चार होना जीवनलक्षण का मुख्य अवलम्ब है। रक्त का सञ्चार बन्द होते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। रक्त में बहती हुई जो छोटी छोटी लाल कणिकायें देख पड़ती हैं वे शरीर के सब भागों में आक्सिजन (अमृत वायु) पहुँचाती हैं। यदि रक्त में आक्सिजन न हो तो प्राणी की मृत्यु अनिवार्य है। आक्सिजन श्वास के द्वारा शरीर के भीतर जाता है। अतएव श्वास बन्द होते ही प्राणी की मृत्यु हो जाती है। इस दशा में दर्शन-शास्त्री यह कहते हैं कि आत्मा का शरीर-पञ्जर छोड़ देना ही मृत्यु है। यह शरीरशास्त्र के वेत्ताओं के कथन से मेल नहीं खाता। शरीर के वेत्ताओं ने तो अनुसन्धान द्वारा प्राणी की समस्त इन्द्रियों और समस्त अवयवों में प्राणवायु का पता लगाया है। उनके मत से प्राणी का समस्त शरीर ही प्राणमय है।

कुछ ही दिन की बात है फ्रांस की एक वैज्ञानिक परिषद् (French Academy of Medicine) में वहाँ के डाक्टर केरल (Dr. Alexis Carrel) ने मृत्यु के सम्बन्ध में जो दो चार नवीन बातें कही हैं वे बड़ी ही विस्मय-जनक हैं। आज कल अद्भुत अद्भुत वैज्ञानिक बातों की कमी नहीं। अख़बारों के पन्ने उलटते ही अनेक अद्भुत समाचार पढ़ने को मिलते हैं। किन्तु पूर्वोक्त डाक्टर केरल एक नामी शरीर-शास्त्रवेत्ता हैं। फ्रांस की पूर्वोक्त वैज्ञानिक परिषद् भी संसार में बहुत प्रसिद्ध है। इसी कारण हमें मृत्यु के सम्बन्ध की इन नवीन बातों पर विश्वास करना पड़ता है। कई साल पहले इन्हीं डाक्टर केरल ने तत्काल मरे हुए प्राणी की देह से मांस का टुकड़ा काट कर उसे जीवित रखने का प्रयत्न किया था। उनका यह प्रयत्न अब सफल भी हो गया है। उन्होंने कुछ ओषधियों में मांस-खण्ड डुबो रक्खा। इससे वह सजीव होने के लक्षण दिखाने लगा। तब डाक्टर केरल ने उस मांस-खण्ड से कुछ टुकड़े काट कर उनको जीवित पशुओं के कटे हुए शरीर पर लगाया। उन्हें इस कार्य में भी सफलता प्राप्त हुई। इस आश्चर्यकारक परीक्षा के फल से वैज्ञानिक संसार को विदित हो गया कि जिस देह को हम मृत समझते हैं उसका बहुत सा अंश मृत्यु का अनुभव करके भी कुछ समय तक जीवित रहता है। वैज्ञानिकों ने मृत देह के इस जीवन को—"Intra-cellular Life" अर्थात्—कोष का जीवन—नाम दिया है। यह आविष्कार बड़ा आश्चर्य-जनक है। किन्तु हाल में डाक्टर केरल ने जो नवीन आविष्कार किये हैं उनका विवरण और भी आश्चर्यकारक है। उन्होंने दिखाया है कि देह से अलग होकर केवल मांसखण्ड ही जीवित नहीं रहता, हृत्पिण्ड आदि विशेष विशेष अवयव भी देह से अलग कर के जीवित रक्खे जा सकते हैं। ये सब अवयव जीवित अवस्था में देह में रह कर जिस प्रकार अपना अपना कार्य करते हैं उसी प्रकार इस अवस्था में भी, अर्थात् देह से पृथक् कर देने पर भी, करते हैं। प्राणी का हृत्पिण्ड धीरे धीरे सिकुड़ता और फैलता हुआ देह में रक्त का सञ्चार करता है। फुप्फुस (फेफड़ा) वायु से आक्सिजन ग्रहण करता है और विषमय अङ्गारक-वाष्प देह से बाहर निकालता है। पाकाशय के सब यन्त्र भोजन का सार ग्रहण करते हैं और उससे रक्त की कणिकायें बनाते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि शरीर के ये अवयव या यन्त्र-समूह शरीर से अलग हो कर भी स्वाभाविक

साथ रखने से जीवित रहते हैं और अपना काम ज्यों का त्यों करते हैं। इसी कारण स्वीकार करना पड़ता है कि देह से अलग होने पर भी ये अवयव जीवन का सब कार्य्य यथावत् चला सकते हैं।

आज तक जितने बड़े बड़े आविष्कार हुए हैं उनका इतिहास देखने से पता लगता है कि आविष्कार करने वालों ने अपने आविष्कारों का आभास पहले किसी दूसरे कार्य्य में पाया था। इसके बाद कठिन साधनाओं द्वारा कार्य्य-कारण-भाव का निश्चय करके, तब कहीं वे उनकी प्रतिष्ठा कर सके। केरल साहब ने भी अपने इस आविष्कार का आभास एक दूसरे ही कार्य्य में पाया था। थोड़े दिन हुए, रात को दस बजने के समय फ्रांस के एक प्रसिद्ध धनिक की मृत्यु हुई। उसकी बहुत बड़ी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका एक नाबालिग़ लड़का था। क़ानून के अनुसार बालिग़ होने का जो समय निश्चित है लड़का उसे उसी रात के बारह बजे पूर्ण करने वाला था। अतएव उसके कुटुम्ब के लोग बड़े चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि नाबालिग़ अवस्था में पिता के मर जाने से लड़के को सम्पत्ति का अधिकारी बनने में बहुत कुछ खर्च उठाना पड़ेगा। मृत व्यक्ति को दो घण्टे तक जीवित रखने के लिए फ्रांस के मुख्य मुख्य चिकित्सक बुलाये गये। केरल साहब भी उन्हीं में थे। वे उसके शरीर के भीतर एक छोटी सी पिचकारी से तरह तरह की ओषधियाँ पहुँचाने लगे। इसका फल यह हुआ कि स्पन्दन-हीन हृत्-यन्त्र फिर स्पन्दन करने लगा। शरीर की गर्मी बढ़ी और फेफड़ा भी ओषधियों की उत्तेजना से अपना श्वासोच्छ्वास-कार्य्य करने लगा। इस प्रकार मृत शरीर में नवीन जीवन का सञ्चार होगया। केरल साहब ने इस प्रकार मृत व्यक्ति को १२ बजने के बाद १५ मिनट तक जीवित रक्खा। पर मृत शरीर में वे चेतना-शक्ति न उत्पन्न कर सके। इसी घटना ने केरल साहब को उनकी गवेषणा का मार्ग दिखला दिया।

जो हो, वर्तमान चिकित्सा-विज्ञान के इस नवीन आविष्कार से संसार के विज्ञान-वेत्ता बहुत कुछ उत्साहित हुए हैं। वे आशा करने लगे हैं कि किसी न किसी दिन मृत देह में चेतना-शक्ति का भी अवश्य सञ्चार किया जा सकेगा। चेतना-शक्ति क्या वस्तु है, यह अब भी जड़-विज्ञानियों को ज्ञात नहीं। इस दशा में मृत शरीर में उसका सञ्चार सम्भव है कि नहीं, यह बात विचारवान् पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं।*

विविध विषय।

१—मेघदूत की दुर्गति।

पै केन्सम नाम की एक किताब किसी ने हमारे पास "द गरुड़ रिप्यू" भेज दी है। यह किताब देहली में छपी है और दरायनी बीसम के बाबू मांगीलाल गुप्त "कवि किङ्कर" के द्वारा प्रकाशित हुई है। टाइटिल पेज पर छिपा है—इसे "आली जनाब पण्डित मथुराप्रसाद साहब मिश्र, मालिक, बसन्ती" ने तैयार किया है। यह कालिदास के मेघदूत के अनुवाद के नाम से प्रकाशित हुई है।

उर्दू के मासिक और साप्ताहिक पत्रों में कभी कभी ऐसे भी लेख देखने में आते हैं जो संस्कृत-काव्यों और दार्शनिक ग्रन्थों के आधार पर लिखे होते हैं। परन्तु इन लेखों के ढंग से बहुधा यही सूचित होता है कि संस्कृत के मूल ग्रन्थ देख कर वे नहीं लिखे गये। या तो किसी से इन ग्रन्थों की बातें सुन सुनाकर लेखकों ने इन्हें लिखा है या और भाषाओं में किये गये इनके अनुवाद देख कर लिखा है। पर इस तरह के लेखक इस बात को कुबूल करना शायद अपनी योग्यता में बट्टा लगाना समझते हैं। इसीसे यह भेद नहीं खोलते। कुछ समय हुआ, कालिदास के ऋतुसंहार के कुछ

* बँगला-पुस्तक—"प्राकृतिकी"—से अनुवादित।

लार्ड किचनर ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

यु-आन शिकाई ।

इंडियन प्रेस, प्रयाग ।

समर्पित की गई है। सम्भव है, डाक्टर साहब कालिदास की कविता के अच्छे मर्म्मज्ञ हों।

२—उद्योग-धन्धे की महत्ता।

सृष्टि-रचना को स्थूल दृष्टि से भी देखने पर यही मालूम होता है कि प्रकृति या परमेश्वर को भिन्नता पसन्द है—उसे नानात्व ही अच्छा लगता है। स्थावर और जङ्गम, उद्भिज्ज और अण्डज, पिण्डज और जरायुज जिस किसी को देखिए सब में आकार, वर्ण और आयतन की भिन्नता ही दिखाई देगी। सब के भीतर एक ही आत्मा की ज्योति का प्रकाश होने पर भी बाहरी रूप-रङ्ग सब का जुदा जुदा है। मनुष्य क्यों एक ही तरह के पदार्थ देखते देखते ऊब जाता है? क्यों वह नये नये भोज्य पदार्थ पाने की इच्छा रखता है? इसी लिए कि परमात्मा ने उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा बना दिया है कि उसे भिन्नता ही अच्छी लगती है। सृष्टि का उद्देश ही कुछ ऐसा है। यही नियम लौकिक विषयों में भी चरितार्थ है। शिक्षा और विद्या को देखिए। सभी को विज्ञान पसन्द नहीं। इसी तरह सभी को साहित्य पसन्द नहीं। कोई गणित से प्रेम रखता है, कोई इतिहास से, कोई सम्पत्तिशास्त्र से, कोई काव्य से, कोई किसी से, कोई किसी से। फिर, समझ में नहीं आता कि हमारे स्कूलों और कालेजों में कला-कौशल और भिन्न भिन्न प्रकार के पेशों—उद्योग-धन्धों—की शिक्षा का विशेष प्रबन्ध क्यों नहीं? यह तो कदापि सम्भव है ही नहीं कि इस प्रकार की शिक्षा लाभदायक न समझी जाती हो, अथवा इसकी प्राप्ति की इच्छा लोग न रखते हों। यह शिक्षा तो सारी लौकिक उन्नतियों की जड़ है। जहाँ इस शिक्षा का पूरा प्रबन्ध है—जहाँ के निवासी उद्योग-धन्धे में लगे हुए हैं—वहाँ की क्या दशा है, ज़रा आँख उठा कर तो देखिए। वे मालामाल हैं। लक्ष्मी उनकी दासी हो रही है। संसार उनके सामने नत-मस्तक है। अतएव इस शिक्षा की महत्ता सिद्ध करने के लिए न प्रमाण दरकार हैं, न दलीलें। इसकी गुरुता तो स्वयंसिद्ध है।

हमारी वर्तमान शिक्षा का ढँग अप्राकृतिक है। प्रकृति नहीं चाहती कि सब पदार्थ—सब मनुष्य—एक ही साँचे में ढाले जायँ। पर हम लोगों की शिक्षा का ढाँचा प्रायः एक ही प्रकार का है। शिक्षा प्राप्त करके लोग क्या बनते हैं? सरकारी मुलाज़िम, वकील, बारिस्टर और डाक्टर आदि। बस और कुछ नहीं। इसका जो फल हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं। वकील हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हैं। कितने ही डाक्टरों को रुपया रोज़ की भी आमदनी नहीं। सरकारी मुलाज़िमत का यह हाल है कि बी० ए० पास बीस रुपये महीने की नौकरी के मुहताज हैं। बात यह है कि एक दो, या दो ही चार पेशों, के भरोसे किसी भी देश की रोटियाँ नहीं चल सकतीं। भारत तो बहुत विस्तृत देश है। इस दशा में इन पेशों के द्वारा बहुत ही थोड़े लोगों का उदर-पोषण हो सकता है। अतएव अब उस ओर से हमें अपना मन हटा कर व्यापार-वाणिज्य, कला-कौशल और उद्योग-धन्धे की ओर लगाना चाहिए। इसीसे हमारा कल्याण हो सकता है। इसीसे देश की धन-सम्पत्ति बढ़ सकती है। इसीसे विद्यादान की भी वृद्धि हो सकती है। धन में बड़ा बल है। धनवानों की संख्या बढ़ने पर यदि उनमें से फ़ी सदी एक भी अपनी कमाई का अल्पांश उद्योग-धन्धे और कला-कौशल की शिक्षा देनेवाले स्कूल खोलने के लिए देने की कृपा करेगा तो इस प्रकार की शिक्षा की बहुत उन्नति हो जायगी।

इस सम्बन्ध में गवर्नमेंट का विशेष दोष नहीं। वह जानती है कि हम लोग हाथ से हथौड़ा उठाने की अपेक्षा क़लम चलाना ही इज़्ज़त का काम समझते हैं। फिर वह क्यों टेकनिकल स्कूल खोले? जो दो एक उसने खोल रक्खे हैं उन्हीं को वह बस समझती है। हमें चाहिए कि हम अपनी दुर्बल पूर्व-प्रवृत्ति को तिलाञ्जलि दे दें। हाथ में क़लम और बसूली, आरी और हथौड़ा, रुखान और बसूला लें और भिन्न भिन्न पेशों का काम सीखें। और कुछ न बन पड़े तो टोकरियाँ बनाना सीखें, चटाइयाँ बनाना सीखें, मिट्टी के खिलौने बनाना सीखें। इसके लिए न हज़ारों के मूल धन की आवश्यकता, न बहुत दिन काम सीखने की आवश्यकता, न कहीं दूर जाने की आवश्यकता। दस पन्द्रह की नौकरी की अपेक्षा इन व्यवसायों से हम अधिक कमा सकते हैं। ऐसा करना औरों के लिए उदाहरण होगा, स्वातन्त्र्य-प्रेम बढ़ेगा, धन की वृद्धि होगी, और धीरे धीरे बड़े बड़े व्यवसाय करने की प्रवृत्ति जागृत हो जायगी। उद्योग-प्रेम के प्रत्यक्ष प्रमाण पाने पर, आशा है, गवर्नमेंट भी हमें उत्तरोत्तर अधिक सहायता देगी।

३—हिन्दू-पुरोहित एक्ट।

बड़ौदा का राज्य नवीनताओं का घर है। वहाँ अनेक ऐसी बातें हुआ करती हैं जो इस देश में अन्यत्र कहीं नहीं होतीं और जिनके होने की अभी बहुत समय तक सम्भावना भी नहीं। रघुवंश में राजा दिलीप के वर्णन में कालिदास ने लिखा है—

प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

मतलब यह कि अपनी प्रजा का यथार्थ पिता वह राजा ही था। उनके भिन्न के पिता तो केवल उनके जनक थे। क्योंकि प्रजा की शिक्षा, उसकी रक्षा और उसके भरण-पोषण का सारा भार उस राजा ही पर था। सच्चे पिता का यही काम है। जन्म देने से ही कोई किसी का यथार्थ पिता नहीं कहा जा सकता। बड़ौदे के महाराज, सर सयाजीराव गायकवाड़ अपनी प्रजा के साथ सचमुच ही पितृवत् व्यवहार करते हैं। उन्होंने देखा कि किसी समय जो ब्राह्मण इस देश में अपनी विद्या, अपनी तपस्या, अपने त्याग और अपने सदाचरण के लिए भू-देव कहाते थे वही आज अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुए हैं, वही आज सही सही सङ्कल्प भी नहीं पढ़ सकते, वही आज द्वार द्वार एक एक पैसा दक्षिणा माँगते फिरते हैं। शिक्षा-प्राप्ति का पूरा पूरा प्रबन्ध कर देने पर भी उन में से अधिकांश उस ओर प्रवृत्त नहीं होते और थोड़ी भी शिक्षा प्राप्त करके अपनी जड़ता और साथ ही दरिद्रता को दूर नहीं करते। ब्राह्मण ही पुरोहित का काम करते हैं। शायद ही कोई गाँव ऐसा होगा जहाँ दान-दक्षिणा माँगने वाले ब्राह्मण न हों। तीर्थों की दशा तो और भी गई बीती है। वहाँ के पण्डे-पुजारी यात्रियों से हज़ारों रुपया ऐंठते हैं। पर सही सही सङ्कल्प पढ़ना तो दूर रहा, वे अपना नाम भी देवनागरी अक्षरों में शुद्ध शुद्ध नहीं लिख सकते। यह दशा देख कर महाराज बड़ौदा ने कहा—ये ऐसे न मानेंगे; शिक्षा शुरू कर देने से भी ये न पढ़ेंगे। इन्हें पढ़ाने के लिए क़ानूनन मजबूर करना चाहिए। इस प्रकार का निश्चय करके उन्होंने पुरोहितों के लिए क़ानून का एक मसविदा तैयार किया। उसकी ख़बर पाकर पौरोहित्य वृत्ति करने वालों और उनके सहायकों ने हाहाकार मचा दिया—अर्ज़ी आदि के द्वारा से सारी रियासत को गुञ्जरित कर दिया। हज़ार समझाने बुझाने पर भी उन्हें सन्तोष न हुआ। परन्तु रोगी के आर्त नाद को सुन कर चतुर वैद्य केवल यह समझ कर कि दवा कड़वी है, यदि उसे न दे तो रोगी के प्राण जाने का डर रहता है। अतएव ऐसे मौक़ों पर दया दिखाना अनुचित समझ कर बड़ौदा-राज्य ने यह क़ानून पास ही कर दिया। जहाँ तक हम देखते हैं, इस क़ानून में कोई बात ऐसी नहीं जिस पर एतराज़ किया जा सके। इसके जारी होने पर जिन जिन कठिनाइयों की सम्भावना थी वे सब दूर कर दी गई हैं। इस एक्ट का एक मात्र उद्देश यह है कि ब्राह्मण पढ़ें, कुछ विद्योपार्जन करें, तब वे पुरोहिती करने के योग्य समझे जायँ। फिर यह भी नहीं कि यह क़ानून सारे राज्य में एक दम से जारी कर दिया गया हो। जहाँ जहाँ इसकी आवश्यकता समझी जायगी वहीं राज्य के गैज़ट में उसके जारी किये जाने की सूचना दी जायगी। इस क़ानून की रू से पुरोहिती करने की इच्छा रखने वालों को मन्त्रों और धर्म्म-शास्त्रों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों में परीक्षा देनी होगी। वेदज्ञ-ब्राह्मणों के लिए और जितने कर्म्मकाण्ड हैं उन सबकी विधिवत् शिक्षा प्राप्त करने ही पर लोग परीक्षा में शरीक किये जायँगे। जो लोग यह परीक्षा पास करके सर्टिफ़िकेट न प्राप्त करेंगे वे पुरोहिती का काम न कर सकेंगे। यदि करेंगे तो उन पर पचीस रुपये तक जुर्माना किया जा सकेगा। इस नियम में कितने ही अपवाद भी हैं। उनके कारण इसके प्रचार से किसी को कष्ट पहुँचने की बहुत ही कम सम्भावना है। हाँ, कर्म्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त करना और उसके साथ ही संस्कृत भाषा का भी कुछ ज्ञान सम्पादन कर लेना ही यदि किसी को कष्ट देना समझा जाय, तो यह कष्ट नहीं, यह तो हित-साधन है।

४—देशी रियासतों में अनिवार्य्य शिक्षा।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारी अवनति के कारणों में से सबसे बड़ा कारण शिक्षा-प्रचार की कमी है। अशिक्षित मनुष्य पशु के सदृश है। शिक्षा ही से ज्ञान-वृद्धि होती है। अज्ञानी अपना भला क्या अपनी उन्नति करेगा? उससे औरों की उन्नति होना तो सर्वथा ही असम्भव है। जिन देशों में शिक्षा का खूब प्रचार है—जहाँ स्कूल जाने योग्य उम्र के बच्चे ज़बरदस्ती पढ़ने लिखने भेजे जाते हैं—उनकी तरफ़ आँख उठा

कर देखिए। वहाँ की दशा का मिलान अपने देश की दशा से कीजिए। आपको आकाश-पाताल का अन्तर देख पड़ेगा। सन्तोष की बात है, भारत की कितनी ही रियासतें इस बात को समझने लगी हैं। इसी से वे अपने अपने राज्य में अनिवार्य्य शिक्षा का प्रबन्ध कर रही हैं। वे चाहती हैं कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य भी कर दी जाय और मुफ़्त भी। बड़ौदे में ये बातें हुए कुछ समय हुआ। इन्दौर-राज्य ने भी, अभी हाल में ही, इसका प्रबन्ध कर दिया है। माइसोर-राज्य क्यों पीछे रहने लगा? वह तो अपने यहाँ अपना विश्वविद्यालय भी अलग खोल रहा है। उसने अब एक क़ानून बना दिया है। उसके अनुसार ७ से ११ वर्ष तक के बच्चों को स्कूल भेजना अनिवार्य्य हो जायगा। इस उम्र के बच्चों के माता-पिता को १ जुलाई १९१६ से उन्हें अवश्य ही स्कूल भेजना पड़ेगा। न भेजने पर उन्हें दण्ड दिया जायगा। यह क़ानून किसी एक ज़िले या परगने के लिए नहीं, सारे राज्य के लिए है। अन्य-राज्यों में भी, इसी तरह, प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य्य हो जानी चाहिए। बिना ऐसा किये कल्याण नहीं।

५—पुलिस और शिक्षा का ख़र्च।

जन माल की रक्षा के लिए पुलिस की आवश्यकता है। परन्तु इससे भी बढ़ कर प्रजा को शिक्षित करने की आवश्यकता है। पुलिस इसी लिए रक्खी जाती है कि वह अपराधियों का पता लगावे, प्रजा को चोरों और डाकुओं आदि से होने वाली हानियों से बचावे और सर्वसाधारण के अमन-चैन में ख़लल डालने वालों को दण्ड दिलावे। विचार करने की बात है कि ये अपराध होते क्यों हैं? इन सभी की जड़ अशिक्षा, कुशिक्षा, दुराचार, अज्ञान, मूर्खता आदि है। यदि लोगों को शिक्षा मिले, यदि उनके चरित्र न बिगड़ें, यदि उन्हें, सदाचार से होने वाले लाभों का ज्ञान हो जाय तो इन अपराधों की संख्या भी उसी परिमाण में कम हो जाय। यह बात तब तक नहीं हो सकती जब तक शिक्षा का यथेष्ट प्रचार देश में नहीं होता। इस दृष्टि से देखने पर यही कहना पड़ता है कि पुलिस के काम की अपेक्षा शिक्षा का काम अधिक महत्त्व का है। परन्तु, खेद की बात है, पुलिस के ख़र्च में यहाँ जितनी वृद्धि की जा रही है शिक्षा के ख़र्च में उतनी नहीं। १९१६—१७ ईसवी के लिए जो शिक्षा-सम्बन्धी ख़र्च का जो तख़मीना गवर्नमेंट ने प्रकाशित किया है उसमें कोई बीस लाख रुपये की कमी है। अर्थात् १९१५—१६ में जितना ख़र्च हुआ था उसकी अपेक्षा १९१६—१७ में बीस लाख रुपया कम ख़र्च किया जायगा। परन्तु पुलिस के ख़र्च में कमी न होगी। इस साल उसमें गत वर्ष की अपेक्षा अठारह लाख से भी अधिक रुपया ख़र्च किया जायगा। बम्बई और बिहार के सूबों को छोड़ कर और कोई सूबा ऐसा नहीं जिसमें इस मद में अधिक ख़र्च का तख़मीना न किया गया हो।

शिक्षा ही की बदौलत मनुष्य का आचरण सुधरता है और शिक्षा ही की प्राप्ति से मनुष्य को अधिक सुख-ऐश्वर्य्य भी प्राप्त होता है। परन्तु शिक्षा सदाचार-वर्धक और धर्म-वर्धक होनी चाहिए। इस तरह की शिक्षा की जितनी ही अधिक वृद्धि की जायगी, पुलिस की उतनी ही कम आवश्यकता होगी। यदि शिक्षा और सदाचार चरम सीमा को पहुँच जायँ तो फिर पुलिस रखने की आवश्यकता ही न पड़े।

६—पृथ्वी के पेट से निकला हुआ पाम्पियाई नगर।

बाबू देवप्रसाद सर्वाधिकारी, एम्० ए०, एल्० एल्० डी० कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उपप्रधान हैं। इतने ऊँचे पद पर अधिष्ठित होने पर भी और अँगरेज़ी भाषा की विशेष पारदर्शिता रखने पर भी आप अपनी मातृ-भाषा बँगला से घृणा नहीं करते। पुरस्कृत शिक्षा-सचिव में आकण्ठ मग्न रहने वाले हमारी तरफ़ के मातृपूतों की श्रेणी के आप नहीं। आप आज कई महीनों से बँगला के मासिक पत्र "भारतवर्ष" में अपनी विलायत-यात्रा का वर्णन प्रकाशित करा रहे हैं। उसमें पाम्पियाई नगर का जो वर्णन उन्होंने किया है उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

इटली के नेपल्स नामक नगर से पाम्पियाई कोई १२ मील है। ऊँचा पहाड़ काट कर इस नगर का निर्माण हुआ था। इसके एक तरफ़ विसूवियस पर्वत और दूसरी तरफ़ समुद्र है। ईसा के जन्म के ८० वर्ष पहले, एक दिन, अकस्मात् विसूवियस ने आग उगलना शुरू कर दिया। एक क्षण में वह अत्यन्त रमणीय नगर नष्ट-भ्रष्ट हो कर राख, बालू और अग्निरस की धारा के नीचे दब गया। पत्थरों और धातुओं की बहती हुई ज्वालामयी नदी के प्रवाह में मनुष्य, पशु,

"हिन्दू" से सम्बन्ध छोड़ दिया। तब आप तामील भाषा के "स्वदेशमित्रम्" नामक पत्र का सम्पादन करने लगे। इसे भी आपने ख़ूब उन्नत कर दिया। उसके महत्त्व को आपने बहुत बढ़ाया। उसका प्रभुत्व दूर दूर तक सुनाई देने लगा। यह पत्र भी दैनिक है। सत्रह अट्ठारह वर्ष से बराबर देश-सेवा कर रहा है। हमारे प्रान्त में जो लोग अँगरेज़ी लिख सकते हैं और जो अँगरेज़ी में पत्र-सम्पादन कर चुके हैं वे अपनी मातृ-भाषा में लिखना और उसके पत्रों का सम्पादन करना अपने लिए कलङ्क की नहीं, तो अपमान की, बात अवश्य समझते हैं। पर इन सभी का नहीं, पर अधिकांश का अवश्य है। हाँ, कुछ समय से हवा का रुख़ कुछ कुछ बदलने के लक्षण दिख रहा है, यह समाधान की बात है। इन लोगों के हृदय में यह बात नहीं धँसती कि मातृभाषा में मनुष्य जितनी ख़ूबी से लिख सकता है उतनी ख़ूबी से अन्य भाषा में नहीं लिख सकता। ये देखते हैं कि इनकी आदर्श भाषा बोलने वाले अँगरेज़ अपनी ही भाषा में लिखते हैं—फ़्रेंच, जर्मन या हिन्दुस्तानी में नहीं। परन्तु, फिर भी, इन लोगों के कुसंस्कार इनके हृदय पर इतने बद्धमूल हो गये हैं कि वे हिलाये नहीं हिलते। अस्तु।

जी॰ सुब्रह्मण्य ने और भी कई पत्रों का सम्पादन करके सुयश कमाया। आप बड़े अच्छे लेखक थे। अपने पत्रों के सिवा अन्यत्र भी आप लेख दिया करते थे। आपकी लिखी हुई दो एक पुस्तकें भी हैं, जो बड़े मेल की हैं। सर फ़ीरोज़शाह मेहता, मिस्टर गोखले, मिस्टर कृष्णस्वामी आइयर आदि आपकी योग्यता के कायल थे। भारतवर्ष की साम्पत्तिक अवस्था का आप बहुत अच्छा ज्ञान रखते थे। वेलबी-कमीशन के सामने, इस विषय में, आपने जो बयान दिया था वह बड़े मार्के का है।

सुब्रह्मण्य महाशय समाज-सुधारक भी थे। आप निर्जीव और हानिकारिणी पुरानी रूढ़ियों के पक्षपाती न थे। १९०१ में जो सोशियल कानफ्रेन्स मदरास में हुई थी उसके सभापति आप ही हुए थे।

आप का पत्र "स्वदेशमित्रम्" अपना काम बराबर किये जा रहा है। आप ही के सुयोग्य पुत्र एस॰ विश्वनाथ, बी॰ ए॰, उसके प्रबन्धकर्ता और मालिक हैं।

९—संस्कृत-शिक्षा के लिए छात्र-वृत्ति।

इलाहाबाद के विश्वविद्यालय ने संस्कृत के छात्रों के लिए २०) मासिक छात्रवृत्ति देने की योजना की है। यह वृत्ति उसी छात्र को मिलेगी जो पूर्वोक्त विश्वविद्यालय की एक विशेष परीक्षा में उत्तीर्ण होगा। यह परीक्षा इस वर्ष पहली और दूसरी अगस्त को विश्वविद्यालय के परीक्षा-भवन में होगी। प्रश्न-पत्र दो रहेंगे। पहला पत्र संस्कृत से अँगरेज़ी और अँगरेज़ी से संस्कृत में अनुवाद का होगा। दूसरा पत्र संस्कृत-व्याकरण, पाली, प्राकृत और संस्कृत-साहित्य के इतिहास का होगा। इस पिछले पत्र में साहित्य के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले आलोचनात्मक प्रश्न भी पूछे जायँगे।

परीक्षार्थियों को कम से कम १५ जून १९१६ के पहले प्रार्थनापत्र नीचे लिखे पते पर भेजना चाहिए—

डाक्टर ए॰ वीनिस, सी॰ आई॰ ई॰,
वुड्स लाक (Woods Lock)
नैनीताल

परीक्षार्थियों को यह बता देना होगा कि उन्होंने संस्कृत के किस विषय का कितना अध्ययन किया है। अर्थात् इलाहाबाद—विश्वविद्यालय की बी॰ ए॰ और एम॰ ए॰ श्रेणियों की पाठ्यपुस्तकों के सिवा उन्होंने संस्कृत के किस किस विषय के कौन कौन ग्रन्थ पढ़े हैं। परीक्षार्थियों को अच्छे चाल-चलन का प्रमाण-पत्र भी भेजना पड़ेगा।

जिन छात्रों को यह छात्रवृत्ति मिलेगी उन्हें संस्कृत-भाषा ही के ग्रन्थों के अध्ययन में अपना सारा समय लगाना पड़ेगा। विश्वविद्यालय के अध्यापकों की सम्मति के अनुसार उन्हें अध्ययन करना होगा। विश्वविद्यालय का अधिकारि-मण्डल, समय समय पर, जिन नियमों का निर्माण करेगा, छात्रों को उनका पालन करना होगा।

इस योजना से संस्कृत को दूसरी भाषा के तौर पर पढ़ने वाले अँगरेज़ीदाँ छात्रों को लाभ अवश्य होगा। उनके परिमित संस्कृत-साहित्य के ज्ञान की मात्रा बढ़ जायगी। इससे सम्भव है, आगे चल कर उनका यह भ्रम भी दूर हो जाय कि संस्कृत मुर्दा भाषा है—उसका साहित्य निकम्मा, असम्बद्ध, अनुपयोगी और निस्सार है।

१०—सरकारी छात्रवृत्तियाँ।

भारतीय छात्रों को विदेश जाकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने

के लिए भारत-सरकार कुछ छात्र-वृत्तियाँ देती है। इन छात्र-वृत्तियों को पाकर आज तक कितने ही [illegible] छात्र भिन्न भिन्न विषयों की शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं। इन छात्र-वृत्तियों का विवरण नीचे दिया जाता है—

नम्बर	छात्र-वृत्ति का नाम	वृत्ति संख्या	मूल्य	अवधि	किस देश में अध्ययन के लिए?	किसे मिल सकती है?	उम्र	पाठ्य विषय
१	भारत-सरकार की छात्र-वृत्ति जो विश्वविद्यालय के द्वारा दी जाती है।	२	३२० और ३०० पौंड	तीन वर्ष	यूनाइटेड किंगडम (इंगलिस्तान)	भारतीय विश्वविद्यालय का पदवीधर भारतवासी	२२—२५ वर्ष	सामान्य [illegible] (General St[illegible]
२	कल-कारखानों आदि की शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली छात्र-वृत्ति	१०	१५० पौंड	दो या तीन वर्ष	यूनाइटेड किंगडम (इंगलिस्तान) अथवा अन्य पश्चिमी देश	स्वीकृत विषय का अनुभव प्राप्त रखने वाला भारत-निवासी (Statutory Native of India)	स्थानिक सरकार निश्चय करेगी	कल कारखानों की बातों के लिए
३	भारत में रहने वाले योरोपियनों या ऐंग्लो इंडियनों के लिए छात्र-वृत्ति	१	२२० या २०० पौंड	तीन या चार वर्ष	यूनाइटेड किंगडम (इंगलिस्तान) या अन्य देश	योरोपियन हाई-स्कूल की परीक्षा पास या भारतीय विश्वविद्यालय का पदवीधर योरोपियन या ऐंग्लो इंडियन भारतवासी	१८ से २१ वर्ष	सामान्य [illegible]
४	पूर्वी भाषाओं के अध्ययन-सम्बन्धिनी छात्रवृत्ति	२	२०० या २२० पौंड	दो वर्ष	योरप	संस्कृत या अरबी के भारतीय प्रोफ़ेसर और इनकी सी योग्यता रखने वाले छात्र।	उम्र की कैद नहीं।	संस्कृत और [illegible]
५	योरोपियन अथवा ऐंग्लो इंडियन स्त्रियों के लिए	१	२०० पौंड	तीन से पाँच वर्ष तक	यूनाइटेड किंगडम (इंगलिस्तान)	भारतवर्ष के किसी विश्वविद्यालय की उच्च परीक्षा पास स्त्रियाँ।	"	[illegible] वैद्यक
६	भारतीय स्त्रियों के लिए	१	२०० पौंड	तीन से पाँच वर्ष तक	यूनाइटेड किंगडम (इंगलिस्तान)	भारतीय विश्वविद्यालय	[illegible]	[illegible]

इन छात्र-वृत्तियों का विस्तृत वर्णन २० मई १९१६ के गैज़ट आफ इंडिया में प्रकाशित हुआ है। कौन कौन छात्र इन छात्र-वृत्तियों को पा सकते हैं, उनका चुनाव किस तरह होता है, कब तक किस देश में उन्हें अध्ययन के लिए जाना चाहिए और किस कालेज में भरती होना चाहिए—यह जिन्हें जानना हो वे पूर्वोक्त गैज़ट देखें।

वृत्ति पाकर जो छात्र विदेश से अध्ययन करके लौटेंगे उनको भारत में नौकरी मिलना सरकार के सुभीते पर अवलम्बित है। सरकार उन्हें नौकरी देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध नहीं।

११—"व्यापारी"—का विशेष अङ्क।

यह अङ्क "व्यापारी" के दूसरे वर्ष की पहली संख्या है। विविध विषय और समालोचना को छोड़ कर इसमें १० लेख और कवितायें हैं। पृष्ठ-संख्या ४८ और मूल्य ।) है। इसके लेखों और लेखकों की नामावली नीचे दी जाती है—

१—बैठे हैं। (कविता)—बाबू मैथिलीशरण गुप्त।
२—जापान की औद्योगिक उन्नति—महावीरप्रसाद द्विवेदी।
३—योरप में वाणिज्य-शिक्षा—श्रीयुत धनमाराम, बी॰ ए॰।
४—वस्त्रोत्पन्न—ठाकुर गदाधरसिंह।
५—कानपुर की उन्नति—लाला सीताराम।
६—देशी व्यापारियों की शिक्षा—पण्डित विश्वनाथ गणेश भागवते, बी॰ ए॰।
७—व्यापारिक चितावनी (कविता)—पण्डित जगन्नारायण भार्गव, बी॰ ए॰।
८—सर विट्ठलभाई माधवलाल—सम्पादक।
९—व्यापार (कविता)—साहित्याचार्य्य पण्डित महेश्वर-प्रसाद मिश्र, शास्त्री।
१०—हमसाक्षी—बाबू शिवनारायण।

इसी से पाठकों को इसके भले बुरे होने का परिचय हो जायगा। कमर्शल प्रेस, जुही, कानपुर से यह प्रकाशित होता है।

१२—सब की सब पास।

पञ्जाब विश्वविद्यालय की एफ़॰ ए॰ परीक्षा में इस वर्ष ९ लड़कियाँ शरीक हुई थीं। ख़ुशी की बात है, सभी पास हो गईं। भारत में इससे पहले किसी विश्वविद्यालय की किसी परीक्षा में स्त्रियों को इतनी सफलता न हुई थी। पञ्जाबियों के लिए यह गौरव की बात है।

उत्तीर्ण लड़कियों में एक मुसलमान, तीन हिन्दू और पाँच देशी क्रिश्चियन हैं। मुसलमान लड़की का पहला नम्बर आया है। आप पञ्जाब चीफ़ कोर्ट के जस्टिस शादीलाल की कन्या हैं। छः लड़कियों ने लाहौर के किनियर्ड कालेज से परीक्षा दी थी और शेष तीन ने ख़ानगी तौर पर।

१३—मुसलमान-कवि अहमद-उल्लाह।

हिन्दी के प्राचीन कवियों और प्राचीन पुस्तकों की खोज की बहुत आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में कुछ काम हुआ अवश्य है, पर वह बहुत थोड़ा है। यह काम बहुत आदमियों के करने का है। एक दो से यह नहीं हो सकता।

आज मैं एक मुसलमान-कवि का परिचय कराने की चेष्टा करता हूँ। उनका नाम है—अहमदउल्लाह। ये अहरियाबाद के रहने वाले थे। फ़ारसी, अरबी और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। जान पड़ता है, दिल्लीपति मुहम्मदशाह के दरबार में आप किसी प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे। आप फ़ारसी और हिन्दी दोनों भाषाओं में कविता करते थे। फ़ारसी की कविता में आप अपना तख़ल्लुस वली रखते थे और हिन्दी में दक्षिण।

इस कवि का शृङ्गार-रस-वर्णन-विषयक एक ग्रन्थ मुझे भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय में मिला है। उसका नाम दक्षिण-विलास है। उसमें ६१२ कवित्त और दोहे हैं। ग्रन्थ देखने से मालूम होता है कि यह कवि अपने विषय का अच्छा पण्डित था। यह बड़ी सरल और मधुर भाषा में कवित्त-रचना करता था।

कवि अहमद-उल्लाह ने लिखा है कि भाषा-काव्य की मधुरता पर मुग्ध होकर ही मैंने यह ग्रन्थ लिखा है। अतः इस कवि के हिन्दी-प्रेम को देख कर इस की कविता पर जो श्रद्धा उत्पन्न होती है वह इसके भावों का मनन करने से और भी अधिक हो जाती है। इसकी कविता से सूचित होता है कि यह कवि कृष्ण का भक्त था।

शृङ्गार-रस के अनेक ग्रन्थ विद्यमान रहते भी इस कवि ने भी, अपने समय की रुचि के अनुसार, इसी ओर अधिक ध्यान दिया। इसी रस के पोषक ५०२ कवित्त इसने इस ग्रन्थ में लिखे हैं। केवल ३० दोहों और कवित्तों में अन्य आठों रसों

पृथक होने से ब्रिटिश साम्राज्य की जो अपरिमित हानि हुई है उसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

लार्ड किचनर पूरे सिपाही थे। सङ्ग्राम-नीति और युद्ध-प्रबन्ध-विषयक आपका ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था। आप ब्रिटिश राज्य के एक आधार-स्तम्भ थे। बड़े बड़े राजनीतिज्ञ और रणविद्याविशारद आपकी दूरदर्शिता और देशभक्ति पर मुग्ध थे। सम्राट् और प्रजा दोनों के आप विश्वासपात्र थे।

१५—युआन शि-काई का शरीर-त्याग।

गत पाँचवीं जून को चीन के राष्ट्रपति युआन शि-काई की मृत्यु हो गई। इधर कुछ दिनों से आप बीमार थे। बहुत कुछ दवा की गई, पर कोई उपाय कारगर न हुआ। अन्त में आपको कराल काल के गाल का ग्रास हो ही जाना पड़ा।

युआन शि-काई संसार के नामी आदमियों में से थे। आप विकट राजनीतिज्ञ थे। माञ्चू वंश के राज्य-पद की जड़ काट कर आप ही ने पहले पहल चीन में प्रतिनिधि-सत्तात्मक राज्य की नींव डाली और आप ही उसके पहले सभापति या राष्ट्रपति हुए। कुछ समय से आप सम्राट् बनने की कामना करने लगे थे, पर विद्रोह होता देख आपने अपनी वह इच्छा स्थगित रक्खी। आपकी मृत्यु से, सम्भव है, चीन के शासन-प्रबन्ध में बहुत कुछ उथल-पुथल हो। पाँचवीं जून १९१६ की तिथि संसार के इतिहास में दुःख के साथ स्मरण की जायगी। क्योंकि इसी दिन लार्ड किचनर भी पञ्चत्व को प्राप्त हुए।'

युआन शि-काई की जगह उपराष्ट्रपति ली युआन हङ्ग राष्ट्रपति का काम कर रहे हैं।

पुस्तक-परिचय।

१—हरीदास एंड कम्पनी की पुस्तकें। इस कम्पनी ने चार पुस्तकें भेजने की फिर कृपा की है। पुस्तक-प्रकाशन का काम यह बड़े उत्साह से कर रही है। छपाई इसकी बहुत अच्छी होती है। भेजी हुई पुस्तकों में पहली पुस्तक—हिन्दी भगवद्गीता है। इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या कोई ४००, और मूल्य १॥) है। यह इस पुस्तक का दूसरा संस्करण है। पहले संस्करण का परिचय दिसम्बर १९१३ की सरस्वती में दिया जा चुका है। उसमें लिखा जा चुका है कि यह—"बड़ी अच्छी पुस्तक है"। उसी को हम दुहराते हैं। इस संस्करण में एक विशेषता है। वह यह कि मूल श्लोक भी ऊपर दे दिये गये हैं। अनुवादक पण्डित हरिदास वैद्य ने बड़ी योग्यता से इसकी रचना की है। मूल का भावार्थ और आशय लिखने में शाङ्कर-भाष्य का सहारा लिया गया है। भाषा बहुत सरल है। सम्पूर्ण अनुवाद और आशय गद्य में है। काग़ज़ और छपाई सुन्दर है। आरम्भ में एक रङ्गीन चित्र भी है। दूसरी पुस्तक भी—भगवद्गीता ही है। यह भी अनुवाद है, पर मूल-रहित। अनुवाद में दोहा, चौपाई और सोरठे का प्रयोग हुआ है। इसके अनुवादक पण्डित ईश्वरीप्रसाद तिवारी हैं। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १२३ और मूल्य ।॥) है। हमारी सम्मति में गीता का अनुवाद जितना गद्य में लाभदायक हो सकता है उतना पद्य में नहीं। हाँ, अनुवादक यदि सिद्ध कवि हो तो बात दूसरी है। तीसरी पुस्तक—शारदकुमारी—है। इसका आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या २१८ और मूल्य ।॥) है। बँगला में एक पुस्तक है—माँ ओ मेये। यह है तो उपन्यास, पर बहुत ही शिक्षाप्रद है। बङ्ग-देश में उसका बड़ा आदर है। वह श्रीयुत दामोदरदेव शर्म्मा की रचना है। प्रस्तुत पुस्तक उसी बँगला पुस्तक का अनुवाद है। कोई जगमोहन नामक सज्जन इसके अनुवादक हैं। इसमें यह दिखाया गया है कि—"भूख की यन्त्रणा से छटपट करती हुई भी—पतिव्रता की मूर्ति, पतिव्रत-धर्म्म-रत—एक हिन्दू नारी किस प्रकार अपने धर्म्म से नहीं डिगती"। चौथी पुस्तक है—जीवनी शक्ति। इसका भी आकार मँझोला है। पृष्ठ-संख्या ७३ और मूल्य ।-) है। डाक्टर प्रतापचन्द्र मजूमदार, एम० डी०, ने बँगला में एक पुस्तक लिखी है। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं, सरस्वती-पाठकों के परिचित पण्डित ज्वालादत्त शर्म्मा। स्वास्थ्य-रक्षा की आवश्यकता से बढ़ कर कोई आवश्यकता नहीं। "एक तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत"। जो तन्दुरुस्त है वही कुछ कर सकता है। रोगी के लिए यहीं नरक है। प्रस्तुत पुस्तक में जीवनी शक्ति की महिमा और स्वास्थ्य-रक्षा के उपाय बताये गये हैं। ये उपाय एक नामी डाक्टर के बताये हुए हैं। अतएव विशेष मान्य हैं। दीर्घ-जीवन-प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पूर्वोक्त चारों पुस्तकें हरीदास एंड कम्पनी को, २०१

से, और कुछ नहीं तो, उन्हें स्त्रियों के पक्ष की अनेक नई नई युक्तियाँ अवश्य मालूम हो जायँगी और स्त्रियों में उनकी आदर-बुद्धि भी अवश्य ही बढ़ जायगी।

※

६—व्याख्यान-साहित्य-संग्रह। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ६०० के लगभग, जिल्द बँधी हुई, मूल्य ढाई रुपया, प्रकाशक—देवचन्द्र दामजी सेठ, मालिक, "जैन", भावनगर, से प्राप्य। इस ग्रन्थ का संकलन और संग्रह आदि मुनिराज श्रीविनयविजयजी ने किया है। इसमें देव, गुरु और धर्म्म का स्वरूप समझा कर आत्म-सत्ता का साक्षात्कार कराने की चेष्टा की गई है। ग्रन्थ में ६ परिच्छेद हैं। उनमें जैन धर्म्म से सम्बन्ध रखनेवाले विविध विषयों का विवेचन है। सैकड़ों प्राचीन ग्रन्थों से सुन्दर सुन्दर पद्यात्मक उक्तियाँ उद्धृत करके विषय-विवेचना की गई है। मूल श्लोक संस्कृत में देकर उनके नीचे उनका अर्थ, भावार्थ और भाष्य आदि गुजराती भाषा में लिखा गया है। बहुतेरे श्लोक जैनों और हिन्दुओं, दोनों, के ग्रन्थों के हैं। संग्रह योग्यता-पूर्वक किया गया है। धर्म्म, आचार, व्यवहार, शिक्षा, सत्य, असत्य, सुजन, दुर्जन, गुण, दोष—आदि सैकड़ों विषयों पर बड़े ही सुन्दर सुन्दर श्लोक दिये गये हैं। व्याख्यान देने वालों के लिए बहुत अच्छा साहित्य इसमें है। ग्रन्थ उत्तम है। छपाई भी अच्छी है। गुजराती और संस्कृत जानने वाले सभी लोगों के काम का है।

※

७—सुख-सञ्चारक कम्पनी, मथुरा, की पुस्तकें। (१) हारमोनियम गाईड। पृष्ठ-संख्या २६, मूल्य ८ आने। इसमें हारमोनियम बजाने की रीति के सिवा, मरम्मत करने की तरकीबें भी लिखी हैं। मरम्मत से सम्बन्ध रखने वाले कई चित्र भी हैं। (२) दन्त-रक्षा। पृष्ठ-संख्या २२, मूल्य ४ आने। दाँतों की बनावट, उनकी रक्षा के उपाय, उनके रोग, रोगों की चिकित्सा आदि का वर्णन इसमें है। देशी और विदेशी दोनों प्रकार की ओषधियाँ लिखी भी गई हैं। डाक्टर महेन्द्रलाल गर्ग ने इसे लिखा है। अनेक ज्ञातव्य बातें इसमें हैं। (३) ब्रह्मचर्य के काम में उपयोगी व्यायाम। पृष्ठ-संख्या २०, मूल्य १ आना। तारुण्य-प्राप्ति के समय युवकों को बुरी आदतों से बचने का सदुपदेश इसमें दिया गया है।

※

८—आत्मोन्नति। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या ७४, मूल्य २ आने, कागज़ चिकना और मोटा, छपाई उत्तम, भाषा गुजराती—पद्यात्मक, लेखक—"विहारी"। इसमें कर्त्तव्य-बोध, ईश्वर-तत्त्व, धर्म्माभिमान, राज-भक्ति, जन्म-भूमि आदि पर सरस और सरल कवितायें हैं। इन्हीं के द्वारा आत्मोन्नति की शिक्षा इसमें दी गई है।

गुजराती भाषा के प्रेमियों में आत्मोन्नति के कवि का बड़ा नाम है। उनकी कविता का एक नमूना लीजिए—

> श्री त्यां सरस्वती सरस्वती त्यां नहि श्री,
> श्री ने सरस्वती ज्यां नहि वीर्य शक्ति;
> त्रिपुटी ओ कदि न परमात्मतत्त्वे,
> संबो सरस्वती श्री शक्ति यतिपदनुं

इसे कवि ने वसन्ततिलक—वृत्त में लिखा है। पर संस्कृत—छन्दःशास्त्र के अनुसार यह पद्य महाभ्रष्ट है। वृत्त के लक्षणानुसार जब तक इसमें अनेक स्थलों पर लघु को दीर्घ और दीर्घ को लघु कोई न पढ़े तब तक यह पद्य कथित वृत्त की गति के अनुसार पढ़ा ही नहीं जा सकता। इसके पीछे चरण में तो १४ के बदले १२ वर्ण हैं। यह अक्षम्य दोष है। इससे कवि की बहुत बड़ी असमर्थता प्रकट होती है। पर गुजराती कवियों में यह दोष इतना रूढ़ हो गया है कि प्रायः कोई भी इससे बचने की चेष्टा नहीं करता। कई वर्ष हुए एक और भी गुजराती कवि की कविता में हम यह दोष दिखा चुके हैं। या तो अपने नमूने के नये छन्दों में लोग लिखें, या यदि संस्कृत के पुराने वृत्तों में वे कविता करें तो उनके लक्षणों की रक्षा करें। मनमानी करना अच्छा नहीं। पुस्तक मिलने का पता—जयन्तीलाल बी० परेख, गोंडल।

※

९—भागवत-पुष्पाञ्जलि। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १०४, मूल्य ६। आने। "विहारी" नाम के ही किसी काव्य-प्रेमी रसिक विद्वान् ने श्रीमद्भागवत के बारहों स्कन्धों से भक्ति और ज्ञान-विषयक १०८ मनोहर पद्य-कुसुम चुन कर उनकी यह अञ्जलि बनाई है। साथ ही उनका गुजराती अनुवाद भी दे दिया है। श्लोक बड़े ही सुन्दर हैं। कई

श्री० सुब्रह्मण्य भारती।

इंडियन प्रेस, प्रयाग।
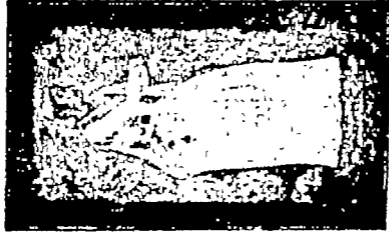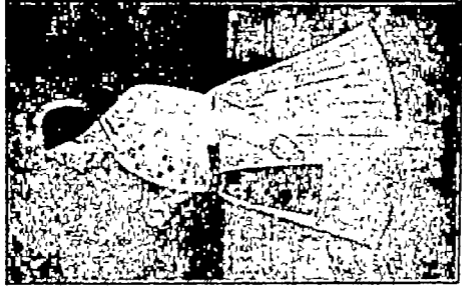
रघुवंशी ने चार पुस्तकें भेजने की कृपा की है। पहली पुस्तक है—श्रीयम-व्यवहार। इसकी पृष्ठ-संख्या १२० है, पर मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं। इसके लेखक ठाकुर बाब-सिंह ने इसे नवयुवकों के लिए लिखा है। अनेक विषयों पर आपने अपने विचार प्रकट किये हैं। प्रारम्भिक शिक्षा, विद्याभ्यास, पुस्तकावलोकन, आरोग्य आदि पर आपके विचार बहुत ही उपयोगी हैं। दूसरी पुस्तक है—बालकों का सुधार। इसकी पृष्ठ-संख्या ६२ और मूल्य ३ आने है। कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी और पण्डित पद्मानाथ शर्म्मा ने इसे लिखा है। बालकों के सुधार से सम्बन्ध रखने वाली अनेक आवश्यक बातों का उल्लेख इसमें है। तीसरी पुस्तक—बाल-शिक्षा (द्वितीय भाग)—की पृष्ठ-संख्या २४ और मूल्य २ आने है। यह एक गुजराती-पुस्तक का अनुवाद है। अनुवादक हैं—ठाकुर पूर्णसिंह वर्म्मा। स्वदेश और "स्वदेशी" पर प्रेम उत्पन्न करने के लिए, बातचीत द्वारा, इसमें सदुपदेश दिया गया है। लड़कों के लिए ही नहीं, औरों के लिए भी यह बड़े काम की है। चौथी पुस्तक है—मेरी दुःख-गाथा। इसकी पृष्ठ-संख्या ३८ और मूल्य ३ आने है। यह कुँवर हनुमन्तसिंह रघुवंशी की रचना है। है तो यह उपन्यास, पर इससे बहुत शिक्षा मिलती है। मनोरञ्जन और शिक्षा-प्राप्ति, दोनों बातें इससे होती हैं। सभी पुस्तकों की भाषा सरल है।

❋

१७—स्वामी रामतीर्थ, भाग पहला। आकार मँझोला, पृष्ठ-संख्या १८९, मूल्य १२ आने। पण्डित भास्कर विष्णु फड़के और रामकृष्ण वासुदेव वर्वे, स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों का अनुवाद मराठी भाषा में प्रकाशित कर रहे हैं। इस ग्रन्थमाला के कई भागों का परिचय सरस्वती में दिया जा चुका है। इस पहले भाग में लोकधर्म्म, आत्म-कृपा, ब्रह्मचर्य्य आदि ४ व्याख्यानों का अनुवाद है। स्वामी जी का एक सुन्दर चित्र भी है। प्रारम्भ में प्रस्तावना और विषय प्रवेश नाम का जो लेख है उसमें स्वामीजी और उनके पूर्वोक्त व्याख्यानों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक महत्त्वपूर्ण बातें हैं। नवीन और उत्तम विचारों से पुस्तक परिपूर्ण है। अनुवादक महाशयों को लिखने से मिलती है। पता—हीरजी बापू की वाड़ी, पोस्ट माहुद्दा, बम्बई।

१८—गयावासी भागवत। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या २८४, मूल्य सवा रुपया। इसकी रचना पण्डित चतुर्भुज मिश्र ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध और सूरसागर के आधार पर की है। कवित्त, कवित्त, दोहा और सोरठा छन्दों का प्रयोग आपने किया है। कृष्णावतार की प्रायः सभी कथा इसमें आ गई है। टाइप बड़ा, छपाई और काग़ज़ साधारण है। गौमाघाट, शिवमुहानी, गया के पते पर लेखक को लिखने से यह पुस्तक मिलती है।

❋

१९—दक्षिण अफ़्रिका की सत्याग्रह का इतिहास। आकार बड़ा, पृष्ठ संख्या १०१, मूल्य डेढ़ रुपया। कुछ समय हुआ, दक्षिणी अफ़्रीका के इंडियन ओपीनियन नामक पत्र का एक विशेष अङ्क (Golden Number) निकला था। उसमें भी इसी सत्याग्रह का इतिहास था, जो इस समा-लोच्य पुस्तक में है। उसमें भी प्रायः वही चित्र थे जो इसमें हैं। वह अङ्क अँगरेज़ी में था, यह पुस्तक हिन्दी में है। परन्तु इस पुस्तक के प्रकाशक का कथन है कि उस अङ्क के—"निकलने से बहुत पूर्व यह पुस्तक लिखी जा चुकी थी"। अस्तु। इस पूर्वलिखित, पर पश्चात् प्रकाशित पुस्तक से हिन्दी की कुछ भी हानि नहीं। पुस्तक में अनेक सुन्दर सुन्दर चित्र हैं, उनमें से कई एक सरस्वती में निकल भी चुके हैं। पुस्तक में क्या है, यह इसका नाम ही बता रहा है। जिन्हें इसके विषय में विशेष बातें जानने की इच्छा हो वे इंडियन ओपीनियन के विशेषाङ्क के आधार पर प्रकाशित वह सचित्र लेख देखें जो सरस्वती में निकल चुका है। पुस्तक का काग़ज़ और छपाई अच्छी है। लेखक हैं इसके—"वीर सत्याग्रही" श्रीयुत भवानीदयाल, डरबन, नेटाल।

❋

२०—जननी-जीवन। आकार छोटा, पृष्ठ-संख्या १२९, मूल्य ६ आने, मिलने का पता—हिन्दी-हितैषी कार्य्यालय, देवरी, सागर। इस नाम की एक पुस्तक बँगला में है। उसके लेखक बाबू विप्रदास मुखोपाध्याय हैं। उसी का यह हिन्दी-अनुवाद है। अनुवादक हैं, पण्डित शिव-सहाय चतुर्वेदी। पति और पत्नी की बातचीत के बहाने इसमें अनेक ऐसी बातें लिखी गई हैं जिनका जानना माताओं

२५—द्रौपदी नी फरियाद—लेखक और प्रकाशक, श्रीयुत मगनलाल माधवलाल झवेरी, ठिकाना—मरवेश्वर वाडी स्ट्रीट ने नाके, गिरगाम् बेक रोड, बम्बई; आकार पेोट्य, पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य आठ आना।

यह पुस्तक गुजराती-भाषा में लिखी गई है। आज कल महाभारत की जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं उनमें द्रौपदी के पाँच पतियों का उल्लेख मिलता है। पाँचों पाण्डव, अर्थात् युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव—यही उसके पति बताये गये हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने इस बात को सिद्ध करने की चेष्टा की है कि द्रौपदी पाँच पतियों की भार्या न थी। अर्जुन ही उसके एकमात्र पति थे। यह सिद्ध करने के लिए उन्होंने जिस विवेचन-पद्धति, जिन युक्तियों और तर्कों, तथा जिन प्रमाणों से काम लिया है वे विचार करने योग्य हैं। महाभारत को पञ्चम वेद मानने वालों, तथा उसे इतिहास-ग्रन्थ कहने वालों को भी यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पाठकों को इससे कितनी ही नवीन बातें मालूम होंगी।

☼

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी पहुँच गई हैं। भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद—

(१) जातीय-गान—लेखक, पण्डित बैजमित्र उपाध्याय, फ़ीरोज़ाबाद।

(२) सभा सुपमा अर्थात् स्वर्ग-सभा—लेखक, गो० श्रीनारायणप्रसादजी, मथुरा।

(३) देशोपकार-रत्नमाला—लेखक, पं० गणेशप्रसाद तिवारी, बिलासपुर।

(४) पाख-व्युत्पत्ति-मञ्जरी } लेखक, बाबू बालेश्वरलाल,
(५) पाख-नीति-मञ्जरी } छपरा।

(६) भारती-शतक—लेखक, श्रीयुत मुंसिफ़सिंह यादव, इटौली, मैनपुरी।

(७) शिरोमणि-उपन्यास, भाग १—लेखक, बाबू शङ्कर-दयाल श्रीवास्तव, रामपुर।

(८) सच्चे सुख की कुंजियाँ—प्रेषक, श्रीयुत चम्पतराय जैन-वैद्य, इटावा।

(९) संक्षिप्त रामायण—प्रकाशक, गोरखा-भाषा-प्रकाशिनी समिति, नेपाल।

(१०) नूतन भजन-रत्नावली—प्रेषक, पं० जानकीप्रसाद मिश्र, सुल्तानगञ्ज।

(११) समाज-हितकारी—प्रकाशक, श्रीआत्मानन्द-जैन-ट्रैक्ट-सोसायटी, अम्बाला।

(१२) नागर-पुष्पाञ्जली, द्वितीयाङ्क—प्रकाशक, पं० केशव-राम विष्णुलाल पण्ड्या, लखनऊ।

(१३) शिल्प-ए-व्यापार—लेखक, लाला अनूपचन्द।

(१४) फीजी टापुओ माँ हिन्दीओनी स्थिति—अनुवादक, कुबेरभाई अवेरभाई पटेल।

(१५) हिन्दी भाषा—लेखक, श्रीयुत देवीदयालजी, हरदा।

चित्र-परिचय।

(१)

रागिनी मेघमल्लार।

इस संख्या के रङ्गीन चित्र का नाम है—रागिनी मेघ-मल्लार। यह कलकत्ते के प्रसिद्ध चित्रकार बाबू रामेश्वरप्रसाद वर्म्मा की रचना है। दार्जिलिंग की प्रदर्शिनी में इस चित्र की बड़ी प्रशंसा हुई थी। चित्रकला-विशारदों ने इसकी प्रशंसा में लेख तक लिखे हैं। इस बात का उल्लेख सरस्वती की किसी गत संख्या में किया जा चुका है। यह चित्र अपनी भारतीय-कला के नमूने का है। इसमें विदेशी ललित-कला का सम्पर्क नहीं। भारतीय चित्रकला में भाव ही की प्रधानता है। यही बात इसमें पाई जाती है। इसमें कई बारीकियाँ भी हैं।

देखिए, वीणा का तार कितना बारीक और सीधा है। उसमें कहीं बल नहीं, कहीं टूटन नहीं। फिर, उँगलियों पर तो निगाह डालिए। असली चित्र में अच्छी तरह देखने से उनके रोम रोम सब अङ्गों के ज्यों दिखाई देते हैं।

(२)

प्राचीन ऐतिहासिक चित्र।

देहली की प्रदर्शिनी में रक्खे गये ऐतिहासिक चित्रों में से कुछ चित्र इस संख्या में प्रकाशित किये जाते हैं। उनका विवरण सुनिए—

(1) पहला चित्र नामी गवैये तानसेन का है। ये अकबर के समय में विद्यमान थे। अकबर ही के दरबार में

सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग १७, खण्ड १

जनवरी–जून

१९१६

सम्पादक

महावीरप्रसाद द्विवेदी

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

वार्षिक मूल्य चार रुपये

लेख-सूची ।

चित्र-सूची ।

रङ्गीन चित्र

सादे चित्र

डोंगरे का बालामृत.
शीशी का दाम १२ आना.
टपाल खर्च ४ आना.
के. टी. डोंगरे कंपनी.
गिरगांव मुंबई
DONGRE'S BALAMRIT
THE IDEAL TONIC FOR CHILDREN.
के. टी. डोंगरे कं. गिरगांव मुंबई.
प्रशंसा पत्र
सेठ कानजी गोविंदजी, नं० ४७ इज़रा स्ट्रीट कलकत्ता लिखते हैं:—
"डोंगरे का बालामृत बच्चों के वास्ते आशीर्वाद के समान है। एक दफ़ा पिलाने से बच्चा फिर आप ही से मांग लेता है। बालामृत पीने में मीठी और पुष्टिकारक है। इसलिये हर एक कुटुंबियों से हम सिफ़ारिश करते हैं कि बच्चों को (डोंगरे का) बालामृत देके आज़माइश कर लेवें।"
प्रशंसा पत्र

बालापत्रबोधिनी।

इसमें पत्र लिखने के नियम आदि बताने के अतिरिक्त नमूने के लिए पत्र भी ऐसे ऐसे छपाये गये हैं कि जिनसे लड़कियों को पत्र आदि लिखने का तो ज्ञान होगाही, किन्तु अनेक उपयोगी शिक्षायें भी प्राप्त हो जायँगी। मूल्य ।≈)

रामाश्वमेध

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने लंका-विजय करने के पीछे अयोध्या में जो अश्वमेध यज्ञ किया था उसका वर्णन इस पुस्तक में बड़ी रोचक रीति से किया गया है। पुस्तक सभी के लिए उपयोगी है। इसकी कथा बड़ी ही वीररस-पूर्ण है। मूल्य ॥)

सचित्र—शरीर और शरीर-रक्षा।

मूल्य ॥) आठ आने

यह पुस्तक पण्डित चंद्रमौलि सुकुल एम० ए० की लिखी हुई है। इसमें शरीर के बाहरी व भीतरी अङ्गों की बनावट तथा उनके काम व रक्षा के उपाय लिखे गये हैं। इसमें ऐसी मोटी मोटी बातों का वर्णन किया गया है और ऐसी सरल भाषा में लिखा गया है, कि हर एक मनुष्य पढ़ कर समझ सके और उससे लाभ उठा सके। मनुष्य के अङ्गावयव-सम्बन्धी २१ चित्र भी इस में छापे गये हैं। यह पुस्तक सर्वथा उपादेय है।

कर्मयोग।

स्वामी विवेकानन्दजी के कर्मयोग-सम्बन्धी व्याख्यानों का हिन्दी-अनुवाद करा कर यह पुस्तक छापी गई है। इसमें सात अध्याय हैं। उनमें क्रमशः १—कर्म का मनुष्यचरित्र पर प्रभाव, २—निष्काम कर्म का महत्त्व, ३—धर्म क्या है?, ४—परमार्थ में स्वार्थ, ५—बेलाग रहना ही सच्चा त्याग है, ६—मुक्ति और ७—कर्मयोग का आदर्श—इन विषयों का वर्णन बहुत ही ओजस्विनी भाषा में किया गया है। अध्यात्मविद्या या कर्मयोग के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ।≈)

शेखचिल्ली की कहानियाँ।

इस पुस्तक की अँगरेज़ी में हज़ारों कापियाँ बिक गईं, बँगला में भी ख़ूब बिक रही हैं। अब हिन्दी में भी यह किताब छप कर तैयार हो गई। इन कहानियों की प्रशंसा में इतना ही कह देना बहुत होगा कि इन्हें शेखचिल्ली ने लिखा है। मूल्य ॥)

श्रीगौरांगजीवनी।

मूल्य ≈) दो आने

चैतन्य महाप्रभु नाम बङ्गाल ही में नहीं किन्तु भारत के कोने कोने में फैला हुआ है। वे वैष्णव धर्म के प्रवर्त्तक और श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। इस छोटी सी पुस्तक में उन्हीं गौराङ्ग महाशय की जीवन-घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन है। पुस्तक साधारणतया मनुष्य मात्र के काम की है; किन्तु वैष्णव धर्मावलम्बियों को तो उसे अवश्य एक बार पढ़ना चाहिए।

मुसल्लिम नागरी।

उर्दू जाननेवालों को नागरी सीखने के लिए इसे कल्प समझिए। इसमें उर्दू और नागरी दोनों छापी गई हैं। इससे बड़ी जल्दी नागरी पढ़ना लिखना आ जाता है। मूल्य ॥)

पुस्तक मिलने का पता—मैनेजर, इंडियन प्रेस, प्रयाग।

नाट्य-शास्त्र ।

(लेखक—पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी)

मूल्य ।) चार आने

नाटक से सम्बन्ध रखनेवाली—रूपक, उपरूपक, पात्र-कल्पना, भाषा, रचनाचातुर्य, वृत्तियाँ, अलङ्कार, रङ्गस्थ, जवनिका, परदे, वेशभूषा, दृश्य काव्य का कालविभाग आदि—अनेक बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया गया है ।

सचित्र

देवनागर—वर्णमाला

आठ रङ्गों में छपी हुई—मूल्य केवल ।≈)

ऐसी उत्तम किताब हिन्दी में आज तक कहीं नहीं छपी । इसमें प्रायः प्रत्येक अक्षर पर एक एक मनोहर चित्र है । देवनागरी सीखने के लिए बच्चों के बड़े काम की किताब है । बच्चा कैसा भी खिलाड़ी हो पर इस किताब को पावे ही वह खेल भूल कर किताब के सौन्दर्य्य को देखने में लग जायगा और साथ ही अक्षर भी सीखेगा । खेल का खेल और पढ़ने का पढ़ना है ।

लड़कों का खेल ।

(पहली किताब)

ऐसी किताब हिन्दी में आज तक कहीं छपी ही नहीं । इसमें कोई ८४ चित्र हैं । हिन्दी पढ़ने के लिए बालकों के बड़े काम की किताब है । कैसा ही खिलाड़ी बालक क्यों न हो और कितना ही पढ़ने से भी घुणता हो इस किताब से हिन्दी पढ़ना लिखना बहुत जल्द सीख सकता है । मूल्य ≈)॥

खेलतमाशा ।

यह भी हिन्दी पढ़नेवाले बालकों के लिए बड़े मजे की किताब है । इसमें सुन्दर सुन्दर तसवीरों के साथ साथ गद्य और पद्य भाषा लिखी गई है । इसे बालक बड़े चाव से पढ़ कर याद कर लेते हैं । पढ़ने का पढ़ना और खेल का खेल है । मूल्य ≈)

हिन्दी का खिलौना ।

इस पुस्तक को लेकर बालक खुशी के मारे कूदने लगते हैं और पढ़ने का तो इतना शौक हो जाता है कि घर के आदमी मना करते हैं पर वे किताब हाथ से रखते ही नहीं । मूल्य ।–)

बालविनोद ।

प्रथम भाग–) द्वितीय भाग –)॥ तृतीय भाग ≈) चौथा भाग ।≈) पाँचवाँ भाग ।≡) ये पुस्तकें लड़के लड़कियों के लिए प्रारम्भ से शिक्षा शुरू करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं । इसमें से पहले तीनों भागों में रंगीन तसवीरें भी दी गई हैं । इन पाँचों भागों में सदुपदेशपूर्ण अनेक कवितायें भी हैं । बंगाल की टैक्स्ट बुक कमेटी ने इनमें से पहले तीनों भागों को अपने स्कूलों में जारी कर दिया है ।

भाषाव्याकरण ।

पण्डित चन्द्रमौलि शुक्ल, एम. ए. असिस्टेंट हेडमास्टर, गवर्नमेंट हाईस्कूल, प्रयाग-रचित । हिन्दी भाषा की यह व्याकरण-पुस्तक व्याकरण पढ़ानेवाले अध्यापकों के बड़े काम की है । विद्यार्थी भी इस पुस्तक को पढ़ कर हिन्दी-व्याकरण का बोध प्राप्त कर सकते हैं । मूल्य ≡)

इन्साफ़-संग्रह—पहला भाग।

पुस्तक ऐतिहासिक है। श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ़ जोधपुर इसके लेखक हैं। इसमें प्राचीन राजाओं, बादशाहों और सरदारों के द्वारा किये गये अद्भुत न्यायों का संग्रह किया गया है। इसमें ८१ इन्साफ़ों का संग्रह है। एक एक इन्साफ़ में बड़ी बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता भरी हुई है। पढ़ने लायक चीज़ है। मूल्य ।=)

इन्साफ़-संग्रह—दूसरा भाग।

इसमें ३७ न्यायकर्त्ताओं द्वारा किये गये ७० इन्साफ़ छापे गये हैं। इन्साफ़ पढ़ते समय तबीयत बहुत ख़ुश होती है। मूल्य केवल ।=) छः आने।

जल-चिकित्सा-(सचित्र)

[लेखक—पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

इसमें, डाक्टर लुई कूने के सिद्धान्तानुसार, जल से ही सब रोगों की चिकित्सा का वर्णन किया गया है। मूल्य ।)

अर्थशास्त्र-प्रवेशिका।

सम्पत्तिशास्त्र के मूल सिद्धान्तों के समझने के लिए इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ना चाहिए। बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ।)

हिन्दी-व्याकरण।

(बाबू भविष्यचन्द्र वर्मा बी॰ ए॰ कृत)

यह हिन्दी-व्याकरण अंगेज़ी ढङ्ग पर बनाया गया है। इसमें व्याकरण के प्रायः सब विषय ऐसी अच्छी रीति से समझाये गये हैं कि बड़ी आसानी से समझ में आ जाते हैं। मूल्य =)॥

धर्मोपाख्यान।

यों तो महाभारत के सभी पर्व मनुष्य मात्र के लिए परम उपयोगी हैं। पर उनमें शान्ति-पर्व सब से बढ़ कर है। उसमें अनेक ऐसी बातें हैं जिन्हें पढ़ सुन कर मनुष्य अपना बहुत सुधार कर सकता है। उसी शान्ति पर्व से यह छोटी सी धर्मविषयक पुस्तक 'धर्मोपाख्यान' तैयार की गई है। इसमें लिखा गया उपाख्यान बड़ा दिलचस्प है। सदाचारनिष्ठ धर्मजिज्ञासुओं को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ।) चार आने।

हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय-मीमांसा।

यद्यपि यह विषय कुछ कठिन ज़रूर है; तथापि लेखक ने इसे बहुत सरल भाषा में समझाया है। यह मीमांसा देखने योग्य है। मूल्य ।)

दुर्गा सप्तशती।

इसका कागज़ मोटा और अक्षर भी बड़े मोटे हैं। चश्मा लगानेवाले बिना चश्मा लगाये ही इसका पाठ कर सकते हैं। बड़ी शुद्ध छपी है। कीलक, कवच, अङ्गन्यास, करन्यास, रहस्य और विनियोग आदि सभी बातें इसमें मौजूद हैं। इसमें यह भी लिखा गया है कि किस काम के लिए किस मंत्र का सम्पुट लगाना चाहिए। ऐसी अत्युत्तम पोथी का दाम केवल ॥=)

तार्किकमोहप्रकाश (कुतर्कियों का मुँहतोड़जवाब) १।)
रसरहस्य (प्रेमियों के देखने योग्य) ... ॥।)
प्रीतमविहार (श्रीरामचन्द्रजी के प्रेममग्न) ।–)
दृष्टान्तसमुच्चय (उपदेश भरे दृष्टान्तों का संग्रह) ≡)
महिम्नस्तोत्र ... ... –)
एकमुखी हनुमत्कवच ... ... –)

भक्ति-पुष्पांजलि

आकार—११½" × १½" दाम ॥~)

एक सुन्दरी शिवमन्दिर के द्वार पर पहुँच गई है। सामने ही शिवमूर्ति है। सुन्दरी के साथ एक बालक है और हाथ में पूजा की सामग्री है। इस चित्र में सुन्दरी के मुख पर, इष्टदेव के दर्शन और भक्ति से होने वाला आनन्द, श्रद्धा और सौम्यता के भाव बड़ी ख़ूबी से दिखलाये गये हैं।

चैतन्यदेव

आकार—१०½" × ६" दाम ।~) मात्र

महाप्रभु चैतन्यदेव बंगाल के एक अनन्य भक्त वैष्णव हो गये हैं। ये कृष्ण का अवतार और वैष्णव धर्म के एक आचार्य माने जाते हैं। ये एक दिन घूमते फिरते जगन्नाथपुरी पहुँचे। वहाँ गरुड़स्तम्भ के नीचे खड़े होकर दर्शन करते करते ये भक्ति के आनन्द में बेसुध होगये। उसी समय के सुन्दर दर्शनीय भाव इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

बुद्ध-वैराग्य

आकार—१८½" × २१" दाम १) रु०

संसार में अहिंसा-धर्म का प्रचार करने वाले महात्मा बुद्ध का नाम जगत् में प्रसिद्ध है। उन्होंने राज्यसम्पत्ति को लात मार कर वैराग्य ग्रहण कर लिया था। इस चित्र में महात्मा बुद्ध ने अपने राज-चिह्नों को निर्जन में जाकर त्याग दिया है। उस समय के, बुद्ध के मुख पर, वैराग्य और अनुचर के मुख पर आश्चर्य के चिह्न इस चित्र में बड़ी ख़ूबी के साथ दिखलाये गये हैं।

अहल्या

आकार—११½" × १८½" दाम १) रु०

गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या अलौकिक सुन्दरी थी। इस चित्र में यह दिखाया गया है कि अहल्या वन में फूल चुनने गई है और एक फूल हाथ में लिये खड़ी कुछ सोच रही है। सोच रही है देवराज इन्द्र के सौन्दर्य को—उन पर वह मोहित सी हो गई है। इसी अवस्था को इस चित्र में चतुर चित्रकार ने बड़ी कारीगरी के साथ दिखलाया है।

शाहजहाँ की मृत्युशय्या

आकार—१४" × १०" दाम ॥)

शाहजहाँ बादशाह को उसके कुपात्र बेटे औरंगज़ेब ने धोखा देकर क़ैद कर लिया था। उसकी प्यारी बेटी जहाँनारा भी बाप के पास क़ैद की हालत में रहती थी। शाहजहाँ का मृत्युकाल निकट है, जहाँनारा सिर पर हाथ रक्खे हुए चिन्तित हो रही है। उसी समय का दृश्य इस चित्र में दिखलाया गया है। शाहजहाँ के मुख पर मृत्युकाल की दशा बड़ी ही ख़ूबी के साथ दिखलाई गई है।

भारतमाता

आकार—१०½" × ६" दाम ।~)

इस चित्र का परिचय देने की अधिक आवश्यकता नहीं। जिसने हमको पैदा किया है, जो हमारा पालन कर रही है, जिसके हम कहलाते हैं, और जो हमारा सर्वस्व है उसी जननी जन्मभूमि भारत-माता का तपस्विनी वेष में यह दर्शनीय चित्र बनाया गया है।